
भाग १] वैदिक साहित्य की सचित्र मासिक पत्रिका [संख्या १

वेदोदय



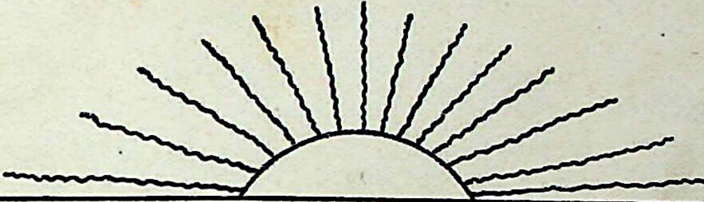
सम्पादक—
श्री प० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०
श्री विश्वप्रकाश बी० ए०, एल-एल, बी०

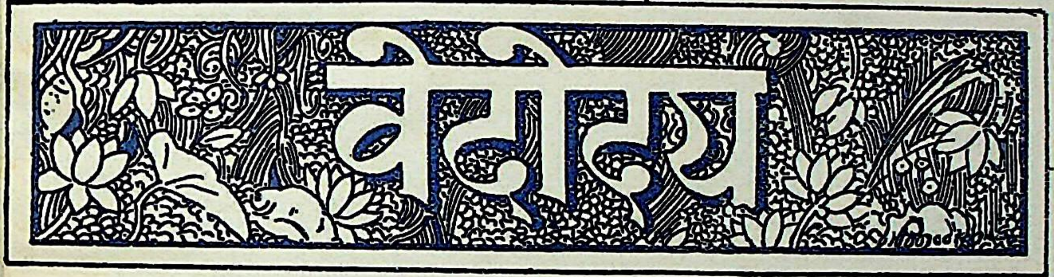
वार्षिक २)] [एक प्रति ।)

लेख-सूची

(१) वेद वाणी—(कविता) श्री विद्याभूषण 'विभु' १
(२) वेदों की झांकी २
(३) शुभ सन्देश—महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ... ४
(४) वेदोदय—पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय ६
(५) शुभ-सन्देश—महाराजाधिराज सर नाहर सिंह शाहपुराधीश ... ९
(६) वैदिक युग में पुनर्जन्म विचार—श्री० पं० देवेन्द्र चन्द्रजी विद्याभास्कर १०
(७) पवित्र आत्मा (कहानी)—श्रीमती सुदक्षिणा वर्म्मा। ... १३
(८) बनै वेद ही प्राण प्यारा हमारा (कविता)—वैदिक धर्म विशारद पं० सूर्य्य देव शर्म्मा साहित्यालंकार एम.ए. एल. टी. ... १९
(९) ईश्वरीय ज्ञान—श्री० सत्यप्रकाश जी एम. एस्-सी, एफ, आई. सी. एस, ... २२
(१०) आर्य्य समाज के निर्माता—गुरुवर विरजानन्द—श्री विश्वप्रकाश वी. ए. एल-एल. वी २९
(११) अथर्ववेद का फारसी रूपान्तर—प्रो० महेश प्रसाद मौलवी फाजिल, हिन्दू विश्व विद्यालय काशी ३४
(१२) सम्पादकीय—अपने विषय में; रजत जयन्ती; गुरुकुल कांगड़ी का नया भवन, पं० श्यामजी कृष्ण वर्म्मा ३६







(भाग १)

[चैत्र १९८७ से भाद्र १९८७ तक]

सम्पादक

श्री० पं० गंगा प्रसाद उपाध्याय एम० ए०
श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी



वार्षिक मूल्य प्रचारार्थ २)





अनुक्रमणिका

१—अथर्ववेद का फ़ारसी रूपान्तर [श्री० प्रो० महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फाज़िल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय] ३४

२—अभ्यर्थना (कविता) [पं० राजाराम पाण्डेय 'मधुप'] ५६

३—आकर (कविता) [श्री सत्य प्रकाश एम० एस० सी०, एफ़० आई० सी० एस] ४१

४—आर्य्य-नगर (कहानी) [श्री बा० अवधविहारी लाल बी० ए० विशारद] ... ९४

५—आर्य्य-समाज और सनातन-धर्म [श्री देवेन्द्रचन्द्र जी विद्या-भास्कर] ... १३६

६—ईश महिमा [पं० राजाराम पाण्डेय मधुप] : १३१

८—ईश्वरीय ज्ञान [श्री सत्यप्रकाश एम० एस० सी०, एफ़० आई० सी० एस०] ... २२

७—ऋषि दयानन्द [श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी] ६३

९—कोयल बोली मोर नाचता रह गया (कहानी) [श्रीमती मन्दालसा देवी] १७५

१०—गुरुवर विरजानन्द [श्री विश्व-प्रकाश बी० ए०, एल० एल० बी०] २९

१३—ठाकुर जी (कहानी) [श्री हरि-वंशराय जी बी० ए०] १३

११—त्यागमूर्ति महात्मा हंसराज जी १९३

१२—धार्मिक श्रद्धा [प्रो० सत्येन्द्र नाथ एम० ए०] ७१

१४—न हो (कविता) [श्री विश्व-प्रकाश बी० ए०, एल-एल० बी०] ... ६३

१५—पं० श्याम जी कृष्ण वर्म्मा [भाई परमानन्द एम० ए०) १०७

१६—परिवर्तन (कहानी) [श्रीयुत आनन्द] १७२

१७—पवित्र आत्मा (कहानी) [श्रीमती सुदक्षिणा वम.] १३

१८—प्रकृति (कविता) [श्री चिन्ता-मणि जी वर्मा "मणि" १३१

१९—प्रभाव (कहानी) श्री आनन्द ... १३२

२०—प्रहेलिका (कविता) [श्री सत्य प्रकाश एम० एस० सी०] १२१

२१—बकरीद के दिन ईरान में [प्रो० महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फाज़िल.] ... ५७

२२—बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा (कविता) [पं० सूर्यदेव शास्त्री साहित्यालंकार एम० ए०, एल० टी०] ... १९

२३—बाइबिल में चमत्कार [श्री विश्व प्रकाश बी० ए० एल० बी०] १०८, १४७ १७९

२४—ब्राह्मण की गौ १५५,२३६

२५—भजन (कविता) श्री हरिवंश राय जी बी० ए० २०१

२६—मुनिवर पं० गुरुदत्त जी विद्यार्थी एम० ए० १४०

२७—मुहर्रम [प्रो० महेशप्रसाद] १०५

२८—लाला लाजपतराय २३१

२९—वेदार्थ और स्वामी दयानन्द [श्री० बा० श्यामसुन्दर लाल] २०२

३०—वेद-वाणी (कविता) [श्री विद्याभूषण 'विभु'] १

३१—वैदिक युग में पुनर्जन्म विचार [श्री पं० देवेन्द्रचन्द्र जी विद्या-भास्कर] १०

३२—वेदों की झांकी [सम्पादक] २,४५ ८३, १२३, १६५ २०८

३३—वेदोदय [श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०] ६

३४—शतपथ ब्राह्मण [पं० गंगा-प्रसाद उपाध्याय] १८४

३५—शंकर, रामानुज और दयानन्द [श्री० पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०] १२५, १७१, २११

३६—शंका समाधान [सम्पादक] ७०, ११६, १५२

३७—शारदा एक्ट [प० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०] ५८

३८—शुभ-सन्देश [महाराजाधि-राज सर नाहरसिंह जी शाह-पुराधीश] ९

३९—श्रावणी पूर्णिमा [पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए० एल० टी०] २२५

४०—सम्पादकीय ४
१—अपने विषय में ३६
२—आर्य्य साहित्य मंडल की स्थापना ११८
३—गायत्री मंत्र और चौबीस अक्षर तथा वेदोदय पर आक्षेप १५८
४—गुरुकुल कांगड़ी का नया भवन ३८
५—गुरुकुल रजत जयन्ती ३७
६—गुरुकुल रजत जयन्ती ७४
७—टर्की और अनेक पत्नी-प्रथा १५८
८—पं० श्यामजी कृष्ण वर्म्मा ४०
९—पं० धर्मभिक्षु १६३
१०—पं० रामजीलाल शर्म्मा २४०
११—मद्रास प्रान्त में ऋषि का मिशन २३८
१२—लंदन में आर्य्य-समाज ७७
१३—राजनैतिक आन्दोलन ७८
१४—रूस का धर्म बहिष्कार ७६
१५—स्याम देश में संस्कृत छटा ७७
१६—स्वामी सत्यानन्द जी १२०
१७—समालोचना ११५

४१—संदेश [महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज] ४

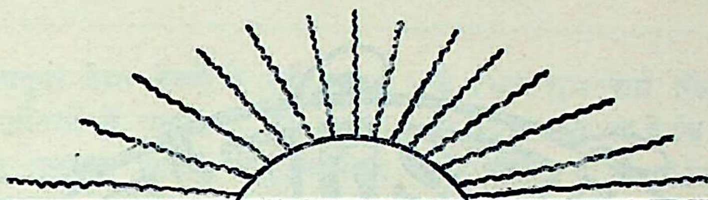
४२—संध्योपासना [पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए०, एल० टी०] ४७, ९७

४३—स्वधर्मे निधनं श्रेयः [श्रीयुत कृष्णानन्द] ८३

४४—हमारा सर्वस्व (कविता) पं० सूर्यदेव शर्म्मा एम० ए० ८१

४५—हरिवर्षीय आर्य्य पंडित और वेदार्थ [श्री राज्यरत्न मास्टर आत्माराम, बड़ौदा] ४१,१२९,१६२

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।
[अथर्ववेद १३। ४। १। १]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीजें प्रकाशित हो जाती हैं।

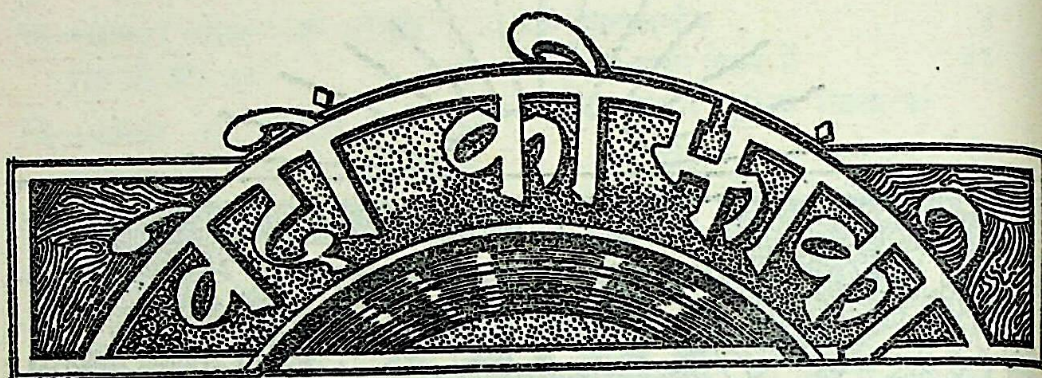
From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग १ } चैत्र संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०५; अप्रेल १९३० आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३० { संख्या १

वेद वाणी

एक एक त्रसरेणु
रचना सरस तेरी
शून्य भर दिया विभु श्रुतियों के सार से।
ऋत सत श्रव्य दृश्य
महा काव्य कविराज
उऋण हुआ है कौन तेरे उपकार से॥
बुद्धि है विचारी हारी
देख चित्रकारी प्यारी
आगे नहीं जाती अल्प कल्पना के द्वार से।
पुण्यमयी वेद वाणी
सर्वदा तरणि तुल्य
खेती है मुमुक्षुओं को भव पारावार से॥

—विद्याभूषण 'विभु'



यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन ।
स धीनां योगमिन्वंति ।

[ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त १८, मं० ७]

(यस्मात्) जिसके (ऋते) बिना (विपश्चितः चन) विद्वान् का भी (यज्ञः) यज्ञ या शुभ कर्म (न) नहीं (सिध्यति) सिद्ध होता (स) वह ईश्वर (धीनां) बुद्धियों के (योगम्) सम्बन्ध में (इन्वति) व्यापक होता है ।

प्रत्येक शुभ काम के करने के लिये विद्या तथा बुद्धि चाहिये । इस बात को सभी लोग मानते हैं । कौन ऐसा है जो कह सके कि बिना ज्ञान के किसी शुभ काम का सम्पादन हो सकता है ? वास्तव में हमारे दुष्कर्म भी बिना ज्ञान के नहीं होते । हम पहले किसी चीज को जानते हैं तब उसे करते हैं । इसीलिये संसार के सभी देश तथा जातियों के लोग ज्ञानोपलब्धि की महिमा को स्वीकार करते हैं । परन्तु एक बात है जिसमें सब लोग सहमत नहीं हैं । वह है ईश्वर की सहायता की आवश्यकता । नास्तिकों को अपने ज्ञान पर इतना भरोसा होता है कि वह ईश्वर की सहायता को एक मात्र अनावश्यक समझते हैं । पाश्चात्य देशों में बहुतसों का दावा है कि हमने अपने समस्त व्यावहारिक जगत् से ईश्वर का बहिष्कार कर दिया परन्तु हमको किसी प्रकार की भी हानि नहीं हुई । यह बात कहां तक अयथार्थ है इसको यूरोप के ही विद्वान् अब मानने लगे हैं । उनको अपना समस्त पुरुषार्थ कुछ अधूरा प्रतीत होता है ।

प्रत्येक कार्य्य में ईश्वर की सहायता की क्या आवश्यकता है ? जब हम किसी शुभ काम को करने बैठें तो क्यों पहले ईश्वर का नाम ले लें ? क्यों उससे सहायता की प्रार्थना करें ? क्या आवश्यकता है कि हम आरम्भ में यह कहें, "हे प्रभु, हम निर्बल हैं । हमको इस शुभ कार्य्य में सहायता दीजिये ?" क्या यह ढकोसला या आडम्बर मात्र नहीं है ? क्या नास्तिकों के सभी काम बिगड़ जाते हैं ?

क्या बहुधा ऐसा देखने में नहीं आता कि नास्तिकों ने आस्तिकों की अपेक्षा अधिक सफलता प्राप्त की और आस्तिक लोग "ईश्वर ईश्वर जपते ही रह गये ?"

हां, हुआ तो यह अवश्य ! यदि हिन्दू धर्म को आस्तिकता कहें तो जिस समय सोमनाथ के पुजारी अपने शिव की सहायता मांगते रहे उतनी देर में महमूद ग़ज़नवी ने मन्दिर को तोड़ फाड़कर आस्तिक पुजारियों को तहस नहस कर दिया। यदि मुसल्मानी धर्म को आस्तिकता कहें तो बहुत सी लड़ाइयों में यह 'अल्लाह अल्लाह' ही कहते रह गये और इनके शत्रुओं ने इन पर विजय पाली।

फिर वेद क्यों कहता है कि ईश्वर की सहायता के बिना किसी विद्वान् का भी कार्य्य नहीं चलता। वेद मंत्र में "विपश्चितः चन" ऐसा शब्द पड़ा है। "चन" का अर्थ है कि कोई भी नहीं। तात्पर्य्य यह है कि अविद्वान् तो कुछ कार्य्य कर ही नहीं सकता किन्तु इसके साथ साथ विद्वान् को भी ईश्वर की सहायता की जरूरत होती है। इससे ईश्वर की सहायता का होना अनिवार्य्य माना गया है। यह आस्तिकता की पराकाष्ठा है। इसमें आस्तिक होने के महत्व की ओर संकेत है, आस्तिक्य केवल मन समझाने के लिये नहीं किन्तु प्रत्येक शुभ कार्य्य के लिये जरूरी है ऐसा क्यों ? इस पर विचार कीजिये।

वेद मंत्र में शब्द 'यज्ञ' पड़ा है। वेद मंत्र यह नहीं कहता कि ईश्वर के भरोसे के बिना यज्ञ सिद्ध नहीं होता। वेद कहता है कि "यस्मात् ऋते" अर्थात् जिस ईश्वर के बिना शुभ कर्म सिद्ध नहीं होता। इसका तात्पर्य्य यह है कि चाहे तुम ईश्वर को मानो या न मानो, चाहे उस पर विश्वास करो या न करो, चाहे उसकी सहायता मांगो या न मांगो, परन्तु एक बात अवश्य है; वह यह कि जितने शुभ काम संसार में होते हैं वह ईश्वर की ही सहायता से होते हैं। ईश्वर बिना मांगे भी सहायता करता है, अगर कार्य्य शुभ हो तो। और मांगने पर भी सहायता नहीं करता यदि काम शुभ न हो ! यही कारण है कि हम सहायता के लिये हाथ पसारे ही बैठे रहते हैं और ईश्वर हमारे शत्रु को हम पर विजयी कर देता है। मंत्र का दूसरा टुकड़ा इसको स्पष्ट कर देता है। "स धीनां योगम् इन्वति"। वह बुद्धियों के योग में व्यापक है। ईश्वर की सब बुद्धियों में व्यापकता बताई गई है। बुद्धि क्या है ? बुद्धि वह शक्ति है जो सृष्टि के नियम में ओत प्रोत है। बुद्धिमान् वही है जो इस नियम को समझता है, और उसका अवलम्बन करता है। सृष्टि के भिन्न भिन्न नियम भिन्न भिन्न विभागों में काम कर रहे हैं। यदि आपने उनको समझ लिया और उनके साथ चल पड़े तो अवश्य ही आप अपने मनोरथ को प्राप्त हो जायंगे। इसका मोटा दृष्टान्त यह लीजिये। रेलवे स्टेशन के एकही स्थान से भिन्न भिन्न दिशाओं में भिन्न २ गाड़ियां जाती हैं। प्रयाग से एक गाड़ी कलकत्ते को, एक लाहौर को, एक जबलपुर को, एक लखनऊ को। यदि आपको इसका यथार्थ ज्ञान हो जाय तो जहां पहुँचना है, वहीं का टिकट लेकर उसी गाड़ी में बैठ जाइये, रेल के नियमों को जानना और उनके

अनुकूल करना ही आपके यज्ञ की सिद्धि का उपाय है। रेल का एक अध्यक्ष है। उस अध्यक्ष के विना आप अपनी यात्रा पूर्ण नहीं कर सकते। यह सम्भव है कि आप उस अध्यक्ष को न जानते हों या उसके समक्ष नतमस्तक न होते हों। परन्तु इतना जानना तो आवश्यक है कि रेल का यह नियम है। यदि आप इस नियम के विरुद्ध करें तो प्रार्थना करने और हाथ पैर जोड़ने पर भी आप अपने अभीष्ट की पूर्त्ति नहीं कर सकते। कल्पना कीजिये कि आप लाहौर जाने वाली गाड़ी में बैठ गये और रेल के समस्त अध्यक्षों और कर्मचारियों के प्रार्थी हुये कि हम किसी प्रकार कलकत्ते पहुँच जायँ तो क्या नतीजा? आप जोर से चिल्लाइये, कोई फल निकलने का ही नहीं। और निकले भी क्यों? नियम पालन और खुशामद में तो भेद है। क्या रेल का अध्यक्ष यह नहीं कहेगा कि हम खुशामद नहीं मान सकते हमको तो नियम का पालन चाहिये?

श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज का संदेश !



"मैं हृदय से चाहता हूँ कि 'वेदोदय' यथा-नाम तथा गुण-वाली कहावत को चरितार्थ करे और चिरञ्जीवी हो।"

इसी प्रकार आस्तिकता और खुशामद में भेद है। बहुत से आस्तिक नामधारियों ने यह समझ रक्खा है कि यदि किसी मन्दिर, मस्जिद या गिरजे में या अन्य पवित्र कहलाये जाने वाले स्थान में खड़े होकर ईश्वर की बड़ी बड़ी प्रशंसायें कर देंगे तो ईश्वर हमारे कामों को अवश्यमेव सिद्ध कर देगा। परन्तु तत्व तो यह है कि लाखों इस प्रकार के खुशामदी "ईश्वर! ईश्वर!" चिल्लाते रहते हैं और उनका कार्य्य सिद्ध नहीं होता। उनको हताश होकर यही कहना पड़ता है कि न जाने ईश्वर हमारी प्रार्थना को क्यों नहीं सुनता?

वेद कहता है कि ईश्वर सब बुद्धियों में ओत प्रोत है। यह जो कुछ हो रहा है वह ईश्वर ही कर रहा है रेल के अध्यक्ष के समान। रेल के अध्यक्ष का मस्तिष्क रेल के समस्त कार्य्यों में ओत प्रोत है। रेल का अध्यक्ष रेल की प्रत्येक गति में व्यापक है तभी तो रेल अच्छी तरह चल रही है। जिस कार्य्य में अध्यक्ष का मस्तिष्क व्यापक न रह सका उसी में विघ्न या बाधा पड़ जाती है। उसी प्रकार ईश्वर भी संसार के सभी नियमों में व्यापक है। जो काम आप नियमों के अनुकूल करते हैं वह शुभ है अतः वह ईश्वर के ही सहारे चल रहा है। रेल में चलने वाला बच्चा नहीं समझता कि रेल का समाध्यक्ष रेल को क्योंकर चलाता है परन्तु वह चलाता अवश्य है। इसी प्रकार मूर्ख यह नहीं जानता कि उसके शुभ कार्य्य में ईश्वर का कितना हाथ है। कभी २ विद्वान् भी समझता है कि मैं अमुक काम विना ईश्वर की सहायता के कर रहा हूँ। परन्तु यह उस विद्वान् की भूल है। यदि ईश्वरीय नियमों के विरुद्ध करे तो वह विद्वान् भी कभी सफल नहीं हो सकता। इसीलिये विद्वान् पहले ईश्वर को जानने की चेष्टा करता है और फिर उसके अनुकूल आचरण करता है।

अब प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर की खुशामद की आवश्यकता नहीं तो वेद ने हमको यह बात बताई ही क्यों कि बिना ईश्वर के कोई काम सिद्ध नहीं होता? वस्तुतः इसकी ज़रूरत थी। सिद्धि दो प्रकार की होती है एक अधूरी और दूसरी पूरी। बच्चा इतना जानता है कि रेल का टिकट लेकर रेल में बैठ जाओ और पहुँच जाओगे दूसरा विद्वान् रेल के अध्यक्ष की समस्त व्यापकता का अनुभव करता ह। क्या इन दोनों में कुछ भेद नहीं? माना कि दोनों ही अभीष्ट स्थान पर पहुँचेंगे परन्तु जो रेल के अध्यक्ष की अध्यक्षता को समझेगा वह पूर्ण रीत्या सफल होगा उसके अनेक अन्य कार्य्य भी सिद्ध हो सकेंगे। इसलिये विद्वान् को जानना चाहिये कि मेरा कार्य्य विना ईश्वर के पूरा न ीं हो सकता। वेद कहता है कि ईश्वर बुद्धियों में ओत प्रोत है अतः उसके विना कोई शुभ कार्य्य नहीं हो सकता। रहा अशुभ काम उसका तो होना ही संभव नहीं, अतः उसके लिये प्रार्थना व्यर्थ।

गायन्ति त्वा गायत्रिणः

(ऋग्वेद १।१०।१)

विद्वान् तेरा ही गान करते हैं।

वेदोदय

[ले०—श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]



चौदह या पंद्रह वर्ष व्यतीत हुये आर्य्यसमाज गणेशगंज लखनऊ का उत्सव था। श्री पं० प्रयागदत्त अवस्थी जी का व्याख्यान होरहा था। पं० जी की वाणी में एक विशेष माधुर्य्य था। जनता प्रभावित हो रही थी। मैं पण्डाल के बाहर खड़ा खड़ा व्याख्यान का आनन्द उठा रहा था। इतने में एक बौद्ध भिक्षु आगये और किसी मित्र ने मेरा उनसे परिचय कराया। परिचय होते ही वार्तालाप होने लगा। बौद्ध महाशय प्रत्येक सत्यता के सापेक्षिक सत्यत्व पर टिप्पणियां करने लगे। इतने में हमारे कान में व्याख्यान के यह शब्द सुनाई पड़े, "देखो राम और भरत किस प्रकार राज्य को फुटवाल बनाकर खेल रहे हैं" इतना सुनकर उन्होंने कहा, "वेदों में क्या रक्खा है? वस्तुतः यह लोग वैष्णवों के सिद्धान्तों को लेकर प्रचार करते हैं।" श्री पं० प्रयागदत्त जी मनुस्मृति आदि से प्रमाण दे रहे थे। इन्हीं प्रमाणों को हमारे भिक्षु महाशय ने वैष्णवों का प्रमाण कहा था।

बात बहुत देर तक होती रही। मुझे स्मरण नहीं कि मैंने किस बात का क्या उत्तर दिया। परन्तु उस दिन से मेरे हृदय में एक बात जम गई। वह यह कि यदि आर्य्यसमाज का प्रचार करना है तो प्रत्येक सिद्धान्त के लिये वेदों का प्रमाण खोजना चाहिये। आर्य्यसमाज वेद वेद चिल्लाता है। परन्तु यदि वह अपने सिद्धान्तों को सीधे वेदों से पुष्ट नहीं कर सकता तो आने वाली सन्तान आर्य्यसमाज को कभी मानने के लिये तैय्यार न होगी।

स्वामी दयानन्द ने क्या किया? ऋषि से पहले भी हिन्दू जाति में वेदों के लिये विशेष प्रेम था। वेद के नाम से ही प्रत्येक हिन्दू के हृदय में एक विशेष प्रकार की श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। वह वेद को एक अनिर्वचनीय आदर से देखता था। परन्तु उसके सिद्धान्त वैदिक न थे। वह वेद के नाम को पूजता था परन्तु वेद की बात को मानना या यह जानने की कोशिश करना कि वेदों में क्या है उसके लिये कठिन ही नहीं किन्तु अनावश्यक था। वह यह समझे बैठा था कि जो कुछ हिन्दू जाति कर रही है वह सब कुछ वैदिक है। यदि आठ वर्ष की लड़की का विवाह होता है तो वह वैदिक है। यदि छूत छात और खान पान का परहेज़ है तो वह अवश्य ही वैदिक होगा। यदि प्रस्तर पूजन, भूत पूजन आदि बीसियों प्रकार के पूजन प्रचलित हैं तो अवश्य ही वेदों के अनुकूल होंगे। श्री गोस्वामी तुलसीदास जी ऐसे ही हिन्दू थे। उनकी

रामायण में प्रत्येक बात को "वेद पुराण" और "निगमागम" के अनुकूल कथन किया गया है।

स्वामी दयानन्द ने इसी दृष्टिकोण को बदल दिया। उनकी खोज में मौलिकता यह थी कि हिन्दुओं के रस्मोरिवाज या प्रचलित आचार विचार सब के सब वेदानुकूल नहीं हो सकते और न प्रत्येक शास्त्र कहलाने वाले पुस्तक निगमागम की कोटि में आ सकते हैं। एक सच्चे अन्वेषक के समान उन्होंने किसी चीज को यों ही नहीं मान लिया। न तो उन्होंने वर्तमान प्रथाओं का विना जांचे विश्वास किया न केवल इस लिये किसी बात को मन्तव्य ठहराया कि अमुक वचन अमुक ऋषि मुनि का है। उनके विस्तृत अध्ययन और विषद संस्कृत ज्ञान ने उनको निश्चय करा दिया कि स्वार्थी लोगों ने स्वार्थ सिद्धि के लिये वहुत से ग्रन्थ बनाकर उनको ऋषियों के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। उनको आर्ष वचनों पर श्रद्धा तो थी परन्तु सबसे पहले उनको यह निश्चित करना पड़ता था कि क्या वस्तुतः आर्ष है और क्या अज्ञान वश आर्ष समझ लिया गया है। आर्ष ग्रन्थ वस्तुतः उस गंगाजल के समान हैं जो कलकत्ते में हुगली नदी से लिया जाता है। वह है तो गंगाजल परन्तु उसमें और गंगोत्तरीय पर्वत से लिये हुये गंगाजल में भेद है। कलकत्ते का जल शुद्ध गंगाजल नहीं। उसमें अनेकों अशुद्धियां हैं जो गंगोत्तरीय और कलकत्ते के बीच में प्रविष्ट हो गई हैं। इन अशुद्धियों को भी भूल से गंगाजल समझ लिया गया है। यही कारण है कि इस जल के सेवन से इतना लाभ नहीं जितना शुद्ध निर्मल गंगाजल से हो सकता है। इसको छानने की जरूरत है। इससे अशुद्धियों को दूर करने की जरूरत है।

स्वामी दयानन्द को आर्ष ग्रन्थों-रूपी जो गंगाजल मिला उसको उन्होंने भपके पर रखकर शुद्ध किया। उनको मालूम हुआ कि वहुत सी वे बातें जिनको आर्ष कहा जाता है वास्तव में अनार्ष हैं। उन्होने वेदों का अध्ययन किया तो एक अद्भुत बात मालूम हुई। वेद और वैदिक कहलाने वाली प्रथाओं में बड़ा अन्तर पाया। जो वेद भाष्य मिले वह भी वेदों के अनुकूल न थे। अन्य पुस्तकों की तो कथा ही क्या है?

ऐसी अवस्था में ऋषि दयानन्द ने विचारा कि शुद्ध वेदों का प्रचार करना चाहिये। इनकी पुस्तकों में प्रत्येक सिद्धान्त के लिये पहले वेद का प्रमाण दिया है फिर दूसरी पुस्तकों का। उनकी शैली यह है कि वह प्रत्येक सिद्धान्त को पहले सीधे वेद से पुष्ट कर लेते हैं फिर परतः प्रमाण के रूप में अन्य पुस्तकों का भी प्रमाण देते है।

परन्तु सब लोग इस शैली का अवलम्बन नहीं करते। मैंने आर्य्य समाज के प्रचारकों को भी अनार्ष और अवैदिक सिद्धान्तों को वैदिक कहते हुये सुना है और बहुत से ऐसे दृष्टान्त दिये जाते हैं जिनसे वैदिक सिद्धान्तों की पुष्टि के स्थान में उनका खण्डन होता है। इसके दो कारण हैं। एक तो हिन्दू समाज के पुराने संस्कार हममें भी विद्यमान हैं। हम समझ बैठते हैं कि जो कुछ संस्कृत ग्रन्थों में है

वह अवश्य वैदिक है जिस बात का श्री स्वामी जी के ग्रन्थों में स्पष्ट वर्णन नहीं उसके विषय में यदि वह हिन्दू प्रथाओं के अनुकूल हो तो हमारी पहली धारणा यही हो जाती है कि यह अवश्य वैदिक है। इसका एक मात्र हेतु यही समझते हैं कि यदि अवैदिक होता तो स्वामी जी उसका खण्डन अवश्य करते। दूसरा कारण यह है कि हम वेदों का कुछ भी अध्ययन नहीं करते। अनायास और और विना परिश्रम के ही वेद-प्रचारक बनना चाहते हैं। यदि कोई हमसे पूछता है कि अमुक बात के लिये वैदिक प्रमाण दो तो उसका सरलतम उत्तर यह दे बैठते हैं कि भाई वेद तो बीज मात्र हैं उनमें प्रत्येक बात के लिये प्रमाण कैसे मिल सकता है? यह उत्तर साधारणतया इस लिये दिया जाता है कि वेदों की खोज करनी न पड़े। यदि विना स्वाध्याय के ही कार्य्य चला जाय तो "दांतकटाकटं किं कर्त्तव्यम्"। वह भूल जाते हैं कि वेदों में सभी कुछ भरा है। परिश्रम करके निकालना चाहिये।

संभव है कि वेदों में सभी बातें न मिलें। परन्तु जो हैं उनकी तो अवश्य खोज कर लेनी चाहिये।

कहा जाता है कि वेद मूल हैं और अन्य वैदिक ग्रन्थ शाखा मात्र हैं। यह बात ठीक है क्योंकि यदि वेद न होते तो अन्य ग्रन्थों की रचना भी न हो सकती। परन्तु हिन्दू जति ने इसका अर्थ यह समझ लिया कि जिस प्रकार मनुष्य मूल को न देखकर केवल वृक्ष के फलों का ही आस्वादन लेता है इसी प्रकार हमको वेदों की अपेक्षा अन्य ग्रन्थों का अधिक अध्ययन करना चाहिये। फल यह हुआ कि हिन्दू जाति वेदों को सर्वथा भूल गई। गीता के श्लोक प्रत्येक अच्छे पण्डित को कण्ठ होंगे। रामायण की सूक्तियाँ प्रायः सभी हिन्दू जानते हैं परन्तु वेदों के वचन सर्वथा विस्मृत होगये। उनका चलन ही नहीं रहा। जिस प्रकार वृक्ष का मूल भूमि में दवा रहता है उसी प्रकार मूल भूमि में दवा रहता है उसी प्रकार मूल वेद भी लुप्त प्रायः हो गये।

यह कुछ अभी की बात नहीं है। वेदों का सहस्रों वर्ष से यही हाल है। महाभारत के पढ़ने से ज्ञात होता है कि भीष्म पितामह आदि के समय में भी वेद सर्व साधारण में प्रचलित न थे। केवल नाम ही विख्यात था। महर्षि दयानन्द ने ठीक ही लिखा है कि महाभारत से बहुत पूर्व से वेदों का सूर्य्य अस्त हो चला था। महाभारत में जो घटनायें हुईं उनसे पता चलता है कि वह वैदिक धर्म्म की संध्या नहीं किन्तु रात्रि का प्रथम चरण था। अन्यथा एक साथ ही इतना अधोपतन संभव न होता।

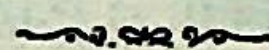
श्री शंकराचार्य महाराज ने वेदोद्धार के लिये घोर प्रयत्न किया। छोटी सी आयु और थोड़े से काल में शायद ही किसी अन्य महापुरुष ने तिमिर विच्छेद करने का इतना प्रयत्न किया हो। परन्तु शंकर स्वामी के समय उपनिषदों को ही वेद समझ लिया गया। उनके ग्रन्थों में एक दो स्थलों को छोड़कर प्रायः श्रुति के अन्तर्गत उपनिषदों और स्मृति के अन्तर्गत गीता के उद्धरण दिये गये हैं इनसे स्पष्ट

होता है कि उस समय वेद प्रायः अज्ञात ही थे।

ऋषि दयानन्द को यह वात बहुत खटकी। उन्होंने अपना समस्त जीवन वेदों को सर्व-सम्मुख लाने में लगा दिया। यद्यपि वेदों का वास्तविक उदय सृष्टि के आरम्भ में होता है तथापि इस अंश में स्वामी दयानन्द के आगमन को ही 'वेदोदय,' समझना चाहिये।



परम पूज्य महाराजाधिराज सर नाहर सिंह जी, शाहपुराधीश का शुभ संदेश



"वेद ईश्वरीय ज्ञान होने से सत्य विद्याओं का कोष है। जब तक यहां के निवासी इसके स्वाध्याय में दत्तचित्त थे, यह देश समस्त संसार का गुरु बना रहा, इसके छोड़ देने से दुर्दशाग्रस्त हो गया, इसीलिये ऋषि दयानन्द ने आर्य्य समाज के नियमों में "वेद का पढ़ना पढ़ाना सुनना सुनाना आर्य्यों का परम धर्म है" लिख कर वेद के स्वाध्याय को आर्यों का अनिवार्य्य कर्त्तव्य बतलाया, परन्तु आर्य्यों ने इस कर्त्तव्य का कहां तक पालन किया यह सुविज्ञ-जनों से छिपा नहीं है।

आशा है 'वेदोदय' इस कार्य्य में जनता की प्रवृत्ति को बढ़ा कर एक आवश्यक कार्य्य करेगा और सर्व साधारण में वेद के प्रति उचित श्रद्धा के भाव उत्पन्न कर ऋषि दयानन्द के मिशन की पूर्ति में सहायक होगा।"

वैदिक युग में पुनर्जन्म विचार

[ले०—श्री पं० देवेन्द्र चन्द्र जी विद्याभास्कर]



मारी प्राचीन आर्य संस्कृति के अवलोकन से पता चलता है कि अनादि काल से सृष्टि का लय और उद्गम होता चला आ रहा है। जीवात्माओं को समय २ पर नाना भांति की योनियों से गुज़रना पड़ता है। किन्तु जब हम अपने पाश्चात्य विद्वानों को तथा मुसलमान धर्म उल्माओं को यह कहते सुनते हैं कि शरीर त्याग होने के बाद फिर जीवात्मा का पुनर्जन्म नहीं होता तथा वेदों में पुनर्जन्म के सिद्धान्तों के प्रतिपादक कोई चिह्न दृष्टिगत नहीं आते जैसा कि मि० मोनियर विलियम्स M. A. C. I. E. अपनी "Religious thought and Life in India" नामक पुस्तक में लिखते हैं कि The doctrine of metempsychosis or transmigration of Souls, which became an essential characteristie of Brahmanism and Hinduism in later times has no Place in the Religion of the Veda, अर्थात् पुनर्जन्म का सिद्धान्त जोकि ब्राह्मण धर्म तथा हिन्दू धर्म में एक विशेषता रखता है वैदिक धर्म में अपनी कोई सत्ता नहीं रखता। तब हमें यह पढ़कर अत्यन्त आश्चर्य होता है कि पुनर्जन्म जैसा सिद्धान्त जो हमारे उपनिषदों स्मृति ग्रन्थ मनुस्मृति आदि में कूट कूट कर भरा हुआ है। जो कि ब्राह्मण धर्म हिन्दू धर्म में विशेष स्थिति रखता है वही अनमोल सिद्धान्त वेद में नहीं पाया जाता यह कैसे हो सकता है। हमारे पाश्चात्य विद्वान् फिलासफरों ने वेद जैसे कठिन गहन समुद्र में गोता लगा कर रत्न उपलब्ध नहीं किए केवल उनके हाथ सीपी ही पड़ीं। यदि कहीं वह वेदानुशीलन किए होते तो ऐसे अनर्गल उपहासास्पद शब्द न लिखते। हमें अब पाठकों को यह दिखाना है कि क्या वास्तव में वेदों में पुनर्जन्म प्रतिपादक मंत्र हैं या नहीं। अथर्व० ९।१०।११। में मंत्र इस प्रकार आता है—

"अपश्यं गोपामनिपद्यमा मानमा
च परा च पथिभिश्चरन्तम्
स सध्रीचीः स विषूचीर्वसान
आवरीवर्ति भुवनेष्वन्तः॥"

अर्थात् आने और जाने के मार्गों द्वारा भ्रमण करनेवाले, अविनाशी, इन्द्रियों के रक्षक जीवात्मा को मैंने देखा वह शरीर के साथ भी चलने वाला है और अलग होकर भी चलने वाला है। वह प्रेम का निवासक भुवनों में बार २ आता है। इस मंत्र में "आ च परा च पथिश्चरन्तम् तथा आवरी वर्ति भुवनेष्वन्तः" ये दो क्रिया विशेषण जीवात्मा को पुनः जन्म लेने का और पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करते प्रतीत होते हैं। इसी प्रकार अथर्व०

५।१०।१६ का मंत्र 'अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतः वाक्य भी जीवात्मा के नीच तथा उच्च योनि में आने का वर्णन करता है। आए दिन हम वर्तमान् कालिक अवस्थाओं पर भी यदि किञ्चित् दृष्टिपात् करें तो पता चलेगा कि संसार में लाखों अन्धे बहरे काणे लूले लँगड़े अपाहिज कोढ़ी दिखाई देते हैं क्या कभी आपने विचार किया कि परमात्मा ने इस अनुपम सौन्दर्यमयी रंग भूमि में ऐसे जीवों को उत्पादन कर कौन सी कौशल कला का परिदर्शन कराया। सज्जनों यह कहना न होगा कि हमारे पूर्वकृत दुर्व्यसनों का ही यह परिणाम हमें पुनर्जन्म में भोगना पड़ता है। यथा किसी ने चक्षु इन्द्रिय से परमेश्वर प्रदत्त ज्ञानोपार्जन न कर विषय लम्पटता, रूपवती वेश्याओं या सद्गृहस्थिनी वालाओं को कुचेष्टाओं से इंगित भ्रू क्षेपादि किया। साधु स्वभाव सज्जनों ने उसकी इन कुचेष्टाओं को सुधारने की शिक्षा दी उसे लज्जित किया किन्तु वह उन विषय लम्पटताओं में इतना ग्रसित होगया कि वह अपना सुधार करने में असमर्थ हो गया तब प्रभु ने उसको चक्षुरहित योनि में पुनर्जन्म दे कर उसके पूर्वकृत पापों का फल भोगने के लिए संसार सागर में अवतरित कर दिया! जिस दृष्टि में बुरा व्यसन आ गया था अब वह देखने का प्रलोभन और अभ्यास छूट जाता है। और वह पापी पाप का फल भोग कर फिर पुनर्जन्म में दृष्टिवान् होकर धारण करता है। इसी प्रकार मनुष्य जब जिस इन्द्रिय से पाप करता है। उस २ इन्द्रिय का उपर्युक्त इन्द्रिय की भांति पुनर्जन्म द्वारा सुधार होता है। आप देखेंगे कि एक मनुष्य अनेक दुर्गुणों में फँस जाता है तब उसका प्रतिफल भी आपने देखा होगा कि पुनर्जन्म धारण करने पर एक ही शरीर में कई २ इन्द्रियाँ दूषित होती हैं। बस इससे स्पष्ट पता चलता है कि हमारा ऊपर लिखित मंत्र "अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीत" वाक्य पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है। जो मनुष्य समस्त इन्द्रियों को दूषित कर लेता है उसको प्रभू जंगम या वृक्षादि-स्थावर योनियों में पटक देते हैं वहां वह अनेक वर्षों तक अपनी समस्त इन्द्रियों का फल भोग कर और अपना नैतिक सुधार कर फिर असली मनुष्य योनि में आ जाता है। पुनर्जन्म के विषय में बहुत मंत्र दर्शाए जा सकते हैं जिनमें बड़े स्पष्ट तथा सरल शब्दों में पुनर्जन्म का वर्णन मिलता है। अथर्व० १०।८।२७ मंत्र ध्यान देने योग्य है—

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि
त्वं कुमार उत वा कुमारी।
त्वं जीर्णो दण्डेन वञ्चसि
त्वं जातोभवसि विश्वतो मुखः॥

अर्थात् हे जीव तू स्त्री, तू पुरुष, तू कुमार तथा तू ही उत्पन्न होकर सर्वत्र मुख वाला हो जाता है। इस मंत्र में यह प्रतीत होता है कि तीनों अवस्थाओं बाल, युवा, वृद्ध आदि में एक ही स्थिर वस्तु रहती है। मृत शरीर केवल पाञ्च भौतिक परमाणुओं का पुञ्ज मात्र है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त एक सूत्र में ग्रथित है। जीवात्मा न केवल एक ही जन्म में स्थिर रहता है अपितु वह बदलता रहता है। कभी मनुष्य

का शरीर धारण करता है कभी स्त्री का। कभी कुमार के रूप में दीखता है तो कभी कुमारी के। अतः यह मानना पड़ेगा कि एक आत्मा के कारण मनुष्य एक ही है परन्तु चोले के भेद से भिन्न भिन्न जन्मों में भिन्न २ मालूम पड़ता है। आज जो एक बालक अपने को ला० रुपकिशोर अग्र-वाल का पुत्र समझता है और अपना नाम राम कहता है पूर्व जन्म में अपने को एक दिल्ली के सेठ का लड़का बताता है। वास्तव में उसने अपना शरीर बदल लिया है। वह जीवात्मा वही है जो पहिले था केवल जीर्ण वस्त्रों का परित्याग कर नवीन धारण कर लिये हैं। भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र ने अपनी गीता में भी यही कहा है—

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
निवानि 'गृह्णाति नरोपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा
न्यन्यानि संयाति नवानि देही ॥
गीता अ० २ श्लोक २२

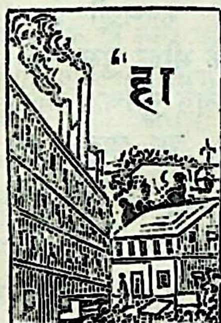
इसी प्रकार एक और मंत्र इसी पुन-र्जन्म के सिद्धान्त का पोषक है—

उतैषाँ पितोत वा पुत्र
एषामुतैषां ज्येष्ट उत वा कनिष्टः।
एको ह देवो मनसि प्रविष्टः
प्रथमो जातः सउगर्भे अन्तः ॥
(अथर्व७ १०।८।२८)

यह आत्मा इनका पिता, इनका पुत्र, इनका ज्येष्ठ भाई, इनका कनिष्ठ भाई है। यह देव मनमें प्रविष्ट होकर पहले जन्मा हुआ है वही फिर गर्भ में आता है? एक ही मनु य भिन्न २ व्यक्तियों के साथ भिन्न सम्बन्ध होने के कारण किसी का पुत्र, किसी का पिता, किसी का बड़ा भाई, किसी का छोटा भाई बन जाता है। इस मंत्र में "प्रथमो जातः,, पहिले उत्पन्न हुआ पहिले उत्पन्न हुआ यह विशेषण पुनर्जन्म का स्पष्ट शब्दों में समर्थन करता है। आशा है इन थोड़े से मंत्रों को देकर जो पुनर्जन्म की सार्थकता सिद्ध की गई है, वही पर्याप्त होगी। पुनर्जन्म लेकर अच्छे कर्म करने का अवसर मिलता है और जैसे एक कैदी क़ैद की अवधि समाप्त कर खोई हुई स्व-तंत्रता को प्राप्त कर लेता है तदवत् ही एक जीवात्मा नाना भांति की योनियों में परि-भ्रमण करता हुआ मनुष्य योनि द्वारा श्रेष्ठ कर्म करने पर मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है। परन्तु यदि उसने मनुष्य योनि में अपने को फिर पतित कर लिया तो फिर उसका उपर्युक्त भांति सुधार होगा और वह सुधार तब तक बराबर चालू रहेगा जब तक जीवन के अन्तिम ध्येय पूर्ण स्व-तंत्रता रूप मोक्ष पद को प्राप्त न कर लेगा। हमारा वैदिक धर्म हमें बड़े सुनहरे पथ की ओर अग्रसर करता हुआ उपदेश देता है कि किस तरह पुनर्जन्म से मुक्त हो कर अक्षय सुख के भंडार मोक्ष पद की प्राप्ति कर सकते हो। हमें मि० मोनियर विलियम्स सरीखों से भी यही निवेदन करना है कि वह हमारी प्राचीन आर्य संस्कृति का अनुशीलन तथा वैदिक ग्रन्थों का मनन करें और फिर देखें कि इसमें कितने रत्न के भंडार भरे पड़े हैं। इति।

"पवित्र आत्मा"

[ले०—श्रीमती सुदक्षिणा वर्म्मा]



"हाय, हाय ! तूने यह क्या किया। हमारे कूंए पर चढ़ आया। तुझे इसमें से पानी भरने की आज्ञा किसने दी थी। डोम का लड़का, तेरी इतनी हिम्मत। तेरा सत्यानाश हो जाय। ठहर, अभी तुझे इसका मजा चखाती हूँ।"

इतना कहते हुये रुक्मणी ने बांस का एक टुकड़ा उठाकर लड़के की ओर फेंका। विचारा लड़का इन कटु वचनों को सुन कर पहिले ही सहम गया। वह था तो छोटी आयु का ही यह न समझा कि किस अपराध में उसको इतनी बातें सुनाई गई है। सोचा, सम्भवतः उन्होंने मुझे डोम समझा इसी कारण क्रोधित हुई हैं कि इतने में ही बांस का टुकड़ा उसके लगा। प्यास अधिक लगी थी यह कहते हुये "माजी मैं डोम नहीं चमार का लड़का हूं" कूंए के ऊपर ही पानी पीने बैठ गया।

रुक्मणी अभी तक अपने दरवाजे पर ही खड़ी हुई थी लड़के को पानी भरते देख कर ही आग बबूला हो गई थी और जब लड़के ने उसको उत्तर दिया और उसी के सामने पानी पीने लगा तब तो उसके क्रोध का वारापार न रहा। दौड़कर आई और लड़के की पीठ में बड़े जोर से घूंसे मारने लगी। लड़का अभी पानी भी न पी चुका था कि उसके ऊपर आक्रमण हुआ। घबड़ा कर उठ खड़ा हुआ रोते हुये कहने लगा "मां जी सच कहता हूं मैं चमार हूं।"

रुक्मणी ने एक और थप्पड़ लगाते हुये कहा "चमार हूं।" "चमार हूं" मानो ब्राह्मण देवता हैं। चमार हो तो क्या तुम्हारी पूजा की जाय। तू अछूत है। यहां से चुपचाप निकल जा नहीं तो मारते बेदम कर दूंगी।"

विचारा लड़का रोता हुआ चुपचाप लोटा उठा कर चला गया। रुक्मणी ने बड़बड़ाते हुए अपने कपड़े बदले, स्नान किया, और कूंए के ऊपर गंगाजल के छींटे मारे। इतना कर ही चुकीं थी कि उन्होंने देखा कि वही लड़का एक आदमी के साथ चला आ रहा है। उसके निकट आकर आदमी ने कहा "मां जी आपने बिना अपराध के मेरे लड़के को क्यों मारा है ?"

रु०—"मारा है अच्छी तरह मारा है, अगर फिर वह ऐसा करेगा तो बाकी कमी भी पूरी हो चायगी।

आदमी—"आखिर उसका अपराध ही क्या था।"

रु०—"अपराध पूछते हो कि उसने क्या किया। तुम्हें लज्जा नहीं आती। एक

ब्राह्मण के कूऐं पर चढ़कर उसने पानी भरा और वहीं पर पीने लगा। इससे बढ़कर और क्या अपराध करेगा ? मैंने तो अभी कुछ मारा भी नहीं और कोई होता अच्छी तरह समझा देता कि क्या अपराध किया।

आदमी—मांजी। वह बिचरा अभी बच्चा ही है क्या जाने कि क्या छूना चाहिये क्या नहीं। उसे समझा देतीं। वह मान जाता। दूसरे गांव से चला आ रहा था। गर्मी के कारण प्यास लगी। कूआ देख कर पानी भर लिया। मारना न चाहिये था। देखो लकड़ी उसकी पीठ में गड़ गई जिसके कारण खून निकलने लगा।

रु०—खून निकलने लगा होगा। मैं क्या करूं उसने मेरा कूआ अपवित्र कर दिया। क्या और दूसरा कूआ तुम लोगों के लिये नहीं है जहां से पानी भरो ?

आदमी—है क्यों नहीं। गांव से आध मील पर एक कच्चा कूआ है। अन्दर से मिट्टी भी गिरने लगी है। मैला गन्दा पानी पीने को मिलता है। जब प्यास लगती है तो वहां जाओ।

रु०—हाय ! विचारे राजा महाराजा हैं इतनी दूर प्यासे जाना पड़ता है। अरे नीच जात वालो तुम्हारा दिमाग आकाश पर चढ़ गया है। बिना हाथ पैर डुलाये खाना पानी सब कुछ मिल जाना चाहिये। कच्चे कूए का पानी गन्दा लगता है। आध मील जाने में पैरों में छाले पड़ जाते हैं। अरे दुष्टों तुम्हारे साथ जितनी भलाई करो तुम उतना ही दुःख देते हो। गांव में क्या रहने लगे हो कि अब हमारे साथ भोजन करना चाहते हो। ऐसा कभी न होगा। हमारे घर के सामने तुम सब न आना नहीं तो तुम्हारी खैर नहीं।

क्रोध से उन्मत्त रुक्मणी इतना कहते हुए अपने घर के भीतर घुस गई। आदमी भी पुत्र को लिये चुपचाप चला आया। क्या करता, वह अछूत था, ब्राह्मण पवित्र आत्मा हैं। उनको छूना और उनकी वस्तुओं को छूना घोर पाप है।

जय शंकर द्विवेदी को मरे हुए अभी तीन चार मास ही हुये हैं। वे रामपुर गांव के एक प्रतिष्ठित सज्जन् थे विद्वान भी थे। गांव में छोटे छोटे लड़कों को विना कुछ लिये ही पढ़ा देते थे। उनके विचार उच्च थे। यद्यपि के एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुये थे तथापि वे जाति पांति छूत छात का भेद भाव बहुत न रखते थे वे कहते सब मनुष्य एक ही ब्रह्म की रचना है, भेद तो मनुष्यों ने अपने स्वार्थ के लिये बनाया है। वे यह भी चाहते थे कि अछूत जाति भी हमारे मन्दिरों में पूजा किया करे। हमारे कूए में से पानी भरा करे। परन्तु वे ऐसा कर न सके। यदि वे और जीवित रहते तो सम्भव था कि अपना सिद्धान्त कार्य-रूप में परिणत करवा देते। उनके इन सब विचारों के कारण गांव में उनके जाति के अन्य ब्राह्मण क्रोधित थे। वे सोचते कि जयशंकर हमारा धर्म नष्ट कर रहा है। अनेक वार लड़ाई भी हो

चुकी थी पर द्विवेदी जी की सहन शीलता और गम्भीरता के सामने सभों को शीश झुकाना पड़ता था।

उनके परिवार में केवल तीन प्राणी थे। एक तो स्वयं और एक पत्नी रुक्मणी और एक पुत्र विजय। विजय को स्वाभाव तथा विचार अपने पिता के ही समान थे। उसकी आयु अभी चौदह वर्ष की ही थी कि द्विवेदी जी की मृत्यु हो गई नहीं तो वह उनके सिद्धान्तों से और भी प्रभावित होता। रुक्मणी तो प्राचीन विचारों की थी। छूताछूत, जाति पांति का भेद भाव उसके हृदय में कूट कूट कर भरा था। गांव में अधिकतर चमार, डोम, पासी, अहीर आदि बसते थे तीन चार घर ब्राह्मणों के भी थे। प्रथम तो चमार आदि गांव से एक मील दूर पर रहा करते थे और जब कुछ कार्य होता तो करके दूर ही दूर रहकर चले जाते थे। इससे यद्यपि सबको कष्ट उठाने पड़ते थे परन्तु कोई उनको गांव में रहने न देता था। एक बार जयशंकर ने उनको भीतर रहने की आज्ञा दी और अपनी भूमि भी उनको मुफ़् में दे दी थी। इस पर अनेक बार रुक्मणी से कलह हो चुकी थी। परन्तु द्विवेदी उसको समझा देते। रुक्मणी नीच अछूत जाति को देख भी नहीं सकती थी। उनका देखना भी पाप था। यदि कभी वे आँखों के सामने पड़ जाते तो रुक्मणी को गंगाजल की आवश्यकता होती थी। वह ब्राह्मण आदि ऊँचे वंश वालों को पवित्र आत्मायें कहती थी और सब उसके सामने अपवित्र थे।

द्विवेदी जी के खेती होती थी। अनेक नौकर थे वे ही खेत बोते जोतते थे। पंडित जी तो केवल देख भाल ही करते थे। भाग्य से लक्ष्मी देवी की कृपा भी उन पर विशेष थी। यह बात आस पास के भी ग्रामों में प्रसिद्ध थी कि उनके पास बहुत धन है परन्तु उनकी जीवित अवस्थामें किसी चोर डाकू की इतन शक्ति न थी कि वह इनके घर आ सके। किन्तु मरे हुये अभी चार ही मास हुये कि सब की दृष्टि उनके धन पर गड़ गई। चुराने का मौका ढूँढ़ने लगे। दो बार तो चोर आ चुके थे। भाग्यवश जगार हो जाने के कारण कुछ ले न सके।

उन दिनों वीरेन्द्र नामक डाकू ने अपने धावे मारना आरम्भ कर दिया था। बस यही सुनाई पड़ता था कि आज उसके यहाँ डाका पड़ा। मनुष्य सशस्त्र खड़े रहते थे वह उनकी आँख में धूल डाल कर भाग जाता था। पुलिस भी उसके पीछे लगी थी परन्तु उसको पकड़ न पाती।

विजय को नगर से आये थोड़े ही दिन हुये थे कि उसके नाम एक पत्र आया। वह पत्र देख कर आश्चर्य में हो गया। उसमें लिखा था कि इतवार के दिन रात के बारह बजे हम तुम्हारे घर आवेंगे। सावधान रहना। पत्र के अन्त में वीरेन्द्र लिखा था। विजय यह पढ़ कर डर गया। माता के पास दौड़ा हुआ आया। रुक्मणी भी यह सुन कर रोने लगी। द्विवेदी जी को स्मरण करके चिल्लाती थी। गाँव के अन्य मनुष्य भी आये वीरेन्द्र आयेगा यह सुन कर सब

हो गये। उनको अपनी रक्षा का विचार आया। विजय की सहायता के लिये कुछ न सोचते थे। कभी कभी द्विवेदी जी को भी गालियाँ देते कि उसी के कारण हमारा भी सत्यानाश होगा।

अभी इतवार के तीन दिन थे। विजय अनेक पुरुषों से हाथ जोड़ कर अपनी सहायता करने के लिये प्रार्थना करता। पर किसी ने साफ़ साफ़ न कहा कि हम तुम्हारा साथ देंगे। कोई कहता हम अपनी रक्षा की चिन्ता करें कि तुम्हारी; तुम्हारे बाद वह हमारे यहाँ ही आयेगा। कोई कहता हम उस दिन यहाँ रहेंगे ही नहीं। कोई कहता हाँ हम तुम्हारी सहायता करने के लिये यत्न करेंगे। विचारा विजय यह सब सुन कर हताश हो कर लौट आता। एक बार रुक्मणी से उसने यह भी कहा कि माँ, उन अछूतों से कहें; वे अवश्य हमारी सहायता करेंगे। परन्तु रुक्मणी अछूतों से सहायता लेने में कब सहमत होती। उसने मना कर दिया विजय भी माता की बातों का उलंघन करना न जानता था। भाग्य पर भरोसा करके अपने नौकरों को सावधान रहने के लिये कह कर चुपचाप बैठ गया।

अर्ध रात्रि थी। इतवार का दिन था रामदीन अपने दरवाज़े पर बैठा हुआ चिलम पी रहा था। उसकी स्त्री भी वहीं पर बैठी थी। एकाएक उसने बाजों की ध्वनि सुनी चिलम को एक किनारे रखता हुआ बोला "वीरेन्द्र डाकू पंडित जी के यहाँ डाका मारने बाजे गाजे के साथ आ रहा है।" स्त्री ने डर कर कहा "चलो अन्दर चलें कहीं इस तरफ़ न आ जाय। एक आध टूटा फूटा बर्तन है वह भी हाथ से निकल जाय।"

राम०—डाकू धनी घरों में ही आते हैं। नीच तथा गरीब के घर में नहीं आते।

इतना ही कहने पाया था कि उसके सामने से ही डाकू निकल गये। कई घोड़े थे। दो तीन ऊँट थे, आगे आगे बाजे बजते जा रहे थे। रामदीन को यह सब देख कर आश्चर्य हुआ। उसने सुना था कि डाकू धूमधाम से आते हैं पर कभी विश्वास न करता था। अब तो उसने प्रत्यक्ष देख लिया। यही सब विचार कर रहा था कि उसके कानों में बन्दूकों की ध्वनि सुनाई दी। वह एक दम उठ खड़ा हुआ और अन्दर से अपना मोटा डण्डा उठा लाया और अपनी स्त्री से बोला "चाहता तो था नहीं कि पंडित की सहायता करूँ। रुक्मणी के व्यवहार से दुःखी हूँ। उसने हम लोगों से एक बार भी मदद देने के लिये नहीं कहा वह हमको अछूत समझती है। पर अब इस लड़ाई को देख कर, पंडित जी की भलमानसाहत को सोच कर रहा नहीं जाता। जाता हूँ। तुम दरवाजा बन्द कर लो।"

इतना कह कर रामदीन कन्धे पर लाठी रख अपने जाति बिरादरी तथा डोम आदि के घरों पर जाकर उनको अपने साथ चलने के लिये कहने लगा। वे सब रामदीन को जाते देख अचम्भा करने लगे क्योंकि थोड़ी देर पहिले ही वह वहाँ न जाने को कह रहा था कि हम नहीं

जाते अभी उस दिन ही हमारे लड़के को रुक्मणी ने मारा है। सबों ने अपनी अपनी लाठी उठाई और रामदीन के साथ चल दिये।

रुक्मणी अपने दालान में एक कोने में बैठी हुई रो रही थी। कई घण्टे व्यतीत हो गये अभी तक लड़ाई हो रही थी। न मालूम विजय की क्या दशा हो रही होगी। कभी सोचती मैंने क्यों लड़ने के लिये कहा सब धन उनके सामने रख देती डाकू चुपचाप चले जाते। मेरा विजय तो अच्छी तरह रहता। पर अब क्या है। यह लड़ाई तो बिना खून हुये बन्द होना असम्भव है। बाहर से एक लाठी किसी के ऊपर पड़ती तो रुक्मणी के मुख से एक चीख निकलती।

वह रो ही रही थी कि उसने देखा कि रामदीन विजय को कन्धे पर लादे हुये आ रहा है। लपक कर बच्चे को ले लिया। रामदीन यह कहता हुआ कि "लो यह अपवित्र हो गया है तनिक गंगा जल की छींटे मार देना" अपने घर चला गया।

उस दिन विजय को होश न हुआ। चोट काफी लगी थी। दिन में दो एक बार केवल पानी शब्द उसके मुख से निकला। कई नौकर भी पड़े पड़े चोट के कारण चिल्ला रहे थे। रुक्मणी ने हल्दी चूना लगाया। गाँव के दो एक मनुष्य वैद्य जी के यहाँ से दवा ले आये।

रात्रि के दस बजे विजय ने आंख खोली। पास में माता बैठी थी पूछा "माँ रामदीन कहाँ है"। माँ ने उदासीनता दिखाते हुए कहा "अपने घर होगा।"

विजय माता के इस उत्तर को सुन कर समझ गया कि माँ अब भी उसको अपवित्र मान कर ही ऐसा कह रही है बोला "माँ, प्रातःकाल उसको मेरे पास बुलवाना यदि रात को वह न होता तो तुम्हारा विजय इस समय स्वर्ग में होता।" जिस समय हम दस पन्द्रह मनुष्य डाकुओं का सामना कर रहे थे। उस समय गाँव के वे मनुष्य जिनको तुम पवित्र मानती आई हो, सब अपने घर में पड़े हुये थे। डाकू घर में घुसना ही चाहते थे कि रामदीन अपने साथियों को लिये हुये आ पहुँचा। उसके ही कारण हम सब उन दुष्टों का सामना कर सके। इतने में ही बन्दूक की आवाज़ सुन कर पुलिस भी आ गई वीरेन्द्र तो भाग गया है पर उसके साथी पकड़ लिये गये। मुझसे चोट के कारण अधिक खड़ा हुआ न गया। बेहोश होकर गिर पड़ा। उसके पश्चात् जो कुछ हुआ मुझे नहीं मालूम।

रुक्मणी विजय के वचन बड़े ध्यान से सुनती रही। नौकरों के मुख से भी उसने रामदीन का यश सुना था कि उसने विजय को डाकुओं के बीच से कैसे निकाला था। पर यह सब सुन कर उसको विश्वास न होता था। ईर्षा और होने लगती थी कि रामदीन अछूत ने उसके पुत्र को छू लिया। परन्तु पुत्र की बातों पर उसे विश्वास हो गया। एक ही क्षण में वह कुछ की कुछ हो गई। माता पुत्र के प्राण-रक्षक से अधिक किसको चाह सकती है? उसे इन ब्राह्मणों से

घृणा होने लगी जो कि कायरों के समान घर में बन्द पड़े रहे। उसे पति के बचन याद आने लगे कि जाति पांति मनुष्यों ने स्वार्थ-वश बनाई हैं उच्च वही है जिसकी आत्मा उच्च हो।

पुत्र से कहा "बेटा रामदीन ने तुम्हारी रक्षा की है उससे बढ़ कर अन्य मेरे लिये कौन है। मैंने उस दिन उसके पुत्र को मारा था उसने उसके बदले में मेरे पुत्र को जीवन दान दिया। वह एक पवित्र आत्मा है। कल मैं उसके पास तुम्हें ले चलूँगी। विजय माता के इस परिवर्तन को देख कर विस्मित हो गया। "अच्छा" कह कर करवट बदली।

प्रातःकाल हुआ। रामदीन अपने साथियों में बैठा हुआ उस रात्रि का वर्णन कर रहा था कि उसने देखा रुक्मणी पैदल उसके आगे २ आ रही है और रामदीन ने समझा कि फिर वह मुझे फटकारने आ रही है परन्तु जब वह पास आई और उसके पुत्र को उसने गले से लगा लिया तो उसे आश्चर्य हुआ और कहने लगा।

"माँ जी, यह अछूत है इसको क्यों छू लिया"।

रुक्मणी हँस कर बोली "रामदीन अधिक लज्जित मत करो। मैं तुमसे क्षमा माँगने तथा पुत्र की रक्षा के लिये धन्यवाद देने आई हूँ। तुमने मेरे साथ भलाई करके मेरे जीवन में एक नया परिवर्तन कर दिया है। विजय, आओ रामदीन के गले लगो और ये सब जितने अन्य मनुष्य बैठे हैं उन सब से मिलो। यही सब तुम्हारी रक्षा करने वाले हैं।"

बिचारे डोम चमार आदि पहले तो यह सब सुन कर दंग रह गये पर जब विजय ने उनको गले से लगागा तब वे सहर्ष मिले।

विजय फिर पालकी में बैठ गया। रुक्मणी ने एक बार फिर रामदीन की ओर देखते हुये कहा "रामदीन आज से हम तुम्हें अछूत नहीं मानते! यथार्थ में तुम सब ही पवित्र हो क्योंकि तुम्हारी आत्मा पवित्र हैं, महान् हैं। सब एक ही ईश्वर के बनाये हुये हैं। इन्हीं स्वार्थी ब्राह्मणों ने तुमको अछूत बनाया है। वे ही अछूत हैं। आज से तुम सब मेरे कूएं में से पानी भर सकते हो हमारे मन्दिर का दरवाजा तुम्हारे लिये खुला है। बे धड़क आकर उसमें ईश्वर से प्रार्थना कर सकते हो।"

इतना कह कर रुक्मणी विजय को लेकर घर लौट आई, आज उसका हृदय शान्त है॥

बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा।

[वैदिक धर्म विशारद, पं० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालङ्कार, एम.ए., एल.टी.]

(भुजङ्ग प्रयात छन्दः)

[१]

अजन्मा अनन्तादि आदित्य नामी;
स्वयम्भू सखा सच्चिदानन्द स्वामी।
निराकार नेता निहोता निकामी;
गुणी गेय गम्भीर ज्ञानानुगामी॥

पिता पूज्य प्राणेश का प्राण प्यारा—
वने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

[२]

गुहा गह्वरासीन योगीश गाते;
मुनी मौन हो मानसों में मनाते।
जिसे मंत्रद्रष्टार्षि देखें, दिखाते;
सुधी साधु शिक्षा सभी को सिखाते॥

सभी का सखा है सभी का सहारा;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

[३]

जिसे जीवनाधार जिज्ञासु जानें;
गृहस्थी गृहों में गहें, मुख्य मानें।
वनों में वड़े वानप्रस्थी बखानें;
सुशिक्षा सुधा से स्वसंन्यास सानें॥

अखंडाश्रमों का अनूठा अटारा;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

[४]

विभा वर्चसी ब्राह्मणों का वही है;
रमा राजसी भी उसी में रही है।
वही वैश्य वैभव्य की भी मही है;
वहीं शूद्र की सत्य सेवा सही है॥

वही विश्व वर्णापगा वारिधारा;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

[५]

जनों, जीवनों में, वनों में बसा हो ;
सभा में, सभी में सुधा सा रसा हो ।
सरों, संगरों में, करों में कसा हो ;
जलों, जंगलों में, थलों में धँसा हो ॥
विनेता बने विश्व को दे उबारा ;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा ॥

[६]

जहाँ भी रहें वेद का गान गावें ;
पढ़ें वा पढ़ावें, सुनें वा सुनावें ।
सुधी को सुकर्मण्यता में लगावें ;
बनें विश्व को आर्य सच्चा बनावें ॥
यही हो निजादर्श निष्पन्न सारा ;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा ॥

[७]

मरें वेद के हेतु मौजें मनाते ;
ऋचा मंत्र वा साम का गान गाते ।
अजादेश सारा सभी को सुनाते ;
करें प्रार्थना मृत्यु का मान पाते ॥
प्रभो मानवी योनि में जो उतारा ;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा ;

[८]

बनें अश्व वा गो अजा नाम पावें ;
सदा वेद-पारीण के काम आवें ।
उसी आपगा में, बनें मीन, जावें ;
जहाँ प्रात ही वेद पाठी नहावें ॥
सुनें वेद मंत्र ध्वनी धन्य धारा ;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा ॥

[९]

बनें पक्षि तो भी "द्विजों" में गिनावें ;
द्विजों में रहें "मंडनागार" पावें ।

बनें वृक्ष ऋष्याश्रमों को सजावें;
कुटी काठ से, पत्तियों से छवावें॥
समिद्धाहुती में जलें हो उजारा;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

[१०]

कहीं जन्म तें, वेद के काम आवें;
तभी जन्म-साफल्य का लाभ पावें।
स्वयं कंज हो "सूर्य" श्रेमाण ध्यावें;
उसीसे विनोदी बनें मोद पावें॥
वही मृत्यु-मन्दाकिनी का किनारा;
बने वेद ही प्राण प्यारा हमारा॥

× × × ×

हमारे प्रेमी

वेदोदय के पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि उसके जन्म से पूर्व ही उसके प्रेमी उसके साथ अपने प्रेम का परिचय देने लगे हैं। यहाँ हम केवल दो नामों का उल्लेख करेंगे।

(१) श्री पं० शिवचरण लाल जी

सारस्वत, आर्य पुरोहित काल्पी ग्राहकों की संख्या बढ़ाने का उसी दिन से प्रयत्न कर रहे हैं जिस दिन हमारी सूचना आर्य्य मित्र में निकली थी। उनका यह परिश्रम निरन्तर जारी है।

(२) श्री बा० मुक्ताप्रसाद जी बी० ए०

चक प्रयाग ने २४) रु० इसलिये दिये हैं कि २) में उनके नाम एक पत्र जारी किया जाय और शेष २२) से २२ उन स्त्री, बालक, तथा निर्धन पुरुषों के नाम पत्र जारी किया जाय जो केवल १) मूल्य दें। ऐसे प्रार्थियों को स्थानिक आर्य्य समाज से प्रमाणित कराके प्रार्थना भेजनी चाहिये, और यहाँ से उत्तर जाने पर १) मनीआर्डर द्वारा भेज देना चाहिये।

"वेदोदय" अपने प्रेमियों का आभारी है।

× × × ×

ईश्वरीय ज्ञान

[श्री० सत्यप्रकाश एम. एस-सी, एफ. आई. सी. एस, रिसर्च स्कालर]



रतीय सभ्यता और संस्कृति पर आन्तरिक एवं वाह्य परिस्थितियों का इतना प्रभाव पड़ा है, कि आज बीसवीं शताव्दी में इसके प्राचीन प्रतिरूप का प्रत्याभास देखना भी साधारण कार्य्य नहीं है। हमारी वर्तमान भारतीयता अनेक संस्कृतियों का संकर है। शुद्ध वैदिक कालीन आचार व्यवहार किस प्रकार के थे, उस समय के मानवी ज्ञान के विकास की शृंखला का रूप क्या था, और फिर उसमें उत्तरोत्तर किस प्रकार परिवर्त्तन होते गये, इसका विवरण न तो इतिहास के पृष्ठों से पता चलता है, और न हमारे प्राचीनतम भग्ना-विशेष, शिलायें और प्रस्तर ही इसकी कुछ सूचना दे सकते हैं। यदि आज वृहत्तर भारत में अर्थात् जावा, कम्बोज, सुमात्रा, चीन अथवा भूमण्डल के अनेक भागों में भारतीय इतिहास के समय के कुछ चिह्न मिलते भी हैं तो वे भी अधिकांशतः बौद्धकाल से और अधिक प्राचीनता का प्रमाण देने में असमर्थ ही हैं। भूगर्भ वेत्ताओं की गवेषणायें यद्यपि हमको सृष्टि के उस आदि काल की स्पष्ट सूचनायें दे रही हैं जिस समय आपका आर्य्यावर्त्त देश जल से परिप्लावित था। धारवार, कढ़ापा, गोंडवाना, तथा परमियन समूहों के प्रस्तरों से लेकर प्लायोसीन और प्लाइस्टोसीन काल तक का भौगर्भिक इतिहास कुछ कम कौतूहलजनक नहीं है। ओर्डोवीसियन समय के उस गोंडवानालैण्ड की कल्पना कीजिये, जिस समय भारतवर्ष और अफ्रीका के बीच में कोई समुद्र न था और दूसरी ओर आज कल का आष्ट्रेलिया भी इस देश से संयुक्त था पर वर्त्तमान चीन और जापान जल में ही डूबे हुए थे। भूमि के इतिहास में न जाने कितनी बार इस प्रकार के विप्लव हुए कि समुद्र पट कर स्थल भाग बन गये और स्थलों ने समुद्रों का रूप धारण कर लिया। बनस्पतियों के विकास का अध्ययन करने वाले आपको यह वता सकते हैं कि किस प्रकार प्रोटोकोकस नामक एक कोष्ठक पौधे से अलगाई और फफूंदियों का जन्म हुआ, और फिर सृष्टि में शिलावल्क, सेवार बहु पत्रक फर्न, और फिर फल फूल वाले वृक्षों का विकास हुआ। वे आपको उस विप्लव की याद दिलावेंगे जब जंगल के जंगल भूमि में दबकर पिस गये और जिन्होंने कालान्तर में कोयले की खानों का रूप धारण कर लिया। पशुओं के विकास में विश्वास रखने वाले व्यक्ति सृष्टि के विकास की कथा प्रोटोजोआ से आरम्भ करेंगे, और फिर अनेक प्रकार के स्पञ्जों, जेलीमत्स्य, और मूँगाओं की उत्पत्ति वताते हुए वे आपका ध्यान मछलियों एमफीवियों (जल-थलचरों)

और सरीसृपों (रैप्टाइल) की ओर आकर्षित करेंगे। फिर वे आपके सम्मुख भीमकाय भयंकर डिनोसौर और प्लीसिओसौरों की जाति के पशुओं के संघर्ष की कथा सुनावेंगे, और सबके अन्त में मनुष्य के विकास का उल्लेख करेंगे। सभ्यता के वैकासिक इतिहास के प्रेमी यह बताने का प्रयत्न करेंगे कि संसार के आदि मनुष्य किस प्रकार जंगलों में शिकार करते फिरते थे। वे शिलायुग, लोहयुग और अन्य धातुयुगों का चित्र आपके समक्ष रखेंगे। भाषा शास्त्र वेत्ता भाषाओं का विकास संकेतों से आरम्भ करेंगे, वे आपको यह बतावेंगे कि किस प्रकार प्राकृतिक ध्वनियों ने क्रिया-शब्दों को जन्म दिया। प्राचीन निवासियों ने किस प्रकार अपनी भावनाओं को प्रकट करने के लिये हँसना, रोना, भाव कटाक्ष करना आरम्भ किया और फिर विकास की अन्य श्रेणियों में उनके ये संकेत किस प्रकार भाषा के रूप में परिणत हो गये। इसी भांति लिपि का विकास सिद्ध करने वाले चित्र भाषा से आरम्भ करके आधुनिक वर्णाक्षरों के विकास की शृंखलाओं को प्रस्तुत करेंगे। आजकल के विकास के युग में कोई विषय ऐसा नहीं है जिसमें प्रत्येक की विकासधारा का स्रोत ढूंढ़ने का प्रयत्न न किया जाता हो।

पर विकास की प्रणाली सर्वथा पाश्चात्य ही नहीं है। जड़ सृष्टि की रचना का क्रम आर्य्य साहित्य में भी तो वर्णित है, यद्यपि प्राच्य और पाश्चात्य प्रणालियों में अन्तर बहुत है। यदि आधुनिक विज्ञान में आरम्भ नीहारिकाओं, प्रोटोजोआ या प्रोटोकोकस से होता है तो प्राचीन साहित्य में किसी भी क्रम का उल्लेख करने से पूर्व 'ब्रह्म-हवा इदमग्र आसीत्' 'सत्यम् ज्ञानमनन्तं ब्रह्म,......सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा विपश्चितेति,' अथवा सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्,..., तदैक्षत बहुस्याम् प्रजापयेति' इसी प्रकार सांख्यवादियों के अनुसार 'प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः कहकर विकास शृंखला प्रस्तुत करने की प्रथा थी। भौतिक सृष्टि का आरम्भ और उसमें ज्ञान का विकास सभी एक स्रोत से संभवित माना गया है। जहाँ परमात्मा को सृष्टि का रचयिता माना जाता है वहाँ उसे ज्ञान का केन्द्र भी मानते हैं। उस विज्ञानमय ब्रह्म से ज्ञान का प्रादुर्भाव किस प्रकार होता है, यह विषय स्वयं विवादास्पद है। सामान्यतः इस सृष्टि का प्रत्येक परमाणु, और इस जगत् की प्रत्येक क्रिया नियन्ता के रहस्यमय ज्ञान की बृहत पुस्तक है। एक पृष्ठ के बाद दूसरा पृष्ठ खोलते जाइये, नई नई अनुभूतियां प्रकट होने लगेंगी। पर सृष्टि के मूक ज्ञान से ही बहुत से व्यक्तियों को सन्तोष नहीं होता है। वे परमात्मा के ज्ञान का अनुभव स्पष्ट शब्दों और वाक्यों द्वारा करना चाहते हैं। यदि परमात्मा ने सृष्टि रचना की, और इस कार्य्य के कष्ट से जीवों को मुक्त कर दिया, जीवों के अवतार के पूर्व उसने उनके रहने के लिये पृथ्वी, और जीवन के लिये अन्य आवश्यक वस्तुओं का निर्माण किया, इसके उपरान्त यदि उसने ज्ञान का भंडार सृष्टि की प्रत्येक तन्त्री में निहित करके प्रकट किया तो कोई कारण नहीं है, कि उसने मनुष्योचित भाषा का भी निर्माण न किया हो! जिस प्रकार भौतिक सृष्टि का

प्रादुर्भाव ईश्वर से हुआ है, उसी प्रकार भाषा का प्रादुर्भाव भी उसी से होना चाहिये। यही कारण है कि ईश्वर में विश्वास रखने वाला प्रत्येक सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में ऐसे ईश्वरीय ज्ञान में भी विश्वास रखता है जिसका प्रादुर्भाव किसी स्पष्ट भाषा में हुआ हो। प्रत्येक सम्प्रदाय उस ईश्वरीय भाषा को अत्यन्त सरस, कल्याणमय और आदर्श समझता है। वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानने वाले व्यक्ति वेद की भाषा को भाषा की पराकाष्ठा मानते हैं, उसके प्रत्येक स्वर, राग और पंक्ति को वे अत्यन्ततम मधुर और कल्पनातीत समझते हैं। इसी प्रकार ज़रथुस्त्री सम्प्रदाय वाले पारसी गाथाओं में वर्णित अहुरमज़्द के वचनों को काव्य की पराकाष्ठा ही मानते हैं। महात्मा ईसा के सरस उपदेशों और गीतों पर ईसाई धर्म वाले अपने बड़े से बड़े कवि को भी निछावर कर देने के लिये तैयार हैं। हज़रत मुहम्मद साहेब द्वारा अवतरित कुरानोल्लिखित वचन भी अरबी भाषा के आदर्श रूप हैं। जिन्हें कृष्णोपदिष्ट गीता के ईश्वरीय होने में विश्वास है, वे गीता के सामने प्रत्येक साहित्यिक पुस्तक की उपेक्षा करने में संकुचित नहीं होते हैं। नानक और कबीर के भक्त यद्यपि उनके वचनों को ईश्वरीय नहीं मानते हैं तब भी ग्रन्थ साहेब और बीजकों के प्रत्येक शब्द उनमें एक विशेष स्फूर्ति पैदा करने के लिये समुचित हैं। तात्पर्य्य यह है कि आस्तिकता, ईश्वरीय ज्ञान और ईश्वरीय भाषा तीनों ही साथ साथ चलती हैं। हां, जो ईश्वर में विश्वास नहीं रखते हैं उनके लिये न तो ईश्वरीय ज्ञान की ही आवश्यकता है और न ईश्वरीय भाषा की ही।

यद्यपि नास्तिक व्यक्ति भी विकासवाद को किसी न किसी रूप में मानते हैं और आस्तिक भी, पर दोनों के भावों में विशेष अन्तर है। नास्तिकों के विकासवाद में सृष्टि रचना का कोई उद्देश्य नहीं है, वे सृष्टि के महत्व का विचार नहीं कर सकते हैं। संघर्ष, accidents और परिस्थितियों के कारण ही उनके विकास का क्रम आगे बढ़ता है। पारस्परिक युद्ध में सबल प्राणी निर्बल को प्रत्याहत करके अपना अधिपत्य स्थापित करते हैं। पर आस्तिकों के समक्ष एक दूसरी ही समस्या आती है। उनकी दृष्टि में यह बात कभी ठहरती ही नहीं है कि जिस समय मनुष्य का प्रथम प्रादुर्भाव हुआ हो, उस समय उसके पास न कोई स्वाभाविक भाषा ही हो, और न कोई आचार विचार के नियम ही। यदि मनुष्य को किसी भी समय में भाषा और ज्ञान की प्राथमिक आवश्यकता है तो वह उस समय भी होनी चाहिये थी जिस समय मनुष्य का सर्व प्रथम अवतार हुआ। हमारी दृष्टि में पशु किसी भाषा का व्यवहार करते प्रतीत नहीं होते हैं, कदाचित् वे हमारी ऐसी व्याकरणबद्ध सुवाच्य भाषा का व्यवहार न करते होंगे, पर इसका अर्थ यह नहीं है, कि भाव और विचारों को प्रकट करने के लिये उनके पास कोई साधन ही नहीं है। चींटी और मधुमक्षी का कलाकौशल सब को विदित है। पर चींटियों और मधुमक्षियों के इतिहास में कोई ऐसा समय नहीं पाया जाता है जब उन्हें अपने इन कृत्यों का स्वाभाविक ज्ञान न रहा हो।

मधुमक्खियों और चींटियों का कार्य्य इतना सुसम्बद्ध और सामूहिक होता है, कि हम यह नहीं कह सकते हैं कि उनके पास भाषा के समान भाव प्रकट करने के कोई साधन हैं ही नहीं। हमारा यह विश्वास है कि इन पशुओं और जन्तुओं के जीवन-इतिहास में कोई समय ऐसा न हुआ होगा जब उनके पास यह अपनी भाषा न रही हो।

अब यदि इसी प्रकार यह माना जाय कि मनुष्य के प्रथम प्रादुर्भाव से लेकर सहस्रों और लाखों वर्ष पर्यन्त तक मनुष्योचित विकसित भाषा का आविर्भाव ही नहो हुआ तो आस्तिक व्यक्तियों के समक्ष इतने समय की इस सृष्टि-रचना का उद्देश्य ही व्यर्थ हो जायगा। विकासवाद वाले व्यक्ति मनुष्य को सर्वोत्कृष्ट प्राणी मानते हैं। पर यदि हमारे आदिम मनुष्यों के पास न किसी प्रकार का ज्ञान था और न कोई भाषा ही थी, तो फिर वह किस बात में अन्य प्राणियों से श्रेष्ठतर माना जा सकता है। कम से कम ज्ञान की दृष्टि में वह मकड़ी, मधुमक्खी, चींटी और पक्षियों की अपेक्षा कम विकसित ही माना जाना चाहिये क्योंकि उसे न वस्त्रों का व्यवहार ही आता था, न यह अपने रहने के लिये घर ही बना सकता था, न उसके परिवार का संगठन ही था और न वह किसी प्रकार की भाषा का ही व्यवहार करता था। मनुष्य की यह अवस्था विकास की शृङ्खलाओं के स्वयं विरुद्ध है। सृष्टि रचना के उद्देश्य की दृष्टि से भी इस प्रकार के प्रादुर्भाव का कोई अर्थ नहीं है। अतः चाहें हम साधारण विकास के तत्वों को मानें या न मानें, दोनों ही अवस्थाओं में हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि आदिकालीन मनुष्यों के भी पास भाषा और ज्ञान दोनों ही था, उनकी यह भाषा और उनका ज्ञान संसार के अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक विकसित और उन्नत था।

इसी प्रकार की युक्तियों के आधार पर आस्तिकवादो न केवल ईश्वर, ईश्वरीय भाषा और ईश्वरीय ज्ञान में विश्वास रखते हैं प्रत्युत वे यह भी मानते हैं, कि उस समय से ही जब मनुष्य का प्रथम अवतार हुआ, उसको जहाँ ईश्वर की अन्य सृष्टि उपभोग और उपयोग करने के लिये मिली वहाँ उसे ईश्वरीय ज्ञान और ईश्वरीय भाषा भी जन्म सिद्ध अधिकार के रूप में मिली। यह ईश्वरीय भाषा क्या थी और यह ईश्वरीय ज्ञान किस प्रकार का था, इसका उल्लेख करना हमारा उद्देश्य नहीं है, और न हम इसकी ही मीमांसा करना चाहते हैं कि ये दोनों इस समय हमारे पास अपने प्राथमिक रूप में ही विद्यमान है अथवा विकृत या विकसित रूप में अथवा ये सर्वथा लुप्त ही हो गये हैं। आस्तिकता का अर्थ ही यह है कि ईश्वर, ईश्वरीय सृष्टि, ईश्वरीय भाषा और ईश्वरीय ज्ञान चारों में ही विश्वास रखा जाय। मनुष्य के प्रादुर्भाव, अस्तित्व और विकास के लिये जितनी सृष्टि की आवश्यकता है उतनी ही ज्ञान और भाषा की भी, और यदि सृष्टि की रचना, उद्देश्य और क्रम के लिये किसी चेतनतम ईश्वर के अस्तित्व की आवश्यकता है तो भाषा और ज्ञान के प्रादुर्भाव, उद्देश्य और क्रम के लिये भी उसी प्रकार के चेतनशील व्यक्तित्व की आवश्यकता होगी।

ईश्वरीय ज्ञान में धार्मिक जनता सदा से ही विश्वास रखती आयी है, पर ईश्वरीय ज्ञान सम्बन्धी भावनाऐं सबकी पृथक् पृथक् रही हैं। संसार में ज्ञान, भाषा, और आचार के नियमों के प्रादुर्भाव के लिये वैकासिक सिद्धान्तों के आधार पर जिस ईश्वरीय ज्ञान की कल्पना की जाती है उसका रूप उस कल्पना की अपेक्षा कुछ और ही है जो ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता कुछ प्राचीन रूढ़ियों और धर्मांध विश्वासों पर आश्रित है यदि गाथाओं के ईश्वरीय होने में जरथुश्त्री-सम्प्रदाय वाले विश्वास रखते हैं तो इसलिये नहीं कि जरथुश्त्र से पूर्व मनुष्यों के पास विकास के लिये कोई भाषा, ज्ञान, या संस्कृति थी ही नहीं, प्रत्युत उनके ग्रन्थों से ही यह स्पष्ट है, कि उनके पूर्व देवों, कवियों और कर्पनों की विद्यमानता थी। इन देवों ने कदाचित् प्राचीन पारसियों पर भयंकर अत्याचार करने आरम्भ कर दिये थे, और एक प्रकार से धर्म की ग्लानि होनी आरम्भ हो गई थी। ऐसी परिस्थिति में अहुरमज्द के आदेशों का प्रचार किया गया। इसका तात्पर्य्य ही यह है कि पारसियों के ईश्वरीय ज्ञान का उद्देश्य समाज-गत दोषों को दूर करना तथा विकृत संस्कृति का सुधार करना था। इसी प्रकार ईसाई और यहूदियों के विश्वासों की अवस्था है। इनके ईश्वरीय ज्ञान के अवतरण से पूर्व संसार में कला कौशल, भाषा और ज्ञान का अभाव न था। यह तो वह समय था जब भारतवर्ष, यूनान, रोम, मिश्र आदि देश सभ्यता की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके थे। हाँ, यहूदी और ईसाई धर्मों का जिन स्थानों पर अवतरण हुआ उन प्रान्तों की अवस्था शोचनीय अवश्य होगई थी और यह परमावश्यक था कि वहाँ की जनता में एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न की जा[य] और इन्हीं पवित्र भावनाओं से हजरत मूसा और ईसा ने अपने अपने सम[य] में सुधार और धर्म सम्बन्धी सिद्धान्तों का प्रचार किया। उन्होंने अपने वचनों को ईश्वरीय कह कर इसीलिये प्रसिद्ध कि[या] कि ज्ञान विहीन सामान्य जनता ऐसा कह[ने] पर अधिक बिश्वास करेगी और उन[के] उपदेशों को श्रद्धा और भक्ति के सा[थ] सुनेगी। इसी उद्देश्य से महात्मा जरथुश्त्र मूसा और ईसा ने अपने को पैगम्बर कह कर प्रसिद्ध किया। अरब के बुतपरस्तों के छिन्न भिन्न सम्प्रदाय को एक सूत्र में बाँधने के उद्देश्य से ही महात्मा मुहम्मद ने भी अपने कलामों को ईश्वरीय कह कर प्रसिद्ध करना आरम्भ किया। इस प्रकार पश्चिमीएशिया के इन ईश्वरीय धर्मों में जिस ईश्वरीय ज्ञान की कल्पना की उसका तात्पर्य केवल इतना ही था कि तात्कालि[क] प्रचलित सामाजिक परिस्थिति में क्रान्ति उत्पन्न करने की दृष्टि से प्रवर्त्तकों के बचनों में दृढ़ विश्वास रखने के लिये उन्हें ईश्वरीय कह कर प्रसिद्ध कर दिया जाय। अतः इस ईश्वरीय ज्ञान का जन्म श्रद्धा और भक्ति के ही कारण होता है।

इन ईश्वरीय ज्ञानों का अवतरण जिन महापुरुषों द्वारा माना गया है उन्हें पैगम्बरों की उपाधि से सम्मानित किया गया है। उन्हें ईश्वर का प्रतिनिधि स्वीकार किया जाता है। इस पैगम्बरी धर्म का आरम्भ महात्मा जरथुश्त्र से होता है

ये सब पैग़म्बरी धर्म मूर्तिपूजा के कट्टर विरोधी रहे हैं। मूर्ति पूजा और नास्तिकता में वस्तुतः कोई भेद नहीं है। इन धर्मों ने जहाँ मूर्तिपूजा का विरोध किया वहाँ ईश्वर को निराकार भी माना, यह नहीं कहा जा सकता है। यह मानना ही होगा कि इनके धर्म ग्रन्थों में ईश्वर के विशेष निवास स्थान का उल्लेख, और उसके मनुष्योचित आकार का भी विवरण मिलता है। सम्भव है कि यह वर्णन केवल अलंकारिक ही हो, और वर्णन शैली की सरलता के लिये इसकी कल्पना कर ली गई हो, क्योंकि यह मानना कठिन है कि ईश्वर को साकार मानने वाला सम्प्रदाय मूर्तिपूजक न हो। जहाँ ईश्वर के एक स्थानिक रूप की कल्पना की गई, वहाँ मूर्तिपूजा स्वभावतः आही जाती है।

भारतवर्ष में पैगम्बरी धर्मों ने एक नया रूप धारण किया। यहाँ के धर्म अथवा संस्कृति-प्रवर्त्तक ईश्वर के प्रतिनिधि ही न माने गये प्रत्युत उन्हें स्वयं ईश्वर समझ लिया गया। भारतीयों की कल्पना अन्य देश के निवासियों से विचित्र ही रही है, और पौराणिक काल में ये कल्पनायें पराकाष्ठा तक पहुँच गई। यहाँ के पैग़म्बरों को ईश्वर का अवतार माना जाने लगा। मुसलमान लोग जहाँ हज़रत मुहम्मद को पैग़म्बर मानते हैं वहाँ हज़रत ईसा और मूसा के पैग़म्बर होने को अस्वीकार नहीं करते हैं। वे इन सबके ही पैग़म्बर होने में विश्वास रखते हैं। अर्थात् एक पैग़म्बर ने अपने पूर्ववर्त्ती पैग़म्बर की पैग़म्बरी पर कभी सन्देह नहीं किया। यह दूसरी बात है कि सब पैग़म्बरों के वचनों पर इनकी एक सी श्रद्धा नहीं है। भारतवर्ष के अवतार के विषय में भी कुछ कुछ ऐसा ही रहा है, पर इन अवतारों में से बहुत से कल्पित ही हैं, और उनका कोई ऐतिहासिक महत्व नहीं है। वस्तुतः भारतीयों की कल्पना इतनी बढ़ी चढ़ी थी कि आज बीसवीं शताब्दी में यह निश्चय करना बड़ा ही कठिन है कि उनके उल्लिखित पात्रों में कितने कल्पित हैं और कितने वस्तुतः ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। भारतीय अवतारों में सम्भव है, राम और कृष्ण ऐतिहासिक व्यक्ति हों पर नृसिंह, मत्स्य, कोल, कच्छप आदि तो न पैग़म्बरों के समान प्रवर्त्तक ही माने जा सकते हैं, और न इन्हें इतिहास में कोई स्थान ही मिल सकता है। यह भी सन्दिग्ध ही है कि इन अवतारों में से कितने ऐतिहासिक व्यक्तियों ने अपने को सचमुच अवतार कहकर प्रसिद्ध किया था। वस्तुतः बहुतसों को तो यह उपाधि उनके भक्तों ने उनके जीवन काल के बहुत पश्चात् ही दी होगी। पैग़म्बरों के समान प्रत्येक अवतार अपने पूर्ववर्त्ती अवतार में श्रद्धा भी रखता है। अवतारवादियों और पैग़म्बरवादियों में एक बड़ा अन्तर उपस्थित हो गया है। जितने भी अवतार वादी हैं, वे सबके सब मूर्तिपूजक हैं। अलंकारिक कल्पनाओं और मूर्तिपूजा का विशेष सम्बन्ध है।

यह कहा जाता है कि ईश्वर के स्वरूप की कल्पना मनुष्य अपने स्वरूप के आधार पर करता है पर अवतारवादियों ने अवतारों के स्वरूप सभी प्रकार के रखे हैं और प्रत्येक प्रकार की भावना को

स्थान दिया है। इन अवतारों में कृष्णा-अवतार को छोड़कर शेष सब में अवतरित व्यक्तियों ने प्रवर्त्तकों और पैग़म्बरों के समान कोई उपदेश नहीं दिये, और इसीलिये भारतवर्ष में वेदों के पश्चात् केवल कृष्ण की गीता को ही कुछ ईश्वरीय मानने की प्रथा है। प्रत्येक पैगम्बर के साथ एक एक ईश्वरीय ज्ञान का अवतरण हुआ पर प्रत्येक अवतार के साथ ऐसा नहीं हुआ। कदाचित् वेदों के एक मात्र ईश्वरीय होने में भारतीयों को इतना विश्वास था कि इनकी विद्यमानता में किसी दूसरे ईश्वरीय ज्ञान की कल्पना करना ही इन्हें न सूझा। आर्य्य संस्कृति के प्रत्येक युग और आर्य्यसभ्यता के प्रत्येक स्थान में श्रुतियों को इतना सम्मान दिया जाता रहा है कि किसी भी प्रकार का विचार रखने वाला व्यक्ति वेदों के अनीश्वरीय होने का साहस नहीं कर सका, चाहें वह याज्ञिक हो, चाहें तान्त्रिक और चाहें शंकर के समान दार्शनिक। पैगम्बर सम्भवतः ऐतिहासिक व्यक्ति थे, और अवतार सभी अनैतिहासिक। जैनियों और बौद्धों ने एक दूसरे ही प्रकार के अनीश्वर-धर्म को जन्म दिया। इनकी अनीश्वरता के कारण ही इनके धर्म में ईश्वरीय-ज्ञान का प्रश्न उठ जाता है। जैनियों के चौबीस तीर्थंकर भी अवतारों के समान अनैतिहासिक और काल्पनिक हैं। इन धर्मों के अनुयायी अपने प्रवर्त्तकों के वचनों में अगाध श्रद्धा रखते हैं और इन प्रवर्त्तकों को परम-सिद्ध मानते हैं।



गुरुवर विरजानन्द

[श्री विश्वप्रकाश बी० ए०, एल-एल० बी०]



मुना की ललित लहरें अब भी मंगलगान करती हैं। कृष्ण की प्यारी मथुरा गर्व से फूली नहीं समाती। जहां वह द्वापर में कृष्ण लीला की उपवन बनी वहां कलियुग में उसने महर्षि दयानन्द को अपनी गोद में शिक्षा दी। मथुरा के एक भग्न गृह में इतनी शक्ति है जिसको देखते ही रोमांच हो आता है। क्योंकि यही गृह गुरु विरजानन्द की तपोभूमि था। इसी घर में ऋषि दयानन्द को शिक्षा मिली थी। "ऋषि प्रणीत ग्रन्थों को पढ़ो, मनुष्य प्रणीतों को त्याग दो।" इस छोटे से सूत्र में ऐसी शक्ति थी जिसने दयानन्द को ऋषि दयानन्द बना दिया।

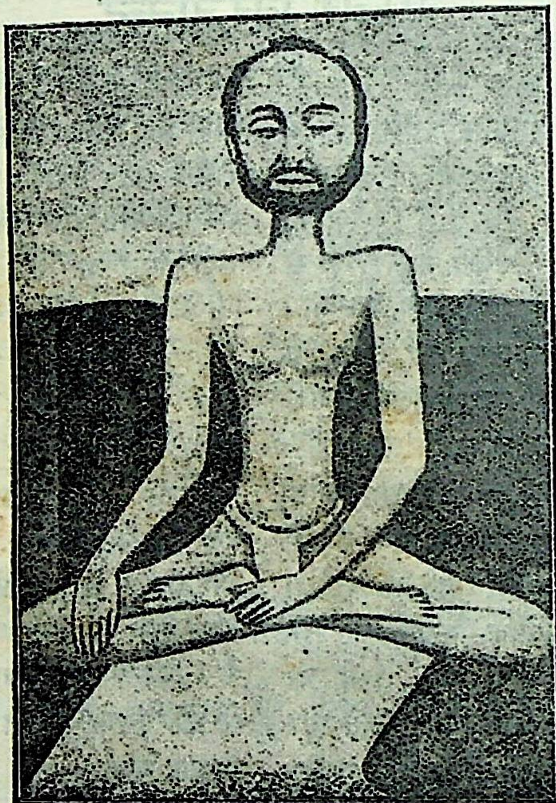
ऋषि दयानन्द का नाम लेते ही गुरु विरजानन्द का नाम स्मरण हो आता है। ऋषि दयानन्द में अतुल प्रतिभा विद्यमान थी पर उसके प्ररोहण में गुरु विरजानन्द का बहुत बड़ा हाथ था। यदि दयानन्द को विरजानन्द न मिलते और विरजानन्द को दयानन्द न मिलते तो वैदिक सूर्य्य बहुत दिनों तक मिथ्या अन्धविश्वास के आवरण से ढका रहता। ऋषि कृत ग्रन्थों को सम्मान देना गुरु विरजानन्द का बहुत बड़ा कार्य्य था।

जन्म तथा आपत्तियां

गुरु विरजानन्द जी का जन्म १८५४ वि० (१७९७ ई०) में गंगापुर नामक स्थान पर हुआ। यह स्थान पंजाब प्रान्त के अन्तर्गत है। आपके पिता पं० नारायण दत्त बड़े विद्वान् तथा शिक्षित पुरुष थे। विरजानन्द के एक और बड़े भाई थे। माता पिता सुख से अपने जीवन व्यतीत करते थे। विरजानन्द आरम्भ से ही बुद्धिमान थे और विद्या प्रगति में उनका बड़ा मन लगता था।

बाल्यकाल में अभाग्यवश विरजानन्द के ऊपर बड़ी आपत्तियां आईं। आठ वर्ष के भी न हो पाये थे कि चेचक रोग ने आ घेरा और उस क्रूर बीमारी ने विरजानन्द की दृष्टि हरली। नन्हा सा बालक नेत्रों की ज्योति से विहीन हो गया और संसार के सारे प्रलोभनों पर परदा पड़ गया। इस बड़ी आपत्ति से माता पिता सभी बड़े दुखित हुये और भाग्य ठोंक कर रह गये। बालक की इस शोचनीय अवस्था

के हो जाने से माता पिता का प्रेम बढ़ गया। पिता बड़े प्रेम से शिक्षा देने लगे। नेत्रों की आपत्ति ही क्या कम थी—मातृ वियोग भी विरजानन्द को सहना पड़ा। माता की स्मृति अभी हृदय पटल पर चित्रित थी कि पिता ने भी संसार से किनारा किया।



अब विरजानन्द की अवस्था बहुत शोचनीय हो गई और उनकी सहायता करने वाला कोई प्राणी न रहा। उनके ज्येष्ट भ्राता ने भी उनकी सहायता न की। भौजाई भी प्यार करना तो दूर रहा, अनेकों प्रकार के क्लेश देने लगी। पर विरजानन्द ने इन सब आपत्तियों का बड़ी धैर्य्यता से सामना किया। वस्तुतः यदि देखा जाय तो आपत्तियां ही मनुष्य जीवन को उच्च बना सकती हैं। अग्नि से तपने पर ही सोने में कान्ति आती है। गुरु विरजानन्द की कीर्त्ति भी इतनी कठिनाइयों के पार कर लेनें पर उज्वल हो गई।

स्वार्थी भाई ने विरजानन्द की कुछ भी परवाह न की और प्रतिदिन उनका अपमान होने लगा। नेत्र विहीन को अनेकों दिवस अनशन व्रत करना पड़ा। अपने घरमें इस अपमान को देखकर गुरुवर ने यह निश्चित कर लिया कि घर को छोड़कर चल देना चाहिये। ईश्वर में अटल विश्वास था और इसी की आशा में गुरुवर अपने भाई और भौजाई को छोड़ कर चल दिये।

ज्ञान की खोज

अपने घर को छोड़ने पर गुरुवर ने किसको अपना घर समझ लिया और भ्रमण करने लगे। हृषीकेश के घने जंगल में आकर उन्होंने तपस्या करना आरम्भ कर दी। तीन वर्ष तक गुरु मंत्र को जपते रहे और कठिन व्रतों से अपनी शरीर को सुखाते रहे। इसके उपरान्त उनके हृदय में एक जागृति उदय हुई जिसने उनको कर्त्तव्य क्षेत्र की ओर आने की प्रेरणा की। विरजानन्द की इस समय बड़ी लालसा थी कि संस्कृत साहित्य का मनन करें और इसी विचार से उन्होंने हृषीकेश के जंगलों को छोड़ दिया

हृषीकेश से चलने पर गुरुवर हरिद्वार में आये और यहां पर उन्हें स्वामी पूर्णानन्द जी से मिलने का सौभाग्य हुआ। स्वामी पूर्णानन्द जी बड़े उदार हृदय सन्यासी थे और विरजानन्द की अपूर्व प्रतिभा को देखकर उन्होंने सन्यास दे दिया। सन्यासी होने पर इनका नाम विरजानन्द रक्खा गया।

इस समय विरजानन्द की अवस्था १८ वर्ष की हो चुकी थी। उनको धुन थी कि संस्कृत साहित्य का अध्ययन करें इस कारण कुछ काल तक वे हरिद्वार में संस्कृत का अभ्यास करते रहे। सिद्धान्त कौमुदी, अनेकों व्याकरण की पुस्तकें कंठस्थ कर लीं। हरिद्वार से चलने पर आप कनखल आये और थोड़े दिनों बाद आपने काशी नगरी में प्रवेश किया। काशी नगरी संस्कृत का बड़ा भारी केन्द्र समझा जाता था और धुरन्धर पण्डित इसी स्थान पर रहते थे। उन दिनों लोगों का यह विचार था कि जिसने काशी में आकर विद्या न पढ़ी उसकी शिक्षा अधूरी ही है। गुरु विरजानन्द को यह सुअवसर मिला और इस स्थान पर आपने शेखर, मनोरमा आदि अनेकों व्याकरण की पुस्तकों का अध्ययन कर लिया। इसके साथ वेदान्त, मीमांसा न्याय आदि अनेकों पुस्तकों का आपको परिज्ञान हो गया।

विद्या ग्रहण करके आपने बहुत से विद्यार्थियों को भी शिक्षा दी। काशी में आपकी अपूर्व प्रतिभा के कारण लोगों ने आपको प्रज्ञाचक्षु की उपाधि दी थी। अब स्वामी विरजानन्द ने भ्रमण करना आरम्भ कर दिया, कलकत्ता घूमते हुये आप सोरों में आकर रहने लगे। यहाँ पर अलवर नरेश विनयसिंह से आपकी भेंट हुई। विनयसिंह गुरुवर की ख्याति तथा बुद्धि से बड़े प्रभावित हो गये और गुरु से शिक्षा पाने की इच्छा प्रकट की। विरजानन्द अलवर आकर रहने लगे और विनयसिंह प्रतिदिवस उनसे पढ़ने के लिये आया करते थे। एक दिन की बात है कि नरेश किसी कारणवश न आ सके स्वामी विरजानन्द को वह बात असह्य हो गई और उसी समय वहाँ से चल दिये। कुछ दिनों वे भरतपुर नरेश बलवन्तसिंह के यहाँ रहे। नरेश ने आपका बड़ा सम्मान किया और धन भेंट किया। इसके बाद भुडसान के नृपति टीकमसिंह के अतिथि रहे। भुडसान से गुरु सोरों में आये और इस स्थान पर इतने बीमार होगये कि जीवन की सारी आशायें छूट गई। यदि इस समय कहीं आपकी मृत्यु हो जाती तो सारा कार्य्य अधूरा रह जाता।

मथुरा नगरी में

संवत् १८९३ वि० में इधर उधर पर्य्यटन करते हुये गुरु विरजानन्द मथुरा नगरी में पहुँचे। और यहाँ पर विद्यार्थियों को शिक्षा देने के लिये एक विद्यालय खोल दिया। दूर २ से आपके गुण गान सुन कर विद्यार्थी अध्ययन के लिये आने लगे। गुरु विरजानन्द संस्कृत की उच्च शिक्षा अपने विद्यार्थियों को देने लगे। इसी स्थान पर एक घटना हुई जिसका उल्लेख हो जाना बड़ा आवश्यक है। मथुरा नगर में श्री रंगाचार्य्य के गुरु पं० कृष्ण शास्त्री अपने शिष्यों के साथ पधारे। दण्डी जी और

शास्त्री जी के शिष्यों में व्याकरण के ऊपर विवाद होने लगा। "अजाद्युक्ति" को दण्डी जी के शिष्य चौवे गंगादत्त और रविदत्त षष्ठी तत्पुरुष समास बताते थे पर लक्ष्मण ज्योतिषी और मुरमुरिया पंड्या इसको सप्तमी एक वचन बताते। यह शास्त्रार्थ बड़ा कुतूहल जनक हुआ और अन्त में ब्राह्मणों ने कह दिया कि दण्डी जी के शिष्य हार गये। मथुरा और काशी के पंडितों को दक्षिणा देकर भी अपने पक्ष की व्यवस्था पंडितों ने ले ली। परन्तु काशी के पंडितों की व्यवस्था देने पर भी गुरु विरजानन्द को पूर्ण विश्वास था कि उनका मत ठीक है।

इस चिन्तित अवस्था में एक दिन उन्होंने एक दक्षिणी पंडित को अष्टाध्यायी पाठ करते सुना। उसको सुनते ही उनकी शंकाओं का समाधान हो गया। इसके बाद उनको महाभाष्य, निरुक्त, निघंटु आदि ऋषि प्रणीत पुस्तकें मिल गईं। गुरु विरजानन्द को मनुष्यकृत ग्रन्थों से घृणा होगई और वे अपने शिष्यों को ऋषिकृत ग्रन्थों की ही शिक्षा देने लगे। मनुष्यकृत ग्रन्थों पर उनका इतना अविश्वास हो गया कि जो शिष्य उनसे पढ़ने आता उससे उन पुस्तकों पर जूते लगवाया करते थे।

दण्डी जी के विपक्षियों ने छल से काम लिया था इसलिये उनके अन्तःकरण भी स्वच्छ न थे। इस जीत के कुछ दिनों वाद लक्ष्मण ज्योतिषी रोगाक्रान्त हुये। उनको यह विश्वास होगया कि दण्डी जी के शाप का यह फल है। उन्होंने सेठ जी को एक सहस्र मुद्रा लेकर भेजा, पर दण्डी ने साफ कह दिया कि उनका काम किसी को शाप देना नहीं है। सेठ घर पर पहुँच न पाया था कि लक्ष्मण जी की मृत्यु हो गई।

आगरे में विजय

दण्डी जी कुछ नृपतियों से भेट करने के लिये आगरा नगर में आये। यहाँ पर जयपुराधीश रामसिंह ने आपको देख कर अपना आसन छोड़ दिया और बड़ा सम्मान किया। पर दण्डी जी की मंगल-कामना उनसे पूरी न हुई। इस समय महाराजाधिराज सप्तम एडवर्ड आगरा पधारे थे, दण्डी जी भी अपने शिष्यों के साथ उनके दर्शन को गये। यहाँ पर साहब के वचन सुनकर दण्डी जी बिगड़ खड़े हुये और कहने लगे कि इसको किसने पढ़ाया है। यहाँ पर दण्डी जी को बड़े बड़े व्याकरणाचार्य्यों से शास्त्रार्थ करना पड़ा पर सब पर आपने विजय प्राप्त की। पं० गट्टूलाल शास्त्री, पं० गोपालाचार्य्य, पं० अनन्ताचार्य्य क्रम से एक एक करके भिड़ते पर विरजानन्द के वैदिक सूर्य्य के सामने उनकी ज्योति मन्द पड़ जाती। नगर में आपने पुराण, मूर्त्ति-पूजा तथा श्राद्ध का अपूर्व वीरता से खंडन किया। वेदों को ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध किया और लोगों को उपदेश दिया कि ऋषिकृत ग्रन्थों का अध्ययन करो और मनुष्यकृत ग्रन्थों को त्याग दो। आगरा नगर में दण्डी जी ने अपनी विजय दुन्दुभि बजा दी और बड़ी बड़ी दूर तक इनकी महिमा फैल गई।

ऋषि दयानन्द का आना

इधर गुरु विरजानन्द की महिमा फैल रही है थी, उधर दयानन्द सच्चे गुरु की खोज में भ्रमण कर रहे थे। बीहड़ जंगलों, घाटियों तथा कन्दराओं में जहां कहीं किसी विद्वान् का नाम सुनते, तुरन्त पहुंच जाते, पर उनकी पिपासा इन साधारण पुरुषों से न बुझी। ऋषि दयानन्द असाधारण पुरुष थे और उनको एक ऐसे असाधारण पुरुष की आवश्यकता थी जो उनकी शंकाओं को मिटा सके। गुरु विरजानन्द जी का नाम सुनकर ऋषि दयानन्द मथुरा की ओर चल दिये और वहां पर पहुंचकर उनके द्वार को खट खटाया। "गुरुवर द्वार खोलिये"

"तुम कौन हो"

"ज्ञान का खोजी दयानन्द हूं। आप के पास सच्चे ईश्वर का ज्ञान प्राप्त करने आया हूँ।"

"कुछ व्याकरण पढ़ा है"।

"कौमुदी और सारस्वत कंठस्थ है"

"जाकर इन पुस्तकों को जमुना में बहा दो और जो कुछ पढ़ा है उसको विस्मृत कर दो। ऐसा करने पर ही मेरे शिष्य बन सकते हो।"

ऋषि दयानन्द गुरु के चरणों में पढ़ने लगे। गुरु ने वेद, दर्शन, अष्टाध्यायी आदि का ज्ञान उनको दे दिया। गुरु विरजानन्द बड़े क्रोधी थे, इस कारण ऋषि दयानन्द को बड़ा धैर्य्य रखना पड़ा। वह अपने गुरु से कहा करते थे, "कृपायतन आप अपने हाथों से मुझे न मारा करें, क्योंकि आपके हाथों को कष्ट होगा।" ऋषि दयानन्द आगामी जीवन में अपने हाथ पर एक चोट को सदा स्मरण किया करते थे। यह चोट गुरु विरजानन्द के दंडे की थी।

शिक्षा पढ़कर विदा होने का समय आया। ऋषि दयानन्द सोचने लगे कि गुरु दक्षिणा क्या दी जाय। कुछ प्रयत्न करके उन्होंने कुछ लौंगें जमा कर ली और गुरु के सम्मुख उपस्थित हुये। विदा होते देखकर गुरु विह्वल होगये और कहने लगे "मैंने इस दक्षिणा के लिये इतना प्रयत्न नहीं किया था। मैं इससे बड़ी दक्षिणा चाहता हूं।"

"भगवन्! आज्ञा दीजिये। यह सेवक आपकी आज्ञा पालन के लिये तय्यार है।"

"दयानन्द! देखो वैदिक सूर्य्य अस्त हो चुका है। मेरी प्रबल लालसा थी कि मैं स्वयं इस कार्य को करता परन्तु नेत्र ज्योति विहीन होने के कारण विवश हूँ। बहुत दिनों से मेरी लालसा थी कि किसी योग्य शिष्य को यह कार्य सौंपूं। भाग्यवश तुम मिल गये हो। प्रण करो कि अंधकार को दूर करके सच्चे ज्ञान का प्रकाश अवनि पर फैलाओगे।"

"मैं प्रतिज्ञा करता हूं।"

"ईश्वर तुम्हारी सहायता करे।"

गुरु से विदा होकर ऋषि दयानन्द देश में प्रचार करने के लिये चल दिये।

गुरु के शिष्य

गुरु विरजानन्द के कुछ शिष्यों के नाम ये हैं:—पुण्डरीक, गोपीनाथ, सोमनाथ, गंगादत्त, रविदत्त, युगलकिशोर,

चिरंजीलाल, सोहनलाल, गोपाण ब्रह्मचारी, नंदन चौबे, जगन्नाथ चौबे, दयानन्द, दामोदर दत्त, व्रजकिशोर, उदयप्रकाश हरिकृष्ण, दीनबंधु, गणेशीलाल, बनमाली आदि आदि।

सूर्य्यास्त

सम्वत् १९२५ विक्रमी (१८६८ ई०) में गुरु को शूल दर्द ने आ घेरा। उनको पहले से ही ज्ञात हो गया था अन्तिम काल आ पहुँचा है। पर मृत्यु के समय वे व्याकुल न थे। उनको पूर्ण विश्वास था कि ऋषि दयानन्द सच्चे वैदिक... का प्रसार करेंगे। उनके नश्वर शरीर... छोड़ने पर ऋषि दयानन्द ने कहा... "सच्चे ज्ञान का सूर्य्य आज अस्त... गया।"

[नोट—इस स्तम्भ में प्रति मास आ... समाज के निर्माताओं में से एक की स... जीवनी रहा करेगी। पाठकों से निवेदन है... वे इस प्रकार की जीवनियां चित्रों सहित भे... की कृपा करें। —सम्पादक]



अथर्ववेद का फ़ारसी रूपान्तर

[श्री० प्रो० महेश प्रसाद जी मौलवी फ़ाज़िल काशी हिन्दू विश्व विद्यालय]



ज भारत में अँग्रेजी भाषा का जैसा जोर-शोर है वह स्पष्ट ही है। परन्तु एक समय था कि फ़ारसी की तूती बोलती थी और जिस प्रकार आज बहुत से संस्कृत ग्रन्थों का रूपान्तर अँग्रेजी में हो गया है उसी प्रकार एक समय बहुत से संस्कृत ग्रन्थों ने फ़ारसी का वस्त्र धारण किया था। उन सभों के उल्लेख के निमित्त यहाँ प्रयाप्त स्थान नहीं। अतः केवल अथर्ववेद के फ़ारसी अनुवाद के सम्बन्धी कुछ बातें पाठकों की भेंट है जो कि संस्कृत संसार में एक प्रधान वस्तु है।

फ़ारसी में 'मुन्तख़बुत् तवारीख़' ... एक सुप्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसके ले... मुल्ला अब्दुल क़ादिर बदायूनी मह... हैं। उन्होंने ही उक्त ग्रन्थ* में अथ... के फारसी भाषान्तर के विषय में जो... लिखा है उसका सार यह है कि सन्... हिजरी अर्थात् सन् १५५७ ई० में ... वन' अथवा 'भावन' नामी एक ब्रा... देवता दक्षिण से सम्राट् अकबर के... पहुँचे। उन्होंने मुसलमानी धर्म ग्र... किया। बादशाह ने उनका बड़ा आ... सत्कार किया। अथर्ववेद के अनुवा...

*देखो 'मुन्तख़बुत्त तवारीख़' खण्ड... पृष्ठ २१२। रायल एशियाटिक सू... बंगाल कलकत्ता द्वारा प्रकाशित सन् १८६...

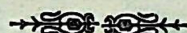
भार उन्हें सौंपा, मुल्ला अब्दुल क़ादिर साहब सहायक बनाये गये। पर उक्त दोनों विद्वानों से काम न हो सका। इनके पश्चात् विद्वद्वर फ़ैज़ी और बाद को हाज़ी इब्राहीम सर हिन्दी साहब को इस महान् कार्य्य के लिये नियुक्त किया गया था।

मौलाना मुहम्मद हुसैन 'आज़ाद' साहब ने न मालूम अपने उर्दू ग्रन्थ 'दरबार अकबरी' में क्योंकर लिख दिया है कि यह (अथर्ववेद के अनुवाद का) कार्य विद्वद्वर फ़ैज़ी तथा हाज़ी जी से भी पूर्ण नहो सका था। क्योंकि मिर्ज़ा अबुल फ़ज़ल साहब के एक लेख* से सिद्ध होता है कि 'अथर्ववेद' का अनुवाद हाज़ी जी द्वारा पूर्ण हो गया था।

उर्दू में 'रियासत शिब्ली' नामक एक ग्रन्थ है। उसमें मौलाना शिब्ली साहब के कुछ लेखों का संग्रह है। उसी में 'तराजिम' नामी लेख के अन्तर्गत आया है कि फ़ारसी अथर्ववेद की एक हस्तलिखित प्रति हमारे (मुहम्मदन) कालिज (वर्तमान मुस्लिम यूनीवर्सिटी) अलीगढ़ के के पुस्तकालय में है। अस्तु मैं सन् १९-१८ ई० में उक्त अमूल्य ग्रन्थ को देखने की लालसा से अलीगढ़ गया पर उक्त पुस्तक का पता न लगा।

इसके पश्चात उर्दू के सुप्रसिद्ध मासिक 'ज़माना' कानपूर अक्तूबर सन् १९२० ई० की एक सूचना से पता लगा कि लखनऊ के एक सज्जन के पास वेदों का फ़ारसी अनुवाद है। निदान उनसे पत्र व्यवहार किया। अन्त में पता लगा कि उनके पास वास्तव में उपनिषदों का फ़ारसी अनुवाद था जिसे उन्होंने किसी अन्य के हाथ बेच दिया।

निदान मैंने भरसक यत्न किया कि अथर्ववेद का फ़ारसी अनुवाद कहीं देखने को मिले कि कैसा है ? पर कहीं न मिला और ऐसा प्रतीत होता है कि उक्त फारसी प्रति कहीं नहीं है। जो कुछ चर्चा है वह ग्रन्थों में ही है।



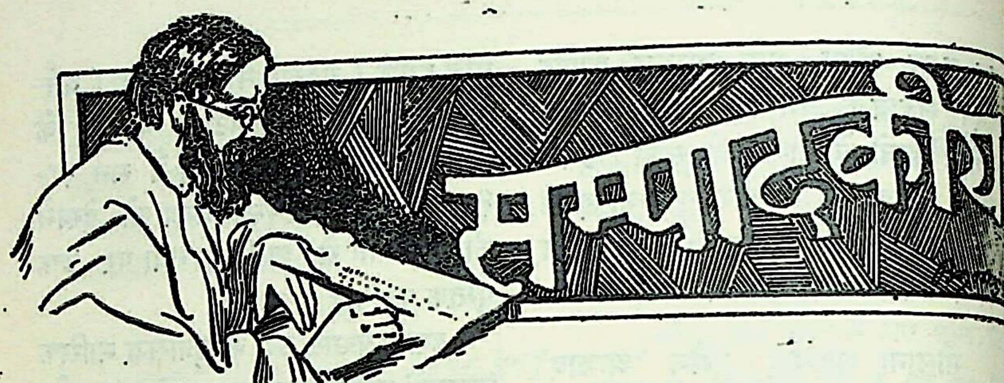
अगले अंक में क्या होगा ?

(१) यूरोपीय वेद भाष्यकार = राज्यरत्न मास्टर आत्माराम बड़ौदा।
(२) बकरीद के दिन ईरान में = प्रो० महेश प्रसाद मौलवी फाज़िल।
(३) संध्योपासना = पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी. ए. एल-एल. टी.।
(४) दार्शनिक उलझनें } सम्पादक
(५) शारदा एक्ट } सम्पादक

इनके अतिरिक्त अनेकों विद्वानों के पाण्डित्यपूर्ण लेख, ललित कवितायें, मनोहर गल्प तथा चित्ताकर्षण टिप्पणियाँ रहेंगी।

---

*देखो मिर्ज़ा जी कृत 'आईन अकबरी' नामी सुप्रसिद्ध मूल फारसी ग्रन्थ। प्रथम खण्ड शीर्षक 'आईन तस्वीर खाना' पृष्ठ ७६। मुन्शी नवल किशोर साहब के यन्त्रालय लखनऊ से प्रकाशित सन् १८९३ ई०।



अपने विषय में



दिक संस्कृति का भारत के उत्थान से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वस्तुतः इस समय भारतवर्ष में जो कुछ इसके प्राचीन गौरव के भग्नाविशेष रह गये हैं उनमें वैदिक धर्म का महान् हाथ था। भारत को भारत बनाया ही वेदों ने और वैदिक आदर्श के त्यागते ही भारत का अधोपतन आरम्भ हो गया। अब फिर भारत कैसे उठ सकता है? इसके लिये भिन्न भिन्न लोग भिन्न भिन्न उपाय निर्धारित करते हैं। बहुत कम ऐसे हैं जिनका ध्यान वेदों की ओर जाता हो। परन्तु वस्तुतः रोग का निदान जाने बिना रोग का निवारण नहीं हो सकता। हमको अपने प्राचीन आदर्श वेदों की ओर मुख फेरना चाहिये। वेदों की शिक्षा के लुप्त होने से ही हमारे देश में आत्मिक तथा सामाजिक दोष आ गये और जब तक वेदों का पुनरुद्धार न होगा हमारे भी पुनरुद्धार की आशा नहीं है। अतः 'वेदोदय' पाठक गण के समक्ष आता है। इस का एक मात्र उद्देश्य 'वेदों' तथा वैदिक शिक्षा को सर्वसाधारण तक पहुँचाना है। हम यत्न करेंगे कि वैदिक वचनों को सरल से सरल रूप में रक्खा जाय।

हम देखते हैं कि अन्य धर्मावलम्बी अपने धर्म ग्रन्थों का बड़ा मान करते हैं। प्रत्येक मुसल्मान कुरान शरीफ़ के वचनों को जानता और उनको उद्धृत कर सकता है। कुरान के हाफ़िज़ भी कुछ कम नहीं हैं। मुसल्मानों का साहित्य चाहे वह फारसी भाषा में हो या अर्बी या उर्दू में उसमें कुरान से उद्धृत अरबी वाक्यों की भरमार मिलती है। ईसाइयों का साहित्य बाइबिल के अवतरणों से परिपूरित है। बाइबिल के मुख्य मुख्य स्थल तो प्रत्येक ईसाई को ही नहीं किन्तु प्रत्येक अंगरेजी भाषा पढ़े हुये विद्वान को कण्ठाग्र रहते हैं। परन्तु क्या वेदों की भी यही अवस्था है? कदापि नहीं। कहा जाता है कि वेद सर्वसाधारण के लिये नहीं हैं। इसी विचार ने सर्वसाधारण को वेदों से दूर फेंक दिया। और सर्वसाधारण के साथ विद्वान पुरुष

भी वेदों की ओर से पहले उदासीन और तत्पश्चात् अनभिज्ञ हो गये। आवश्यकता इस बात की है कि वैदिक वचनों और उनमें ओत प्रोत वैदिक भावों का प्रचार किया जाय। कोई पुरुष इतना उत्कृष्ट नहीं है कि जिसको वैदिक शिक्षा की आवश्यकता न हो। हमको वेदों का इतना प्रचार करना चाहिये कि प्रत्येक स्त्री पुरुष की जिह्वा से वेद के वाक्य सुनाई दे सकें।

इस उद्देश्य की पूर्त्ति करने में 'वेदोदय' पत्रिका का कहां तक हाथ होगा? अभी तो हमने अपना प्रयोजन जनता के समक्ष रक्खा है। इसमें फलीभूत होना आधि-भौतिक विचार से जनता के, आध्यात्मिक विचार से ईश्वर के, और आधि दैविक विचार से विद्वानों के अधीन है। हम पत्रिका को सर्वोत्कृष्ट बनाना चाहते हैं परन्तु इसी के साथ साथ इसको इतना सस्ता रखना चाहते हैं कि साधारण से साधारण पुरुष को भी ख़रीदने में कठि-नाई न पड़े। २) वार्षिक अर्थात् ≡) मासिक इतना अल्प मूल्य है कि हमारे मित्रों ने हमको अभी से भय दिलाया है कि इस मूल्य में पत्रिका देना एक बहुत बड़ी आर्थिक हानि के लिये तैय्यार रहना है, काग़ज़ अच्छा, छपाई उत्तम, विषय उत्कृष्ट और उसपर भी चित्र। इतनी बातों का दो रुपयों में कैसे समावेश हो सकता है? परन्तु हम निराश नहीं हैं। हम मूल्य को इतना बढ़ाकर रखना नहीं चाहते कि साधारण लोग न ले सकें। और पत्रिका के रूप को इतना कम नहीं करना चाहते कि बड़े लोग हाथ में लेने से घृणा करें। यह दोनों बातें कब सम्भव हो सकती हैं? केवल एक प्रकार से अर्थात् प्रत्येक पुरुष और स्त्री जिसके हृदय में वेदों से प्रेम है स्वयं ख़रीदार बने और अपने मित्र और सहेलियों को ख़रीदार बनने के लिये प्रेरणा करें। विद्वानों के तो हम सर्वथा आधीन हैं। जब तक उनकी सहायता न हो यह यज्ञ पूरा नहीं हो सकता। प्रत्येक यज्ञ के लिये होतृवर्ग की आवश्यकता है। जिस यज्ञ को रचने के लिये 'वेदोदय' तैय्यार हुआ है वह एक महान यज्ञ है। जब तक—

समञ्जन्तु विश्वेदेवा

अर्थात् विद्वान् लोग हमारा हाथ न बटावें और इस यज्ञ के शाकल्य को एकत्रित करने में हमारी सहायता न करें उस समय तक हम सफलीभूत हो ही नहीं सकते। हम 'कासएगदाई' (کاسۂ گدائی) अर्थात् भिक्षा का ठीकरा लेकर यथाशक्ति सभी विद्वानों के द्वार को खट खटायेंगे परन्तु यदि ब्रह्मविद्या के दानी स्वयं ही भिक्षा देने की कृपा करें तो हम उनके बड़े आभारी रहेंगे।

अन्त में ईश्वर से तो प्रार्थना करनी ही है। उसी की अपार दया से समस्त मनुष्य वर्ग की उपेक्षा होते हुये भी वेद हम तक पहुंच सके। उसी के अनुग्रह से हमारे हृदय में यह प्रेरणा हुई कि हम 'वेदोदय' में योग दें। ईश्वर करे कि—

तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु।

गुरुकुल रजत जयन्ती

आर्य्य प्रेमियों को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता होगी कि ईस्टर की छुट्टियों में गुरुकुल वृन्दावन मथुरा की रजत जयन्ती

मनाई जायंगी। रजत जयन्ती से तात्पर्य्य यह है कि गुरुकुल को खुले हुये २५ वर्ष समाप्त हो गये हैं।

महर्षि दयानन्द ने हिन्दू जाति का दृष्टिकोण बदला और लोगों से कहा कि प्राचीन वैदिक सभ्यता को पुनः स्थापित करने के लिये यह परम आवश्यक है कि शिक्षा का वर्त्तमान रूप बदला जाय। इस समय देश में पश्चिमी शिक्षा के साथ साथ पश्चिमी सभ्यता आ रही थी और "वैदिक ज्ञान" का सूर्य्य अस्त प्राय हो गया था। उस ज्ञान को पुनर्जीवित करने के लिये तथा वेदों के उद्धार के लिये यह परम आवश्यक था कि एक ऐसी संस्था का निर्माण किया जाय जो एक नवीन प्रणाली से बालकों को शिक्षा दे। इसी प्रणाली का ऋषि दयानन्द ने प्रतिपादन किया और लोगों को गुरुकुल खोलने का आदेश किया।

गुरुकुल पद्धति एक नवीन पद्धति नहीं है और न ऋषि दयानन्द के मस्तिष्क की उपज है। ऋषि दयानन्द ने लोगों के नेत्र खोल दिये कि प्राचीन काल में किस प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। वैदिक काल में एक एक कुल में सहस्रों शिष्य शिक्षा पाते थे और एक अवधि तक जब तक कि वे शिक्षा समाप्त नहीं कर पाते थे, उनको घर जाने की आज्ञा नहीं मिलती थी। वर्त्तमान गुरुकुलों में भी इसी प्रकार की प्रथा है। और इस प्रकार कोमल मस्तिष्क वाले विद्यार्थी हमारे नगरों के दूषित वातावरण से दूर रक्खे जाते हैं। नगरों के जीवन से दूर रहने के कारण उनके आचरण स्वाभाविक तौर पर बड़े उच्च हो जाते हैं। सदाचार के अतिरिक्त इन विद्यालयों में आर्ष ग्रन्थों की शिक्षा दी जाती है जिससे वेदों का प्रचार हो सके।

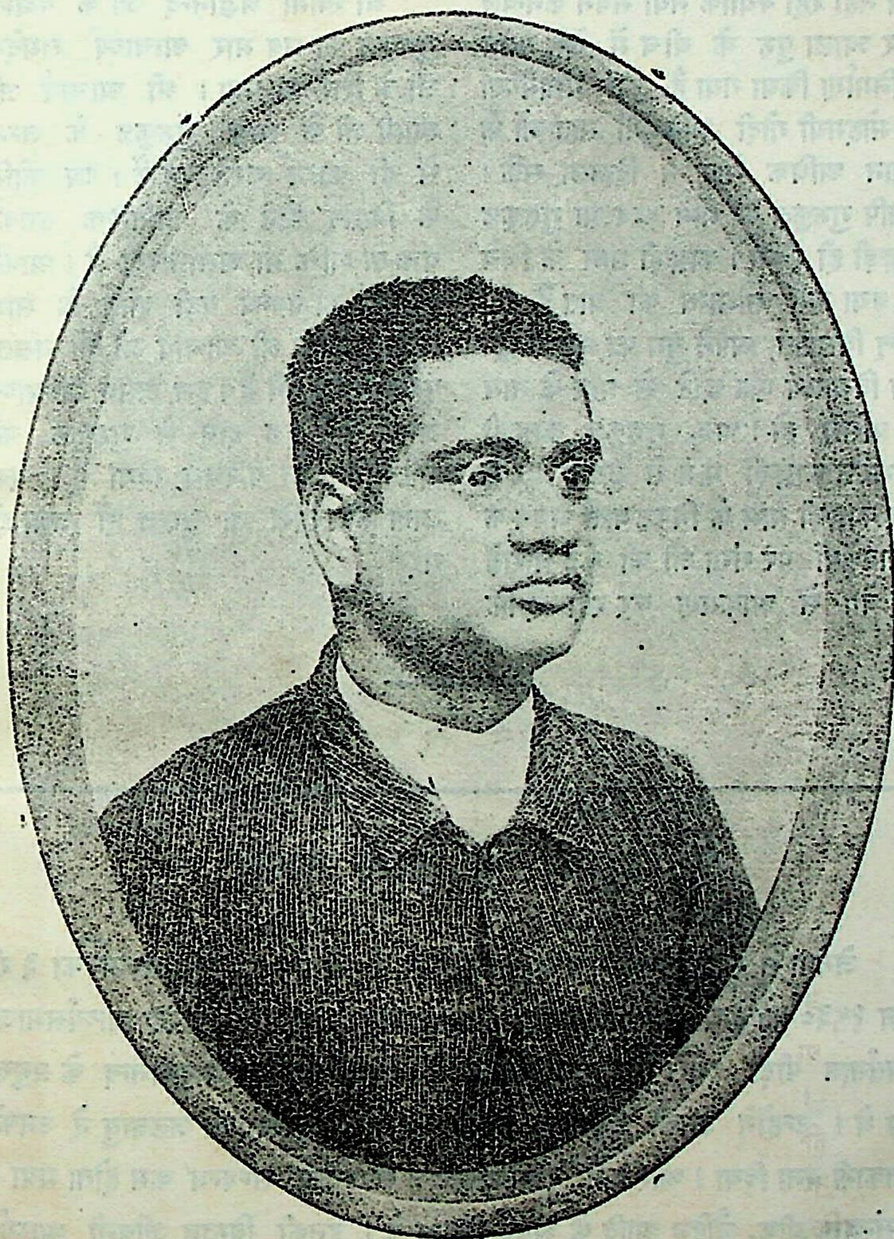
गुरुकुल वृन्दावन भी एक ऐसी ही उच्च संस्थाओं में से है। इसने अपने २५ वर्ष के जीवन में बड़ी उन्नति की है। इस संस्था निर्माण में आरम्भ से अब तक निस्वार्थ आर्य्य प्रेमियों का बड़ा हाथ है। पर सबसे अधिक सेवायें परम पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी की है जिन्होंने अनेकों वर्ष रात दिन अथक परिश्रम करके इस गुरुकुल को एक आदर्श संस्था बना दिया है।

हमारी ईश्वर से पुनीत प्रार्थना है कि यह विद्यालय प्रतिदिन उत्तरोत्तर उन्नति करता रहे। अन्त में हम वैदिक सभ्यता से प्रेम रखने वालों से अनुरोध करते हैं कि वे धन से इस संस्था की सहायता करें।

गुरुकुल कांगड़ी का नया भवन

गुरुकुल कांगड़ी का महोत्सव होली की तातील में बड़े समारोह के साथ मनाया गया। नये भवन का उद्घाटन श्रीयुक्त पं० मदनमोहन मालवीय जी के कर कमलों द्वारा होने वाला था पर किसी कारणवश पं० जी न पधार सके और यह कार्य्य स्वामी सत्यानन्द जी महाराज के हाथ से हुआ। पाठक गण को याद होगा कि पहला भवन जिसको श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के तपोबल तथा परिश्रम ने गंगा के तटपर काङ्गड़ी ग्राम में तैय्यार

किया था १९२४ की गंगा की बाढ़ के समर्पित हो गया। गुरुकुल काङ्गड़ी का नाम भी उसी काङ्गड़ी ग्राम के नाम पर पड़ा था। मिश्री के साथ तिनके भी उसी भाव में बिकते हैं। इसी प्रकार एक अज्ञात, साधारण, छोटा सा नगला



श्री० आचार्य्य रामदेव जी।

'काङ्गड़ी' गुरुकुल काङ्गड़ी के साथ साथ समस्त सभ्य संसार में प्रसिद्ध हो गया।

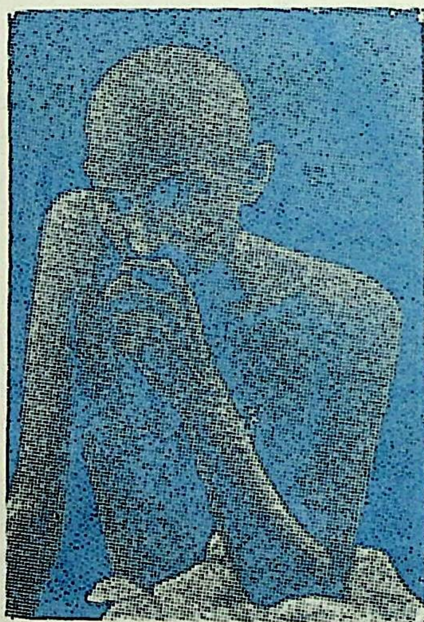
अब यद्यपि काङ्गड़ी ग्राम को गुरुकुल से निकट होंने और असाधारण गुरुकुल यात्रियों के पद-प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त नहीं रहा क्योंकि नया भवन कनखल और ज्वाला पुरु के बीच में ऐसे स्थान में निर्माण किया गया है जहां गंगामैय्या की मोहमयी गोदी कलियुगी माताओं के समान अधिक मोह न दिखला सके। तथापि गुरुकुल का नाम अब भा गुरुकुल काङ्गड़ी ही रहेगा। काङ्गड़ी ग्राम के लिये यह क्या कम सौभाग्य की बात है कि जगत् विख्यात, अपने युग का एक अद्वितीय विद्यालय एक छोटे से ग्राम के नाम से प्रसिद्ध हो। अब, गुरुकुल काङ्गड़ी का भवन काङ्गड़ी ग्राम से इतना दूर है और काङ्गड़ी ग्राम के निकटवर्त्ती भवन के भग्नावशेषों पर गंगा जी की कई धारायें इस वेग से आक्रमण कर रही हैं कि कुछ समय पीछे ग्राम और विद्यालय का सम्बन्ध जानना पुरातत्व वेत्ताओं के ही लिये संभव होगा।

श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के पश्चात् गुरुकुल का सब भार आचार्य्य रामदेव जी के शिर पर पड़ा। श्री आचार्य जी स्वामी जी के साथ गुरुकुल के जन्म से ही कार्य्य करते रहे हैं। उच्च कोटि के विद्वान् होने के अतिरिक्त उनकी वक्तृता शक्ति भी असाधारण है। आपने गुरुकुल का प्रबन्ध बड़ी शान के साथ किया है। हम श्री आचार्य जी को नम्रता पूर्वक बधाई देते हैं। इस उत्सव पर आर्य जनता ने पुष्कल दान से गुरुकुल के सर्व प्रियता का परिचय दिया है। एक लाख की राशि तो तुरन्त ही जमा हो गई।

पं० श्याम जी कृष्ण वर्म्मा

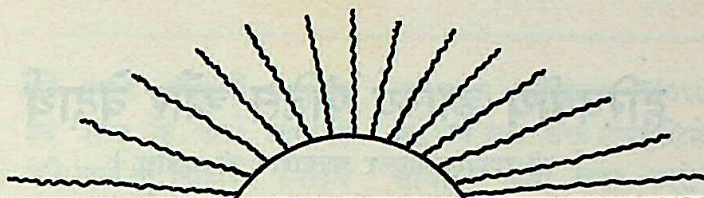
जेनेवा से शोक जनक सूचना मिली है कि पं० श्याम जी कृष्ण वर्म्मा का ३१ अप्रेल १९३० को देहावसान हो गया। क्रान्तकारी हो जाने के कारण आर्य्यसमाज की वर्तमान पीढ़ी इनसे सर्वथा अनभिज्ञ है। परन्तु यह महर्षि दयानन्द के प्रमुख शिष्य थे। उन्होंने उनको इंगलैण्ड भिजवाया था। यूरोप की जलवायु ने उनको क्रान्तकारी बना दिया। और शनैः २ अर्य्यसमाज से उनका सम्बन्ध कम होता गया। यह संस्कृत, ग्रीक, लैटिन आदि के अपूर्व विद्वान् थे। इनकी विस्तृत जीवनी आर्य समाज के निर्माता नामक स्तम्भ में 'वेदोदय' के किसी अगले अङ्क में निकलेगी।

वेदोदय



महात्मा गांधी

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति ।

[अथर्ववेद १३ । ४ । १ । १]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीजें प्रकाशित हो जाती हैं ।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग १ — वैशाख संवत् १९८७ ; दयानन्दाब्द १०५; मई १९३०
आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३० — संख्या २

आकर

एक बार तुम बाहर आकर,
पत्ती के ऊपर लहराकर,
सूँघो सुमनों की चिरसंचित
शान्तमयी वह सुरभि पराग ।

एक बार हँस कर मुसकाकर,
फूलों की पँखुड़ी पर आकर,
मोती से कुछ अश्रु बिन्दु तुम
छितरा कर फिर जाओ भाग ॥

—सत्यप्रकाश

हरिवर्षीय आर्य्य पंडित और वेदार्थ

[श्री राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी, बड़ौदा]



भट्ट मोक्षमूलर (प्रोफेसर मैक्समूलर) के लेखों तथा ग्रन्थों के पाठक जानते हैं कि उक्त प्रसिद्ध हरिवर्षीय आर्य्य पंडित ने वेद और उसके अर्थ सम्बन्धी जो अनेक महत्त्वपूर्ण सेवाएँ की हैं उनको वह भारतीय आर्य्य जो अँगरेजी भाषा के पंडित नहीं, विशेषकर नहीं जानते इसलिये इस संक्षिप्त लेख में हम उनकी कुछ चर्चा करनी उपयोगी समझते हैं।

Physical basis of Religion" (धर्म का—भौतिक आधार) उक्त अँगरेजी उत्तम ग्रन्थ में भट्ट मोक्षमूलरजी ने जो भारी तत्व दर्शाये हैं वह हम नीचे देंगे।

संस्कृत के सब प्राचीन भारती आर्य पंडित, आर्य मुनि तथा भारतीय आर्य ऋषि और इस युग के भारी वेदज्ञ भारतीय योगी ऋषि श्री दयानन्द जी भी वेद के अर्थ विद्या के लेते तथा करते हैं।

आर्य्य समाज के तीसरे उत्तम नियम में श्री महर्षि दयानन्द जी ने वेद को "सत्य विद्या का पुस्तक" लिख कर भारतीय आर्य्य जाति के कानों तक यह तत्व पहुँचा दिया कि वेद विद्या वा सत्य विद्या का दूसरा नाम है। यद्यपि यवन मोलवी जो संस्कृत के स्वयं पंडित नहीं इस बात को ऋषि दयानन्द की खैंच तान लिख रहे हैं पर कोई भी संस्कृत विद्वान् यवन बन्धु भी भारत में कभी इस बात को ऋषि दयानन्द की खैंच तान नहीं मान सकता। अस्तु। हमारे मंदभाग्य से प्रायः वह यवन मौलवी अँगरेजी भाषा के भी विद्वान् नहीं जो शास्त्रार्थ करने में भारतीय आर्य्य पंडितों से रात दिन लगे रहते हैं! यदि वह अँग्रेजी के ही विद्वान् होते तो वह स्वयं मैक्समूलर के उक्त ग्रन्थ को देखकर मान जाते कि उक्त संस्कृत विदेशीय नामी आर्य्य पंडित ने वेद शब्द के अर्थ न केवल विद्या के ही किये हैं यह भी लिखा है कि वेद शब्द संस्कृत जो विद् धातु (मसदर) से बना है उसका ही रूप Greek (यूनानी भाषा) में पाया जाता है और वहां भी उसके अर्थ विद्याके ही हैं। विद्या वा सत्य के प्रेमियों के लिये यह बड़ी भारी बात है।

अतः वेद शब्द के अर्थ विद्या के हैं यह बात सर्व सम्मत है। भारतीय आर्य जनता प्रायः व्यवहार में वेद शब्द के अर्थ विद्या के नहीं लेती यह हमारा मंद भाग्य है। वीस वर्ष शायद हुए तो लाहौर में आर्य्य समाज के एक उत्सव पर पंडित गोवर्धनदासजी नामी नास्तिक ने हमसे भरी सभा में संवाद समय एक प्रश्न किया था कि वेद यदि ईश्वरीय ज्ञान के भंडार थे वा हैं तो क्या कारण है कि इसका प्रचार सिवाय आर्य्य समाज के सभासदों के भूलोक के किसी

में नहीं। मैंने इसके उत्तर में कहा था कि आप वेद शब्द के अर्थ ध्यान में नहीं लाते, यदि लावें तो आपको निश्चय हो जावेगा कि युरोप आदि सब देशों में लाखों स्कूल तथा सैकड़ों कालेज हैं और एशिया में भी बहुत पाठशालाएँ, वेशुमार मकतब तथा अँगरेज़ी सरकार के बहुत से स्कूल कालेज आदि रातदिन खुल रहे तथा बढ़ रहे हैं। जापान और चीन में युरोप समान शिक्षण अनिवार्य है।

अफ़रीका आदि देशों में भी ईसाई प्रचारक बंधु मिशन स्कूल खोल रहे हैं। इसलिये जहाँ भी मानवी बालक किसी प्रकार की बड़ी वा छोटी विद्याशाला में जाता है वहाँ वह निसंदेह विद्या अर्थात् रूपान्तर में ही सीखता हैं। संसार में कई जातियाँ ऐसी हैं जो स्कूलों में नहीं जाती पर वह गुरु परम्परा वा पिता परम्परा वा उपदेश परम्परा वा सत्सङ्ग परम्परा द्वारा श्रोत्री बन कर निस्संदेह विद्वान् बनती हैं। संसार में कोई भी मानवी बालक जो बोली अपने माँ बाप से सीखता है वह विद्या रूपान्तर में वेद ही सीखता है यह बात निर्विवाद सत्य है। अब प्रश्न यह रह गया कि विद्या शब्द का भाव वा लक्षण क्या है? धर्मवीर श्री पंडित लेखराम जी सदैव अपने उत्तम भाषणों में कहते रहे कि

"जहां जहां सायन्स (विज्ञान) का प्रकाश पहुँचेगा वहां वहां वेद का झंडा सब से पहिले लहरायगा।"

आर्य्य मुसाफर मैगज़ीन (उर्दू) जो उनकी यादगार में आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब निकालती रही उसमें प्रथम पृष्ठ पर उनके महावाक्य (Motto) के रूप में कई वर्ष तक उक्त शब्द लिखे जाते रहे। साधारण लोग कहा करते हैं कि आर्य समाजी तर्क से काम बहुत लेते हैं। पञ्जाब केसरी लाला लाजपत राय जी की जो स्वयं रचित जीवन-कथा लाहौर के एक नामी अँगरेज़ी पत्र The People में गत वर्ष छप चुकी है उसमें आर्य्य जग्मान्य श्री लाला जी ने बतलाया है कि श्रीधर्मवीर पं० लेखराम जी का प्रबल पक्ष मौलवियों से शास्त्रार्थ वा संवाद के समय यह रहा करता था कि—

"मज़हब में अक्ल का दख़ल है"

'यही धर्मवीर का विजयशस्त्र था।'

The Conflict between Science & Religion नामी ग्रन्थ के पाठ से हम जान सकते हैं कि युरोप में धर्म अन्ध विश्वास का नाम पहले था और विज्ञान, विद्या वा तर्कयुक्त बातों को वह अपने धर्म के विरुद्ध मानते थे। पौराणिक काल में भारतीय आर्य्य प्रजा थी।

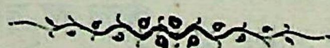
विद्या, विज्ञान वा तर्कयुक्त सिद्धान्तों को छोड़ बैठी थी और उसका भारी प्रभाव आज तक सनातनी आर्य्यों में देखा जा सकता है जो शारदा राज्यधारा के विरुद्ध सभाएँ करा करते और बाल-विवाह चाहते हैं।

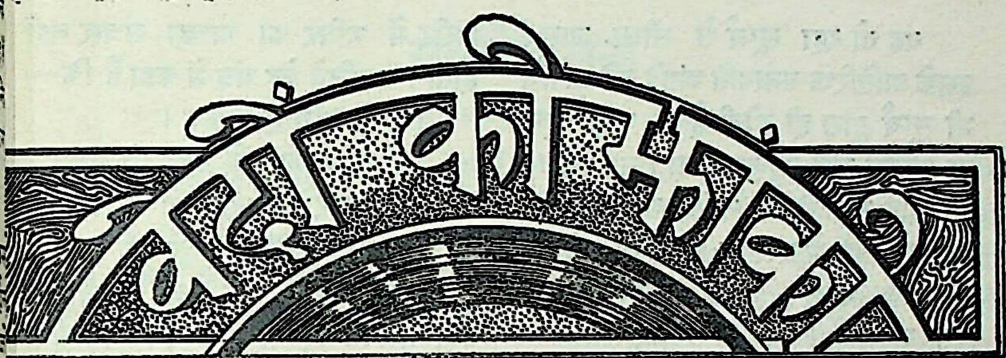
आर्य्य समाज में सबसे अधिक कौन भारतीय आर्य्य शामिल हुए वा हो रहे हैं। केवल वह जो अँगरेज़ी स्कूलों वा कालेजों में पढ़ चुके वा तर्कशील वा विद्वान् थे। विद्या, विज्ञान और तर्कयुक्त बातें एक ही तत्व को दर्शाती हैं।

विद्या का लक्षण संस्कृत के पंडित तथा ऋषि दयानन्द जो करते हैं उसमें किसी का भी मतभेद नहीं। यथार्थ ज्ञान का नाम विद्या है। "जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा जानना" यह विद्या का लक्षण ऋषि दयानन्द करते हैं। इसको सब भारी विद्वान् मानते हैं। ईश्वर ने सृष्टि रची और ईश्वर ने ही मानव जाति के सब मनुष्यों को बुद्धि तथा ज्ञान इन्द्रियाँ दी हैं। जो जन पूर्वकाल में मेधावी (Original minded) थे, वर्तमानकाल में हैं और भावी काल में होंगे। वही Discoveror & Inventors पूर्वकाल में थे, अब हैं और भावीकाल में होते रहेंगे। Rig Vedic Culture नामी ग्रन्थ के बंगाली कर्ता ने इस भारी उत्तम तत्व को साफ तौर पर खोलकर दिखाया है। वह वेदों के ऋषियों को "Discoverors & Inventors" का ठीक नाम देता है जो कि सत्य है। ऋग्वेद मं० १ सू० १० मं० २ में इसी भारी उत्तम उन्नति प्रद तत्व को इस उत्तमता से दर्शाया गया है कि उसकी जितनी स्तुति करें थोड़ी है। ऋषि दयानन्द जी का आर्य्य वा तर्क युक्त उत्तम भाष्य भी यही तत्व दर्शा रहा है। स्वयं वेद के ही शब्द 'पूर्व' और 'नूतन' पहिले युग के और नवीन युग में होने वाले दो प्रकार के ऋषियों का वर्णन कर रहे हैं। इसलिये जहाँ जहाँ स्कूल कालेज विज्ञान वा विद्या को भूलोक में सिखा रहे हैं वहाँ वहाँ उनकी प्रयोग शालाएं पंडित मुनि और ऋषि इन शब्दों को भी सार्थक कर रहे हैं।

भूलोक के उत्तम कालिज वा उत्तम स्कूल सृष्टि के पदार्थों के जो गुण बता कर रहे हैं अथवा मानव उन्नति के नियम अनुभव से जनाते हैं वह सब विद्या मूलक होने से वेद मूलक ही हैं केवल नाम का भेद है।

निरुक्त में एक संस्कृत वाक्य है जिसके दो प्रकार के अर्थ हो सकते हैं एक वह जो अनेक यूरोप के मांसाहारी विद्वान् वा स्वदेशीय उनके भक्त किया करते हैं कि—"मांस की निरुक्ति यह है जिसमें मन लगे" पर सब निर्पक्ष विद्वान् सृष्टि के दर्शन करनेवाले कह रहे हैं कि मांस मनुष्य का स्वाभाविक आहार ही नहीं है इसलिये कभी कोई Society यूरोप में शृंगार रूप में मांस हड्डियाँ बूचड़खाने से मँगवा कर गुलदस्तों की जगह उपयोग में नहीं लाती। कारण कि मांस में मन नहीं रह जाती। इस लिये निरुक्त वचन के वही अर्थ जो मानवी स्वभाव अनुकूल हैं सत्य माने जावेंगे अर्थात् मांस वह है जिसमें मन न लगे। (क्रमशः)





[२]

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।
हृद्रोगं मम सूर्य्य हरिमाणं च नाशय ॥

[ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५० मं ११]

अर्थ—(मित्रमह) हे बड़े मित्र अर्थात् संसार का कल्याण करने वाले (सूर्य) सूर्य, (अद्य) आज (उद्यन्) निकलते हुये, (उत्तरां) ऊपर के (दिवं) आकाश में (आरोहन्) चढ़ते हुये, (मम) मेरे (हृद् रोगं) हृदय के रोग को (च) और (हरिमाणं) पीलेपन को (नाशय) नाश कीजिये ।

इस मंत्र में भौतिक सूर्य्य के गुण वर्णन किये गये हैं। सूर्य्य को 'मित्र मह' अर्थात् अत्यन्त कल्याणकारी बताया गया है। संसार में कौन सी वस्तु कल्याणकारी है और कौन सी दुखदायक ? जो वस्तु या जो मनुष्य हमारे जीवन के बढ़ाने में साधक हो वही मित्र और जो मृत्यु का साधक और जीवन का बाधक है वही शत्रु। यह संसार है ही इसलिये कि हमारी जीवन यात्रा में सहायता मिले। संसार की समस्त प्रगतियाँ तथा संस्थायें हमको दीर्घजीवी बनाने के लिये हैं। मनुष्य के सब उद्योग इसीलिये होते हैं कि हमारे जीवन की वृद्धि हो। जिस प्रथा, अथवा वस्तु से जीवन में बाधा पड़ती है उसी के निवारण की चिन्ता होने लगती हैं। यों तो संसार की समस्त वस्तुयें हमारे लाभ के लिये हैं तथापि सूर्य्य को मित्रमह कहने का तात्पर्य्य यह है कि सूर्य्य से हमको सबसे अधिक लाभ होता है। यह लाभ दो प्रकार का है एक तो सीधा सूर्य्य से और दूसरा अन्य वस्तुओं के द्वारा। सूर्य्य सृष्टि भर का केन्द्र है। इसी से प्रकाश और गर्मी मिलती है। जीवन गर्मी है। मौत ठंडक है। गर्मी निकलते ही मनुष्य मर जाता है। इसलिये यह ठीक ही है कि गर्मी के पुञ्ज अर्थात् सूर्य्य को 'मित्र मह' कहा जाय। प्रकाश भी हमको सूर्य्य से ही मिलता है। प्रकाश हमारे लिये उतना ही आवश्यक है जितनी गर्मी। यदि प्रकाश न हो और गर्मी हो तो हमारा जीवन चल नहीं सकता।

यह तो रहा सूर्य्य से सीधा लाभ। इसके अतिरिक्त वनस्पति आदि की उत्पत्ति भी सूर्य्य द्वारा ही होती है। जहाँ सूर्य्य का प्रकाश नहीं पहुँचता वहां हमारे भोजन की कोई सामग्री उग नहीं सकती। इसी बात को दृष्टि में रखकर सूर्य्य को संस्कृत में सविता अर्थात् उत्पन्न करने वाला या पिता कहते हैं।

सूर्य्य में एक गुण और है जिसकी ओर वेद के इस मंत्र में संकेत हैं वह है हमारे जीवन के शत्रुओं को नाश करने का। जो जीव जन्तु या कृमि हमारे स्वास्थ्य को हानिकर हैं वह सब के सब सूर्य्य के प्रकाश में नष्ट हो जाते हैं। उनकी वृद्धि ही अँधेरे में होती है। इन्हीं कृमियों के कारण मनुष्य को हृदय के भयानक रोग लग जाते हैं। जो स्त्री पुरुष अन्धेरे में काम किया करते हैं उनके मुँह पीले और शरीर निर्बल हो जाते हैं। उनके हृदय बड़े निर्बल हो जाते हैं और उनके शरीर में रुधिर का अच्छा संचार न होता। इसलिये वेद मंत्र में कहा है कि

(१) हे सूर्य्य तू निकल।

(२) तू आकाश में ऊपर को चढ़

(३) हमारे हृदय-रोग का नाश कर

(४) हमारा पीलापन दूर कर।

इससे स्पष्ट है कि हमारे हृदय तथा पीलेपन का सूर्य्य के निकलने बढ़ने से कुछ सम्बन्ध है। जिन पुरुषों हृदय की बीमारी है उनको अवश्य खुले स्थान में रहना चाहिये जहाँ सूर्य प्रकाश पुष्कल मात्रा में पहुँच सकता घर का कोई कोना ऐसा न हो कि सूर्य्य का प्रकाश न जा सके। कि एक समय तो ऐसा अवश्य हो कि की प्रचण्ड किरणें घर को प्रकाशित अभितप्त करदें। हमको सूर्य्य के प्र में काम करना चाहिये। ऐसा कर शरीर का पीलापन दूर होगा और ह अच्छा होगा।

अस्माकमस्तु केवलः

(ऋग्वेद १।७।१०)

हे प्रभो! हम केवल आपके ही आश्रय रहें अन्य किसी के नहीं।

सन्ध्योपासना

[श्री पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए० एल० टी०]

'यस्तन्न वेद स किमृचा करिष्यति'

वेद कहता है कि जो उस ब्रह्म को नहीं जानता उसको ऋग्वेदादि के पढ़ने से क्या लाभ ? इससे स्पष्ट है कि वेद पाठ का लाभ, परमात्मा को जानना, उसकी सर्व व्यापकता उसकी सर्व शक्तिमत्ता तथा उसकी सर्वज्ञता पर विश्वास करना है। ऐसा करने से पाप की निवृत्ति तथा पुण्य की वृद्धि होगी। विश्वास हमारे चित्त में श्रद्धा उत्पन्न कर देगा। श्रद्धा हमको उसके निकटत्व के अनुभव करने के लिये उत्सुक करेगी। इसलिये श्रद्धा की ही आवश्यकता है। प्रातः सायं तथा प्रतिक्षण हममें श्रद्धा बढ़े।

'श्रद्धां प्रातर्हवामहे'

ऋग्वेद मं० १।सू० १५१।

जब तक हमारे चित्त में किसी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न नहीं हुई है तब तक हम उसके पास रहना नहीं चाहते, और एक समय ऐसा आ जाता है कि उसके निकट होते हुये भी हम अपने आपको उससे कोसों दूर पाते हैं। ठीक यही दशा हमारी आजकल परमात्मा के प्रति हो रही है। वह परमात्मा 'ओतः प्रोतः विभुः प्रजासु' यजु० अ० ३२। प्रत्येक कण २ में रम रहा है और हमारे अति निकट है फिर भी हम समझते हैं कि वह हमसे दूर है। इसका क्या कारण है ?

वेद कहता है 'तद्दूरे तद्वन्तिके' यजु० अ० ४०। कि वह परमात्मा दूर है उनसे जो उसकी उपासना नहीं करते, और निकट है उनके, जिन्होंने अपने आपको उसकी उपासना का अभ्यासी बना लिया है। जब हम इस पर विचार करते हैं तो प्रतीत होता है कि हमारे चित्तों में श्रद्धा का अभाव है। यदि हममें उसके प्रति श्रद्धा होती तो प्रतिदिन हमारे हृदयों में उसके सम्मिलन की उत्कंठा होती। हम संसार के कामों में इतने रत रहते है कि हमको कभी भी अवसर नहीं मिलता यही कारण है कि ऋषि मुनियों ने योगादि क्रियाओं पर इतना बल दिया है। उसी के जानने के लिये हम वेदादि शास्त्रों को मनन करते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि न्यून से न्यून कुछ समय प्रातः तथा सायं अन्य सांसारिक बखेड़ों से अलग होकर सन्ध्योपासना करें।

पर यदि हममें श्रद्धा नहीं है तो हमको कभी समय नहीं मिलेगा। प्रश्न उठता है कि क्या श्रद्धा स्वयं जाग्रत होती है ? नहीं। विश्वास के लिये आवश्यक है कि हम सन्ध्योपासना के महत्व को समझें। क्योंकि जब तक हमारे हृदय पटल पर उसकी सार्थकता अंकित न होगी तब तक हमारे मनमें सन्ध्योपासना के प्रति श्रद्धा का भाव कभी भी उत्पन्न नहीं होगा। जितना ही हम विचार करेंगे उतना ही हम महत्व समझेंगे। दूसरा हमारे लिये नहीं विचार सकता। जब स्वयं हम अपने लिये विचारेंगे तभी हमको लाभ होगा। और लाभ की मात्रा भी हमारे विचार

की मात्रा के अनुकूल ही होगी। यह हम जानते हैं कि मेरा खाया हुआ भोजन मेरे शरीर तथा मस्तिष्क की ही वृद्धि करेगा अन्य के शरीर को नहीं फिर भी हम धार्मिक कृत्य तथा ब्रह्म की प्राप्ति के विषय में इस अनुभव को भूल जाते हैं। हम समझते हैं कि यदि अपने अतिरिक्त किसी और पंडित आदि को नियुक्त करलें तो उसका जाप या सन्ध्योपासना हमको फल देगी। यही कारण है कि पौराणिकों में तो बहुत से धनी एतदर्थ अनेक पुरोहितादि को नियुक्त कर ही लेते हैं।

इस सब का कारण मेरी समझ में सन्ध्योपासना न करना ही है।

आसन

संध्या में सबसे पहले आसन का प्रश्न है अर्थात् संध्या करते समय किस प्रकार बैठा जाय।

किसी विशेष उपयुक्त आसन का अभ्यास भी हमारे चित्त को एकाग्र करने में सहायक होता है। ड्रिल करते समय यदि हम ढीले ढाले खड़े हुये हैं तो शरीर में चुस्ती नहीं आवेगी। काम बिगड़ जायना। कक्षा में यदि विद्यार्थिगण भद्दे तौर से बैठे हुवे है तो उनकी कार्य शक्ति कम जाग्रत होती है। बहुधा आवश्यक होता है कि आलस्य दूर करने के लिये उनको ठीक बिठाया जाय। इसलिये सन्ध्योपासना के बिये भी किसी भी एक उचित आसन का अभ्यास आवश्यक है। हमको चाहिये कि हम नि उसी प्रकार बैठें। आसनों का अभ्यास बड़ी अवस्था में कठिनता से होता है। इसके लिये बचपन से ही अभ्यास कर चाहिये।

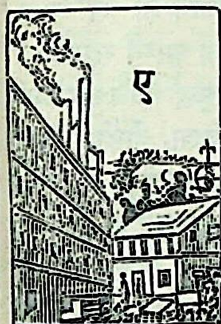
प्राणायाम

सन्ध्योपासना के आरम्भ में प्राण याम की क्या आवश्यकता है? कोई हम कार्य करें उसके लिये कुछ न कु तैय्यारी की आवश्यकता होती है इ प्रकार जब कि हम अपने आपको प मात्मा के चिन्तब की ओर लगाने के संसार के कार्य्यों से अपने चित्त पृथक् करना चाहते हैं तो यदि हम समय प्राणायाम का अवलम्बन करें हमारा चित्त सहज ही में उस कार्य लिये तय्यार हो जाता है। मेरी समझ तो जिस प्रकार घंटे की ध्वनि हमारे का में पड़ते ही हमको अमुक विषय के प पाठन की ओर बाध्य करती है अथ अमुक काम की ओर लगाती है प्रकार प्राणायाम भी हमारे चित्त बाध्य करता है कि हम परमात्मा चिन्तन के लिये सन्नद्ध हो जायें। हम श्वास प्रश्वास की गति को रोक मन को वश में करते हैं वहाँ साथ साथ 'ओम्' का जाप उस वशीभूत को, परमात्मा की ओर जाने में आत्मा सहायक बनाता है।

(क्रमशः)

ठाकुर जी

[श्रीयुत हरिवंशराय जी प्रयाग]



एक छोटा सा घर था। उसमें एक छोटा सा परिवार रहा करता था। कुल जमा तीन आदमी थे। एक बुढ़िया अपने बेटे, बहू के साथ रहती। यह एक हिन्दू परिवार था। इस घर में एक अनुपम शान्ति निवास करती थी। इसका कारण कदाचित् घर वालों का नियमित कार्य-क्रम था।

बुढ़िया रोज़ चार बजे सबेरे उठती। नित्य कर्म्म से निवृत्त होकर लोटा, धोती, और डोलची लेकर नहाने चली जाती। घर से गंगा जी कोई तीन, चार मील की दूरी पर थीं। जब बुढ़िया जाने लगती, बहू को जगा देती। बहू उठती। चक्की चलाती, घर बुहारती. और फिर स्नान इत्यादि करके भोजन बनाने का सामान करने लगती। राजकुमार—यह बुढ़िया के बेटे का नाम था—ज़रा देर से उठता और नित्य कर्म्म करके कुछ धार्म्मिक पुस्तकें देखता। उसे धर्म्म सम्बन्धी पुस्तकों से बड़ा प्रेम था। क़रीब साढ़े सात बजे भोजन करता और दफ्तर चला जाता। कभी राजकुमार के दफ्तर जाने के कुछ पहले, और कभी जाने के कुछ ही देर बाद बुढ़िया आ जाती। आकर ठाकुर जी को जगाती, उन्हें नहलाती, भोग लगाती, अग्यारी करती और माला जपती। इस सब काम में उसे ११-१२ बज जाते। बहू सास की बड़ी भक्त थी। बहू पति को खिला कर रसोई से निकल आती और पूजा के पास हाथ जोड़ कर बैठी रहती। जब सारी पूजा कर लेती तब उन्हें भोजन कराकर पीछे आप करती। गंगा जी बड़ी दूर थी। बुढ़िया थक जाती। खाना खाने के बाद वह लेट जाती, और बहू बैठ कर पांव दबाने लगती। शाम को उठकर बुढ़िया एक पास के मन्दिर में चली जाती और बहू खाना बनाने में लग जाती। शाम होते २ राजकुमार भी आ जाता। राजकुमार भोजन करके कहीं घूमने चल देता। मन्दिर से लौटकर जब बुढ़िया आती तब सास पतोहू बैठकर भोजन करतीं। राजकुमार के लौटने के पहले तक वे लोग भजन गातीं, कथा वार्ता करतीं। फिर सब सोतीं।

प्रायः उनके सभी दिन इस प्रकार बीतते थे। न कभी हँसी होती, न कभी रोना होता। न लड़ाई होती न बखेड़ा होता। पर कुछ दिनों बाद एक ऐसी बात हुई जिसने इस घर का वातावरण ही बदल दिया।

× × ×

राजकुमार के मित्रों में एक महाशय राजकृष्ण थे। इनसे दफ्तर के ज़रिये जान

पहचान हुई थी। महाशय राजकृष्ण आर्य्य समाजी थे। और इन्हें दिन रात आर्य्य समाज के प्रचार की फ़िक्र रहती थी। अपने नये मित्रों को इनका पहला उपहार 'सत्यार्थ प्रकाश' का हुआ करता था। यह पुस्तक इन्होंने राजकुमार को भी दी। राजकुमार तो सनातनी था। उसे यह पुस्तक लेने में कुछ झिझक मालूम हुई, पर मित्र की दी हुई वस्तु को लौटायें कैसे, यह सोचकर ले लिया। अपने मन को इस प्रकार समझा लिया किसी बात को जानने में क्या हर्ज है, सुने सब की, करे अपने मनकी।

राजकृष्ण किताब देकर ही चुप न बैठे रहे। जब कभी मौक़ा पाते राजकुमार से पूछते, क्यों भाई कितना पढ़ा? मानते हो न स्वामी जी की बातें? कोई बात अगर तुम मानने को तैय्यार न हो, तो हम तुमसे बहस कर सकते हैं, तुम्हारी सब शंकायें मैं समाधान कर सकता हूँ। राजकुमार के लिये कोई बचाव न था। राजकृष्ण की दलीलों के सामने हक्का बक्का हो जाते।

थोड़े दिन और बीते। अभी वे पूरे आर्य्य समाजी तो नहीं बने थे कि समाज के साप्ताहिक अधिवेशनों में जाते और उसके कामों में चंदा देते और हाथ बटाते। पर वह दिन अब दूर नहीं था। स्वामी दयानन्द का जादू उन पर चल चुका था। अब तो जिस किसी से वे मिलते उससे 'नमस्ते' ही करते। लोग फ़ौरन पूछते, 'क्यों जी! आर्य्य समाजी हो गये क्या?' बस, इसी पर बहस छिड़ जाती और राजकुमार मूर्तिपूजा से लेकर मृतक श्राद्ध तक सब बातों पर व्याख्यान दे जाते।

राजकुमार को अपनी माँ ही से समाजी होने की अनुमति लेनी थी। दिन राजकुमार ने अपनी माँ से 'अम्मा अब तो मैं होऊँगा आर्य्य समा माँ ने कुछ क्रोध और कुछ अधिकार दृष्टि से राजकुमार को देखा, बोली, कहते हो!—आर्य्य समाजी? ये क्या सूझा? तुम्हारे खान्दान में भी हुआ है कि तुम्हीं चले होने। समाजी!—आर्य्य समाजी तो जात का जूठा खाते हैं, और अब हूं कि मुसलमान ईसाई का भी जूठा हैं।—आर्य्य समाजी नहीं तो सब राजकुमार ने हँस दिया।

राजकुमार अपनी माँ का अदब था। या यह कहने में अत्युक्ति न कि वह उन्हें डरता था। माँ जितना पिलाती उतना ही पीता। माँ की का जवाब उसने कभी न दिया उसके जीवन में यह पहली बात हु उसने माता के क्रोध पर हंस दिया। हँसी में माता की बातों के प्रति अव भरी थी। राजकुमार का परिवार एक सरोवर था। उसकी इस हंसी ने बीच में एक पत्थर फेंक दिया। उठने लगीं।

× × ×

सभी नये विचारों को स्थान पा लिये युद्ध करना पड़ता है। यही राजकुमार के घर छिड़ गया। रोज

रोज़ विवाद होने लगे। आख़ीर में एक दिन माता को कहना पड़ा, 'जाओ—जो जी में आये करो—जब नहीं मानते किसी की बात तो करो, भैय्या, करो, जो जी चाहे।' राज़ी कहिये या नाराजी कहिये किसी तरह माँ की आज्ञा मिल गई। उसने आर्य्य समाज के फ़ार्म पर दस्तख़त कर दिया।

जब कोई मनुष्य नये धर्म्म में प्रविष्ट होता है तो उसकी यह इच्छा होती है कि वह औरों को भी उसका अनुयायी बनावे। राजकुमार की भी यह इच्छा हुई। उसने चाहा कि मैं अपने सब परिवार को आर्य्य समाजी बना दूं। उसका पहला धावा स्त्री पर हुआ। स्त्री पढ़ी लिखी न थी। राजकुमार का समझाना बुझाना उसकी समझ में न आया। पर पति के प्रति आदर दिखाने के भाव से उसने कुछ कुछ उनके मन के अनुसार करना आरम्भ किया। पति के सामने तो न तुलसी को जल चढ़ाती और न ठाकुर जी को सिजदा पड़ती पर जब पतिदेव न रहते तब सब कुछ करती। सास के सामने सास का ऐसा करती, और पति के सामने पति का ऐसा। राजकुमार माँ को भी आर्य्य समाजी बनाना चाहता था। पर वह कभी राजकुमार को पास ही न फ़टकने देती, वह उससे धर्म्म के विषय पर बात ही न करती। पर राजकुमार माता को सदा छेड़ा करता। जिस दिन राजकुमार को दफ्तर से छुट्टी रहती उस दिन तो बुढ़िया का पूजा करना मुश्किल हो जाता। जहाँ बुढ़िया ठाकुर जी लेकर बैठती, राजकुमार भी आ बैठता, और तरह तरह के टेढ़े मेढ़े सवाल पूछने लगता। कहता, 'अम्मा, ये तुम्हारे ठाकुर जी बड़े सोअक्कड़ हैं। सब तो यह कहते हैं कि सवेरे उठना सबसे अच्छा है, पर आप दस बजे उठते हैं, और सो भी कब? जब कान के ऊपर घड़ियाल घहराती है तब। कहीं इन्हें कोई जगावे न तो हमेशा सोये ही रहें। और फिर जहाँ खाना पीना मिला, फिर लगे सोने। ये तुम्हारे ठाकुर जी हैं कि मेघनाद के नगड़दादा?' बुढ़िया कहती 'हैं जो हैं मेरे ठाकुर जी, तुझे क्या करना—जा दूर हो यहाँ से'। बुढ़िया ये बातें क्रोध से न कहती। वह राजकुमार की बातों को केवल हँसी समझती। पर कभी कभी राजकुमार की शैतानी हद से ज्यादा बढ़ जाती। तब तो बुढ़िया आग बबूला हो जाती।

एक दिन ऐसा हुआ कि बुढ़िया पूजा पाठ कर चुकने पर आँख मूँद कर माला जपने लगी। राजकुमार चुपके चुपके आया और धीरे से ठाकुर जी को उठाकर छप्पर पर रख दिया। जब बुढ़िया की आँख खुली तो देखा, ठाकुर जी नदारद। समझ गई—होगी रजुआ की करतूत। राजकुमार बाहर आ बैठा था। बुढ़िया चिल्लाई 'क्यों रे, मेरे ठाकुर को क्या किया, बोल'। राजकुमार हँसी रोकता हुआ अन्दर आया और आश्चर्य्य करते हुआ बोला, 'क्या हुआ?'

'हुआ क्या तेरा कपार! कहां ले गया ठाकुर जी को?'

'ठाकुर जी को? मैं? क्या यहाँ नहीं हैं? कहीं अन्तर्ध्यान न हो गये हों?'

'बोल जल्दी नहीं इसी चौकी पर मूड़ पटक दूंगी।'

'कहीं मूस तो नहीं उठा ले गये तुम्हारे ठाकुर को।'

बुढ़िया की आंखें पल भर में घर भर में दौड़ गईं। छपरैल पर ठाकुर जी को पड़े देखा। लाखों की सम्पति मिल गई। 'बेईमान ने यहां लाके रख दिया मेरे ठाकुर को—इतना घाम—जलते में रख दिया मेरे ठाकुर को—जा तेरे हाथ कट के गिर पड़ें' इत्यादि कहती हुई बुढ़िया खटिया घसीट लाई। उस पर मचिया रक्खी-जल्दी से ठाकुर जी को उठा लिया-फिर से स्नान कराया और बड़ी देर तक एक भीगे वस्त्र से पंखा करती रही। राजकुमार हंस रहा था। जब मां का क्रोध शान्त हुआ, वह उसके पास आया बोला, 'तुम्हीं बताओ ऐसे ठाकुर को पूजने से क्या फायदा जिनमें इतनी भी ताक़त नहीं कि अपने से उठ बैठ सकें। तुम्हें पूजना चाहिये ईश्वर को जो सर्व-शक्तिमान् है। स्वामी दयानन्द कहते हैं कि जो मूर्ति पूजता है वह अनेकों जन्म तक नर्क में रहता है।' बुढ़िया क्रोध से बोली 'भाड़ में जांय तुम्हारे ईश्वर और चूल्हे में जांय तुम्हारे दयानन्द, मैं तो जीते जी अपने ठाकुर जी को न छोडूँगी।'

रामनवमी का दिन था। बुढ़िया आज के दिन ठाकुर जी का जन्म करती थी। बुढ़िया आज तीन ही बजे सबेरे उठकर नहाने चली गई और जल्दी लौटकर पूजा का सामान करने लगी। प्रसाद बनाया, पञ्चामृत बनाया, फल काटकर रक्खे। राजकुमार को मालूम था कि आज क्या होगा। फिर भी माता को खिझाने के लिये पूछने लगा, 'आज क्या है भाई बड़ा सामान है?'

बुढ़िया बोली 'जानते नहीं, आज राम नवमी है—आज ठाकुर जी का जन्म करूंगी—देख रजुआ, आज कोई शरारत न करना, तुझे ढेर सा प्रसाद दूंगी।'

'तो अम्मा तुम्हारे ठाकुर जी मरेंगे कब?'

'की न शुरू तूने बदमाशी।'

'बदमाशी क्या की? यह तो कुदरत का क़ायदा है कि जिन चीज़ों का जन्म होता है उनकी मृत्यु भी होती है। जब ठाकुर का जन्म होता है तो ठाकुर की मौत भी होगी।'

'देखो बेटा, देवी देवता से हंसी अच्छी नहीं होती।'

राजकुमार ने आज कोई शरारत न की। पर तीन चार दिन बाद उन्होंने एक दिन ठाकुर जी को उठा लिया और जाकर गंगा जी में फेंक दिया। राजकुमार जिस बात को सोचा करता था वही कर बैठा। बाद को उसे अपने काम का अनौचित्य प्रतीत हुआ। पर ठाकुर जी गंगा जी की तह में पहुंच चुके थे। जिस बात को केवल मज़ाक में किया था उसकी गम्भीरता सोचने लगा। अपने मनको इस प्रकार समझा लिया 'यदि मां ठाकुर पूजने पर अनुरोध करेगी तो दूसरे ठाकुर जी ला दूंगा—उनसे बड़े ठाकुर जी ले दूंगा—और क्या होगा?' मां के गंगा नहाने जाने

बाद वह अपने एक मित्र की साइकिल लेकर ठाकुर जी को गंगा जी में फेंकने गया था। उसने ठाकुर जी को एक ऐसे घाट पर फेंका था जहां उसकी मां कभी कभी नहाने जाती थी। जल्दी घर आकर उसने खाना खाया। दफ़्तर जाने की तैयारी में ही था कि बुढ़िया नहाकर आ गई। बड़ी विधि से हाथ पांव धोकर उसने घंटा घड़ियाल बजाया, प्रार्थना की, और ठाकुर जी का पट खोला, पर ठाकुर जी तो वहां थे ही नहीं। बुढ़िया चिल्ला पड़ी।

'क्यों रे आज तूने फिर ठाकुर को हटाया।'

'अम्मा' आज तुम्हारे ठाकुर जी मर गये।'

'मुझसे हंसी न कर—कहां ले गया मेरे ठाकुर को।'

'जहां लोग मरने के बाद जाते हैं—और कहां ?'

'क्या गंगा जी में डाल आया।'

राजकुमार हँसा। बुढ़िया की आंखों में आंसू भरे थे। क्रोध के मारे चेहरा लाल पड़ गया था। बोली—

'और फेंका कहां तूने ? राम घाट तो तू गया नहीं।'

बुढ़िया के इस प्रश्न में तनिक भी आवेश न था। मनुष्य थोड़े क्रोध में बलबलाने लगता है पर जब क्रोध बहुत अधिक हो जाता है तब वह चुप हो जाता है। उसकी सारी शक्ति क्रोध के बोझ से दब जाती है। यही दशा बुढ़िया की थी।

राजकुमार बोला 'खैर' 'फेंका तो मैंने है हनुमान घाट, लेकिन अब तुम पता लगाने न चलना। मिलें विलेंगे नहीं। नाराज़ न होओ बहुत करोगी तो ठाकुर जी ही लोगी कि किसी की जान लोगी।

राजकुमार को दफ़्तर की देरी होती थी। झट घर से निकला और चल दिया। बुढ़िया कुछ देर चुप चाप बैठी रही। फिर उठकर घर से निकलने को हुई कि वहू ने पूछा, 'कहां जाती हो अम्मा ?' बुढ़िया वहू की बात अनसुनी करके सड़क पर आई। वहू दरवाज़े तक दौड़ी पर बुढ़िया दूर निकल गई थी। परदा नशीन वहू क्या अधिक करती ?

गर्मी के दिन-दोपहर का वक्त-जलती हुई ज़मीन और गर्म्म गर्द से भरी हवा। एक बुढ़िया नंगे पैर—चार पांच मील चल कर थकी हुई—बिना दाना—बिना पानी—एक सड़क पर हौले हौले चली जा रही है। कभी चलने लगती है और कभी दौड़ने लगती है। उसकी चादर कहां गिर पड़ी, उसे पता नहीं। चलती ही जाती है। रज्जुआ की मां है।

बुढ़िया हनुमान घाट पर पहुंच गई। पुजारी पंडे सभी चले गये। एक मल्लाह का लड़का अपनी नाव का पानी निकाल रहा था। बुढ़िया ने पूछा 'तूने मेरे लड़के को सबेरे गंगा जी में कोई चीज़ फेंकते देखा था ?

लड़का बोला, 'क्या ? लड़का ? कैसी चीज़ ?'

'मेरे ठाकुर जी को मेरे लड़के ने गंगा जी में फेंक दिया है। तुम लोग तो गंगा जी में से पाई, पैसे ढूंढ लाते हो, मेरे ठाकुर जी को ढूंढ दो जो मांगोगे सो दूंगी।'

'एक रुपया लूंगा-लाओ। पहले दे दो तो ढूंढूं। ढूढ़ तो मैं लाऊंगा छन भर में।'

बुढ़िया के पास इस समय एक पैसा भी न था। उसके बांह में एक चांदी का अनन्ता था। उसने कहा 'ले मेरा अनन्ता ले ले, ये पांच रुपये का है। देखूं तू कितनी जल्दी ढूंढता है।'

मल्लाह का लड़का चट पानी में कूद पड़ा। इधर गया उधर गया। यहां डुबकी मारी वहां डुबकी मारी। घंटे भर में सारा घाट मथ डाला पर ठाकुर जी न मिले। बुढ़िया उस पर आंख लगाये बैठी रही।

दिन भर बीत गया था। सूर्य्य डूबने ही को थे। हवा बन्द हो गई थी। चारों ओर सुनसान था। नदी अपनी चाल से बह रही थी। राजकुमार की मां मूर्ति की तरह बैठी थी। मल्लाह के लड़कों ने अनेक बालू के ढेर बना रक्खे थे। बुढ़िया भी एक बालू का ढेर मालूम होती थी।

थोड़ी देर में सूर्य्य भी अस्त हो गया। चन्द्रमा की किरणें गंगा की लहरों के साथ खेलने लगीं। यकायक बुढ़िया उठी। चिल्ला पड़ी। 'जिन ढूंढा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ।' बुढ़िया तैरना नहीं जानती थी। पर उसने पानी में घुसना आरम्भ किया। घुटने तक पानी में गई। कमर तक पानी में गई—कंधे तक पानी में गई—और आगे गई—वह उतराने लगी। पशुओं को तैरना स्वभाव से ही आता है, उन्हें सीखने की आवश्यकता नहीं पड़ती। बुढ़िया पानी में ऐसा तैरने लगी मानो तैरना स्वभाव से ही आता था। वह बीच में डुबकी लगाती और कहती—

'ये—ठाकुर जी आये मुट्ठी में!' पर मुट्ठी खोलती तब कहीं बालू रहती, कंकड़ रहता। वह फिर डुबकी ल[illegible] 'ये... ..अबकी बार हाथ में आये!' हाथ खोलती—कहीं घोंघे निकलते सीप। फिर डुबकी—फिर डुबकी— डुबकी। पर ठाकुर जी कहां?

एक नवयुवक तेज़ी से आते इक्के पर से कूदा। झपट कर मल्लाहों बस्ती में आया। पूछने लगा 'यहां को कोई बूढ़ी औरत आई थी?' राजकुमार था। एक मकान पर दो [illegible] मिले, बोले, हां आई थी, उसके ठाकु[र] खो गये थे?

'हां, हां'।

'हम लोगों से ढूंढने को कहा ढूंढने पर यह चांदी का अनन्ता दे[ने को] कहा'।

'तो क्या तुम्हें ठाकुर जी मिल[े] थे।'

'ठाकुर जी तो नहीं मिले [illegible] बुढ़िया ने अनन्ता हमारी मिहनत के दे दिया।' राजकुमार ने अनन्ता [illegible] के हाथ से ले लिया।

'तो बुढ़िया किधर गई?'

'ये तो हमें नहीं मालूम।'

राजकुमार घाट की तरफ ग[या] बुढ़िया डुबकियां लगा लगा कर कह[ती] थी, 'ये......इस बार लगे हाथ! [illegible] पाया!' राजकुमार अपनी माता की [illegible] भी न पहचान सका। उसकी [illegible] बदल गई थी। आश्चर्य से भ[रा] किनारे खड़ा रहा। उसकी माता

तैरना जाने हुए किस प्रकार इतने गहरे पानी में तैर रही है और डुबकियां मार मार कर ऊपर आ रही है ? यह उसकी समझ में न आ सका। पर इतना तो उसे विश्वास होगया कि हो न हो यह मेरी मां ही है। राजकुमार ने किनारे खड़े होकर आवाज दी 'आवो लो यहां हैं तुम्हारे ठाकुरजी—आओ आओ'। बुढ़िया तैरकर किनारे आई, पूछा—

'कहां है ठाकुर जी ?'

'घर पर'।

'ठीक' ?

'ठीक'।

'चलो, दो'।

बुढ़िया की आखें लाल थीं। चेहरे के सामने सर के बाल लटक आये थे। पानी की बूंदे लटों से टपक रही थीं। कमर के ऊपर की धोती नीचे चली गई थी। उसकी सूरत भयानक किन्तु करुणा-जनक थी। वह कुछ देर चुपचाप खड़ी रही फिर गिर पड़ी। वेहोश हो गई। कई मल्लाहों की सहायता से राजकुमार अपनी मां को ऊपर लाया। इक्के पर लिटा दिया। आप भी इक्के पर बैठा। इक्का घर पहुँचा। माँ को होश न आया। भीतर ले गया। कपड़े बदले। थोड़ी देर बाद बुढ़िया का सारा शरीर तवे की तरह जलने लगा। उसे जोरों से बुखार आ गया था। राजकुमार मां को अपनी स्त्री के पास छोड़कर डाक्टर के यहां गया।

बुढ़िया चौंक कर चिल्ला पड़ी 'जिन ढूँढा तिन पाइयां गहरे पानी पैठ—गहरे पानी पैठ—गहरे पानी पैठ।' बुढ़िया खड़ी होगई और चारपाई पर यह कहते हुए ढूंढने लगी—'ये ठाकुर जी पाया! ये ठाकुर जी पाया!!' कहीं इधर हाथ मारती कहीं उधर हाथ मारती। ऐसा मालूम होता था जैसे हवा में तैर रही है। बहू मारे डर के थर थर कांपने लगी उसके इतनी शक्ति कहां थी कि बुढ़िया को धर पकड़ कर विठलाती। थोड़ी देर बाद राजकुमार आया। यह दृश्य देखकर बड़ा घबड़ाया। बुढ़िया को शान्त करने के सब प्रयत्न निष्फल गये। राजकुमार बार बार कहता, 'अम्मा मैं तुम्हें दूसरे ठाकुर जी मंगा दूंगा, मान जाओ, लेट रहो—लो दवा पी लो'। पर बुढ़िया कहां सुनने की ? वह वायु के प्रकोप में थी। वह एका एक चारपाई से कूदकर आंगन में आ गई, ताली दे दे कर नाचने लगी। गाती—

'ठाकुर क्यों नहिं आओ,
पास मेरे तुम्हें पुकारूं जी।'
'ठाकुर क्यों नहिं आओ,
पास मेरे तुम्हें पुकारूं जी।'

राजकुमार ने कई बार बुढ़िया के पास जाकर उसे पकड़ना चाहा पर बुढ़िया ने ऐसे जोर से उसे ढकेला कि वह गिरने से बचे। राजकुमार की स्त्री कोने में बैठी रो रही थी। राजकुमार किं कर्त्तव्य विमूढ़ हो अलग खड़ा था। एका एक बुढ़िया धड़ाम से पृथ्वी पर गिर पड़ी। उसकी आंखें उलट गईं सांस धीमी पड़ गई।

'ठाकुर क्यों नहिं आओ,
पास मेरे तुम्हें पुकारूं जी।'
तुम नहिं आओ पास,
हमारे मैं तो आऊं जी।'
मैं तो..................

ये उसके अन्तिम शब्द थे। बुढ़िया ठाकुर जी के पास पहुंच गई। राजकुमार ने अपनी मां का शरीर हनुमान घाट ही प्रवाह किया।



अभ्यर्थना

[श्रीयुत पं० राजाराम पाण्डेय 'मधुप']

[१]

भारत की वह प्यारी निधि,
ऋषियों की प्राप्त प्रसादी।
जगती-जन के ज्ञान हेतु,
प्रभु ने जो स्वयं बनादी॥
अर्थ धर्म या काम-मोक्ष—
का साधन उन्हें विचारो।
वेदोदय को प्रकट जान,
नित वैदिक मंत्र उचारो॥

[२]

थी सुखमा वह यहाँ देख,
जो अखिल विश्व शर्माया।
क्रीड़ा वस हो म्लान स्वर्ग
को नन्दन विपिन सिधाया॥
भारतीय-बुध वेद-ज्ञान
भूतल पर जब बरसाये।
गुरू बने सब के सब ने,
फिर निज निज शीश झुकाये॥

[३]

किन्तु हाय! हा शोक! कि
हमने स्वयं सुसीख भुलाई
भारत के कोने कोने,
घर घर में फूट मचाई
भाई के हाथों से ही—
भाई का गला कटा
भारत का सारा वैभव,
सोते सोते लुटवा

[४]

उठ जावो सब शीघ्र जान,
शुचि वेदोदय को
करदो कार्य्यारंभ त्याग,
निज जी की भ्रान्ति
सब से जोड़ो प्रेम शीघ्र ही,
जीवन सफल बना
सब सुख-मंगल मूल मान
यह 'वेदोदय' अपना

बकरीद के दिन ईरान में

[श्री० प्रो० महेश प्रसाद जी मौलवी फ़ाज़िल काशी हिन्दू विश्व विद्यालय]



त वर्ष सन् १९२९ ई० में १६ मई को ही मैं ईरान की भूमि में पहुँच गया था। बक़रीद २० मई को हुई थी। मैं समझता था कि इस तिथि को मैं ईरान के एक सुप्रसिद्ध नगर में पहुंच सकूंगा। उस समय मैं बहुत कुछ जान सकूंगा कि ईरान देश (जिसमें प्रधान संख्या मुसलमानों की ही है और जहां बादशाह भी मुसलमान ही है) में बकरीद क्योंकर मनाई जाती है और इस विषय में भारतीय मुसलमान व ईरानी मुसलमानों में क्या अन्तर है।

पर सवारी की कठिनाइयों के कारण बक़रीद का दिन एक निर्जन स्थान में पड़ा था। बाद को जो प्रधान नगर पड़ा था वह सिरजान नामक था। वहां मैं काफ़ी समय तक ठहरा था। अनेक लोगों से मिलने मिलाने का अवसर पड़ा था। पर इस स्थान पर जिसकी बातें उल्लेखनीय हैं वह अकबर खां नाम के एक दब्बाग़ अर्थात चर्मशोधक की हैं।

मियां अकबर खां बम्बई में कुछ काल तक रह चुके हैं। उन्हें जब ज्ञात हुआ कि एक मुसाफिर हिन्दुस्तान से आया है। सराय में ठहरा है। वह मेरे पास आये। उनके विशेष आग्रह पर मैं उनके घर गया। देखा कि भेड़-भेड़ियों की बहुत सी खालें उनके घर में थीं। यह सब खालें वास्तव में बकरीद की कुरबानी की खालें थीं। अतः मुझे पता लगा कि केवल सिरजान या केवल उसके आस-पास की भूमि में ही नहीं बल्कि सारे देश में बहुधा भेड़ या बकरी की ही कुरबानी बक़रीद के दिन हुआ करती है। गाय भेंस देश में अवश्य होते हैं परन्तु शायद ही कोई व्यक्ति इनकी कुरबानी करता है।

हमारे भारतीय मुसलमान कहीं कहीं कुरबानी के पशु का जलूस निकालना अपना परम धर्म समझते हैं। अस्तु, ईरान में मुझे केवल अकबर खां के ही द्वारा नहीं बल्कि कई अन्य व्यक्तियों से यह भी ज्ञात हुआ कि ईरान में कहीं पर उक्त प्रकार की कोई प्रथा नहीं। कोई धूम-धाम नहीं होती। सारा कर्म काण्ड शान्तिपूर्वक होता है, क्योंकि कुरान व हदीस में ऐसी कोई आज्ञा नहीं है जैसी कि भारतीय मुसलमान कहीं कहीं किया करते हैं।

अब बक़रीद शब्द के विषय में यह जान लेना चाहिये कि यह शब्द वास्तव में दो अरबी शब्दों—बक़र अर्थात् गाय या बैल और ईद अर्थात् खुशी—से बना है। ईरान की फ़ारसी में बहुतेरे नये व पुराने अरबी शब्द हैं। मैं जानता था कि ईरान में बक़रीद शब्द के लिये 'ईद कुरबां' शब्द प्रयोग किया जाता था तथापि मैंने जान बूझकर बक़रीद शब्द को कई अवसरों

पर प्रयोग किया ताकि मुझे पता लग सके कि बक़रीद शब्द को ईरानी मुसलमान समझते हैं कि नहीं। मैंने देखा कि कोई भी इस शब्द को न समझ सका। कारण यह है कि बक़रीद शब्द वस्तुतः भारतीय मुसलमानों के गढ़न्त का फल हैं। क्योंकि भारत में बक़रीद के दिन गाय या बैल का ही मारा जाना प्रायः सर्व साधारण की दृष्टि में अच्छा समझा जाता है।

अरबी में बक़रीद के लिये ... ज़ुहा' शब्द है—कुरबानी वाली ... अतः जब मैं ईदुल अज़हा शब्द को ... किया करता तो प्रत्येक ईरानी ... लेता था कि मेरा अभिप्राय किस ... से था। निदान हमारे पाठक थोड़ा ... जान सकते हैं कि ईरानी मुसलमान ... भारतीय मुसलमानों के बीच ... विचार आदि में किस प्रकार अन्तर ...

शारदा एक्ट

[श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]



रतवर्ष में बाल विवाह का बड़ा प्रचार है। इससे देश तथा जाति की हर तरह की हानि हो रही है। एक एक दो दो वर्ष के बच्चों का विवाह कर दिया जाता है और बहुत कम बालक ऐसे मिलेंगे जिनका १३ या १४ वर्ष की अवस्था में विवाह न हो गया हो। ऐसी कुप्रथा को देखकर श्री महाशय हरि विलास जी शारदा ने जो लेजिस्लेटिव एजम्बली के मेम्बर हैं एक कानून पेश किया जिसके अनुसार कोई लड़की १४ वर्ष से कम की और कोई लड़का १८ वर्ष से कम का विवाहित न हो सके। यह बिल २३ सितम्बर १९२९ क लेजिस्लेटिव एसम्बली में पास हुआ। २८ सितम्बर १९२९ की स्टेट कौंसि... भी इसे पास कर दिया और १ ... सन् १९२९ ई० को गवर्नर जनरल ... दय ने इसकी स्वीकारी दे दी। यह ... १ अप्रेल १९३० से जारी हो गया।

इस एक्ट के विरुद्ध तथा ... देश भर में आन्दोलन हो रहा है। ... भिन्न सुधारक सभाओं और पुरुष ... ने इस पर हर्ष प्रकट किया परन्तु बहु... पुरानी चाल के लोग इसका विरोध ... रहे हैं।

इस एक्ट के सम्बन्ध में नीचे ... बातों पर विचार करना उचित है:—

(१) क्या १४ वर्ष से कम की ... और १८ वर्ष से कम के लड़के का ... शारीरिक निर्बलता का कारण है?

(२) क्या इस प्रकार के विवा... सामाजिक हानियाँ होती हैं?

(३) क्या इस प्रकार के विवाहों ... रोकना किसी धर्म के विरुद्ध है?

(४) क्या इस प्रकार के सुधार के लिये सरकारी कानून की सहायता के विना काम नहीं चल सकता ?

(५) क्या इस प्रकार के सुधार में सरकारी कानून की सहायता लेनी चाहिये ?

(६) क्या शारदा एक्ट में कोई ऐसी धारा है जिस के अनुसार पुलिस या सरकार से अन्याय की संभावना है ?

हम प्रत्येक बात को अलग २ लेंगे।

जो लोग विवाह के उद्देश्य तथा ब्रह्मचर्य के महत्व को जानते हैं वह कह सकते हैं कि सन्तानोत्पत्ति के लिये कमसे कम १६ वर्ष की स्त्री और २५ वर्ष का पुरुष चाहिये। सुश्रुत में लिखा है कि—

ऊन षोड़श वर्षायामप्राप्तः पञ्च विंशतिम् ।
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवे ज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्त बालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

सुश्रुत शरीरस्थाने अध्याय १० श्लोक ४७,४८

अर्थात् यदि १६ वर्ष से कम की स्त्री और २५ वर्ष से कम के पुरुष सन्तानोत्पत्ति करेंगे तो तीन बातें होंगी। (१) या तो गर्भ गिर जाय (२) या बालक उत्पन्न हो परन्तु बहुत दिन न जिये (३) या जितने दिनों जिये निर्बल रहे। पश्चिम के आधुनिक डाक्टरों की भी यही राय है कि बाल विवाह से शरीर क्षीण और निर्बल होता है। इसलिये शारदा एक्ट ने १४ और १८ वर्ष की जो क़ैद रक्खी है वह थोड़ी है। कम से कम १६ और २५ की क़ैद रखनी चाहिये थी।

(२)

शारीरिक हानि के अतिरिक्त सामाजिक हानि भी बहुत हो रही है। छोटी आयु में विवाह होने के कारण लड़कियाँ और लड़के पढ़ने नहीं पाते। लड़कियाँ या तो पढ़ती नहीं या विवाह होते ही पाठशालाओं से उठा ली जाती हैं। लड़के छोटी आयु में ही स्त्री के भार से दब जाते हैं। उनका ध्यान बट जाता है, उनकी स्मृति कम हो जाती है और वह अनेक कष्टों को सहन करते हैं। बच्चों को शारीरिक तथा मानसिक उन्नति के लिये जो स्वतंत्रता तथा चिन्ता-रहितता चाहिये वह नहीं रहती। इसलिये बाल विवाह से हानि ही हानि है।

छोटी अवस्था में चेचक आदि से मृत्यु बहुत होती है। इसलिये भारतवर्ष में विधवाओं की संख्या बहुत बढ़ रही है। बाल विधवाओं के बढ़ने से पातिव्रत धर्म की हानि, भ्रूणहत्या तथा अनेक प्रकार के पाप और अनाचार बढ़ रहे हैं।

बालिकाओं के मर जाने से यह दशा हो रही है कि बीस बीस वर्ष के लड़कों के तीन तीन विवाह करने पड़ते हैं। इस लिये धन की भी बड़ी हानि होती है।

सबसे बड़ी हानि यह है कि बलवीर्य के घटने से लोग न देश सेवा कर सकते हैं न जाति सेवा। और देशों में जिस अवस्था के लड़के अपनी शक्ति बढ़ाने और चैन से जीवन व्यतीत करने में लगे रहते हैं उस अवस्था में हमारे देश के लड़के लड़कियों के चार चार सन्तान हो

जाती हैं। उनके पास उनके पालन पोषण की सामग्री भी नहीं होती। और इसलिये उनका समस्त जीवन दुःखमय हो जाता है। ३४ या ३५ वर्ष का पुरुष न केवल अपने पुत्र पुत्रियों किन्तु पौत्र पौत्रियों के विवाह की चिन्ता में ग्रस्त होजाता है, शारदा एक्ट से इन हानियों में अवश्य कमी होगी।

(३)

क्या शारदा एक्ट किसी धर्म के विरुद्ध है? इस समय भारतवर्ष में तीन धर्म हैं। ईसाई तो बड़ी अवस्था में ही विवाह करते हैं। मुसल्मानों में और विशेष कर बंगाल के मुसलमानों में बहुत छोटी आयु में विवाह होता है। बहुत से मुसलमान नेता इस हानि को समझते हैं और इसलिये वह शारदा एक्ट के पक्ष में हैं। परन्तु कुछ मुसलमानों को दो आक्षेप हैं:—

(१) उनके पैग़म्बर मुहम्मद साहेब ने हज़रत आयिशा से जो विवाह किया था उस समय हज़रत आयिशा की आयु १४ वर्ष से बहुत कम थी।

(२) वह सरकार का हस्ताक्षेप नहीं चाहते।

मुसल्मान नेताओं की राय है कि मुसल्मानी धर्म बाल-विवाह का विरोधी है। ऐसी अवस्था में यदि उनके पैग़म्बर ने किसी कारण हज़रत आयिशा से कम आयु में विवाह कर भी लिया तो वह दूसरों के लिये उदाहरण नहीं हो सकता। न उन्होंने कहीं कहा कि मेरे अनुयायियों को ऐसा करना चाहिये। प्रत्येक मुस[ल्]मान पैग़म्बर होने का दावा नहीं करता इसलिये पैग़म्बरों की बात पैग़म्बरों [के] लिये छोड़ देनी चाहिये। मुसल्मानी ध[र्म] के अनुसार हज़रत मुहम्मद साहेब आ[-]ख़िरी पैग़म्बर थे अतः अब न कोई पै[ग़]म्बर होगा और न उसके लिये पैग़म्ब[र] की सी आवश्यकता होगी। जब पै[ग़]म्बर साहब ने कहीं ऐसी आज्ञा नहीं [दी] कि छोटी आयु में विवाह करो तो इ[स] आक्षेप को छोड़ ही देना चाहिये। वस्तु[तः] मुसल्मान नेताओं ने भी ऐसा ही कि[या] है। उन्होंने इस आक्षेप में कोई तत्त्व [न] देख कर ही उस पर कार्य्य नहीं कि[या] और शारदा एक्ट के पक्ष में सम्म[-]तियाँ दीं।

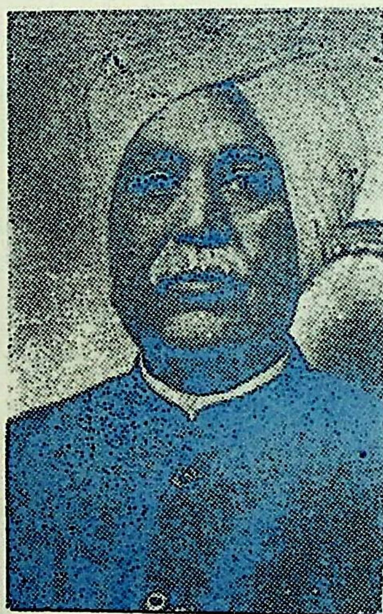
यह कहना भी ठीक नहीं है कि मुस[-]ल्मान गवर्नमेंट का हस्ताक्षेप नहीं चाहते। बहुत से धार्मिक कृत्यों में भी जहाँ व्यक्ति[-]गत जीवन मरण का प्रश्न होता है स[र]कारी कानून की सहायता लेनी पड़ती है। बाल-विवाह में तो मुसल्मानों की स्वयं [ही] हानि है इसलिये बाल-विवाह बन्द कर[ने] का नियम केवल धार्मिक ही नहीं किन्[तु] अधिकतर सामाजिक भी है।

अब रहे हिन्दू। हिन्दुओं के धर्माध्य[क्ष] पुरानी चाल के परिडत बड़ी हाय तो[बा] मचा रहे हैं। वह कहते हैं कि बा[ल] विवाह शास्त्रोक्त हैं। उनका कह[ना] है कि—

(१) शास्त्रों ने लड़की का विवा[ह] छोटी आयु में करने की आज्ञा दी है।

(२) रजस्वला होने के पश्चात् विवा[ह] करना पाप है।

वेदोदय



श्रीयुत राय साहब हरविलास शारदा

वह इसके लिये शीघ्र बोध का यह श्लोक देते हैं :—

अष्टवर्षा भवेद् गोरी नव वर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेद् कन्या तदूर्ध्वं रजस्वला॥
माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
सर्वे ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥

अर्थात् यदि घर में रजस्वला बिन व्याही कन्या रहे तो माता, पिता और बड़े भाई नरक को जाते हैं। वस्तुतः इस श्लोक ने हिन्दुओं की जितनी हानि की है उतनी शायद ही किसी ने की हो। यद्यपि हिन्दू लोग सैकड़ों ऐसे काम नित्य प्रति करते हैं जिनसे सिवाय नरक के स्वर्ग की आशा ही नहीं हो सकती तथापि नरक के डर से अपने बच्चे बच्चियों का विवाह अवश्य कर देते हैं। हम यहाँ कुछ प्रमाण देते हैं जिनसे सिद्ध होगा कि नरक का यह डर ग़लत है और ऊपर का शीघ्र बोध का श्लोक धर्म-शास्त्रों से विरुद्ध है:—

पहला प्रमाण

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्॥
(अथर्ववेद ११। ५। १८)

अर्थ—ब्रह्मचर्य पालन करके कन्या जवान पति को प्राप्त होती है।

यहां कन्या और वर दोनों को ब्रह्मचर्य पूर्ण करके अर्थात् जवान होकर विवाह का आदेश है। १४ वर्ष से कम की लड़की और १८ वर्ष से कम का वर जवान नहीं कहलया जा सकता।

(प्रश्न) इस मंत्र में पति के लिये जवान होना लिखा है लड़की के लिये नहीं। देखो "ब्रह्मचर्येण" पद पति के लिये आया है। कन्या के लिये नहीं।

(उत्तर) अर्थ का अनर्थ मत करो। ब्रह्मचर्येण पद पहले ही पड़ा है। अतः वह कन्या और वर दोनों के लिये हैं। यदि विवाह के लिये पति को जवान होना जरूरी है तो स्त्री को भी जवान ही होना जरुरी है 'देखो सायणाचार्य जी इस मंत्र का क्या भाष्य करते हैं:—

कन्या अकृत विवाहा स्त्री ब्रह्मचर्यं चरन्तीं तेन ब्रह्मचर्येण युवानम्युव.वगुणोपेतम् उत्कृष्टं पतिं विन्दते लभते।

'ब्रह्मचर्य चरन्ती' पद कन्या के लिये ही आया है।

दूसरा प्रमाण

उदसौ सूर्यो अगादुदयं मामको भगः।
अहं तद्विद् बला पतिमभ्यसाक्षि विषासहिः॥
(ऋग्वेद म० १७ सू० १५६ मंत्र १)

अर्थ—यह देखो सूर्य्य उदय हुआ और इसी के साथ मेरे भाग्य भी उदय हुये क्योंकि मैं जानने वाली और बला अर्थात् बल युक्त स्त्री आज पति को प्राप्त हुई हूं।

यहां स्त्री को (तद् विद्) अर्थात् जानने वाली और (बला) अर्थात् बल युक्त कहा है। अबोध छोटी बालिका में यह गुण नहीं हो सकते। अतः सिद्ध है कि बालिकाओं के विवाह का वेद में निषेध है।

तीसरा प्रमाण

अहं केतुरहं मूर्धाहं मुग्रा विवाचनी।
ममेदनु क्रतुं पतिः से हानाया उपाचरेत्॥
(ऋ० १०। १५६। २)

अर्थ—बधू कहती है कि मैं पताका हूं। मैं शिर हूँ। मैं तेज निर्णायक हूं। मेरा पति मेरी सलाह से काम करें। क्या छोटी बच्ची ऐसा कह सकती है ?

चौथा प्रमाण

सोमो बधूयुरभवदश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सविता ददात्।

(ऋग्वेद १० । ८५ । ९)

अर्थ—युवक को बधू की इच्छा हुई। इसलिये कन्या और पुरुष की वर संज्ञा हुई। अर्थात् दोनों (वरश्च वराच वरौ) वह कहलाये। पिता ने पति की प्रशंसा करने वाली लड़की को हर्ष पूर्वक विवाह में दे दिया।

यहां दो शब्दों पर विचार करो और फिर शंका न रहेगी। पहला शब्द है "बधूयः" अर्थात् बधू की इच्छा वाला। ऐसा पुरुष जवान ही हो सकता है। दूसरा शब्द है 'पत्येशसन्ती' अर्थात् पति की प्रशंसा करने वाली। ऐसी बधू भी जवान ही हो सकती है बालिका नहीं।

पांचवां प्रमाण

वधूरियं पतिमिच्छन्त्येति य ईं।
वहाते महिषीमिषिराम्।

(ऋग्वेद ५ । ३७ । ३)

अर्थ—यह बधू पति की इच्छा करती हुई आती है। पति इस बलवती बधू को ले जाता है।

यहाँ 'इषिरा' शब्द का अर्थ है बलवती। न कि बालिका॥

[३]

अब प्रश्न यह है कि यदि बाल-वि[वाह] धर्म विरुद्ध है तो क्या इसको बिना ग[वर्न]मेण्ट की सहायता के रोका नहीं [जा] सकता ? बात यह है कि यदि ऐसा स[म्भव] होता तो हम कदापि सरकारी द्वार [खट]खटाने के पक्ष में नहीं होते किसी प[्रथा को] रोकने के दो ही तरीके हैं, एक तो स[ामा]जिक दबाव, दूसरा सरकारी दण्ड[का] भय। सामाजिक दबाव, बाल-विवा[ह के] विरुद्ध बिलकुल नहीं है। स्वयं सं[स्कृत] पण्डितों को हमने बूढ़ी आयु में [छोटी] बच्चियों से विवाह करते देखा है। प[चास] साठ वर्ष के घोर सुधार-आन्दोलन ने इनके कान पर जूं नहीं रेंगने दी। [यह] अपने को सुरक्षित समझते हैं। [दबाव] कौन डाले ? पण्डित वर्ग तो डाल[ते] रहे। यह स्वयं बाल-विवाह करते। "रजस्वला आदि" के मन गढ़न्त [श्लोक] पब्लिक के सामने रखते हैं। हमको शोक होता है जब हम देखते हैं कि बड़े पण्डित ही सामाजिक कुरीतियों [की] बहुत सहायता करते हैं और सुधार [का] वायुमण्डल बनाने में विघ्नकारक होते [हैं।] यह तो सभी कह बैठते हैं कि सरकार [की] सहायता न लो। परन्तु बिना सरकार[ी] सहायता के वे स्वयं सुधार करने में [सहा]यता भी तो नहीं देते। जब १२ व[र्ष का] रज़ामन्दी का क़ानू (age of Cons[ent]) पास हुआ था तो कुछ लोगों ने [विरोध] किया था कि सरकार की सहायता [न] लो। परन्तु किसी ने स्वयं इस अत्याचार के रोकने के लिये उद्योग [नहीं] किया। आज भी वही बात है।

सरकारी क़ानून के काम नहीं चल सकता। इसके लिये सबसे भारी प्रमाण यह हैं कि १ अप्रेल से पहले पण्डितों द्वारा ही बाल-विवाह कराये जा रहे हैं। इससे स्पष्ट है कि पण्डित वर्ग सुधार के पक्ष में नहीं। यदि अपने कर्तव्य को समझते तो कदापि बाल-विवाह कराने में योग न देते। बहुत से पण्डित वर्ग तो कानून भङ्ग करने की धमकी देते हैं। वह यह नहीं जानते कि बाल-विवाह रोकने वाले नियम का भङ्ग करना सत्याग्रह नहीं किन्तु मिथ्याग्रह है।

[५]

ऊपर की बातें सोचने से यही अभीष्ट प्रतीत होता है कि सरकारी नियम बनाया जाता। और चूंकि अब यह नियम बन गया है इसलिये हम सभी को राय साहब बाबू हरविलास शारदा का कृतज्ञ होना चाहिये। मैं पूछता हूं कि यदि सरकार से तुम पाप और अत्याचार के रोकने में सहायता नहीं ले सकते तो सरकार है किस रोग की दवा? क्या सरकार केवल कर लेने के लिये है? क्या कोई चोरी करे तो पुलिस में तुम सूचना करने नहीं जाते, क्या डाका पड़े तो सरकार की सहायता नहीं लेते? यह तो चोरी और डाके से भी अधिक अत्याचार है कि करोड़ों विचारी बच्चियों पर धर्म के नाम पर अत्याचार किया जाय और उनको सैकड़ों शारीरिक और मानसिक रोगों का शिकार बना दिया जाय।

[६]

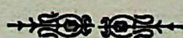
कुछ लोग कहते हैं कि शारदा एक्ट पुलिस को अत्याचार करने का अवसर देगा। परन्तु ऐसा नहीं है। समस्त एक्ट इस चातुर्य्य से बनाया गया है कि पुलिस को स्वयं आक्षेप करने का भय नहीं है।

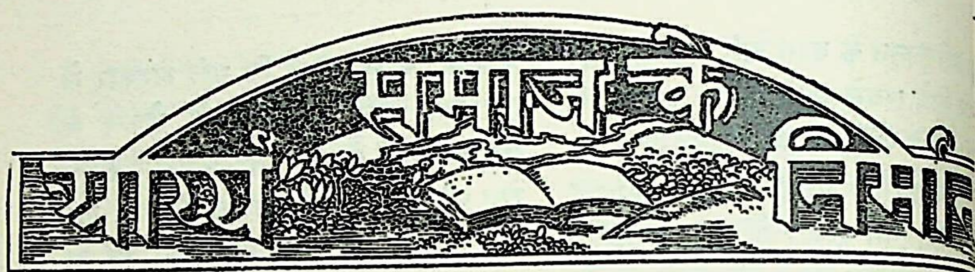
न हो

यह तन मेरा
भस्मभूत हो जावे,
यदि मन में राग न हो।

यह मन मेरा
मिट्टी में मिल जावे,
यदि तन में त्याग न हो॥

—विश्व

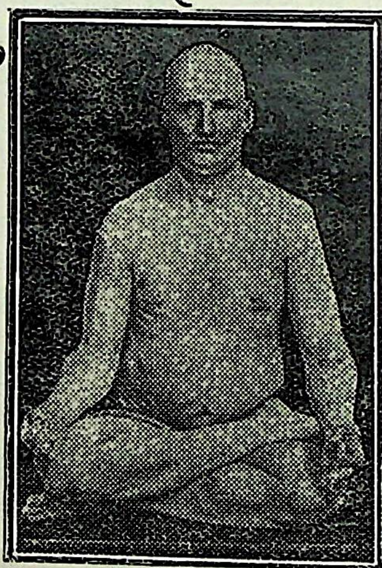




ऋषि दयानन्द

[श्री विश्व प्रकाश बी. ए., एल-एल. बी.]

"दयानन्द जिसके अन्दर एक ऋषि की आत्मा थी, इस भारत के लिये और सच्चाई के लिये मूर्ति भञ्जक बना! ईश्वर के नाम पर उसने युद्ध के उपकरण धारण किये और उसी परमात्मा के नाम पर उसने अज्ञान और असत्य के विरुद्ध संग्राम किया। परमात्मा के नाम पर यह सन्यासी एक योद्धा क्षत्रिय बना रहा! ईश्वर के नाम पर उसने पतितों को अपने भाई के समान अपनाया। उसी प्रभु के नाम पर उसने महाराज और पुरोहितों की भर्त्सना की।" [म० टी० एल वास्वानी एम० ए०]



"यह सत्य है कि स्वामी शंकराचार्य्य के अनन्तर भारत में स्वामी दयानन्द से अधिक संस्कृत का विद्वान्, उनसे बढ़कर प्रत्येक बुराई को उखाड़ने वाला, उनसे अधिक कथन शक्ति वाला व फिलास्फर उत्पन्न नहीं हुआ है।" [मेडम ब्लैड- वटस्की]

"आश्चर्य है कि पाश्चात्य सभ्यता गंध न होते हुए भी आँगलशिक्षा विज्ञान से दूर रहने पर भी, केवल वै ज्ञान के बल से इस महापुरुष ने कि अद्भुत काम किया। यदि स्वामी अँग्रेजी जानते होते तो हम लोग समझ बैठते कि यह सब प्रताप अँग्रे का ही है।" [श्री पंडित गुरुदत्त एम० ए०

"स्वामी जी भारतवर्ष की आँ खोल कर उसमें अंजन डाल गये जिससे अब भारत अज्ञान निद्रा में पड़ेगा।" [श्री पं० राम आर्य मुसाफिर]

"स्वामी जी इस अन्ध श्रद्धा युग में तर्क-युग प्रवेश करा दिया जिससे संसार है।" [श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती]

जन्म

ऋषि दयानन्द का जन्म संवत १८८

वि० (सन् १८२४ ई०) में गुजरात (काठियावाड) के मौर्वी प्रान्त में हुआ। आपके पिता पं० अम्बाशंकर जी संस्कृत के विद्वान् तथा शैव मत के अनुयायी थे। बचपन में दयानन्द का नाम मूलशंकर रक्खा गया और शैव मत के बीच में रहकर उनको भी उसी प्रकार की शिक्षा मिलती रही। पांच वर्ष की अवस्था के पूर्व ही मूल शंकर ने अक्षर-बोध कर लिया था और ८ वें वर्ष में आपका उपनयन संस्कार होगया। पिता ने आपके संस्कृत अध्ययन का अच्छा प्रबन्ध करा दिया। १४ वर्ष की अवस्था में मूलशंकर को सम्पूर्ण यजुर्वेद कंठस्थ होगया और व्याकरण का ज्ञान भी होगया। योग्य पिता तथा स्नेहमयी माता के पालन पोषण से मूलशंकर की मानसिक तथा शारीरिक शक्ति बढ़ती रही।

× × ×

काया पलट

बचपन से दयानन्द बड़े धर्मात्मा थे। शिव पूजन, तथा शिव-कथा को श्रवण करने में उनका बड़ा मन लगता था। फाल्गुन की त्रयोदशी को शिवरात्रि का त्यौहार बड़े धूम धाम से मनाया जाता है। इस अवसर पर शैव भक्त व्रत रखते हैं और रात्रि ईश्वराधन में व्यतीत करते हैं। बहुत दिनों से मूलशंकर की लालसा थी कि वे भी व्रत रक्खें पर माता अपने बच्चे को इतना बड़ा व्रत रखने से मना कर दिया करती थीं। चौदह वर्ष की अवस्था में शिवरात्रि का त्योहार आया और मूलशंकर ने व्रत रखने की इच्छा प्रकट की। माता पिता ने स्वीकृति देदी और मूलशंकर बड़ी लालसा तथा भक्ति के साथ ईश्वराधन में लग गये। दिन भर पूजा हुई, रात्रि के दूसरे पहर तक शैव मन्दिर में एकत्रित रहे पर अधिक रात्रि के आने पर निद्रा देवी ने अपना जाल फैलाया। एक एक करके सब मनुष्य सो गये। कथा बाचने वाले पुरोहित अपनी पुस्तक एक ओर रखकर ऊंघने लगे। मूलशंकर के पिता भी नींद को न भगा सके। पर जागता था—केवल एक ही प्राणी जिसके हृदय में सच्चे ईश्वर की लग्न थी।

मूलशंकर जाग रहे थे—उस ईश्वर के दर्शन के लिये जिसके बारे में वे बहुत सो बातें सुन चुके थे। पर ईश्वर न आया—आया एक चूहा जो उस पदार्थ को खाने लगा। बिजली की तरह उनके मस्तिष्क में प्रकाश उठा, हृततंत्री झनक उठी, शरीर की एक एक नसों में रक्त दौड़ने लगा। शरीर की एक एक नस कम्पायमान होती और मस्तिष्क से पूछती—क्या यही ईश्वर है ?—जो नहीं बचा सकता अपने को? हृदय ने आन्दोलन उठाया, मस्तिष्क ने उसका साथ दिया, आत्मा ने साक्षी दी कि ईश्वर यह नहीं है। सच्चे ईश्वर की खोज में जाना चाहिये।

मूलशंकर घर चले आये—व्रत तोड़ दिया और फिर कभी ऐसी शिवरात्रि उनके जीवन में न आई। पिता ने सुना तो नाराज़ होकर रह गये।

शिवरात्रि के बाद दो घटनायें और हुई जिन्होंने मूलशंकर के विचारों में बड़ा परिवर्त्तन कर दिया। आपके चाचा आपसे बड़ा प्रेम करते थे और सदा

उनकी सहायता किया करते थे। अभाग्य-वश काल ने उनको आ घेरा और वे चल बसे। इसके थोड़े दिनों बाद ही प्रेममयी भगिनी का विछोह मूलशंकर को सहना पड़ा। इन दोनों घटनाओं ने एक नया प्रश्न उनके सामने खड़ा कर दिया कि मृत्यु क्या है ? मृत्यु से कैसे छुटकारा हो सकता है ? अनेकों प्रकार के विचार उनके हृदय में उठने लगे और उन्होंने काशी में संस्कृताध्ययन का विचार प्रकट किया। पिता ने भय के कारण एक योग्य पंडित रख दिया।

× × ×

बंधन से छुटकारा

पंडित जी मूलशंकर की शंकाओं का निवारण न कर सके और उन्होंने मूलशंकर के पिता से कह दिया कि विवाह शीघ्र कर दो नहीं बालक हाथ से निकल जायगा। पिता ने सम्मति मान ली और विवाह की तय्यारियां होने लगी। मूलशंकर कब चाहते थे कि वे किसी प्रकार के बंधन में फँस जांय इसलिये वह १९४६ संवत् में किसी एक दिन घर को छोड़कर चल दिये। विवाह की खुशी के स्थान में क्रन्दन सुनाई पड़ने लगा।

घर से निकलने पर मूलशंकर ने अपने कपड़े रंग लिये। पिता ने अपने दूत चारों ओर भेजे और सिद्धपुर के मेले में मूलशंकर को पकड़ लिया। सारी आशाओं पर पानी पड़ गया और मूलशंकर सोचने लगे कि किस प्रकार छुटकारा हो। रात्रि के समय कई सिपाहियों के पहरों से बचकर मूलशंकर भाग आये और इसके उपरान्त फिर उनको अपने पिता के दर्शन नहीं हुये।

ज्ञान की खोज में

पिता के पास से भाग कर मूलशंकर ज्ञान की खोज में इधर उधर घूमते रहे। नर्मदा के समीप योगानन्द कृष्णशास्त्री से ज्ञान प्राप्त किया और योगाभ्यास भी करते रहे। चाणोद नामक स्थान पर स्वामी पूर्णानन्द जी से भेट हुई और उक्त स्वामी जी से मूलशंकर ने सन्यास ग्रहण कर लिया। इस समय इनका नाम दयानन्द सरस्वती हो गया। सन् १८५५ ई० में हरिद्वार में कुम्भ का मेला हुआ, स्वामी जी इसमें सम्मिलित हुए। यहां से हृषीकेश, टिहरी, रुद्रप्रयाग, गुप्तकाशी, गौरीकुण्ड, शिवकुण्ड, तुङ्गनाथ, अखीमठ, जोशीमठ, बदरीनारायण, रामपुर, मुरादाबाद, फर्रुखाबाद आदि स्थानों में घूमते हुये १८५५ ई० में कानपुर पहुँचे। यहां से काशी प्रयाग होते हुये नर्मदा के निकट ... की खोज में गये। इस समय महर्षि दयानन्द ने बड़े क्लेश का जीवन व्यतीत किया। जंगलों में इधर उधर भटकते और नगरों में अनेकों दिन अनशन रह जाना पड़ता। पर ज्ञान की सच्ची लगन उनको लगी हुई थी। जहाँ कही सुन पाते कि कोई विद्वान् पुरुष रहता है तुरन्त पहुँच जाते और उससे ज्ञान प्राप्त करने की चेष्टा करते। पर इन पुरुषों में कोई भी ऐसा दयानन्द की शंकाओं को मिटाने वाला उनको न मिला।

× × ×

गुरू के चरणों में

सन् १८५८ ई० में दयानन्द ने मथुरा नगरी में प्रवेश किया और गुरु विरजानन्द से अध्ययन करने लगे। इस विषय

विरजानन्द की जीवनी में विशेष रूप से लिखा जा चुका है।

× × ×

शंका निवारण

परमयती दयानन्द एक दृढ़व्रत करके गुरु से विदा हुये। आगरे में आकर दो वर्ष तक रहे और यहां पर अपने सिद्धान्तों को निश्चित करने तथा योगाभ्यास करने में उनका समय लगने लगा। कभी २ १८ घंटे की समाधि लगाकर बैठ जाते थे। इस प्रकार अपने को तैय्यार करके उन्होंने वेदों के उद्धार का बीड़ा उठा लिया। पहले ग्वालियर, करौली तथा जयपुर में उन्होंने वैष्णवों का खण्डन किया जिससे राजघराने के लोगों ने भी वैष्णव धर्म को त्याग दिया। स्वामी जी ने शैव मत का उन स्थानों पर मंडन किया था और उसका यहाँ तक प्रभाव हुआ कि राजा और रङ्क की कौन कहें घोड़ों के गले में भी रुद्राक्ष की मालायें लटकने लगीं आरम्भ से स्वामी जी शैव मत के अनुयायी थे परन्तु अब उनको यह शंका होने लगी कि शैव मत को कहां तक माना जाय। यह शंका उनको पीड़ा देने लगी और उन्होंने विचारा कि गुरु के चरणों में रख देना चाहिये। गुरु, ऋषि दयानन्द को देख कर आह्लाद से भर गये और उनको यह जान कर बड़ा सन्तोष हुआ कि उनका शिष्य सच्चे ज्ञान के फैलाने की चेष्टा कर रहा है। गुरु ने अपने शिष्य की सारी शंकाये निवारण कर दी और इस समय के उपरान्त स्वामी जी के सिद्धान्तों में किसी प्रकार का अन्तर न हुआ। उसी शैव मत जिसका वह मंडन कर चुके, खंडन करने लगे।

× × ×

पाखंड मर्दन पताका

सन् १९६७ ई० में गुरु से शंका निवारण करके ऋषि दयानन्द हरिद्वार आये। यहां पर इस समय कुम्भ का मेला लग रहा था। इतनी बड़ी भीड़ में जहाँ सहस्रों नामधारी साधु तथा असंख्य जनता पापों को धोने के लिये आई हो, ऋषि दयानन्द ने "पाखण्ड मर्दन पताका" गाड़ दी और लोगों को उपदेश देने लगे। स्वामी जी ने इतनी बड़ी भीड़ में सभी को पाखण्ड में फँसा हुआ पाया और सोचने लगे कि इतने बड़े अंधकार को को दूर कर देना सरल नहीं है। इसलिये अपनी शक्ति को व्यर्थ नष्ट न करना चाहिये और अपनी आत्मा की उन्नति करनी चाहिये। ऋषि दयानन्द सोचने लगे कि अपना समय क्यों नष्ट किया जाय—यह हिन्दू जाति तो रसातल को पहुँच ही चुकी है। इस अंधकार के दृश्य ने दयानन्द को अपने पथ से विचलित कर दिया और वे योगाभ्यास की सोचने लगे।

परन्तु परमात्मा को कब स्वीकार था कि वह दयानन्द को निश्क्रिय बना रहने दे। अंधकार को देख कर जो अँधेरा दयानन्द के हृदय में जागृत हुआ था वह प्रकाश ने दूर कर दिया। अब ऋषि दयानन्द ने दृढ़ प्रतिज्ञा करली कि किसी न किसी प्रकार से इस पाखंड को दूर करना चाहिये।

× × ×

मुठभेड़

फ़रुखाबाद में आकर ऋषि दयानन्द ने अपने सिद्धान्तों का प्रचार करना आरम्भ कर दिया। एक ईश्वर की उपासना का मंडन तथा मूर्त्ति पूजा का खंडन करने लगे। मूर्त्तिपूजा का खंडन सुनकर लोगों के हृदय काँप गये। सनातन धर्म हर प्रकार के आक्षेपों का सहन कर सकता था पर मूर्त्ति पूजा का खण्डन उन्हें असह्य हो गया। हज़ारों स्वार्थी ब्राह्मणों की जीविका का एक मात्र आधार मूर्त्ति पूजा ही थी। स्वामी जी के उपदेशों से प्रेरित होकर जब लोगों ने अपनी कंठिया उतार कर फेंक दी और मूर्त्तियाँ गंगा जी में बहादी तब तो ब्राह्मण उनसे बड़ा द्वेष करने लगे और उन्होंने चेष्टा की कि ऋषि दयानन्द के प्राण हर लिये जाँय पर इस प्रयत्न में उनको सफलता न मिली।

× × ×

काशी शास्त्रार्थ

मूर्त्ति पूजा का गढ़ काशी समझा जाता था, इसलिये ऋषि ने विचार किया कि अब की गढ़ पर ही विजय करनी चाहिये। रामगढ़, प्रयाग आदि होते हुये ऋषि काशी नगरी में पहुँचे। दुर्गाकुण्ड के समीप आनन्द बाग़ में ठहर गये। काशी के सारे पंडितों में खलबली मच गई कि एक कोपीन धारी साधु ऋग्वेदादि ग्रन्थों से मूर्त्तिपूजा का खण्डन करता है। ऋषि दयानन्द ने एक विज्ञापन भी निकाल दिया कि जिस किसी को इस विषय में शंका हो वह आकर शास्त्रार्थ कर ले। पंडित मंडली सोचने लगी कि क्या किया जाय क्योंकि इस प्रकार के खंडन से काशी की महिमा जाती थी।

१७वीं नवम्बर १८६९ ई० वा (कार्तिक सुदि १२ संवत् १९२६) को मंगलवार को दोपहर के तीन बजे शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। काशी नरेश ने सभापति का आसन ग्रहण किया। पं० ताराचरण तर्करत्न, स्वामी विशुद्धानन्द, पं० बाल शास्त्री तथा अनेको पंडितों ने ऋषि दयानन्द से शास्त्रार्थ आरम्भ किया। एक ओर काशी का पंडित समुदाय था और दूसरी ओर एक कोपीनधारी साधु। पंडितों ने बड़ी असभ्यता से कार्य्य किया और ऋषि दयानन्द का अपमान किया। इस शास्त्रार्थ का जो कुछ भी प्रभाव पड़ा हो। पर यह तो अवश्य ही हुआ कि विद्वान पंडित भी ऋषि दयानन्द की बातों पर विचार करने लगे और ऋषि को भी ज्ञात हो गया कि पंडित मंडली के पास मूर्त्तिपूजा के लिये कोई प्रमाण नहीं है।

× × ×

आर्य्यसमाज की स्थापना

काशी शास्त्रार्थ के उपरान्त ऋषि दयानन्द वैदिक धर्म का बड़े ज़ोर शोर से प्रचार करने लगे। काशी से प्रयाग आये जहाँ कुम्भ का मेला हो रहा था। इस मेले में ऋषि ने प्रचार किया। अनेक स्थानों पर घूमते हुये दिसम्बर १८७२ ई० में कलकत्ते पहुँचे। कलकत्ते में इस सम

ब्रह्मसमाज स्थापित हो चुका था और शिक्षित समाज इसमें सम्मिलित हो रहा था। यहाँ पर बाबू केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी का बड़ा आदर किया। इस समय तक स्वामी जी संस्कृत भाषा में ही व्याख्यान दिया करते थे। बा० केशवचन्द्र सेन की प्रार्थना पर स्वामी जी आर्य्यभाषा का प्रयोग करने लगे। कलकत्ते के बाद दक्षिण में स्वामी जी गये। यहां पर प्रार्थना-समाज वालों से भेंट हुई। स्वामी जी चाहते थे कि प्रार्थना समाज वाले अपना नाम आर्य्य-समाज रख लें। पर प्रार्थना समाज वाले वेदों के महत्व को नहीं स्वीकारकरते थे।

अब स्वामी जी ने विचार किया कि एक ऐसा समाज खोलना चाहिये जो वेदों का प्रचार कर सके। इसी विचार से सन् १८७५ ई० में उन्होंने बम्बई नगर में आर्य्य-समाज की स्थापना की। ऋषि जीवन में ही अनेकों स्थानों पर आर्य्य-समाज खुल गई थी पर अब उनकी संख्या १,५०० से भी अधिक है।

× × ×

साहित्य सेवा

ऋषि दयानन्द ने अपने सिद्धान्तों की पुष्टी में जो साहित्य सेवायें की वे यहां दी जाती हैं :—

(१) यजुर्वेद सम्पूर्ण भाष्य,
(२) ऋग्वेद का ७ मंडल तक भाष्य,
(३) सत्यार्थ प्रकाश,
(४) संस्कार विधि,
(५) ऋग्वेद भाष्य भूमिका,
(६) आर्याभिविनय,
(७) पंच महायज्ञ निधि,
(८) व्यवहार भानु,
(९) गोकरुणा विधि,
(१०) वेदान्त प्रकाश।

× × ×

मृत्यु की गोद में

सन् १८८३ में ऋषिवर जोधपुर पधारे जोधपुर नरेश के आचार व्यवहार की उन्होंने कड़ी आलोचना की। इस पर नन्हींजान नामक एक वेश्या क्रुद्ध हो गई और उसने रसोइये को मिलाकर ऋषि को विष दिलवा दिया। ऋषि दयानन्द को जब ज्ञात हुआ कि मुझे विष दे दिया गया तो रसोइये को बुलाकर थैली दी और कहा कि फ़ौरन भाग जाओ नहीं पुलीस तुमको फाँसी दे देगी। क्योंकि ऋषि संसार को स्वतन्त्र करने आये थे न कि बंधन में डालने। को एक मास तक स्वामी जी को बड़ा क्लेश रहा, परन्तु ब्रह्मचर्य्य तथा तपस्या के बल से वे उसको सहन करते रहे। ३० अक्टूबर १८८३ ई० को मंगलवार के दिन जब कि सारा भारतवर्ष दीपावलि मना रहा था ऋषि अपने नश्वर शरीर को छोड़कर परमात्मा की गोद में जा विराजे।

× × ×

ऋषि का बड़प्पन

ऋषि दयानन्द की आत्मा उन थोड़ी आत्माओं में से थी, जो दूसरों के लिये जन्म लेते हैं और दूसरों के लिये ही प्राण

देते हैं। ऋषि के जीवन की एक एक घटनायें उनकी महत्ता की द्योतक हैं। बचपन की शंकायें, गृहस्थ के सुखों को लात मारना, बर्फ की घाटी को पार करना, जंगलों तथा बीहड़ स्थानों में जंगली जानवरों का सामना करना, योग, तपस्या अध्ययन, शत्रुओं का सामना, राजाओं की निर्भीकता से कड़ी आलोचना करना, सिद्धान्तों की खोज, इतनी बड़ी साहित्य सेवा सभी महत्वशाली हैं। ऋषि में वह तेज था कि लोग तलवार लेकर आते वार करने का साहस न होता; ऋषि वह बल था कि ईंटों की वर्षा पुष्प जाती; ऋषि में वह आकर्षण राजा, रंक, विद्वान् सभी उनकी आकर्षित हो जाते थे; ऋषि में वह थी जो अब भी और सहस्रों शता के उपरान्त भी अंधकारमय चमक पैदा करेगी !

शंका समाधान

शंका—गायत्री चौबीस अक्षर की होनी चाहिये। छान्दोग्योपनिषद में भी कहा है कि—

(१) चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री।

(२) चतुश्चत्वारिंशदक्षरा त्रिष्टुप्।

(३) अष्टाचत्वारिंशदक्षरा जगती

(प्रपाठक ३ खण्ड १६)

अर्थात् गायत्री में चौबीस अक्षर होने चाहियें, त्रिष्टुप में ४४ और जगती में ४८।

शंका यह है कि "ओ३म् भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं" इस गायत्री मंत्र में २४ अक्षर नहीं, यदि 'तत्सवितुः' से आरम्भ करें तो केवल तेईस ही अक्षर होते हैं। 'भूर्भुवः स्वः' मिलाने से बहुत बढ़ जाते हैं। फिर किस को ठीक मानें ? छान्दोग्य को या प्रत्यक्ष को। प्रत्यक्ष गिनने से तो २३ ही होते हैं, जैसे

(१) तत् (२) स (३) वि (४) तुर् (५) व (६) रे (७) ण्यं (८) भर् (९) गो (१०) दे (१ (१२) स्य (१३) धी (१४) म (१ (१६) धि (१७) यो (१८) यो न: (२०) प्र (२१) चो (२ (२३) यात् ॥

अब बताइये कि छान्दोग्य अक्षर की गायत्री क्यों कही ?

समाधान—

गायत्री छन्द जिसकी ओर छा में संकेत है २४ अक्षरों का ही हो परन्तु 'तत्सवितुर्वरेण्यं' मंत्र साधारण छन्द में नहीं, किन्तु निचृद् ग छन्द में है। निचृद् गायत्री में अक्षर होते हैं। छान्दोग्य में सा गायत्री की ओर संकेत है 'तत्सवितु वाले गायत्री मंत्र की ओर नहीं। ग्य में यह तो लिखा नहीं कि तत्स रेण्यं' वाले मंत्र में २४ अक्षर हों वहाँ तो केवल यह लिखा है कि छन्द में २४ अक्षर होते हैं।

"तत्सवितुर्वरेण्यं" इति यह मंत्र ऋग्वेद मण्ड ३ सूक्त ६२ का १०वाँ मंत्र है और यजुर्वेद के तीन स्थलों पर आया अर्थात् अध्याय ३ मं० ३५, अध्याय २२ मंत्र ९, अध्याय ३० मंत्र २, इन चारों स्थलों पर इसका छन्द निचृद् गायत्री (अर्थात् २३ अक्षरों वाला) लिखा है। गायत्री नहीं। वेद में बहुत से मंत्र गायत्री छन्द में हैं जैसे 'विश्वानि देव सवितर्दुरितानि' इति। इनमें २४ अक्षर हैं। परन्तु जिस मंत्र का गायत्री या सावित्री नाम पड़ गया है अर्थात् तत्स-वितुर" इति वह साधारण गायत्री छन्द में है ही नहीं। छान्दोग्य के कर्ता का इस मंत्र से तात्पर्य्य नहीं था किन्तु 'विश्वानि देव' आदि २४ अक्षरों वाले छन्दों से था।

सामवेद उत्तरार्चिक, तृतीय प्रपाठक मंत्र १० में भी 'तत्सवितुर' मंत्र आता है। वहाँ इस को गायत्री छन्द ही लिखा लिखा है। इसका कारण यह है कि साम-वेद में गायत्री के प्रभेदों को अलग नहीं दिखाया है। परन्तु वहाँ भी इस में २३ ही अक्षर आते हैं अर्थात् निचृद् गायत्री के स्थान में भी गायत्री शब्द का ही प्रयोग किया गया है।

धार्मिक श्रद्धा

[प्रो० सत्येन्द्रनाथ एम. ए.]



स विज्ञान और उन्नति के युगमें धर्म या धार्मिक श्रद्धा का उप-हास किया जाता है। स्कूलों तथा कालिजों का कहना अलग रहा हर एक मंडली में धार्मिक पुरुषों की ही चर्चा रहती है। आफिसों में चार एक मनुष्य को छांट लेते हैं और उस पर चुटकियां कसते है, हँसते हैं और मौज उड़ाते हैं। यह एक देश का हाल नहीं है क्योंकि सभी देशों में इस विचार के मनुष्य सहस्रों की संख्या में पाये जाते हैं। यह तो हाल है उनका जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में घोषित कर दिया है कि हमारा धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं है। पर इस लेख में हम केवल उन्हीं लोगों की मीमांसा और आलोचना करेंगे जो मन्दिरों में जाते, और धार्मिक कृत्यों में भाग लेते हैं।

अभी थोड़े दिन हुये अमरीका के पादरी Rev. Charles stafford Brown के हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ कि इस बात की जांच की जाय कि मनुष्य क्यों गिरजा घर में आते हैं। यूरोप और अमरीका आदि देशों में यह

फैशन हो गया है कि लोग प्रत्येक रविवार को सुन्दर वस्त्रों से आभूषित होकर गिरजे में जाया करते हैं। इस विषय में स्त्रियां बढ़ चढ़ कर रहा करती हैं। हर रविवार को एक नई पोशाक में सुन्दरता की परियां जमा होती हैं लोग उनके रिबन की प्रशंसा करते हैं, कुछ उनके कटे हुये बालों पर लट्टू होते हैं, कुछ शिर के वस्त्र पर चकित होते हैं। स्त्रियां भी अपनी चीज़ों की बड़ी प्रशंसा करती हैं—डियर (Dear) यह up to date गाउन है। कल मेरी सहेली ने भेजी है। कल तक पेरिस में इससे बढ़कर फैशनेबिल Design अभी तक कोई भी नहीं निकली है। देखो कैसा मुलायम (Soft) कपड़ा है। कहने का तात्पर्य यह है कि गिरजाघर एक अजायब घर या एक प्रदर्शिनी है जहां पर लोग अपने वैभव, सुन्दरता का प्रदर्शन करते हैं। ऐसी अवस्था में धार्मिक वार्त्ता (Sermon) सुनना तो दूर रहा, उसका लोगों को ध्यान भी नहीं होता। पादरी अपने उच्चासन से पुस्तक पढ़ता रहता है और लोगों की दृष्टियां समुदाय में से किसी को ढूढ़ने में लगी रहती है।

इसी विचार से उक्त पादरी ने इस बात की जांच की। इस कार्य्य में उसने नगर के अन्य पादरियों की सहायता ली और एक रविवार को नगर के प्रत्येक गिरजाघर में एक फार्म बांट दिया गया। इस फार्म में कई प्रश्न पूछे गये थे। लोगों से प्रार्थना की गई कि वे स्पष्ट रीति से निस्संकोच यह लिख दें कि वे गिरजाघर में क्यों आते हैं? आने के कारणों में कौन सा मुख्य है? ३२० पुरुषों ने प्रकार के फार्म भर के भेजे और दिये हुये उत्तर यहां पर दिये जाते हैं।

(१) अधिक संख्या में लोगों यही उत्तर दिया कि उनके जाने का मात्र कारण यह है कि वे चाहते हैं उनके लड़के गिरजाघर में आना लड़कों का कहने से गिरजाघर में कठिन है पर उनको अपने साथ ले बड़ा सरल है। लड़कों का जाते २ पड़ जायगा।

(२) कुछ लोगों ने यह लिखा सैकड़ों वर्षों से उनके घर वाले गिरजाघर में. आया करते हैं। इस तथा गृह सम्मान को स्थिर रखने लिये ही वे गिरजाघर में आते हैं।

(३) थोड़े से लोगों ने लिखा उनकी स्त्रियाँ चाहती हैं कि गिरजाघर जाया करें। इसीलिये उनको स्त्रियों प्रसन्न रखने के लिये गिरजाघर में पड़ता है। दो मनुष्यों ने स्पष्ट रीति से कह दिया कि यदि वे न जावें तो ही पति पत्नियों में युद्ध होगा और युद्ध से वे अपनी जान बचाना चाहते

(४) एक तिहाई लोगों ने कारण दिये। कोई गिरजाघर जाता है क्योंकि घर भर में केवल मोटर चला सकता है। कोई जाता है कि उसकी मां ने मरते उससे ऐसा करने के लिये कहा था।

यह उस देश का हाल जिसको लोग अधार्मिक कहा करते हैं। हम तीयों का यह विचार है कि यदि

कहीं हैं तो भारतवर्ष में अन्य सब स्थानों के लोग अधार्मिक तथा दुराचारी हैं। परन्तु यदि वास्तव में देखा जाय तो हमारी धार्मिक श्रद्धा भी किसी प्रकार से कम गिरी नहीं है। हम उसी के दिग्दर्शन कराने की चेष्टा करेंगे।

भारत में धर्म के ठेकेदार दो जाति के लोग हैं। एक ब्राह्मण और दूसरे साधु सन्यासी। दोनों की दशा बड़ी शोचनीय हो रही है। ब्राह्मण जो हमारे गृहों में संस्कार कराने या कथा बाँचने आते हैं वे संस्कृत या अपने ही कृत्यों से सदा अनभिज्ञ है। यदि कथा बाँचनेवालों को आपने देखा हो तो यह सब बात स्पष्ट हो जायगी। पुस्तक में संस्कृत पाठ पंडित जी महाराज पढ़ देते हैं परन्तु उसका जो भाष्य भाषा में वह सुनाते हैं उसका संस्कृत से कोई भी सम्बन्ध नहीं होता। संस्कृत में कुछ भी लिखा हो सब में से उनके मन की बात निकल आती है। इन अज्ञानी पंडितों में भी श्रद्धा की बड़ी कमी है वे हैं टका पर काम करने वाले। चार आने में सत्यनारायण की कथा हो सकती है, दो आने में भी, और २ रुपये में भी। जो जैसा धन देगा उसको वैसी ही देर तक कथा सुनने को मिलेगी। सत्यनारायण की कथा पैसों के हिसाब से घट बढ़ सकती है। जब कथा बाँचने वाले ऐसे हों तो श्रोताओं पर उनका कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। यदि श्रोताओं को भी श्रद्धा होती तो शायद पंडित जी इतने मूर्ख न रहने पाते। बाबू साहब ने अपने नौकर से कह दिया आज पंडित जी को बुला लाना कथा कह जावें। पंडित जी ने कथा का नाम सुना तो फूल कर कुप्पा होगये अपनी पोथी पत्रा लेकर आ गये। नौकर ने पीढ़ा डाल दिया और पंडित जी गुन गुन करके कथा बाचते रहे और दक्षिणा लेकर रफूचक्कर हुये। यदि घर की स्त्रियों को कुछ काम नहुआ तो वे आकर बैठ गई। हिन्दुओं में जितनी कथा होती हैं उनमें पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ ही अधिक भाग लिया करती है क्योंकि पुरुषों को न श्रद्धा होती है और न उनके पास इतना समय ही है जो इस काम में लगा सके। स्त्रियों के हृदय में कुछ न कुछ श्रद्धा तो अवश्य रहती है कि कथा सुनने से कुछ न कुछ पुण्य अवश्य होगा परन्तु वे भी पूरी तौर भी एकान्त भाव से कथा नहीं सुनती।

कथा के अतिरिक्त संस्कारों का जितना प्रबन्ध है वह सब स्त्रियों के ही अधिकार में है। पुरुष इस विषय में भी उदासीन ही हैं। जिसका फल यह होता है कि पुरुषों के विचार जैसे भी हों सब काम स्त्रियों की इच्छा ही से होता है और यही कारण है कि सब सुधार बन्द पड़े हुये हैं। कुछ घरों में ऐसा देखा गया है कि पुरुष आर्य्य समाज के मुख्य कार्य्य-कर्त्ता हैं परन्तु उनकी देवियाँ उसी पुरानी लकीर को पीटने वाली हैं, इस फल यह होता है कि पिता के आर्य्य-समाजी होते हुये भी सब कार्य्य उसी पुरानी रीति पर होते हैं। बात यह है पुरुषों को अपने विचारों पर न श्रद्धा ही है और न विश्वास ही।

[शेष ८० पृष्ठ पर]



गुरुकुल रजत जयन्ती



सा कि हम गताङ्क में लिख चुके थे गुरुकुल वृन्दावन की रजत जयन्ती बड़े समारोह से १६ अप्रेल ३० से २१ अप्रेल तक मनाई गई। संस्कृत साहित्य सम्मेलन, सर्व-धर्म सम्मेलन, आर्य्य सम्मेलन, कवि सम्मेलन, वेद सम्मेलन, आर्य्य भाषा सम्मेलन, महिला सम्मेलन और प्रवासी सम्मेलन आदि २ की बड़ी धूम रही। जन-संख्या १० सहस्र के लगभग थी। चालीस सहस्र रुपया अपील में आया जो बहुत थोड़ा था। इस वर्ष चार स्नातक निकले अर्थात् ब्र० ब्रह्मानन्द जी, ब्र० वीरसेनजी, ब्र० नारायण जी, और ब्र० ब्रह्मदत्त जी। हमारी समझ में महिला सम्मेलन सब से अधिक सफल और चित्ताकर्षक था। इसके लिये देवियाँ हमारे धन्यवाद की पात्र हैं। हमको वेद सम्मेलन किसी अंश में भी सफल प्रतीत [illegible] हुआ। गुरुकुल की विशेषता इसी [illegible] कि वेद सम्मेलनों को महत्वपूर्ण [illegible] उपयोगी बनाया जाय। श्री प्रो० धा[illegible] नाथ जी ने विद्यापरिषद् के सभापति [illegible] हैसियत से जो छोटा सा अन्तिम भा[illegible] दिया था उसका हम बलपूर्वक अनुम[illegible] करना चाहते हैं। उसका सार यह था [illegible] विद्या-वृद्धि की ओर आर्य्य जनता के [illegible] अधिक उदार होने चाहिये। संकु[illegible] भाव चाहे कितना ही क्षणिक लाभ [illegible] न करें अन्त में विद्या के लिये हानिका[illegible] ही सिद्ध होते हैं। गुरुकुलीय उत्सव [illegible] सबसे महत्व पूर्ण दीक्षान्त संस्कार है [illegible] २० अप्रेल को प्रातःकाल मनाया ग[illegible] गुरुकुल के चान्सलर श्री राय[illegible] ठा० मशालसिंहजी का दीक्षान्त भा[illegible] (Convocation address) बड़े [illegible] का था। इसके कुछ उद्धरण नीचे [illegible] जाते हैं :—

"भारतवर्ष की अमूल्य सम्पत्ति [illegible] योग-यज्ञ, ज्ञान-विज्ञान, त्याग-तप [illegible] आदर्श हैं। इनके उपार्जन करने के [illegible]

भूतकाल में हमारे पूर्व पुरुषों ने अपनी समस्त विभूति, ऐश्वर्य और संचय की आहुति दे दी थी। इनकी रक्षा और पूर्णता के लिये अपनी प्रिय से प्रिय वस्तु का त्याग करते हुये भी उन्हें किञ्चित् खेद नहीं हुआ। आज यद्यपि भारतवर्ष सब प्रकार से दीन-हीन हो गया है और अपने पूर्व-गौरव को खो चुका है, फिर भी प्राचीन ऋषियों के आदर्श ही उसकी अमूल्य निधि बने हुये हैं।"

"सभ्यताओं का तो संघर्ष इस समय चल रहा है और विश्व भर में जैसी अशान्ति और क्षोभ का वायुमण्डल बना हुआ है, उससे मानवजाति को सुरक्षित रखने तथा उसे कल्याण के मार्ग में प्रवृत्त करने के लिये सत्य, ज्ञान, विज्ञान, धर्म-त्याग-तप-यश-योगादि भारतवर्ष के प्राचीन आदर्शों का इस समय भी बहुत महत्व है। विचारशील पुरुषों का कथन है कि काम, क्रोध, लोभ, हिंसा, अहङ्कार और द्वेष के आधिक्य से पाश्चात्य सभ्यता का नैतिक और आध्यात्मिक दिवाला निकल गया है उसे राक्षसी विनाश के गर्त्त में गिरने से बचाने का यदि किसी में सामर्थ्य है तो वे भारतवर्ष के उपर्युक्त आदर्श ही है।"

"विश्व सभ्यता में इन आदर्शों का अन्यत्र प्रचार होने से पूर्व यह आवश्यक है कि स्वयं भारतवासी अपने आदर्शों को साङ्गोपाङ्ग आत्मसत्कार उन्हें मूर्तिमान रूप दें।"

"तपोधन ऋषियों ने अपने सतत तपोबल द्वारा मानव इतिहास के प्रारम्भ में ही यह निश्चय कर लिया था कि त्रिगुणात्मिका प्रकृति से परे अविनाशी तत्व ब्रह्म हैं।"

"ब्रह्म और प्रकृति के सम्बन्ध के नियामक तत्वों का नाम धर्म है। जिस व्यवहार या स्थिति से मनुष्य प्रकृति के मोह पाश में न फँस कर अपने ब्रह्मत्व की रक्षा कर सके वही धर्म है।"

"इस कठिन मार्ग की सफलता के लिये वैदिक ऋषियों ने जिस रहस्यमय विज्ञान का आविष्कार किया, उसका नाम यज्ञ है।"

"ब्रह्माण्ड व्यापी विराट् यज्ञ से लेकर मनुष्य के आहार-विहार एवं श्वास-प्रवास पर्यन्त समस्त कार्यजात यज्ञ रूप हैं।"

"यज्ञ के द्वारा समस्त पदार्थों का दैवी विनियोग किया जाता है।"

"यज्ञ का रहस्य सहयोग है, प्रतिस्पर्धा नहीं।"

"यज्ञ की दूसरी विशेषता त्याग है। दाक्षिण्यगुण के बिना यज्ञ अपूर्ण होता है। यज्ञ की महिमा अधिक धन या जन या जन समुदाय में नहीं है। उसके लिये उच्च से उच्च त्याग भाव की आवश्यकता है।"

"वैयक्तिक जीवन की पूर्णता के लिये तप तथा योग दो और आदर्श हैं। कोई सभ्यता भोग की क्षमता बढ़ाने से बड़ी नहीं हो सकती। उसकी महत्ता इस बात में है कि वह मनुष्य के जीवन में तप और संयम को प्रधान स्थान दे। वेदों ने तप और योग के उच्चतम आदर्शों का अनेक वार गायन किया है सामाजिक उन्नति के लिये जो महत्व यज्ञ का है, वैयक्तिक उन्नति के लिये वही योग का है।"

"वैदिक शिक्षा पद्धति का उद्देश्य मानव जीवन में इन्हीं आदर्शों का विकास करना मात्र था।"

"आचार्य लोग विद्या के ही भण्डार न थे प्रत्युत तप के भी आगार थे। अथर्ववेद में कहा है कि आचार्य अपने ब्रह्मचर्य के बल से ब्रह्मचारी को प्राप्त करना चाहता है [आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते ११—५—१७] जिसने स्वयं विद्या की आराधना की है, वही दूसरे को उसका प्रसाद बांट सकता है। इसी प्रकार जिसने स्वयं तपस्या की है, वही ब्रह्मचारी को तपस्या के मार्ग में दीक्षित कर सकता है।"

"इस प्रकार की भावना ही गुरुकुल या आश्रम के अनुशासन (Discipline) का मूल मन्त्र है।"

"स्वेच्छापूर्वक किये तप से आत्मा का विकास और अनिच्छापूर्वक वाह्य नियन्त्रण से आत्मा का ह्रास होता है। आज गुरुकुलों के संचालकों का सबसे प्रधान कर्त्तव्य यह है कि वे दीक्षा के लिये शिष्यों के मन में स्वाभाविक उत्साह उत्पन्न करें और उसे कभी भार स्वरुप न होने दें। जो संस्थायें इस ओर ध्यान न देकर हठ या बल से संयम का पालन कराना चाहें, उनके लिये पहिले से ही असफलता विद्यमान है। चरित्र-संगठन, तप या दीक्षा अत्यन्त आवश्यक हैं। गुरुकुलों में यदि यह नहीं, तो उनकी और सरकारी व अर्ध सरकारी विद्यालयों की एकङ्गी शिक्षा में कुछ अन्तर नहीं रह जाता। इसलिये जो वस्तु हमारा अस्तित्व चरितार्थ करने के लिये सर्वोपरि है, उसके वास्तविक स्वरूप पर कुल के कर्णधारों को अत्यधिक ध्यान देना चाहिये।"

"गुरुकुल का जीवन तभी सर्थक है जब कि यहां के आचार्य और शिष्य अपने सारे समय और बल को वेदाध्ययन [...] सदाचार को दृढ़ करने में सदुपयोग [...] गुरुकुल ही यदि वेद की ओर से [...] दिखायेंगे तो अन्यत्र वेद का [...] असम्भव है। अतएव गुरुकुलों की [...] विधि में वेदों को ही प्रमुख स्थान [...] चाहिये। हमें सबसे बड़ी आवश्य[...] ऐसे सदाचारी वैदिक विद्वानों की [...] ऋषियों के आदर्शों को अपनाकर [...] सेवा ही अपने जीवन का व्रत बनालें, देश विदेश तथा समाज के प्रत्येक [...] निर्भीकता-पूर्वक वैदिक आदर्शों का [...] करें और अपने आचार व्यवहार [...] लोगों के मन में उनके प्रति श्रद्धा [...] भरें। प्राकृत जनों के समान सांसा[...] धन्धों में लिप्त हो जाने वाले सौ [...] से विनीत और शिक्षित एक लोक[...] स्नातक कहीं अधिक बढ़कर है। [...] स्नातकों को यह बात सदा ध्यान में [...] चाहिये कि जिस ज्ञान का सम्पादन [...] गुरुकुल में किया है, उसका लोकहि[...] त्याग (?) करना ही महान् यज्ञ है। [...] उसका अध्ययन और आचार्यों का [...] यन सफल होगा। देश ने आपकी [...] में जो धन व्यय किया है उसका [...] करना सब स्नातकों का धर्म है।"

× × ×

रूस का धर्म-वहिष्का[र]

रूस के लोग ईसाई धर्म से [...] हैं। ग्लूकोवा (Gluchova) और [...] ड्रोस्क (Bogodrosk) प्रान्तों में [...] रूसी किसानों ने पवित्र [...] (ikons) को इकट्ठा करके होली [...] दी और गिरजों के धार्मिक चिह्नों [...]

नष्ट करके उनको क्रीड़ाघर बना डाला। रूसियों ने ईसाई धर्म और अन्य धर्मों के विरुद्ध शपथ खाली है। कैण्टरबरी के विशप और रोम के पोप ने संसार भर से अपील की है कि ईसाइयों को रूसियों के वर्तमान अत्याचारों से बचावें।

रूसियों का यह क्रोध स्वाभाविक है। जिस धर्म के कारण उनका इतना अधोपतन हुआ उससे उनको कैसे प्रेम हो सकता है? रोम के पोप कहाँ गये थे जब ईसाई धर्म के नाम पर रूसियों पर अत्याचार किये जाते थे और उनको दासत्व की बेड़ियाँ ईसाई अधिपतियों द्वारा कड़ी की जाती थीं? वस्तुतः जब तक सच्चे धर्म का प्रचार न होगा, लोग धर्म से रुष्ट ही रहेंगे। वेद ने सच कहा है।

यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति।

धर्म के नाम से किसी का कल्याण न होगा। कल्याण के लिये वास्तविक धर्म चाहिये।

लंदन में आर्य्यसमाज

पाठकों को यह जानकर बड़ा हर्ष होगा कि ब्रिटिश साम्राज्य की राजधानी में वैदिक धर्म प्रचार बड़ी तेजी के साथ हो रहा है। कई मास से डाक्टर भगतराम इंगलैंड अँग्रेजी जनता में वैदिक सभ्यता तथा वैदिक ज्ञान को फैला रहे हैं और इस कार्य्य में उनको बड़ी सफलता मिल रही है। इस प्रचार के कार्य्य को दृढ़ बनाने के लिये माननीय डाक्टर साहब ने एक वैदिक स्कूल का उद्घाटन भी कर दिया है जिसका उद्देश्य "आलमगीर भ्रातृभाव और शान्ति की शिक्षा देना है।" एक पत्र Voice of the Arya Varta नाम का निकलनेवाला है।

इस प्रचार कार्य्य में डाक्टर भगतराम को बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। आर्थिक सहायता अधिक मिलने पर यह कार्य्य और भी उत्तमता से हो सकेगा। हम डाक्टर साहब को बधाई देते हैं और आशा करते है कि भारतीय आर्य्य उनको इस कार्य्य में विशेष सहायता देंगे जिससे कि वैदिक सूर्य्य का प्रचार भूमण्डल के कोने कोने में फैल सके। वेदों का ज्ञान परम पिता परमात्मा ने सारे प्राणी मात्र के लिये दिया है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि भारत की चारदीवारी से बाहर भी उसकी ज्योति पहुँच सके। वर्तमान काल में जो अशान्ति यूरोपीय देशों में फैल रही है। उसका एक मात्र कारण सच्चे ज्ञान की अनभिज्ञता ही है।

स्याम देश में संस्कृत छटा

अभी हाल में कपूरथला के महाराज अमेरिका और पूर्वीय द्वीप समूह की यात्रा करके लौटे हैं। उन्होंने अपनी यात्रा का कुछ हाल दिया है। स्याम की राजधानी बंगकाक (Bangkok) के विषय में जो लेख लिखा गया है उससे स्यामियों के नामों का पता लगता है। यह नाम शुद्ध संस्कृत नामों के अपभ्रंश है। सम्भव है शुद्ध संस्कृत नामों को वर्तमान रीति से उच्चारण करने में कुछ भेद पड़ गया हो। कुछ नामों का यहाँ देना मनोरञ्जक तथा शिक्षाप्रद होगा।

महाराज अरण्य प्रदेश (Aranye Pradesh) से चलकर ५ दिसम्बर को राजकुमार पौरचत्र (Poura chatra) की रेलगाड़ी द्वारा वंगकाक पहुँचते हैं। जिस होटल में ठहरते हैं वह भूतपूर्व स्याम नरेश राम का महल था। कपूरथला नरेश को फ्र-मित्र-करम-रक्षस (Phra-Mitra-Karam-Rakohas) सैर कराने ले जाते हैं। यह राजकुमार पौरचत्र के प्राइवेट सैक्रेटरी हैं। स्वागत-भवन का नाम अनन्त समागम है जिसको बने दशवर्ष हुये हैं। ६ दिसम्बर को वे महा-चक्रि-महल (Maha-Chakri Palace) को देखने गये। मन्दिरों तथा महलों में हिन्दू सभ्यता के चिह्नों की भरमार है। जैसे गरुड़, विष्णु तथा ब्रह्मा की मूर्तियाँ।

बंगकाक का सरकारी नाम है देवमहा नगर अमर रत्न कुसीन्द्र महीन्द्र सुधावति। वर्तमान स्याम-नरेश का नाम है प्रजाधिपक। यहाँ की भाषा पाली है और संस्कृत से बहुत मिलती है। ऊपर के नामों से प्रकट होता है कि स्याम ने प्राचीन संस्कृत नामों को भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक सुरक्षित रक्खा है।

राजनीतिक आन्दोलन

आजकल भारतवर्ष के समष्टि रूप मस्तिष्क में सर्वोपरि यदि कोई बात है तो वह है राजनीतिक आन्दोलन। जनता का कोई भाग क्यों न हो वह अपनी शक्ति तथा अपने विचारानुसार राजनीति को स्थिर करने का विचार कर रहा है। चाहती है कि हमको स्वराज्य मि सरकार चाहती है कि येन केन प्रजा को उच्छृङ्खल होने से रोका ज का बहु पक्ष स्वतंत्रता चाहता है। न्यू भाग अपनी माँगों पर डटा हुआ है तक इतना न दे दो हम तुम्हारा देंगे।" बहुपक्षीय स्वतंत्रतावादी को अपनी ओर मिलाना चाहते हैं सरकार इनको प्रलोभन देकर अप खींचना चाहती है। स्वतंत्र-दलने दिया है कि स्वराज्य मिलने प पछताना पड़ेगा जो इस समय स्व बाधक हो रहे हैं। सरकार ने से घोषित कर दिया है कि जो ल कार से विरुद्ध प्रतीत होंगे उनको सरकारी नौकरी ही न मिलेगी कि देश को जो कुछ मिलता था वह कोटि में फेंक दिया जायगा। इ सभी के हृदय तथा मस्तिष्कों में पड़ रही है। सब समझते हैं कि कुछ होना है। क्या होना है यह क कह सकता। एक ओर लोग क्रा उसके भयानक परिणामों से भय रहे हैं दूसरी ओर कहा जा रहा क्रान्ति तो एक प्रकार का सर्जीकल रेशन (Surgical Operation) विना चीरा दिये तो फोड़ा अच्छा नहीं

महात्मा गांधी जी लोगों को के लिये तैय्यार कर रहे हैं कि भरसक किया जाय परन्तु हिंसा का भी न हो। पिट जाओ पीटो मत। मा मारो मत। गाली खाओ गाली धक्के खाओ धक्का मत दो। दूस से यह कहा जा रहा है कि यह

का नहीं। सारा देश तो गाँधी जी नहीं हैं। परन्तु अब तक जो आन्दोलन हुआ है उस से एक बात स्पष्ट है। वह यह कि अहिंसात्मक रहने की शक्ति लोगों में बढ़ रही है। छोटे छोटे बच्चे भी क्रोध को रोक कर पिटने के लिये तैयार हो रहे हैं। फिर भी यदि कहीं कहीं गड़बड़ हो जाती है तो इस का कारण यह है कि प्रत्येक शिक्षा के लिये समय चाहिये। हमारी समझ में अहिंसात्मक आन्दोलन पर सब को विश्वास है सिवाय सरकार के। और सरकार को विश्वास होना कठिन है क्योंकि इनके हाथ में शक्ति है। यदि इन को भी विश्वास हो जाता तो शायद आन्दोलन की आवश्यकता ही न पड़ती।

यह आन्दोलन कितना बढ़ेगा यह कहा नहीं जासकता। यों तो सभी राजनीतिक नेता पकड़ लिये गये। परन्तु सब के प्राण-स्वरूप महात्मा गांधी जी की गिरफ़्तारी ने अत्यन्त विचारणीय समस्या उत्पन्न कर दी है। उनकी गिरफ़्तारी अचानक तो नहीं हुई। आश्चर्य यह है कि वह छः सात सप्ताह क्यों जेल के बाहर रहने दिये गये। परन्तु एक बात बड़ी आश्चर्य जनक है। सबको आशा थी कि महात्मा जी नमक के क़ानून पर पकड़े जायँगे। परन्तु ऐसा नहीं हुआ। उनपर १८२७ ई० का २५वाँ रेग्यूलेशन लगाया गया है जिसके अनुसार न अभियोग, न सुनवाई, न गवाह, न इज़हार। सरकार ने चाहा और पकड़ लिया और जब तक चाहेगी तब तक रक्खेगी। इस से क्या यह समझना चाहिये कि १८२७ ई० में देश की जो दशा थी हम अब उसी दशा को पहुँच गये हैं ? हमारी नैतिक अवस्था १०३ वर्ष पीछे हट गई। इस को सरकार किस बात का सूचक समझती है ?

सबसे भयानक बात प्रेस आर्डीनेंस है। यद्यपि वायसराय महोदय ने निश्चय दिलाया है कि जो पत्र क्रान्तिकारी नहीं उनको इससे कुछ हानि न होगी। परन्तु इस आर्डीनेंस को अब तक जिस प्रकार से चालू किया गया है उससे तो यही प्रतीत होता है कि जिसके हाथ में क़लम है उसका एक पैर जेल के भीतर है और एक बाहर। क्योंकि न जाने कौन सा शब्द और कौन सा भाव क्रान्तिकारी समझ लिया जाय। 'अनन्ता: वै वेदा:' "नानार्था: शब्दा:"। फिर वर्तमान वायुमण्डल में सिवायराजनीति के है ही क्या ? कुछ कहो, किसी प्रकार कहो, किसी भाव से कहो कुछ न कुछ अवश्य ही तोड़ा मरोड़ा जा सकता है। कम से कम तोप तैयार है। उसके मुँह के सामने खड़े हैं और लेख लिख रहे हैं। कलकत्ते के लगभग सभी भारतीय पत्र बन्द हो गये। दिल्ली की भी यही हाल हुआ। और तो और "शुद्धि समाचार" भी बन्द हो गया। अन्य पत्र न जाने क्यों चल रहे हैं और कब तक चलेंगे। इस वाता-वरण के लिये क्या कहा जाय ? हम कोरे प्रार्थनावादी तो नहीं हैं तथापि प्रार्थना को व्यर्थ नहीं समझते इसलिये हम तो यही कहेंगे कि

हे देव सवितः।
विश्वानि दुरितानि परासुव।
यद् भद्रं तन्न आसुव॥

[पृष्ठ ७३ के आगे]

अभी ऊपर उल्लेख कर चुका हूँ कि हमारे सन्यासी वर्ग में अभी तक जागृति नहीं हुई है। इस समय भारत में हज़ारों की संख्या में साधु चिमटा हिलाते हुये फिरते हैं। इनको न धर्म का ज्ञान है, न ये जानते हैं कि सन्यासियों का क्या कर्त्तव्य है। ये साधु कुछ काम नहीं करते हैं और बहुत से इनमें से ऐसे भी हैं जिन को सम्भवतः सदाचारी नहीं कहा जा सकता। ये सब के सब हिन्दुओं के धन के ऊपर अपना जीवन व्यतीत करते हैं और सेठ साहूकार अपना असंख्य धन इनको लड्डू खिलाने में नष्ट करते हैं। इसको शायद कुछ लोग श्रद्धा ही कहें पर मैं तो अन्ध श्रद्धा या मूर्खता की कोटि में ही रख सकता हूँ।

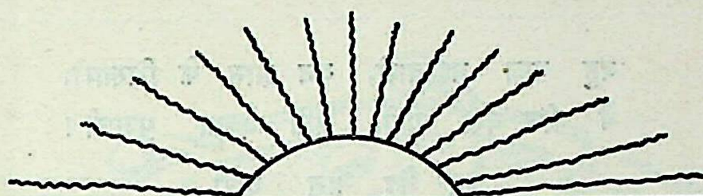
अमरीकन पादरी ने जिस प्रकार अपने देश के ईसाइयों की जाँच की उसी प्रकार से यदि हमारे यहाँ भी जाँच की जाय तो बहुत थोड़ा ही अन्तर मिलेगा। आर्य्य-समाज में इस समय साप्ताहिक अधिवेशनों में बहुत कम उपस्थिति हुआ करती है। प्रत्येक स्थान पर २०, २५ पुरुष जमा होकर हो अपने अधिवेशन कर लिया करते हैं। यूरोप में रविवार के दिन लोग स्वच्छ वस्त्र पहन कर जाया करते हैं पर यहां पर लोग वैसे चाहें जैसे उत्तम रूप में रहें पर समाज में जब जावेंगे तो खराब खराब और मैले से मैले कपड़े पहन जाते हैं क्योंकि लोग साप्ताहिक अधि- वेशनों का वास्तविक महत्व नहीं सम गिरजाघर में लोग इसलिये आते हैं उनके लड़कों को गिरजे में जाने आदत पड़ जाय, पर आर्य्य समाज लोग वृद्ध होते ही आना बिलकुल कर देते हैं जिसका फल यह होता है उनके पुत्रों का सम्बन्ध आर्य्य समाज बिलकुल छूट जाता है। इसलिये ईसाई इस बात में बढ़े हुये हैं हम उसमें पीछे पड़े हुए हैं।

हमारी स्त्रियां अशिक्षित होने कारण सभा सुसाइटियों में बहुत भाग लेती हैं इसलिये वे अपने पति को वहां भेजने का यत्न ही नहीं सकती। कुछ लोग स्वार्थवश आर्य्य समाज के मुख्य कार्य्य कर्त्ता हो हैं। कुछ डाक्टर हैं, कुछ वकील हैं, दूकान वाले हैं। इनका एक मात्र यही है कि उनके व्यापार में वृद्धि हो ऐसा कार्य्यकर्त्ता उसी समय तक का कर सकता है जब तक उसके स्वार्थ हो सके।

विश्वास और श्रद्धा का बड़ा सं है। यदि हमको किसी चीज़ में विश्वास तो उसमें श्रद्धा भी अवश्य होनी चाहिये श्रद्धा के बिना हमारे सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं।

———

ओ३म्



वेदोदय

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३।४।१।१]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती हैं।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग १ | ज्येष्ठ, संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०५; जून १९३० | संख्या ३

आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३०

हमारा सर्वस्व

[ले०—वैदिक धर्म विशारद पं० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालङ्कार एम० ए०]

परमेश का पसारा,
संसार का सहारा।
वर वेद धर्म प्यारा,
सर्वस्व हो हमारा॥

करते सदा रहे थे योगीश मान जिसका;
तरते मुदा रहे थे, ले गेय ज्ञान जिसका।
सुरलोक का सहारा,
सर्वस्व हो हमारा॥ १॥

बहु बाल ब्रह्मचारी, बन ज्ञान के भिखारी;
थे पीत वस्त्र धारी, श्रुति देवता पुजारी।
व्रत वेद हेतु धारा,
सर्वस्व हो हमारा ॥ २ ॥

वर्चस्वि ब्राह्मणों को सुरतेज मानदाता;
बरवीर क्षत्रियों को बल ओज का विधाता।
विट् शूद्र का सहारा,
सर्वस्व हो हमारा ॥ ३ ॥

जगदीश ! जब मरें हम, श्रुति वेद वेद रटते;
बलिदान निज करें हम पीछे कभी न हटते।
वैदिक क्षुरस्य धारा,
सर्वस्व हो हमारा ॥४॥

प्राचीन आर्य जन का बस प्राण वेद ही था;
जीवन तथा मरण का श्रुति हित अभेद ही था।
श्रुति "सूर्य" का उजारा;
सर्वस्व हो हमारा ॥ ५ ॥

—"सूर्य"



वेदों की झांकी

[३]

सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।
अहो रात्रे प्रजायेते अन्यो अन्यस्य रूपयोः॥

[अथर्व वेद काण्ड १०, सूक्त ८ मंत्र २३]

(एनम्) उसको (सनातनम्) हमेशा रहनेवाला (आहुः) कहते हैं (उत) जो (अद्य) आज (स्यात्) होवे (पुनः) फिर (नवः) नया। (अहो रात्रे) रात दिन दोनों (अन्यो) एक (अन्यस्य) दूसरे के (रूपयोः) रूपों में (प्रजायेते) उत्पन्न होते हैं।

इस मंत्र में ईश्वर और उसकी सृष्टि को सनातन अर्थात् सदा रहने वाला कहा है। यद्यपि आज वह नया प्रतीत होता है। परमात्मा नित्य अपनी सृष्टि नई उत्पन्न करता है। कुछ न कुछ प्रतिक्षण बना ही करता है। पौधे ने अङ्कुर दिया। हम कह उठे कि नया वृक्ष उत्पन्न हुआ। एक बालक ने जन्म लिया। हमने कहा आज एक नया मनुष्य उत्पन्न हुआ। इसी प्रकार अनेक प्रकार की नई घटनायें होती रहती हैं। परन्तु इनमें कितना नयापन है और कितना पुरानापन? यही एक प्रश्न है जिस पर इस मंत्र में प्रकाश डाला गया है। साधारण कहावत है कि इतिहास अपने आपको दुहराता हैं History repeats itself. इस कहावत का क्या अर्थ है? यही न कि घटनायें नित्य एकसी ही होती हैं। उनको एक तो नहीं कह सकते परन्तु एकसी कहते हैं। एक अर्थ में तो उनको एक भी कह सकते हैं। क्योंकि बाह्य नाम और रूप में भेद होता है परन्तु वह मुख्य नियम जो पहली घटना में ओत प्रोत था इस घटना में भी उसी प्रकार ओत प्रोत होता है।

प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटना को हम दो प्रकार से देख सकते हैं एक तो वैयक्तिक रूप से। दूसरे उस नियम की अपेक्षा से जिसके पालनार्थ वह वस्तु बनी या घटना हुई। जैसे कल्पना कीजिये कि आज एक मनुष्य उत्पन्न होता है उसका आप एक नाम रखते हैं। समझ लीजिये कि वह देवदत्त है। यह देवदत्त संसार के सभी पुरुषों से भिन्न है अन्यथा उसका व्यक्तित्व स्थापित न हो सकता। आप

दस हज़ार पुरुषों में देवदत्त को खड़ा कर दीजिये। वह झट अलग से पहचाना जा सकेगा। सब कहेंगे कि यह भिन्न पुरुष है अथवा नया पुरुष है। परन्तु इस देवदत्त में कितना नयापन है और कितना पुरानापन। जिन नियमों का देवदत्त से प्रकाश होता है उन्हीं का अन्य मनुष्यों से। इसीलिये उसकी मनुष्य संज्ञा है। मनुष्य व्यक्ति के रूप में अलग नई वस्तु हो परन्तु मनुष्यत्व की अपेक्षा से नई वस्तु नहीं है। व्यक्ति में जाति व्यापक है। यह जाति सनातन है।

हम एक कटोरा जल लेते हैं। यह जल आक्सीज़न और हायड्रोजन की एक नियत मात्रा है। यह जल प्रयाग में प्राप्त हुआ है। प्रश्न यह है कि इस जल में और न्यूयार्क या लन्दन में प्राप्त हुये जल में क्या भेद है? और इस आज प्राप्त हुये जल में तथा उस जल में जिसे राजा रामचन्द्र जी अयोध्या में त्रेतायुग में पिया करते थे क्या भेद था? क्या उस जल में आक्सीजन और हायड्रोजन की मात्रा कुछ भिन्न थी। वैज्ञानिकों का ऐसा मत नहीं है। विज्ञान बताता है कि वैज्ञानिक नियम हर देश और हर काल में एक से ही रहते हैं उनमें कोई किसी प्रकार का भेद उत्पन्न नहीं होता।

वेद मंत्र में इसी सचाई का वर्णन है। इसके दूसरे भाग में एक उदाहरण दिया गया है। रात और दिन नित्य पैदा होते हैं। परन्तु एक दूसरे के रूप में। अर्थात् एक दिन दूसरे दिन से भिन्न नहीं है। सोमवार और शनिवार एक से हैं। आज का दिन और द्वापर या सतयुग का दिन समान हैं। उनमें कोई [illegible] नहीं है।

इसी सचाई को दूसरे शब्दों में [illegible] वर्णन कर सकते हैं कि संसार प्रवाह [illegible] नित्य और अनादि है। केवल स्वरूप [illegible] अनित्य और सादि हैं। जैसे दिन के [illegible] रात और रात के पीछे दिन होता है। [illegible] क्रम कभी समाप्त नहीं होता। इसी प्रकार सृष्टि के पीछे प्रलय और प्रलय के [illegible] सृष्टि आती है। और सृष्टि के अन्तर्गत भी सृष्टि और प्रलय शामिल है [illegible] सृष्टि की समस्त वस्तुएँ नित्य बनती [illegible] बिगड़ती रहती हैं। एक मनुष्य मर [illegible] है। यही छोटे रूप में प्रलय है। [illegible] उत्पन्न होता है। यही छोटे रूप में सृष्टि [illegible] फिर उस मनुष्य के शरीर को लीजिये [illegible] इस शरीर के कुछ अवयव प्रतिक्षण [illegible] होते रहते और दूसरे अवयव बनते [illegible] हैं। इन छोटे अवयवों की अपेक्षा [illegible] सृष्टि और प्रलय प्रतिक्षण हुआ करती है। वस्तुतः यह वैसा ही प्रवाह है जिसका [illegible] वेद मंत्र से संकेत है। परन्तु यह प्रति[illegible] प्रतिदिन, प्रतिपक्ष, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, प्रति[illegible] बदलने वाली सृष्टि तथा प्रलय भिन्न [illegible] केवल स्वरूप नया है। चीज़ एक है, [illegible] (law) एक है, नियन्ता एक है। (अथ [illegible] पुनः नवः) अर्थात् आज यह नई हो। [illegible] यह नई मालूम होती है। परंतु व[illegible] यह नई नहीं है। दार्शनिकों और त[illegible] के लिये यह पुरानी है नित्य है, सन[illegible] है। इसीलिये तो कहा गया है कि ([illegible] तनमेनमाहुः) अर्थात् तत्वज्ञ इसको स[illegible] तन कहते हैं। साधारण लोगों की [illegible] स्थूल है। जो सूक्ष्मदर्शी नहीं हो[illegible]

वेदमंत्र में 'अद्य' और 'पुनर्णव' के साथ स्यात् शब्द पड़ा है। अर्थात् आज वह नया ही क्यों न प्रतीत "होता हो"। यह प्रतीति स्थूलदर्शियों के लिये है तत्वदर्शियों के लिये नहीं स्थूल दर्शी माला के दानों को देख सकते हैं परन्तु उनको वह सूत दिखाई नहीं देता जिस पर यह दाने स्थित हैं। अर्थात् जो इन दानों का आधार है। वह प्रत्येक वस्तु को "नया" कहते हैं क्योंकि उनकी दृष्टि 'अद्य' अर्थात् आज पर हैं। वह वर्त्तमान की बात ही सोच सकते हैं। वह भूत को भविष्य से मिलाकर नहीं देख सकते।

'धर्म' के साथ 'सनातन' शब्द का प्रायः प्रयोग हुआ करता है। भारतवर्ष में तो प्रत्येक हिन्दू कहता है कि मैं सनातन धर्मी हूँ। प्रश्न होता है कि धर्म के साथ 'सनातन' विशेषण लगाने से क्या विशेषता आ जाती है। वस्तुतः धर्म अर्थात् मानवी कर्त्तव्य सनातन ही हुआ करता है। सनातन का अर्थ ही यह है कि वह देश और काल की मर्य्यादा से अतीत हो जाय। मानवी राजाओं के कानून बदलते रहते हैं कभी बाल-विवाह धर्म है और कभी पाप। अर्थात् कभी बाल-विवाह न करने पर दण्डनीय होता है कभी उससे विपरीत बाल-विवाह करने पर। इसी प्रकार मनुष्यों के चलाये धर्म का हाल है। जैसी उनको आवश्यकता पड़ती है वैसा ही विहित और उचित ठहरा देते हैं। परंतु परमात्मा ने मनुष्य के लिये जो वास्तविक धर्म बताया वह नया होने पर भी पुराना ही रहता है। नया केवल इस अर्थ में है कि नये लोग नई अवस्था में उसका प्रयोग करते हैं। परन्तु है वह पुराना या सनातन, क्योंकि जिस प्रकार प्राचीन काल में उसका करना पुण्य और न करना पाप था उसी प्रकार आज भी है और कल भी रहेगा।

वेद मन्त्र एक और बात पर प्रकाश डालता है। क्या भिन्न भिन्न युगों का भिन्न भिन्न धर्म होता है ? क्या जो बात सतयुग में धर्म थी वह द्वापर या कलियुग में अधर्म हो गई ? हिन्दुओं में साधारण लोगों का ऐसा ही विचार है। वह कहा करते हैं कि अमुक प्रथा तो सतयुगकी है। आज उसका करना ठीक नहीं। अन्य धर्मों में भी जो काल के विचार से नये हैं। लोगों ने ऐसा मान रक्खा है कि पहले आदमियों के लिये खुदा का यही हुक्म था। अब यह हुक्म मनसूख़ होगया। ऐसा मानने का आधार क्या है ? इसके मुख्य कारण दो हैं, एक तो तत्वदर्शिता का अभाव, दूसरा स्वार्थ। जब एक पैग़म्बर एक बात को मनवाना चाहता है और यह भी नहीं चाहता कि दूसरे पैग़म्बर के विरुद्ध कहकर मैं जनता को रुष्ट करूँ। तो वह सीधा यह नियम घोषित कर देता है कि पहले ऐसा ही हुक्म था अब मनसूख हो गया। मानो खुदा अपने हुक्म को नित्य बदलता रहता है। यदि खुदा और खुदा के हुक्म बदलते रहें तो वह परिणामी और अनित्य हो जाय। फिर वह खुदा न रहे। इसलिये इस वेद मन्त्र के अनुसार धर्म युगों की अपेक्षा से बदलते नहीं किन्तु एक से रहते हैं। क्योंकि ईश्वर सनातन हैं और ईश्वर ने मनुष्य का जो कर्त्तव्य निर्धारित किया है वह भी सनातन है। तत्वज्ञ इस बात को भली भाँति समझते हैं।

स्वधर्मे निधनं श्रेयः

[श्रीयुत कृष्णानन्द जी]



दिक धर्म में अन्य धर्मों से एक बड़ी विशेषता यह है कि वैदिक धर्म में ज्ञान, कर्म और ईश्वरोपासना तीनों समान रूप से आवश्यक हैं, अन्य धर्मों में ऐसा नहीं है। कोई धर्म ज्ञान प्रधान है तो कोई कर्म प्रधान, कोई धर्म भक्ति प्रधान है तो कोई विश्वास प्रधान अर्थात् कोई धर्म ज्ञान को मुख्य मानता है, कर्म व भक्ति को गौण समझता है, कोई धर्म ज्ञान व कर्म को तुच्छ समझता और भक्ति को ही मुक्ति का प्रधान साधन मानता है। और कोई धर्म (मज़हब) व्यक्ति विशेष पर विश्वास लाने को ही मुक्ति का साधन मानता है। परन्तु वैदिक धर्म में यह उत्तमता है कि वह मुक्ति की प्राप्ति के निमित्त किसी विशेष व्यक्ति पर ईमान लाने को नहीं कहता किन्तु ज्ञान बढ़ाने, कर्त्तव्य कर्म और ईश्वरोपासना तीनों पर जोर देता है। अन्य मतों में यह दोषापत्ति है कि जो मत भक्ति को मुख्य मानेगा वह ज्ञान बढ़ाने और कर्त्तव्य करने पर विशेष ध्यान न देगा और जो मत ईमान लाने को ही मुक्तिप्रद मानता है वह स्वभावतः ज्ञान व कर्म की उपेक्षा करेगा, परन्तु वैदिक धर्म में ऐसी त्रुटि नहीं है। वह तीनों को समान रूप से आवश्यक मानता है अतः अन्य धर्म अधूरे हैं, वैदिक धर्म ही सर्वाङ्गपूर्ण है। विचारपूर्वक देखिये तो गीता भी ज्ञान, कर्म, भक्ति (या उपासना) तीनों को समानरूप से आवश्यक बतलाती है।

वर्त्तमान समय में हमारे बहुत से भाई गीता के

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः॥*

श्लोक का प्रमाण देकर कहा करते हैं कि जो मनुष्य जिस जाति में उत्पन्न हुआ उसे अपने पिता का सम्प्रदाय और व्यवसाय ग्रहण करना चाहिए। वे लोग "स्वधर्म" का अर्थ अपने पिता पितामह का सम्प्रदाय (मत) और व्यवसाय समझते हैं। यदि वे लोग धर्म शब्द का यथार्थ अर्थ समझ जायँ तो इस भ्रम में कदापि न पड़ें और न गड़बड़ मचावें।

गीता के अनेक स्थलों में धर्म शब्द किस अर्थ में आया है इसका विचार हो जाने पर स्वधर्म और परधर्म का निर्णय करना अत्यन्त सुगम हो जायगा।

मैंने जहाँ तक विचार किया है, संस्कृत ग्रन्थों में अनेक स्थलों पर "धर्म" शब्द

*अपना गुणहीन धर्म भी अच्छा है परन्तु दूसरे का अच्छी तरह से कर सकने योग्य धर्म भी अच्छा नहीं। अपने धर्म में मर जाना अच्छा है, दूसरे का धर्म भयानक है।

"कर्त्तव्यकर्म" के ही अर्थ में आया है। है। गीता में भी धर्म शब्द अधिकतर कर्त्तव्यकर्म के ही अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। देखिये अ० ४ श्लोक ७-८।

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

भावार्थ—जब जब धर्म की अति-न्यूनता होती है अर्थात् लोग कर्त्तव्यकर्मों को भूलकर अकर्त्तव्य (अन्याय और अत्याचार) में अधिक लग जाते हैं तब तब कोई महापुरुष उत्पन्न होकर साधुओं (कर्त्तव्यनिष्ठ सज्जनों) की रक्षा और दुष्टों व अत्याचारियों का नाश करके धर्म (कर्त्तव्यकर्मों) की मर्यादा स्थापित करते हैं।

नेहाभिक्रम नाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते।
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥
अ० २-४०

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।
अ० ७-११

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणंव्रज।
अ० १८-६६

विचार करने से पता लगता है कि इन सब श्लोकों में "धर्म" शब्द 'कर्त्तव्यकर्म" के ही अर्थ में आया है। अन्य प्रकार का अर्थ करने से संगति नहीं लग सकती। जब यह निश्चय हो गया कि गीता में धर्म शब्द अधिकतर "कर्त्तव्यकर्मों" का ही बोधक है तब

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावह।३-३५

श्लोक में भी धर्म का अर्थ कर्त्तव्य कर्म ही है। इस हेतु उक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार हुआ—

दूसरे का धर्म (कर्त्तव्यकर्म) जो अच्छी तरह से किया जा सके, उसकी अपेक्षा अपना गुणहीन धर्म (कर्त्तव्य-कर्म) भी अच्छा है। अपने कर्त्तव्यकर्म में मर जाना अच्छा है परन्तु अन्य कर्त्तव्यों को करना भयानक (हानिकारक) है।

अपना गुणहीन कर्त्तव्यकर्म क्यों अच्छा है अच्छी तरह के अनुष्ठान होने योग्य दूसरे का कर्त्तव्यकर्म क्यों अच्छा नहीं? इसका कारण यह है कि यथार्थ शान्ति और आत्मोन्नति अपने ही कर्त्तव्य पालन से होती है, अन्य कार्यों से नहीं। परधर्म का आचरण करनेवाले (अकर्त्तव्य करने वाले अथवा अनधिकार चेष्टा करनेवाले) बहुत बड़ी हानि उठाते हैं। उक्त प्रश्न का उत्तर फिलासफर श्रीकृष्ण जी स्वयं बतलाते हैं—

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वभाव नियतं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्विषम्॥
१८-४७

अन्य धर्म (कर्त्तव्य कर्म) से जिसका अनुष्ठान अच्छी तरह हो सके, उसकी अपेक्षा अपना गुणहीन कर्त्तव्यकर्म अच्छा है। क्योंकि स्वभाव के नियमित कर्म करने में कोई दोष या पाप नहीं है। आगे यह भी कहते हैं—

सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपिनत्यजेत् १८।४८

स्वाभाविक कर्त्तव्यकर्म दोषयुक्त होने पर भी न छोड़े। उदाहरणार्थ, बहुत से साधुओं को देखिये। उनकी स्वाभाविक

प्रवृत्ति गृहस्थ की ओर रहती है परन्तु वे ज़बरदस्ती उसे त्यागकर साधु का वेष बना लेते हैं। परिणाम यह होता है कि उन से योग नहीं सधता, न ईश्वर का साक्षात्कार करते हैं, न गृहस्थ का सुख पाते हैं—न घर के होते हैं, न घाट के। उनकी मानसिक या आत्मिक उन्नति नहीं होती किन्तु वे दुर्व्यसन और दुराचार में फँस जाते हैं।

गीता के सहजकर्म और स्वभावनियतकर्म शब्दों पर ध्यान दीजिए। इन शब्दों का अर्थ है स्वाभाविक कर्त्तव्यकर्म। आप पूछेंगे, स्वाभाविक कर्त्तव्यकर्म कौन से हैं? उत्तर यह है कि इसके प्रथम ही श्रीकृष्णजी ने अ० १८ श्लोक ४१ से ४६ तक मनुष्यों के स्वाभाविक कर्मों का संक्षेप में मार्मिक वर्णन किया है—

ब्राह्मण क्षत्रियविशां शूद्राणां च परन्तप।
कर्माणि प्रविभक्तानि स्वभावप्रभवैर्गुणैः ॥४१॥
शमो दमस्तपः शौचं शांतिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।४२।
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वर भावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम् ।४३।
कृषि गोरक्ष्य वाणिज्यं वैश्य कर्म स्वभावजं।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम् ।४४
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः।
स्वकर्मनिरतः सिद्धिं यथा विन्दति तच्छृणु ।४५
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।४६

फ़िलासफ़र श्रीकृष्ण जी ने मानव प्रवृत्ति को वेद के अनुकूल चार भागों में विभक्त किया है या यों कहिए कि गुण-कर्म के विचार से मनुष्यों को चार प्रकार की उपाधि या पदवी से विभूषित किया है। उनका कथन स्पष्ट है—"स्वभावप्रभवैर्गुणैः" अर्थात् स्वाभाविक गुणों से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इन चारों के कर्म बँटे हुए हैं। तात्पर्य यह कि स्वाभाविक गुणकर्मों के विचार से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र यह पदवी नियत है। कृपया ४२-४३-४४ तीनों श्लोकों के "स्वभावजम्" शब्द पर खूब विचार कीजिए।

फ़िलासफ़र श्रीकृष्णजी कहते हैं कि जिन पुरुषों में स्वभाव से ही शम, दम, तप, शौच, शान्ति, सरलता, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिकता हो वे ब्राह्मण हैं।४२।

जिन पुरुषों में स्वभाव से ही शूरता, तेज (रोब), धैर्य, दक्षता (नीति निपुणता), युद्ध में निर्भयता, दानपरता, और ईश्वर भाव (शासन या प्रबन्ध करने की योग्यता) हो वे क्षत्रिय हैं। ४३।

जो लोग स्वभाव से ही कृषि, पशु-पालन, वाणिज्य आदि में प्रवृत्त हों वे वैश्य हैं और जो लोग स्वभावतः सेवा कर्म (टहल, मजदूरी आदि साधारण कर्म) में प्रवृत्त हों वे शूद्र हैं (मूर्खों की गिनती शूद्र में है, परन्तु शूद्र शब्द अपमानजनक नहीं है जैसे मजदूर शब्द अपमानजनक नहीं है)। ४४।

स्वभावजम् शब्द बड़ा ही महत्वपूर्ण है इसी से सिद्ध है कि श्रीकृष्णजी गुणकर्म से वर्णव्यवस्था मानते हैं, जन्म या जाति से नहीं। यदि वे जन्म या जाति से वर्णव्यवस्था (ब्राह्मण क्षत्रियादि की पदवी



गुरुकुल काङ्गड़ी के ब्रह्मचारियों द्वारा हाकी से चीते को मारने का दृश्य



देना) मानते तो "स्वभावजम्" शब्द कदापि न कहते। इतने पर भी बहुत से दुराग्रही पंडित गीता में जन्म या जाति से वर्णव्यवस्था मानने का दुस्साहस करते हैं।

अपने अपने कर्त्तव्य कर्मों को करने से मनुष्य सिद्धि (सुख व शान्ति) को पाता है। स्वकर्म (अपने कर्त्तव्य कर्मों) में लगे रहने से मनुष्य किस प्रकार सिद्धि को पाता है इसे सुनिये। ४५।

जिस ईश्वर के द्वारा इन सब (सृष्टि) का विस्तार हुआ है और जिसके द्वारा सब (प्राणि मात्र) की कर्मों में प्रवृत्ति होती है उन्हीं (स्वकर्मणा) अपने कर्त्तव्यकर्मों से उस (ईश्वर) की पूजा करके मनुष्य सिद्धि (शान्ति व आत्मोन्नति) को प्राप्त होता है। ४६।

श्लोक ४६ में श्रीकृष्ण ने साफ कह दिया है कि अपने कर्त्तव्यकर्मों का करना भी ईश्वर की एक प्रकार की पूजा है। अतः जो लोग अपने कर्त्तव्यकर्मों का पूर्णतया पालन करते हैं वे मानो ईश्वर की पूजा कर रहे हैं। परन्तु ध्यान रखिये कर्त्तव्यकर्म करने वाले ही ईश्वर-पूजक कहलाने योग्य हैं न कि अकर्त्तव्यकर्म करने वाले। हमारे देश में अपने सब कर्त्तव्यों का पालन करनेवाले कितने मनुष्य हैं इसे आप स्वयं विचार कीजिये। हम भारतवासी विपदग्रस्त क्यों हैं ? इसीलिए कि हममें प्रतिशत ९९ मनुष्य अपने बड़े बड़े कर्त्तव्यों से विमुख हैं।

अब स्वधर्म और परधर्म का निर्णय करना चाहिए। गीता में स्पष्ट ही "स्वधर्म" का अर्थ है "स्वाभाविक कर्त्तव्य-कर्म"। अतः परधर्म का अर्थ हुआ अपने कर्त्तव्य के विपरीत कर्म। जो अपना कर्त्तव्यकर्म नहीं है वही परधर्म है। स्वधर्म की व्याख्या में गीता स्वाभाविक प्रवृत्ति पर विशेष ध्यान दिलाती हुई उन्हीं कर्मों के करने का आदेश करती है जो कर्त्तव्य हों, अकर्त्तव्य कर्म करने का लेश मात्र भी अभिप्राय नहीं है। जैसे किसी मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति धनार्जन की हो तो चोरी करना या ठगना उसका स्वधर्म (स्वाभाविक कर्त्तव्यकर्म) नहीं है। अन्य उचित साधनों से वह धनार्जन करे। किसी युवक की स्वाभाविक प्रवृत्ति लड़ने, मारपीट करने की हो तो पुलिस या फौज में भर्ती हो जाना उसका धर्म (कर्त्तव्य) है न कि गरीबों या सज्जनों को मारना पीटना।

जब तक हमें बाल-विवाह के दुष्परिणामों का पता नहीं था तब तक बाल-विवाह को धर्म (कर्त्तव्य) समझना अनुचित नहीं था। लेकिन जब हमें ज्ञात हो गया कि बाल विवाह करना न केवल वेद-शास्त्र, और प्राचीन प्रथा के विरुद्ध है बल्कि व्यक्ति और समाज के लिए भी हानिकारक है तब बाल-विवाह का समर्थन करना बड़ा ही अनुचित और अधर्म अकर्त्तव्य है। जब तक हमें स्वराज्य का ज्ञान नहीं था तब तक हमारा उसके लिए प्रयत्न न करना अनुचित नहीं था। परन्तु जब पूर्ण रूप से निश्चय हो गया कि सार्वजनिक सुख का मूल स्वराज्य है और स्वराज्य की प्राप्ति हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है तो उसके लिए तन मन धन अर्पण करना ही स्वधर्म है। हम लोग अपने ६ करोड़ भाइयों (अछूतों) के साथ जो

घृणित और अन्याययुक्त व्यवहार करते चले आये हैं और जातीय जीवन में उसका जो विषमय परिणाम हुआ है उसे समझ कर हमें लज्जा आनी चाहिए तथा अछूतोद्धार के लिए पूर्णरूप से कटिबद्ध हो जाना ही स्वधर्म है।

किसी मनुष्य के स्वधर्म (कर्त्तव्य) का निर्णय करने में उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पर विशेष ध्यान देना चाहिए। आजकल बहुत से माता-पिता अपने पुत्रों की स्वाभाविक प्रवृत्ति का ध्यान न रखकर उनको किसी व्यवसाय या नौकरी में लगा देते हैं फल यह होता है कि उनकी उन्नति नहीं होती न उन्हें सुख मिलता है। परन्तु जो युवक अपनी स्वाभाविक प्रवृत्ति के अनुकूल नौकरी या व्यवसाय करते हैं उसमें उन्नति और प्रतिष्ठा को प्राप्त होते हैं। किसी विधवा का विवाह करना उसका स्वधर्म (कर्त्तव्य) है या नहीं, इसका निर्णय करने के पूर्व उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति पर ध्यान देने की विशेष आवश्यकता है। जो विधवा सतीत्व धर्म का पालन करने में असमर्थ हो उसका विवाह करना ही उत्तम और श्रेयस्कर है परन्तु जिस विधवा की प्रबल इच्छा ब्रह्मचर्य धारण करने की हो उसका विवाह करना कदापि धर्म (कर्त्तव्य) नहीं।

हम देखते हैं कि कोई विद्वान् समाज-सुधार में अथवा ज्ञान-विज्ञान के प्रसार में अपना सारा जीवन लगा देता है और उसी का पुत्र धनार्जन को ही अपना ध्येय समझता है। कोई पिता नौकरी करता है तो उसका पुत्र वाणिज्य में मन लगाता है। कोई पिता व्यापार करता है तो उसका पुत्र नौकरी की ओर झुकता है। कहीं पिता संयमी और शूर है तो पुत्र विषयी और विलास-प्रिय। कहीं पिता वकील है तो पुत्र अध्यापक। इस प्रकार लाखों परिवारों में पुत्र का गुणकर्म पिता के गुणकर्म से भिन्न ही रहता है। जब पिता और पुत्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति में इतना अन्तर है तब दुराग्रही पंडितों का यह कहना कदापि न्यायसंगत नहीं कि प्रत्येक युवक अपनी रुचि के अनुकूल सम्प्रदाय स्वीकार करने में स्वतंत्र है। उसकी इस स्वतंत्रता को कोई छीन नहीं सकता। जब पिता और पुत्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति में भिन्नता है तब पुत्र को पिता के वर्ण का मानना न्यायसंगत नहीं, दोनों को एक ही पदवी देना उचित नहीं। उदाहरणार्थ पिता वकील हो और पुत्र अध्यापक, तो गीता अ० १८ श्लोक ४२–४३–४४ के अनुसार पिता क्षत्रिय वर्ण का और पुत्र ब्राह्मण वर्ण का कहलावेगा। (दूसरा उदाहरण) कोई पिता अध्यापक हो और उसका पुत्र व्यापार में रत हो तो गीता के सिद्धान्तानुसार पिता ब्राह्मण और पुत्र वैश्य कहलावेगा। किसी के गुणकर्मों को देखकर ही पदवी देना उचित है। किसी डाक्टर का लड़का डाक्टरी पास न हो तो उसे डाक्टर की पदवी देना अन्याय है इसी तरह जिस पुरुष में ब्राह्मण का गुणकर्म न हो उसे ब्राह्मण कहना या मानना अनुचित है। यदि पुत्र का गुणकर्म (स्वभाव) पिता के गुणकर्म (स्वभाव) से भिन्न हो तो पुत्र का कर्त्तव्य भी भिन्न हो जायगा।

स्वधर्मे निधनंश्रेयः

अपने कर्त्तव्यों में निरन्तर लगे रहना, यहाँ तक कि उसमें मर जाना उत्तम है परन्तु अपने कर्त्तव्यों का त्यागना क

सुखद व शान्तिप्रद नहीं। यहाँ पर कर्त्तव्या कर्त्तव्य की विस्तृत व्याख्या की जरूरत नहीं, इतना ही कहना पर्याप्त है कि अपना कर्त्तव्य (ज्ञानार्जन, माता पिता की सेवा, कुटुम्ब पालन, धनार्जन, स्वास्थ्य-रक्षा, स्त्रीरक्षा, शिशुरक्षा, पुत्र पुत्रियों की शिक्षा, समाज सुधार, देश सेवा, दुष्टों का दमन इत्यादि) निश्चित रूप से अपना कर्त्तव्य जो कुछ हो (क्योंकि एक ही मनुष्य का भिन्न भिन्न अवसरों पर भिन्न भिन्न कर्त्तव्य हो जाता है। देश काल पात्र के भेद से अर्थात् परिस्थिति के अनुकूल व्यक्ति और समाज का कर्त्तव्य बदल जाता है, एक ही रीति जो किसी समय उत्तम और लाभदायक समझी जाती है, कालचक्र के परिवर्त्तन से अनुचित और हानिकारक हो जाती है। समयानुसार रीति में परिवर्त्तन और संशोधन करना कर्त्तव्य है) उसका पालन करना उसमें दृढ़ता से लगे रहना, यहाँ तक कि मर जाना श्रेयस्कर है परन्तु अपने कर्त्तव्यों को त्याग देना कदापि हितकर नहीं। कभी कभी छोटे कर्त्तव्य को न करने से भी बड़ी हानि पहुँचती है।

हमारे प्राचीन पूर्वज अपने सब कर्त्तव्यों का पालन दृढ़ता से करते रहे, तभी प्राचीन भारत अन्नधन से परिपूर्ण, सब प्रकार की विद्याओं और कलाओं से युक्त पूर्ण स्वतन्त्र और स्वर्गीय सुख भोगने में समर्थ था। वर्त्तमान भारत दीन, मलीन, अन्नधन से हीन, अनेक विद्याओं और कलाओं से रहित, कुरीतियों के जाल में बँधा हुआ और परतंत्रता की बेड़ी से जकड़ा हुआ है। इसका कारण यही है कि हम लोग अपने कठिन कर्त्तव्यों को पूरा नहीं करते।

इधर ५० वर्षों से देश में जो नई जागृति और नवीन आन्दोलन हो रहा है वह हमारी मानसिक दासता को दूर करने में बहुत कुछ समर्थ हुआ है। इससे आशा है कि हम लोग शीघ्र कुरीतियों के जाल और परतंत्रता की बेड़ी को तोड़ डालेंगे तथा तेज और ओज के साथ संसार के समस्त कार्य करेंगे। आप बहुतेरे धीर वीर त्यागी सज्जनों को देखिये जिन्होंने कर्त्तव्य पालन करने के सुख का अनुभव किया है वे सताये जाने और महाकष्ट पाने पर भी अपने कर्त्तव्य कर्मों से विचलित नहीं होते, मरते दम तक कर्त्तव्य पर डटे रहते हैं। सारांश अपने कर्त्तव्यों को विवेक से पहचानना और कर्त्तव्यों का दृढ़ता से पालन करना ही सुख और सफलता की कुञ्जी है।



आर्य्य नगर

[श्री बा० अवध विहारीलाल जी बी० ए० विशारद]



म गोपाल सिंह ज्योंही श्यामपुर की छावनी पर पहुँचे त्योंही उनके कार्य-कर्ता (कारिन्दा) ब्रज किशोर ने मालगुज़ारी वसूल करने की कठिनाइयों का चित्र खींचना प्रारम्भ कर। दिया सारी कठिनाइयों का वर्णन तो बाबू रामगोपाल सिंह ने शान्तिपूर्वक सुना परन्तु ज्यों ही मुन्शी ब्रजकिशोर के मुख से ये शब्द निकले कि पिछले सप्ताह यहाँ कुछ आर्य सामाजिक पुरुष धर्म प्रचारार्थ आए थे त्यों ही चौंक कर बोल उठे—"क्या मुन्शी जी, क्या कहा ? क्या इस छोटे से गाँव में भी आर्य समाजी आने लगे ?" मुन्शी जी ने समझ लिया कि बाबू साहिब को उनका आना अच्छा नहीं लगा। बस, झट मुंह बनाकर बोले—"जी हाँ, बाबू साहिब ! यहाँ तक आते हैं और बड़ा ऊधम मचाते हैं। वे कहते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सब अपने कर्मों द्वारा होते हैं और इसी जन्म में एक चमार क्षत्रिय या ब्राह्मण तक हो सकता है। वे यह भी कहते हैं कि किसी से बेगार मत लो। छोटे छोटे किसानों तक को अपना भाई समझो। उनसे हिले मिले रहो। उनकी भलाई के लिये गाँव में पाठशाला और कोआपरेटिव बैंक खुलवाओ। अकारण मालगुज़ारी बढ़ाकर दीन-हीन किसानों को तंग न करो।" यह सब बातें सुन कर राम गोपाल सिंह जल भुन कर बोले—"और कुछ या इतना ही?" बाबू साहिब पर आर्य सामाजिक पुरुषों के विरुद्ध रंग चढ़ता देख कर मुन्शी जी ने कहा—"अजी बाबू साहिब ! क्या बतलायें ! न जाने वे कितनी उलटी सीधी बातों का प्रचार कर गये हैं। वे कहते हैं कि एकही कुएँ से चमार-पासी तक पानी भरें और जमींदार इस विषय में कुछ भी रोक-थाम न करें। क्या वे मनुष्य नहीं हैं ? क्या वे साँप-बिच्छू हैं जो मनुष्य-समाज से बाहर रहा करें ?"

यह सुनते ही बाबू साहिब भुँभला उठे—"अजी मैं होता तो सनातन धर्म को इस प्रकार अपमानित होता न देखता। आर्य्य समाजियों को कान पकड़ कर गांव से निकाल देता।"

मुन्शी जी ने सुर में सुर मिला कर कहा—"जी सरकार ! आप ऐसा ही करते।"

अभी बातें हो ही रही थी कि बाबू साहिब का एक सिपाही (प्यादा), जो गांव में आसामियों के यहां मालगुज़ारी का तगादा (तक़ाज़ा) करने गया था, कुछ, चमारों को जो ख़ून से तर हो रहे थे गालियाँ देता हुआ छावनी पर पकड़ लाया। यह देखकर कि सरकार बैठे हुए हैं

सबने यों दुहाई देना प्रारम्भ किया—" दुहाई सरकार की।"

"दुहाई सरकार की पांडे जी (वही सिपाही) हम लोगों को मारे डालते हैं।" यह सुनते ही मुन्शी ब्रजकिशोर ने कहा—" ऐ बेईमानों! शोर मत मचाओ क्या सरकार वही बात धीरे से न सुनेंगे ?"

रामगोपालसिंह—"ऐ चमारो! क्या बात है ?" अभी चमार बोलने ही को थे कि तपेश्वर पांडे प्यादा बोल उठा—"सरकार मुझसे पूछिये, क्या मामला है। ये सब के सब आर्य समाजियों के बहकाने से अब बेगार नहीं करना चाहते और ब्राह्मण—क्षत्रियों के कुएँ से जल भरने का दम भरते हैं। सरकार सनातन धर्म का नाश आंखो तो देखा नहीं जाता।" राम गोपाल सिंह क्रोधित होकर बोले—" क्यों रे, बदमाशो! क्या अब एक ही कुएँ से मनुष्य मात्र पानी भरेगा ?"

" दुहाई सरकार की! दुहाई हुजूर की!! कुछ हम गरीबों की भी सुन लें!!!"

"चुप बदमाशो! मैं वैष्णव होकर सनातन धर्म का नाश नहीं देख सकता। तपेश्वर पांडे! अभी इन आर्य समाजी चमारों को सदा के लिये गांव से बाहर निकाल दो।"

"बहुत अच्छा, सरकार।"

इतना सुनना था कि तपेश्वर ने उन अधमरे चमारों को मार पीट कर बाहर भगा दिया। तपेश्वर पांडे ने यहां तक किया कि दो ही दिन में उन बेचारों ने अपनी जन्मभूमि को सदा के लिये छोड़ दिया। मर्य्यादा पुरुषोत्तम राम ने अपनी जन्म-भूमि पितृ भक्ति के न्यौछावर मात्र में केवल चौदह वर्ष के लिये सहर्ष त्यागी परन्तु उन चमारों ने अपनी जन्म-भूमि सनातन धर्म के वितण्डावाद से विवश होकर सदा के लिये कलपते और विलखते त्यागी। सच पूछो तो दोनों त्यागों में आकाश पाताल का अन्तर था।

× × ×

दो चार दिन में बाबू राम गोपाल सिंह श्यामपुर से अपने गांव चीतपुर वापस चले आये। यहां आते ही उन्होंने लोगों को "शुद्धि" की चर्चा करते पाया। पता लगाने से विदित हुआ कि जब यह श्यामपुर अपनी जमीदारी देखने गये थे तो यहाँ भी कुछ आर्य समाजी धर्म प्रचारार्थ आये थे। मनमें कहने लगे—" हा विष्णु भगवान! क्या अब भूमण्डल से सनातन धर्म सर्वथा उठ ही जायेगा ? हे भक्त वत्सल! अब तो आर्य समाजी ग्राम ग्राम में भ्रमण करने लगे। क्या तुम अब भी क्षीर सागर में सोते रहोगे ? तुम अवतार कब लोगे? आर्य समाजियों का नाश कब करोगे ?" इसी प्रकार वे अपने भगवान से कुछ मन ही मन कह रहे थे।

थोड़ी देर बाद राम गोपाल के चचेरे भाई श्यामगोपाल आए और कहने लगे—"भैया! भैया!! सुना जाता है कि उन पाँच चमारों में से जिन्हें आपने गाँव से निकल जाने की आज्ञा दी थी, चार तो आर्य समाजी बन गये परन्तु एक सपरिवार ईसाई हो गया। चारों आर्य समाजी चमार अब शहर के आर्य समाज में ब्राह्मण क्षत्रियों के साथ दरी पर बैठते हैं,

झूठ-मूठ सन्ध्या करते हैं और रात्रिपाठ-शाला में भाषा तथा गणित पढ़ते हैं।" यह सुनते ही राम गोपाल सिंह ने कुछ ऐसा मुंह बनाया जिससे यह अनुमान करना कठिन था कि उन्हें इस घटना से हर्ष हुआ अथवा शोक।

फिर दो मिनिट बाद बोल उठे—"और उस ईसाई चमार का क्या हुआ?"

श्यामगोपाल—"वह तो अब कोट-पैण्ट पहनता है और उसका लड़का मिशन हाई स्कूल में अँग्रेजी पढ़ता है।"

राम गोपाल—"हाँ! ऐसा?"

श्यामगोपाल—"जी हाँ, समाचार ऐसा ही मिला है।" अभी यह दोनों भाई बातें ही कर रहे थे कि उनका नौकर रघुपति कहार घबड़ाया हुआ पहुँचा।

राम गोपाल ने पूछा—"क्यों रघुपति, क्या बात है?"

रघुपति—मालिक! क्या बतलाऊँ कुछ कहते नहीं बनता।" इतना कहकर रोने लगा। रामगोपाल के बार बार पूछने पर उसने कहा—"सरकार! बिट्टा राम-कुमारी (श्याम गोपाल सिंह की चौदह बरस की पुत्री) को रहमान जुलाहे ने मुसलमान बना लिया है। हाय राम!! हाय राम!!" यह सुनते ही राम गोपाल और श्याम गोपाल दोनों रोते हुए रहमान जुलाहे के घर की ओर जो उनके घर के पिछवाड़े था, चल खड़े हुए।

यहाँ बीस-पचीस मनुष्य इकट्ठे थे और गोकुल मिश्र चिल्ला चिल्ला कर कह रहे थे—"बिट्टा रामकुमारी! तुमने रहमान की मिठाई खाली और उसके वधने का जल भी पी लिया। अब तुम्हें तुम्हारे पिता और चचा कैसे रख सकते हैं?" राम कुमारी रोती हुई और देवताओं की शपथ खाती हुई कह रही थी। "यह झूठ कह रहा है।" इतने ही में राम गोपाल और श्याम गोपाल घटना-स्थल पर पहुँच गये। अब पचासों की भीड़ हो गई।

उन्हें देख कर गोकुल मिश्र ने कहा—"अब क्या रोते हो? फूल सी लड़की हाथ से जाती रही। रहमान हाफ़िज़ है झूठ नहीं बोल सकता। लड़की झूठी है। सनातन धर्म के किसी पुराण और शास्त्र में नहीं लिखा है कि म्लेच्छ के घर का कुछ खा-पीकर मनुष्य पुनः हिन्दू हो सकता है। लड़की रहमान ही के हवाले करो।" यह सुन कर श्याम गोपाल सिंह और भी फूट फूट कर रोने लगे। इतने में लड़की की माता भी परदा-वरदा छोड़ कर रोती-पीटती आ पहुँची। वह राम कुमारी को बारम्बार छाती लगाती और सर पीटती। सच है, माता-पिता के हृदय में परमात्मा ने सन्तान के लिये अथाह प्रेम दिया है।

निदान मिश्र जी की आज्ञानुसार फूल सी सुकुमारी राम कुमारी को रहमान ही के हवाले करके सनातन धर्म बचाया गया। तीसरे दिन राम गोपाल और श्याम गोपाल ने काशी के कई पण्डितों को बुलाकर ऐसी दशा में धर्म-शास्त्र की सम्मति पूछी तो उत्तर मिला कि सनातन धर्म के अनुसार राम कुमारी यवन का जल ग्रहण करने से सदा के लिये अशुद्ध हो गई

काशी के पण्डितों ने यह भी कहा कि आप लोगों पर इस समय कोई क्रूर ग्रह है और वह अभी चार वर्ष तक रहेगा अतः आप लोग भी काशी जी जाकर स्नान करें और ब्राह्मणों को दक्षिणा दें, तब वे शान्त हो सकेंगे।

इस घटना के कुछ ही दिन बाद शहर के आर्य समाज के मंत्री कई अन्य आर्य समाजियों के साथ चीतपुर आए। उन्होंने रहमान पर बालिका को बरजोरी यवन बनाने का अभियोग चलाया और उस निरपराध कन्या को अपने संरक्षण में ले लिया। आर्य समाज के मंत्री ने राम कुमारी का विवाह किसी पढ़े लिखे आर्य-क्षत्रिय वर से कर दिया। रहमान को छः मास का जेल हुआ।

कन्या के विवाह तथा रहमान के जेल जाने के समाचार ने राम गोपाल सिंह तथा श्याम गोपाल सिंह के हृदयों में प्रथमवार आर्य समाज और स्वामी दयानन्द के लिये सहानुभूति उत्पन्न कराई। इस घटना के तीन बरस बाद वह दोनों काशी चले गये।

× × ×

काशी के साधुओं और पण्डों ने ऐसा लूटा कि अब उनके पास कठिनता से टिकट भर रुपये बचे। दोनों शीघ्रता से राजघाट काशी स्टेशन के लिये इक्के पर रवाना हुए। स्टेशन पर पहुँचते पहुँचते गाड़ी भी प्लेटफ़ार्म पर आ डटी। अब वे दोनों हैरान थे कि क्या करें।

झट वे दोनों बुकिङ्ग आफ़िस की खिड़की के पास पहुँच कर घबड़ाये हुए स्वर से कहने लगे—"बाबू जी! बाबू जी! टिकट दे दीजिये। गाड़ी छूटती है।"

भीतर से एक अङ्गरेज़ी पोशाक पहने बाबू ने कहा—"वेल! शोर मत करो। टिकट मिलता है।"

राम गोपाल—"बाबू जी गाड़ी आ गई है। छूटना ही चाहती है।"

बाबू—"तुम कैसे बेवकूफ़ हो कि गाड़ी छूट रही है और टिकट माँगते हो।"

श्याम गोपाल—"अजी, राम गोपाल! देखो बाबू हम लोगों को अकारण ही बेवकूफ़ बनाते हैं। चलो फाटक लाँघ कर बिना टिकट के ही गाड़ी पर चढ़ चलें।"

बाबू ने इन दोनों की बातें सुन लीं। झट तड़प कर बोला—"मत चढ़ो गाड़ी पर। सिपाही, पकड़ लो इन दोनों मुसाफ़िरों को।"

राम गोपाल और श्याम गोपाल गाड़ी पर ज्योंही चढ़ने लगे त्योंही गाड़ी ने सीटी दी और दो सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया। अब बेचारे सोचने लगे कि हे भगवान! अब क्या होना है? सारी प्रतिष्ठा तो धूल में मिल ही गई, क्या जेल भी देखना है? अस्तु, वे दोनों उसी अँग्रेज़ी पोशाक पहने बाबू के सामने खड़े किये गये।

हैट लगाये काला साहिब बने युवक बाबू ने कहा—"सिपाही! इन दोनों को पकड़ कर रेलवे मजिस्ट्रेट के हवाले करो। ये दोनों बेटिकट चलती गाड़ी पर रोकने पर भी चढ़े जाते थे।" यह सुनते ही राम

गोपाल और श्याम गोपाल दोनों कुम्हला गये और गिड़गिड़ा कर कहने लगे कि हज़ूर हमारा बहुत आवश्यक काम था। नहीं तो हम ऐसा कदापि न करते। आप कुछ पान-पत्ता खाने के लिये ले लें और हम दोनों के प्राण छोड़ दें।"

यह सुनते ही साहिब बने बाबू ने कहा—"वेल सिपाही! ये दोनों मुझे गाँव का चमार समझते हैं, जो कुछ थोड़ा बहुत पाकर प्रसन्न हो जाता है। इन्हें यहाँ से तुरन्त ले जाओ।"

आज्ञा पाते ही सिपाही उन दोनों को पकड़ कर रेलवे मजिस्ट्रेट के पास ले जाने लगे।

जाते समय वे दोनों अत्यन्त दुखित थे और इधर-उधर ताकते जाते थे। अभी बीस-पच्चीस ही पग गये होंगे कि उसी बाबू ने आकर कहा—"सिपाही! ठहरो। इन्हें फिर मेरे आफ़िस में ले चलो।" आफ़िस में आने पर बाबू ने पूछा—"क्यों, आपका नाम "बाबू राम गोपाल सिंह है ?"

यह सुनते ही राम गोपाल सिंह पर मनो पानी पड़ गया। उसने फिर पूछा—"और ये आपके चचेरे भाई बाबू श्याम गोपाल सिंह है क्या ?" यह सुन कर दोनों बहुत चकराये और शरमाये। फिर राम गोपाल ने उत्तर दिया—जी हजूर हम दोनों वही हैं जो आप कहते हैं।"

तब तो बाबू ने बड़ी नम्रता के साथ कहा—"बाबू साहिबान! आप लोग मुझे क्षमा करें। मैं ड्यूटी पर था। अतः आपके साथ ऐसा बर्ताव हुआ। कृपा करके आप लोग अब कुरसी पर बैठें [illegible] कुछ देर विश्राम करें।"

कुरसी पर बैठते ही राम गोपाल [illegible] श्याम गोपाल के जान में जान आई।

उत्सुक राम गोपाल ने झट पूछा—"बाबू जी, क्षमा कीजियेगा। मैंने आ[illegible] पहचाना नहीं।"

बाबू ने उत्तर दिया—"आप [illegible] मुझे कैसे पहचानते। तब मैं छोटा [illegible] मैं तो उन चमारों में से एक का ल[illegible] हूँ जिन्हें आपने सनातन धर्म के आ[illegible] देश निकाले का कठिन दण्ड दिया [illegible] मेरे पिता ईसाई हो गये थे। परन्तु [illegible] कल मैं सत्यार्थ प्रकाश पढ़ रहा हूँ।"

यह सुनते ही राम गोपाल सिंह [illegible] श्याम गोपाल सिंह का सर नीचा होग[illegible] दोनों ने अपने पिछले कर्मों पर प[illegible] किया।

फ़िर क्या पूछना था, बड़ी देर [illegible] बातें होती रहीं। अन्त में निश्चय [illegible] हुआ टिकट बाबू के परिवार की [illegible] चीतपुर में ही हो और राम गोपाल [illegible] श्याम गोपाल दोनों आर्य समाज [illegible] प्रविष्ट हों।

एक ही सप्ताह के बाद काशी [illegible] समाज के कई सभासद चीतपुर [illegible] गये। निकाले हुए आर्य सामाजिक [illegible] भी चीतपुर आये। उस ईसाई [illegible] परिवार की शुद्धि स्वयं राम गोपाल [illegible] बड़ी धूम धाम से कराई। थोड़े ही [illegible] में उस गाँव में एक आर्य समाज [illegible] होगया जिसके प्रधान ठाकुर राम गो[illegible] सिंह हुए।

श्याम गोपाल सिंह जी ने अपनी फूल सी राम कुमारी को उसके पति सहित उसी गाँव में बुला लिया। आजकल वहाँ गुरुकुल वृन्दावन के ब्रह्मचारी सत्यवान जी आयुर्वेद शिरोमणि भी आ डटे हैं। अब गाँव में वैदिक धर्म की धूम है। सब जाति के लोग मनुष्य जन्म का लाभ उठा रहे हैं।

ठाकुर राम गोपाल सिंह ने उस चीतपुर का नाम अब "आर्य नगर" रख दिया है। अब यदि कोई पूछता है कि आप कौन हैं तो कहते हैं—"मैं आर्य हूँ"। आपका निवास स्थान कहाँ है? "आर्य नगर"।

सन्ध्योपासना

[श्री पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए० एल० टी०]

(गताङ्क से आगे)

गायत्री मंत्र पढ़ कर शिखा बन्धन



ब हम किसी के पास जाते हैं तो हमारा कुछ न कुछ प्रयोजन अवश्य होता है। उस अभीष्ट को हम पहिले ही विचार लेते हैं। प्रयोजन ही हमको जाने के लिये उद्यत करता है। लौकिक व्यवहार में हम कहते हैं कि जो काम करना है उसका विचार करके गांठ बांध लो कि भूल न जायें। यदि भूल भी जायें तो गांठ देखते ही अमुक विषय का हमको स्मरण हो जाता है। इसी प्रकार गायत्री मंत्र पाठ करके शिखा में ग्रन्थि लगाना इस बात का द्योतक है कि हमको परमात्मा के निकटत्व प्राप्त करने के उपरान्त उससे कुछ मांगना है जिसका निर्देश गायत्री (सावित्री) मंत्र में है। विना इस भाव के ग्रन्थि लगाना भी निष्फल है। इस भाव के ही द्वारा हमको अधिक शक्ति और शान्ति मिलेगी।

एक किसान प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक निरन्तर परिश्रम करता है। दूसरा पहलवान् है जो कि केवल थोड़ा सा ही समय अखाड़े में बिताता है। पहलवानों में भी भिन्न-भिन्न श्रेणियाँ हैं। एक तो केवल व्यायाम करता है पर कोई विशेष उद्देश्य नहीं। दूसरा यह भाव रखता है कि उसके विशेष अङ्ग परिपुष्ट हों। तीसरा वह है जो कि भाव के साथ साथ व्यायाम करते समय अपने सामने एक बड़ा दर्पण रख लेता है और प्रतिक्षण यह मालूम करने का प्रयत्न करता है कि अमुक अंग कितना पुष्ट हुआ। आप कहेंगे कि इन पहलवानों में सबसे अधिक सफल वह होगा जो कि दर्पण सामने रख कर व्यायाम करता है। उसके पश्चात

अन्य। पर दिन भर परिश्रम करने वाले किसान के अंग प्रत्यंग इतने पुष्ट नहीं मालूम होते। क्योंकि उसका उद्देश्य शरीर की पुष्टि नहीं था अपितु अन्न की वृद्धि। यही कारण है कि पहलवानों से अधिक परिश्रम करने पर भी उसका शरीर इतना बलिष्ट नहीं हो पाया जितना अमुक पहलवान् का। इसमें भाव प्रधान हुआ। किसी विशेष उद्देश्य या भाव के साथ कार्य करने में तथा विना भाव के साथ कार्य करने में बड़ा अन्तर पड़ जाता है इसलिये शिखाबन्धन के समय गायत्री मंत्र का पाठ आवश्यक है।

आचमन

वैद्यक शास्त्र में जल के अनेक गुण बताये हैं। अथर्ववेद के प्रथम काण्ड में अनेक ऐसे मंत्र आते हैं जिनमें जल की महिमा वर्णन की गई है। 'अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्' 'ज्योक्च सूर्यंदृशे' यह जल हमारे रोगों का हरने वाला, अंगों को शुद्ध करने वाला, मन्दाग्नि को तीव्र करने वाला तथा दृष्टि को बढ़ाने वाला है। इसीसे शांति मिलती है। वेद मंत्र में (शन्नो देवी) इस जल को अभीष्ट की सिद्धि का साधन बताया है।

दूसरे प्राणायाम करने से जो कुछ थोड़ी सी शुष्कता कण्ठ में आ गई हो उसको दूर करने का तथा कफ़ के शान्त करने का एक मात्र उपाय जल ही है। हिचकी आती हो थोड़े से जल का आचमन करलो शांति हो जायगी। यही कारण है कि आचमन की महिमा अधिक वर्णन की गई है। और आदेश

किया गया है कि आचमन का आ[illegible] डालो। कोई शुभ कार्य करो पहिले आ[illegible] मन करो, यज्ञ करने के पहिले आच[illegible] भोजन के पहिले आचमन, प[illegible] आचमन। कोई भी यज्ञ ले लो। कि[illegible] भी संस्कार की विधि पर दृष्टि [illegible] आचमन आपको प्रत्येक मुख्य का[illegible] पहिले मिलेगा। यज्ञोपवीत सं[illegible] विवाह संस्कार तथा अन्य संस्कारों [illegible] प्रत्येक नवीन कृत्य के पहिले आ[illegible] का आदेश मिलता है। इसलिये [illegible] मन अवश्य करना चाहिये।

अब देखना यह है कि कफ़ [illegible] शांति, कण्ठ की स्वच्छता, शरीर [illegible] स्वस्थता और चित्त की प्रफुल्लता [illegible] एक छींटे जल से जैसा कि कुछ [illegible] (पुरोहित तथा यजमान आदि) क[illegible] हैं, प्राप्त हो सकती हैं? आचमन [illegible] लिये जल पर्याप्त मात्रा में लेना चा[illegible] और साथ ही मंत्र में निर्दिष्ट मंत्र [illegible] भाव भी चित्त में रखना चाहिये। [illegible] ऐसा करेंगे तो हम को अवश्य अभी[illegible] की सिद्धि होगी। नहीं तो एक [illegible] मात्र जल होठों पर छिड़कने से [illegible] लाभ नहीं।

हम पहिले लिख चुके हैं कि प्र[illegible] नवीन कृत्य के आरम्भ में आच[illegible] करना चाहिये। सन्ध्योपासना के स[illegible] में हमको आदेश है कि सन्ध्योपा[illegible] के पूर्व, मनसा परिक्रमा के पहिले ह[illegible] सावित्रीमंत्र के जाप से पहिले हम [illegible] तीन आचमन करें। इन तीनों अवस्था[illegible] में हम निम्न भेद पाते हैं। (१) पहि[illegible] हमको सन्ध्योपासना प्रारम्भ करती [illegible]

(२) दूसरे में वाह्य जगत् में परमात्मा की सर्वव्यापकता का विचार करने के उपरान्त हम अपनी मनोवृत्तियों को भीतर की ओर ले जाने के लिये उद्यत होते हैं। (३) तीसरी अवस्था में हम परमात्मा के निकटस्थ हैं और इसलिये इन तीनों के ही आरम्भ में हमको आचमन अवश्यमेव करना चाहिये।

रहा अब तीन तीन आचमन करने के सम्बन्ध में आध्यात्मिक आधिभौतिक तथा आधिदैविक दुःखों की निवृत्ति के लिये जिस प्रकार तीन बार शांति पाठ करते हैं उसी प्रकार तीन बार प्रत्येक कृत्य के प्रारम्भ में आचमन करते हैं और प्रार्थना करते हैं कि इन दुःखों से छुड़ाकर हमको शान्ति मिले।

अंग स्पर्श

किसी के पास मिलने जाने, या कोई कार्य करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे अंग प्रत्यंग सुदृढ़ हों। उनमें शक्ति हो। विना शक्ति के हम एक पग भी नहीं चल सकते। एक छोटी सी वस्तु भी नहीं उठा सकते। एक शब्द भी मुख से नहीं निकाल सकते। जीवात्मा इन सारे अंगों के ही द्वारा अपनी सारी क्रियायें करता है। इसलिये इन अंग का बलवान् होना अत्यावश्यक है। अंगों का स्पर्श करके हम परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि हमारे सब अंग बलिष्ठ हों और हम उनका सदुपयोग करें। दुरुपयोग नहीं। 'बाहुभ्यां यशो बलम्'। यदि केवल शक्ति का ही विचार हम ध्यान में रक्खें और उपयोग का नहीं तब भी ठीक न होता। इसीलिये वाक्य के अन्दर 'यश' पद बताता है कि बाहुओं को स्पर्श करते हुये इसबात का भाव रक्खें कि हमारे हाथों से कोई ऐसा काम न हो जो कि अपयश का कारण हो। सदुपयोग कभी भी अपयश का कारण न होगा।

मार्जन

यह पहले बता दिया गया है कि जल से अंगों की शुद्धि होती है। शरीर सुडौल हो, बलिष्ठ भी हो पर यदि मैला कुचैला हो तो कुछ काल के बाद उसकी यह दशा हो जाती है कि मक्खियां भिनकने लगती हैं। स्वयं उस मनुष्य को भी ग्लानि आने लगती है सुडौल तथा स्वस्थ शरीर रोगों का घर बन जाता है। और मनुष्य किसी भी प्रकार के आनन्द को नहीं भोग सकता। मार्जन करते समय यदि हम विचार लें कि वाह्य अंगों की शुद्धि हमारा कर्त्तव्य है तो अवश्यमेव हम इस बात का प्रयत्न करेंगे। पर यदि विना मंत्र पढ़े ही या विना उन भावों को लाये ही हम जल के छींटे डाल लें तो धीरे धीरे मंत्र पाठ निरर्थक हो जायगा।

इसके अतिरिक्त एक बात और ध्यान में रखने योग्य है कि उस परम-पिता परमात्मा की उपासना के समय हम अपने अंगों को पवित्र रक्खें। जब मामूली आदमियों से भी मिलने जाते समय हमको शारीरिक शुद्धि का ध्यान रहता है तो भला उस सर्वश्रेष्ठ के पास जाते समय हम क्यों न अपने आपको शुद्ध रक्खें।

प्राणायाम

आरम्भ में प्राणायाम के सम्बन्ध में लिखा जाचुका है। अब आचमनादि क्रियाओं

के करने के पश्चात् हम अपने आप को इस योग्य पाते हैं कि हम ईश्वर की उपासना करें और उसके लिये विशेष तयारी करें प्राणायाम हमारा सहायक होता है। प्राणायाम मंत्र हमारे चित्त को पुनः एकाग्र करता है और शारीरिक शक्ति वढ़ता है। इससे शारीरिक शक्ति कई गुना अधिक वढ़ जाती है। बड़े २ गोता लगाने वाले, मल्ल तथा सरकसों में काम करने वाले इस प्राणायाम के ही वल पर ही कूदते और अपनी शक्ति से संसार को चकित करते हैं।

समाधि अवस्था तक पहुंचाने में यह प्राणायाम ही हमारा सहायक होता है। इसी के द्वारा योगी चारों कोषों (१—अन्नमय, २—प्राणमय, ३—ज्ञानमय ४—विज्ञानमय) को पार करके आनन्दमय कोष में पहुँच कर परमात्मा से साक्षात् कर आनन्द लूटते हैं। ऐसे विलक्षण गुणों को वढ़ाने वाला प्राणायाम तो हमारे लिये अत्यन्तावश्यक है। इसके लिये अभ्यास की अधिक आवश्यकता है। किसी योग्य पुरुष से सीख कर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिये।

अघमर्षण मंत्र

कई बार मेरे चित्त में भी यह प्रश्न उठा कि इन मंत्रों को अघमर्षण मंत्र क्यों कहते हैं ? यही प्रश्न एक बार इस प्रान्त के एक बड़े नगर के वार्षिकोत्सव के समय भी एक प्रसिद्ध सन्यासी महोदय से किया गया था। थोड़ा बहुत वाद भी हुआ पर किसी विशेष परिणाम पर नहीं पहुँच सके। मैंने कई बार विचारा और मैं अंत में जिस परिणाम पर पहुँचा हूँ उसे आपके समक्ष रखता हूँ।

हम संसार में देखते हैं कि चोर समझता है कि कोई उसे देख रहा है वह उस क्षण चोरी करने से रुक जाता है। एक झूठा आदमी झूठ बोलने का अभ्यासी है पर जब उसे मालूम होता या उसे सन्देह होता है कि उसकी बात छिप नहीं सकती या अन्त में समझता है कि दूसरों को प्रगट हो जाय तो वह झूठ को नहीं बोलता अपितु सत्य २ कह देता है। पर यदि वह जानता है कि किसी को उसकी बात नहीं मालूम होगी तो वह तत्काल झूठ का आश्रय ले लेता है।

छोटे छोटे छात्रों और लड़कों में प्रायः यह बात देखते हैं कि यदि किसी किसी को छेड़ा या पीटा या कोई अपशब्द कहा और यदि उसकी शिकायत अध्यापक के पास अमुक बालक ने की तो पीटने वाले को कुछ भी सन्देह होगया कि अध्यापक ने उसको देख लिया है और विद्यार्थियों ने उसे देख लिया है बजाय झूठ बोलने के वह सच बोलने के लिये बाध्य हो जाता है। पर यदि समझता है कि उसको किसी ने नहीं देखा तो झूठ बोल देता है। प्रकार व्यभिचार या और दुर्व्यसनि की दशा हैं।

यह तो साधारण श्रेणी के पुरुषों की दशा रही। जो अधिक धनी या या राज्य वैभव को प्राप्त किये हुए उनकी भी इसी प्रकार की स्थिति जाती है। उनमें एक विशेषता और

जाती है कि वे समझते हैं कि उनके ऊपर उनसे अधिक और किसी व्यक्ति की शक्ति नहीं है जिसका उनको डर हो। अपने से शक्तिशाली से जीव अवश्य डरता है। यदि उसे विश्वास हो जाय कि उससे बलिष्ठ और शक्तिशाली और कोई नहीं है तो वह मनमाना काम करने लगता है और निर्बलों पर अत्याचार करने में तनिक भी संकोच नहीं करता। एक डाकू को जब तक पुलिस का डर है, डाका डालते भय लगता है पर यदि पुलिस का डर नहीं है तो छापा मारते उसे देर नहीं लगती।

इस बात का निष्कर्ष यह है कि मनुष्य को पापसे बचाने के लिये यह आवश्यक है कि उसे विश्वास हो जाय कि कोई उसे देखता है, उसकी बात सुनता है, उसके मन की बात भी जान लेता है, उससे अधिक बली तथा शक्तिशाली है। उसको अपने वश में भी कर सकता है। यदि उसका ऐसा विश्वास नहीं है तो उसे कोई भय नहीं होता। यह अपने से अधिक शक्ति का भय है जो संसार में प्रत्येक प्राणीमात्र को उचित या अनुचित का ध्यान दिलाता है और उसको नियमानुकूल कार्य करने में सहायक होता है।

वेद में आता है 'भयादग्नि स्तपति भयात्तपति सूर्य्यः'। यदि इस प्रकार का भय न हो तो मनुष्य स्वच्छन्द होकर मन माना करे।

पठान बादशाह कैकोवाद की जीवनी बताती है कि बादशाह बलबन ने उसकी बड़ी कड़ी देख रेख की थी और इसलिये सकी १७ वर्ष तक की आयु निष्कलंक थी। पर ज्योंही वह राजगद्दी पर बैठा, और खुशामदियों की खुशामद उस पर रंग लाई वह सब व्यसनों में फँस गया। वह समझने लगा कि उसके ऊपर अब कोई भी ऐसी मानुषिक सत्ता नहीं रही जिसका उसको डर हो। वह तीन वर्ष के भीतर ही इतना दुर्वृत्त होगया कि अन्त में उसकी बड़ी दुर्गति हुई।

जब हम अघमर्षण मंत्रों के अर्थों पर दृष्टि डालते हैं तो हमको तीन बातें मिलती हैं। पहिली यह कि समस्त सृष्टि परमात्मा की बनाई हुई है। दूसरी वही इसको नियम में रख कर अपने वश में रक्खे हुये हैं। तीसरी प्रत्येक युग में उसका ऐसा ही कार्य-क्रम चला करता है, जैसी पहिले सृष्टि रचता था वैसी ही अब भी रचता है। जैसे पहले अपने वश में किये हुये था वैसी ही अब भी किये हुये है। उसकी सर्वत्र गति है वह सभी लोकों में है, कण कण में व्यापक है।

अब थोड़ा सा विचार कीजिये कि यदि इन तीनों उपरोक्त बातों का इसको विश्वास हो जाय और सदा इन तीनों का का भाव हमारे चित्त में रहे तो हम पाप कर्म करेंगे या पाप कर्म से बचेंगे? जब हम जानते हैं कि हम दूसरे के वश में हैं, जब हमारा विश्वास है कि उसके बनाये नियमों के उल्लंघन पर हम दण्डनीय होंगे तो हम सदा डरते रहते हैं। जब हम देखते हैं कि ऐसी भी शक्ति विद्यमान् है जो कि अनोखी से अनोखी सृष्टि बना सकता है तो हमारा अभिमान कम हो जाता है। छोटे से कारीगर को भी जब

वह अपने से बड़े कारीगर को देखता है, अपने अहंकार को कम करने के लिये बाध्य होना ही पड़ता है। विद्यार्थी, अध्यापक, विद्वान्, लेखक कोई भी क्यों न हो सबकी यही दशा है।

जब हमको नित्य प्रति सन्ध्योपासना करते समय यह भाव हो जायगा यह अनोखी सृष्टि अपने आप ही नहीं बन गई अपितु एक बड़े कुशल कारीगर ने उसे बनाया है तो हमारी छोटी मोटी कृतियाँ उसके सामने तुच्छ प्रतीत होंगी और छोटी मोटी वस्तु बनाने से जो हम में दम्भ बढ़ गया है उसका क्रमशः नाश हो जायगा। जब हम यह विचारेंगे कि हम स्वच्छन्द नहीं हैं। हमको नियम में चलने के लिये वाध्य होना ही पड़ेगा तो हम नियमोल्लंघन के पाप से बच जायंगे। जब चारों ओर कण कण में परमात्मा की सत्ता का भाव हमारे हृदयों में रहेगा तो हम अन्य पापों से बच जायंगे। यह परमात्मा की सर्व व्यापकता तथा सर्वज्ञता के विश्वास का अभाव है जिससे कि हम पाप में प्रवृत्त होते हैं इस भाव के साथ मंत्र पाठ करते हुए उसकी सर्व व्यापकता, सर्वज्ञता तथा सर्व शक्तिमत्ता हमारे हृदयों में अंकित हो सकती है। इसीलिये इनको अघमर्षण या पापनाशक मंत्र कहा गया है।

इस सम्बन्ध में एक बात और विचारणीय है। इन मंत्रों को विधि में यहीं स्थान क्यों दिया गया? उपस्थान मंत्रों के पूर्व या पश्चात् क्यों नहीं दिया गया?

हमको किसी निर्दिष्ट स्थान पर जाना है और वहाँ किसी पुरुष विशेष से मिलना है। ज्यों ज्यों हम उस स्थान के निकट आते जाते हैं त्यों त्यों परिचित वस्तुओं को देख कर ही हमको मालूम होता जाता है कि हम कितने निकट आ गये और जितना निकट आते हैं उतना ही हमारे चित्त में उल्लास बढ़ता जाता है। सन्ध्योपासना में भी हमको परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करना है। निर्दिष्ट स्थान से सम्बन्ध में पुरुष विशेष एक देशीय था। परमात्मा एक देशीय नहीं है। वह तो सर्वत्र व्यापक है। इस बाह्य जगत् के देखने से उसकी सर्व व्यापकता का भाव होता है। इस वाह्य जगत् से पा[illegible] रहना हमारे लिये अनिवार्य है। यह नहीं हो सकता कि विना बीच का मार्ग समाप्त किये हुये किसी निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच जायं। मार्ग तो तै करना ही होगा चाहे पैदल चलकर या गाड़ी में बैठ कर। परमात्मा हृदय मन्दिर में है। उसके पास जाने के लिये पहिले हमको बाह्य जगत् से अपनी दृष्टि हटानी पड़ती है। इन मन्त्रों में बाह्य जगत् का वर्णन है। बाह्य [illegible] से हट कर हमको मानसिक क्षेत्र में प्रवेश करना है। इसीलिये सृष्टि सम्बन्धी मंत्रों को विधि में पहिले रक्खा है। इसका फल यह होगा कि हमारा अन्तरात्मा अहंकार से रहित होगा, [illegible] होगा, पाप करने से डरेगा और परमात्मा के पास बैठने के लिये अधिक शुद्ध और पवित्र होगा तथा अधिक निकट होगा।

मनसा परिक्रमा

आचमन का वर्णन तो पहिले किया ही जा चुका है कि मनसा परिक्रमा में एक नवीन परिवर्त्तन आरम्भ होता है इसलिये इस समय भी आचमन करना चाहिये। अब प्रश्न केवल दो हैं कि किस प्रकार करना चाहिये तथा उस समय हमारे चित्त में क्या भाव रहना चाहिये !

कुछ लोग इन मंत्रों को पढ़ते हुये पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं की ओर मुंह कर लेते हैं। हमारी समझ में यह उचित नहीं। मनसा परिक्रमा स्वयं यह दर्शाता है कि परिक्रमा मन से होनी चाहिये सारे शरीर को इधर से उधर बदलते रहने की क्या आवश्यकता है। बाह्य जगत् का ध्यान तो हमको पहिले ही दिला दिया गया है। अब तो मन से सम्बन्ध है। जब हम मन में इन मंत्रों के अर्थों पर विचार करते हैं तो हमारा विश्वास सर्व व्यापकता के सम्बन्ध में और दृढ़ हो जाता है। साथ ही साथ सर्व-प्रियता हमारे चित्त में अधिक आती जाती है। 'योऽस्मान् द्वेष्टि०' का पाठ करते हुये हम अपने शत्रु के साथ हिंसा या प्रतिहिंसा का भाव जैसा कि कुछ लोगों का विचार है, नहीं रखते।

यह कहना अनुचित है कि हम अपने शत्रु के नाश की प्रार्थना करते हैं। दाढ़ में रक्खा हुआ भोजन नष्ट नहीं हो जाता अपितु हमारे शरीर के लिये हित-कर होता है। इसी प्रकार परमात्मा से हम प्रार्थना करते हैं कि हमारे शत्रु भी हमारे अनुकूल हो जायं और सब के हृदयों की शत्रुता मित्रता में परिवर्त्तित हो जाय, और हम अधिक शुद्ध हो जांय।

उपस्थान मंत्र

अब हम अपने आपको परमात्मा के और भी निकट पाते हैं। जिस प्रकार प्रातःकाल धीरे धीरे निकलता हुआ सूर्य हमारे आनन्द को बढ़ाता है उसी प्रकार हमारा आत्मा भी बाह्य वृत्तियों से दूर होता हुआ भीतर की ओर बढ़ता जाता है और पहिला दृश्य (मंत्र १ 'उद्वयं०') जो उसके सामने आता वह यह है कि उसको परमात्मा अंधेरे से परे दूर एक प्रकाश का पुञ्ज मालूम होता है। पुनः (मंत्र २ 'उदुत्यं०') सूर्य के समान, जिसकी प्रकाश की किरणें चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश फैला रही हैं और जहाँ अन्धकार का नाम मात्र भी नहीं है। तदनन्तर अति निकट पहुँचने पर (मन्त्र ३ 'चित्रं०') हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती और हम उसकी प्रभा को देख कर चकित हो जाते हैं। हम निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये और जिस प्रकार हम पुरुष विशेष को देख कर आनन्दित होते हैं उसी प्रकार हमारा अन्तरात्मा भी परमात्मा से साक्षात् कर पुलकित होता है। उस समय हमको पर-मात्मा कैसा मालूम होता है ? (मित्रस्य चक्षुः, सूर्य । आत्मा जगतस्तस्थुषश्च) मित्र की दृष्टि के समान, सूर्य के समान पृथिवी से लेकर समस्त लोकों को प्रकाशित करने वाला, और इस जंगम तथा स्थावर संसार को गति देने वाला (आत्मा)।

यही नहीं अपितु हम अनुभव करते हैं कि (मंत्र ४ तचक्षु०) चक्षु ने ही हमारे हित के लिये हमको जीवन-शक्ति दी है जिससे कि हम देख भाल कर काम करें, संसार में विचरें और अपने हिताहित को समझें। जिसका फल होगा कि हम चिरायु होंगे और यदि परमात्मा के दिये ज्ञान-वेद को निरन्तर सुनते तथा मनन करते रहेंगे तो संसार में औरों को उपदेश देने के योग्य होंगे और स्वयं अदीन होते हुये औरों की भी दीनता की बेड़ियों को काट सकेंगे। इस भाव के साथ इन मंत्रों का पाठ हमारे लिये अधिक हितकर होगा और हमारी शक्ति उत्तरोत्तर बढ़ती जायगी।

सावित्री (गायत्री) मन्त्र

आचमन का संकेत तो पहले हो ही गया है। निकट पहुँचने के पश्चात् हमारे लिये अब केवल पहिले स्तुति, तदनन्तर प्रार्थना रह गई। ये दोनों विषय इस सावित्री मंत्र में आ जाते हैं। सर्वत्र व्यापक, सर्वज्ञ, समस्त संसार के सृष्टिकर्त्ता का ग्रहण करने योग्य शुद्ध ज्ञान ही हमारा अभीष्ट है क्योंकि उसी से हम धर्म की ओर बढ़ेंगे। वही हमारा अभ्युदय करेगा। वही प्रार्थना हम बार २ मंत्र जाप करते हुए करते हैं। इसी के लिये हमने इतना प्रयत्न किया था। इसी से इसको विशेषता दी गई है।

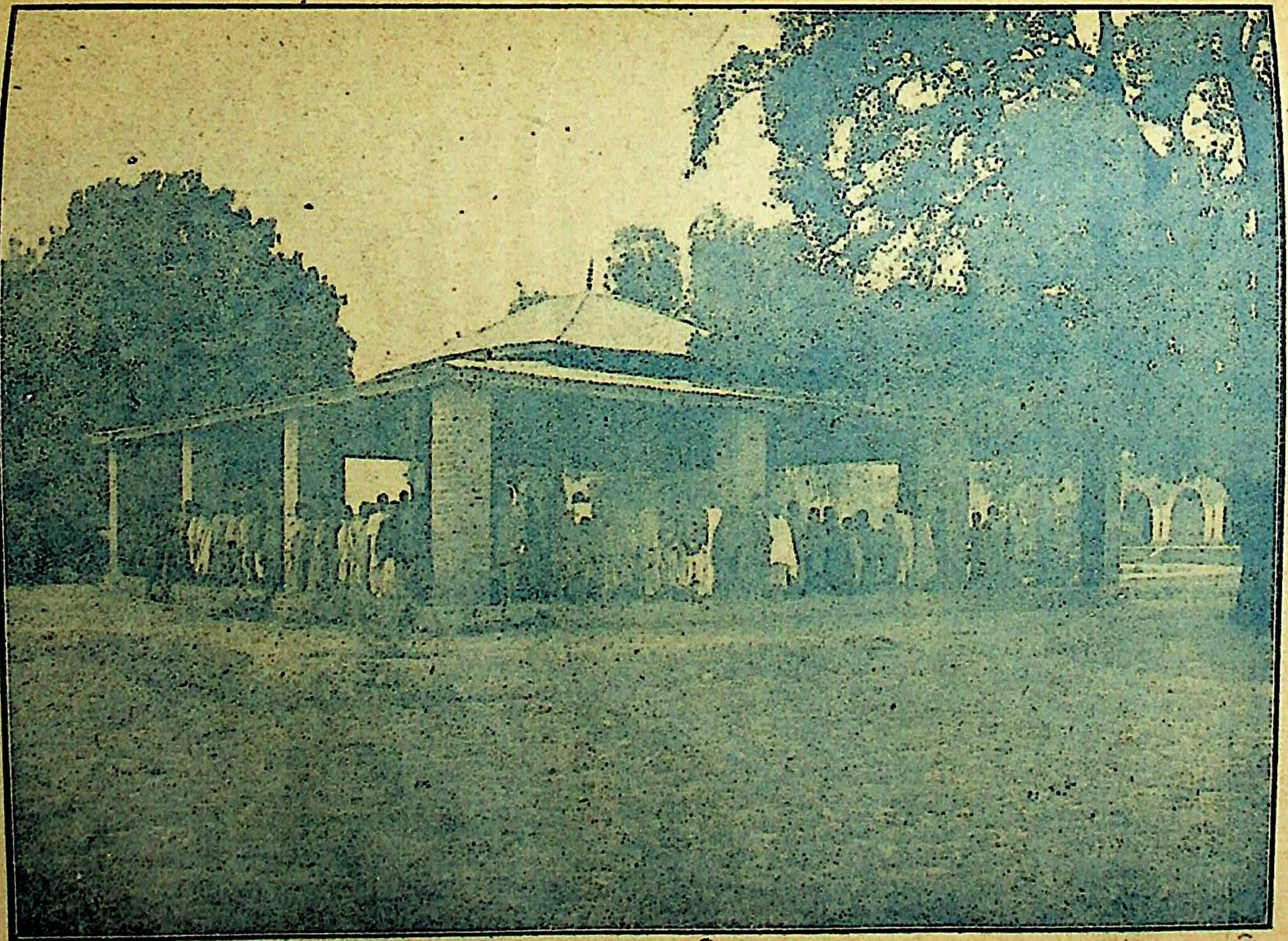
समर्पण मन्त्र

प्रार्थना करने के उपरान्त हमारे लिये केवल प्रणाम तथा विदा लेना ही शेष रह जाता है। वह इस मंत्र में दर्शा[...] गया है।

एक दृष्टि

इस समस्त विधि पर जब हम [...] डालते है तो हमको स्पष्ट प्रतीत होता [...] कि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने कि[...] उपयुक्त विधि बताई है। आत्मिक उ[...] के लिये इससे उत्तम और कौन सी वि[...] हो सकती है। पर उत्तमता तभी प्र[...] होगी जब इस भाव तथा इससे बढ़कर [...] और भाव से हम सन्ध्योपासना कि[...] करें। यदि भाव नहीं है तो हमारा [...] तोता रटन्त की तरह से मंत्र पाठ कर[...] निष्फल ही होगा। हमारी दशा उस [...] के सदृश होगी जो केवल घंटों अख[...] में तो रहता है पर व्यायाम नियम पूर्[...] कभी नहीं करता या बेढंगी रीति [...] करता है।

हम देखते हैं कि इतने प्रचारकों [...] होते हुये भी, इतने वर्ष व्यतीत होने [...] भी हम अपने आपको उन्नत नहीं देख[...] इसका कारण आत्मोन्नति के मार्ग में [...] बाधा ही है। उस बाधा को दूर करने [...] एक मात्र उपाय सन्ध्योपासना ही है [...] आओ, हम सब परमात्मा से प्रार्थना [...] कि हे दयामय प्रभो ! आप हमको मेधा[...] बनाइये जिससे कि हमको आपकी उ[...] सना की उत्कट इच्छा हो और हम अ[...] आपको योग्य बना सकें।



गुरुकुल वृन्दावन की यज्ञशाला



मुहर्रम

[श्री० प्रो० महेश प्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाज़िल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय]



न् हिजरी के प्रथम मास का नाम मुहर्रम है। इस का अर्थ है—वर्जित किया गया। मना किया गया। अरब लोग इस मास में लड़ाई-भिड़ाई सर्वथा बन्द रखते थे। परन्तु इसी मास में दैवयोग से मुसलमानों में परस्पर घोर युद्ध हुआ। हज़रत मुहम्मद साहब के नाती ह० हुसैन साहब मारे गये और उनकी स्मृति में अब जो कुछ भारत में होने लगा उसीका नाम मुहर्रम हो गया है।

ईरान में

वास्तविक बात यह है कि शिया मुसलमान ही मुहर्रम धूम धाम से मनाया करते हैं। ईरान में अधिकांश शिया हैं। मैं गत वर्ष जब ईरान गया तो मेरी तीव्र इच्छा थी कि मैं पूर्ण-रूप से मुहर्रम देख कर लौटूँ। पर कई कारण से ऐसा न कर सका। मुहर्रम के केवल थोड़े ही से दिन ईरान की भूमि में बीते अर्थात् मैं थोड़ा सा ही अंश मुहर्रम का देख सका। तथापि मैं कुछ बातें इस सम्बन्ध की अवश्य मालूम कर सका था जिस का सार यह है—वहां भारत के समान ताज़िये नहीं बनाये जाते परन्तु असाधारण रीति पर शोक मनाया जाता है।

हज़रत हुसैन साहब मुहर्रम की दसवीं तारीख को मारे गये थे। इस तारीख को 'आशूरः' कहा जाता है। इस तारीख को सारे देश में तलवार से शोक मनाया जाता है। बहुतेरे लोग अपने आप को तलवारों से बुरी तरह ज़ख़्मी कर लेते हैं और ऐसे लोगों में से ही कुछ लोग मृत्यु के आखेट भी बन जाते हैं।

आशूरः से पूर्व मुहर्रम की प्रथम तारीख से ही शोक-स्मृति का श्रीगणेश हो जाता है और दस तक नित्य प्रति उस की मात्रा में वृद्धि ही होती जाती है। परन्तु वर्ष के अन्य दिनों में भी शोक मनाने की भारी प्रथा है। शोक-प्रद पद्य पढ़े जाते हैं। रोना-पीटना होता है। हज़रत हुसैन साहब तथा उनके साथियों पर जो आपत्तियां आई थीं उनमें से एक पानी विषयक भी थी। अस्तु, हज़रत हुसैन साहब की स्मृति में कई स्थानों में पियाऊ भी देखने में आये।

कोइटा (बलोचिस्तान) में

मुहर्रम की दस तारीख गत वर्ष मुझे कोइटा में पड़ी जो कि बलोचिस्तान का प्रधान नगर है। ख़ास नगर में हिन्दू भी काफ़ी है पर मुसलमान ही अधिक हैं और प्रान्त में तो विशेषतः मुसलमान

ही मुसलमान हैं। इनमें से जो लोग हज़ारा कहलाते हैं वही शिया हैं वही ताज़िये बनाते हैं। उनके ताज़िये हमारे भारतीय ताज़ियों के समान देखने में आये। इन ताज़ियों के साथ मुसलमान स्त्रियाँ भी देखने में आईं थीं जो खुले मुंह बाज़ारों में शोक प्रगट करती थीं।

मैंने कोइटा में बहुत से ताज़ियों के जलूस देखे। उनमें बाजा या झंडों का अधिक ज़ोर। नहीं देखा और न चढ़ावे चढ़ाने वाले ही अधिक दिखाई पड़े थे। जलूसों में बलोची व पठान दृशकों की अच्छी संख्या थी। पर वह लोग पुण्य के विचार से जुलूस में न थे बल्कि कई पठान व बलौची मैंने ऐसे देखे जो कि ताज़िया के जलूस के प्रति घृणा प्रगट करते थे। वास्तविक बात यह है कि ऐसे बलोची या पठान निस्सन्देह सुन्नी मुसलमान थे।

कंधार (अफ़गानिस्तान) में

कोइटा से लगभग मीलों की दूरी पर चमन है जो कि अफगानिस्तान की दक्षिणी सीमा के निकट बृटिश के अधिकार में है। वहाँ से कुछ दूरी पर कंधार है। अस्तु जब जब मैं चमन गया तो उस अवसर पर अनेक कंधार निवासियों से मिलने का अवसर मिला। मुहर्रम की वावत पता चला कि कं[illegible] में कोई शिया मुसलमान ताज़िया [illegible] बना पाता। जो लोग हज़रत हुसैन [illegible] शोक मनाते हैं वह बहुत गुप्त रीति [illegible] मनाते हैं क्योंकि कंधार निवासी जो [illegible] अधिकांश सुन्नी हैं ऐसे कार्य को [illegible] घृणा की दृष्टि देखते और ताज़िया [illegible] शिया मुसलमानों के प्रति अच्छा भाव [illegible] रखते।

इसमें सन्देह नहीं कि भारत के [illegible] सुन्नी मुसलमान भी ताज़िया तथा मुह[illegible] की धूम-धाम को अच्छा नहीं मानते। [illegible] हरणार्थ यह जानना चाहिये कि देव[illegible] (सहारनपूर)में सुन्नी मुसलमानों [illegible] एक सर्वश्रेष्ठ विद्यालय है उसमें मुहर्रम [illegible] दसवीं तारीख को भी छुट्टी नहीं [illegible] करती। परन्तु भारत के अनेक [illegible] मुसलमान जो मुहर्रम में भाग लेते हैं [illegible] वस्तुतः हिन्दुओं के उत्सवों के कारण [illegible] वह देखते हैं कि हिन्दू लोग दशहरा [illegible] कुछ अन्य अवसरों पर अपना जलूस [illegible] धूम-धाम के साथ निकालते हैं उन्हीं [illegible] मुकाबले में मुसलमान मुहर्रम व चहल[illegible] के अवसरों पर ठाठ-बाठ करना [illegible] धर्म समझ बैठे हैं। निदान लोग [illegible] कारण ही भारत के बहुतेरे सुन्नी मु[illegible] व चहल्लुम के जलूसों को खूब [illegible] काते हैं।



पं० श्याम जी कृष्ण वर्म्मा

श्री पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा से आर्य्य समाज के बहुत कम लोग परिचित हैं और बहुत सों को सन्देह होगा कि आर्य्य समाज के निर्माताओं में उनकी किस प्रकार गणना हो सकती है। परन्तु श्री वर्मा जी उन होनहार पुरुषों में थे जिनके ऊपर स्वामी दयानन्द की विशेष दृष्टि थी। उन्होंने पं० श्याम जी को इंग्लैण्ड इसीलिये भेजा था कि वह वहाँ जाकर वैदिक धर्म का प्रचार कर सकें। आरम्भ में उन्होंने कुछ इधर उधर लेख आदि भी पढ़े थे। प्रोफेसर मैक्समूलर ने अपनी पुस्तक चिप्स फ्राम जर्मन वर्कशाप (Chips from German workshop) में स्वामी दयानन्द के ऊपर एक लेख लिखते हुये श्याम जी का भी वर्णन किया है। स्वामी दयानन्द ने एक पत्र इनके नाम इंग्लैण्ड भेजा था जो हमारे बचपन में कई उत्साही आर्य्य सामाजिकों को कण्ठस्थ था उसमें स्वामी जी ने वैदिक धर्म प्रचार के विषय में संकेत किया था और यह भी लिखा था कि क्या तुम श्रीमती महारागी विक्टोरिया से भी मिले हो। पं० श्याम जी कृष्ण वर्मा ने आर्य्य समाज के आन्दोलनों में विशेष भाग नहीं लिया और क्रान्तकारी राजनीतिक आन्दोलन में कूद पड़ने के कारण उनका ध्यान भी आर्य्य समाज की ओर कम हो गया होगा। परन्तु पं० जी स्वामी जी के भक्त थे इसमें कोई सन्देह नहीं। उन्होंने आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी में स्वामी दयानन्द के नाम पर एक पीठि (Chair) खोल देने के लिये दान दिया था। परन्तु नैतिक कारणों से यूनीवर्सिटी वालों ने उसका उपयोग नहीं किया। जब पं० जी विलायत से लौटे तो अवश्य उनके हृदय में आर्य्य समाज के लिये प्रेम था और उन्होंने आरम्भ में कुछ कार्य्य भी किया। परन्तु उस समय पं० गुरुदत्त जी अपने त्याग के कारण प्रसिद्ध हो चुके थे अतः पं० श्याम जी कृष्ण कुछ दब से गये। और फिर परिस्थिति ने कुछ ऐसा पलटा खाया कि हमारे पास उनके विचार जानने के लिये साधन नहीं रहने पाये। पं० जी का देहान्त ३री अप्रेल को जनेवा में हुआ है। इस समय उनकी आयु ८० वर्ष के लगभग रही होगी। हम पं० जी की संक्षिप्त जीवनी जो श्री भाई परमानन्द जी एम० ए० ने विश्वमित्र में दी है आर्य्य मित्र से उद्धृत करते हैं। हमने भरसक यत्न किया कि पं० जी का चित्र भी दे सकें परन्तु वह प्राप्त नहीं हो सका। जब मिल सकेगा पाठकों के अवलोकनार्थ उपस्थित किया जायगा।

—सम्पादक

स्वामी दयानन्द और कृष्ण वर्मा

पं० श्यामजी कच्छ प्रान्त के रहनेवाले और जन्म से महाजन थे। वे संस्कृत में बड़े परिगतपार(?) थे। वह बीस वर्ष की अवस्था में ही एक अंग्रेजी स्कूलमें अंग्रेजी पढ़ाया करते थे। सं० ९८७३ में जब स्वामी दयानन्द जी सरस्वती बम्बई में गये तो श्यामजी इनके पास आने लगे। श्री स्वामी जी पर इनकी तीव्र बुद्धि का बड़ा प्रभाव पड़ा स्वामी जी ने इनका ध्यान अष्टाध्यायी के स्वाध्याय की ओर दिलाया और स्वयं उनको पढ़ाते रहे। यह स्वामी जी के बड़े भक्त थे—साथ ही स्वामी जी भी उनसे बड़ा प्रेम करते थे।

विलायत यात्रा

स्वामी जी उन दिनों बम्बई में ही थे, जब प्रोफेसर मोनियर विलियम्स किसी संस्कृत के विद्वान् की खोज में आये ताकि उसे साथ ले जाकर आक्सफोर्ड में संस्कृत का स्वाध्याय करें। स्वामी जी की विद्वत्ता बहुत प्रसिद्ध हो गई थी। अस्तु प्रोफेसर साहिब ने स्वामी जी से किसी योग्य व्यक्ति के लिये पूछा। स्वामीजी ने पं० श्यामजी का नाम बताया। स्वामी जी के आदेश पर उक्त प्रोफेसर साहब पण्डित जी को अपने साथ विलायत ले गये। पं० जी आक्सफोर्ड विद्यालय में संस्कृत के अध्यापक थे। परन्तु इसके साथ उन्होंने वहाँ से—लैटिन और यूनानी में एम० ए० की उपाधि भी प्राप्त कर ली। थोड़े दिनों बाद उन्होंने वैरिस्ट्री भी पास कर ली। आक्सफोर्ड में रहते हुये पंडितजी संस्कृत के प्रसिद्ध प्रोफेसर मैक्समूलर से मिलते
आप प्रोफेसर मैक्समूलर और स्वामी
नन्द जी के बीच—मीडियम—मध्य
का काम करते थे। अर्थात् दोनों
सभी प्रकार का पत्र व्यवहार इन्हीं
होता था।

विवाह

बम्बई के प्रसिद्ध सेठ द्वारका
स्वामी जी के शिष्य थे। इनकी
युवती कन्या थो। सेठ जी अपनी क
का सम्बन्ध पं० श्यामजी से क
चाहते थे—स्वामीजी की आज्ञानुसार
श्यामजी ने यह सम्बन्ध स्वीकार क
लिया। परन्तु इसके साथ साथ
श्यामजी ने सेठजी से एक लाख
जायदाद लिखा ली। प० श्यामजी
वर्ष के बाद मातृभूमि लौटे। आप केव
एम० ए० की उपाधि लेकर और वैरि
ही पास करके ही नहीं आये बल्कि व
से हजारों रु० कमाकर भी लाये।
ही ऐसे भारतीय थे—जो विलायत
धनोपार्जन करके लाये।

वैदिक यन्त्रालय

स्वामीजी का देहान्त हो चुका था
प्रकाशन सम्बन्धी काम को सुचारु
से सञ्चालित करने के लिये स्वामीजी
अपने जीवन काल में ही 'परोपकारि
सभा' नाम की संस्था बना दी थी।
जी को भी उसका सदस्य चुना गया था
स्वामी जी का वैदिक यन्त्रालय—जिस
उनकी पुस्तकें छपा करती हैं अजमेर
है। यन्त्रालय का काम कर सकने
भाव से ही पण्डित जी अजमेर में

यन्त्रालय और पुस्तकालय के इञ्चार्ज थे। पञ्जाब के प्रसिद्ध आर्यसमाजी भक्त रेमलदासजी यन्त्रालय के मैनेजर थे। पं० जी को सन्देह हुआ कि यन्त्रालय के प्रवन्ध में बहुत गड़बड़ी है तब उन्होंने अजमेर सब-कमेटी के विरुद्ध कार्यवाही कर उस पर अपना अधिकार जमा लिया। भक्तजी ने पंजाब के सदस्यों को इस आशय के तार दिये कि पं० श्यामजी परोपकारिणी की सम्पत्ति पर अधिकार जमाना चाहते हैं। रायसाहब मूलराज उस समय सभा के स्थानापन्न प्रधान थे। रायसाहिब इस उपद्रव को शान्त करने अजमेर गये। पं० जी ने चाबियाँ उनको संभाल दी—और कह दिया—मैंने जो कुछ किया वह यन्त्रालय की भलाई के लिये किया था। अब मैं इसमें किसी प्रकार का भाग न लूँगा।

देशी राज्यों के मंत्री पद पर

पण्डित जी पहले रतलाम और फिर उदयपुर राज्य में दीवान रहे। इस बीच में लोकमान्य तिलक से उनका प्रेम बढ़ता गया, और वह लोकमान्य तिलक के कट्टर भक्त बन गये। यद्यपि श्यामजी के दिल में देश-प्रेम की अग्नि दहकती थी, परन्तु वह इतने कंजूस थे कि एक पैसा भी व्यय करना उनके लिये भारी काम था। तो भी खाते बहुत अच्छा थे। कुछ विशेष मित्रों को भोज देने में उन्हें बड़ा हर्ष होता था और इस कार्य में उनकी धर्मपत्नी विशेष भाग लेती थीं। विलायत से लौटने पर इन्होंने देखा कि सुसराल वाले अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर रहे हैं तो इन्होंने अदालती कार्यवाही करने की धमकी देकर उन्हें एक लाख देने पर मजबूर किया।

कृपण होने के कारण इनके पास इस समय काफी रुपया जमा होगया था। सन् १८८८ या इसके लगभग वह अपनी धर्मपत्नी सहित इङ्गलैण्ड सैर करने गये। वहाँ उन्होंने सुना कि लोकमान्य को राजद्रोह अपराध में पकड़ लिया गया है। बस इसी पर उन्होंने भारत लौटने का विचार छोड़ दिया और लन्दन में ही स्थायीरूप से रहने लगे। उनका विचार था कि उनके से विचार वालों का भारत में गुजर नहीं। उन्हं ने उत्तरीय लण्डन में एक मकान ख़रीद लिया और वहाँ रहने लगे। विचार-स्वातन्त्र्य के सिवाय उन्हें लण्डन में कोई सुविधा न थी। उन्हें किसी से मित्रता बढ़ाने का शौक न था। खेल तमाशों में भी वह न जाते थे। उनकी प्रसन्नता केवल अपने विचार विकर्ष अथवा स्वाध्याय में निहित थी।

लण्डन में सोशल डेमोक्रेटिक पार्टी के नेता, और भारत के शुभचिन्तक मि० हाइण्डमेन से इनका गहरा मेलजोल था। प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक स्पेन्सर के लेखों को पढ़कर अपने विचारों का प्रचार करना ही इनका दैनिक कार्य था। जीवन के इस भाग में वह हरबर्ट स्पेन्सर की इतनी पूजा करते थे कि शायद ही दूसरा कोई अन्य अंग्रेज उसका इतना मान करता हो। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि वह हरबर्ट स्पेन्सर को अपना गुरु मानने लग गये थे। इस सच्चे भाव का एक, और सबसे बड़ा कारण था हरबर्ट स्पेन्सर

की स्पष्ट-उक्ति। वह ही सर्वप्रथम अंग्रेजी विद्वान् था, जिसने अंग्रेजी शासन को भारत में पाशविक अन्याय पूर्ण और स्वेच्छाचार युक्त बताया। भारत में अंग्रेजी राज्य के विषय में उक्त पंडित जी की किसी से ज़रा भी बात चलती वह चट से स्पेन्सर की यह उक्ति दुहरा दिया करते, इस उक्ति का दुहराना वह अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते थे।

भारत को स्वतंत्र कराने की ओर

४-५ वर्ष लण्डन में रहने के पश्चात् पं० श्यामजी ने भारत की स्वतन्त्रता के प्रचारार्थ एक मासिक पत्र निकाला। पत्र का नाम हरबर्ट स्पेन्सर की सोशियालोजी-समाजवाद, के सिद्धान्तानुसार—'इण्डियन सोशियालॊजिस्ट' रखा। पत्र में होते तो दो-चार पन्ने ही थे, परन्तु सरकार उसे अग्नि स्फुलिङ्ग से कम न समझती थी। इनकी दादा भाई नोरोजी सर हेनरी काटन और किंग वैडरबर्न से जो भारत के शुभचिन्तक समझे जाते थे— गहरी मित्रता थी।

इनकी सहायता के विश्वास पर ही दादा भाई इंगलैण्ड बस गये थे। और कांग्रेस के मतानुसार वह वहाँ राष्ट्रीय प्रचार में लग गये थे। लण्डन तथा अन्य स्थानों के भारतीय विद्यार्थी—एक लण्डन एशोशियेशन के जिनके साप्ताहिक उत्सव ८४ पैलेस चेम्बर में हुआ करते थे, सदस्य बन जाया करते थे। इस संस्था की बदौलत ही भारतीय विद्यार्थी दादा भाई नौरोजी के प्रभाव में रहा करते थे।

औपनिवेशिक स्वराज्य का विरो

पं श्याम जी कांग्रेस के सिद्धा और कार्यशैली को सही न मानते थे और इसके लिये वह दादाभाई को दो समझते थे। वह स्पष्ट शब्दों में प्र करते थे कि औपनिवेशिक स्वराज्य प्रचार और इस मांग का ब्रिटिश पार्लि मेण्ट में पेश करना भारतीयों को धो देना है। एक पराधीन जाति के लि कानूनी तरक्की का विचार निरर्थक औपनिवेशिक शासन प्रणाली की बनाना एक ढकोसला है।

पूर्ण स्वतंत्रता का प्रचारक

इस स्थिति में हम यह निश्चय क सकते हैं कि पं० श्यामजी भारत के लि पूर्ण स्वतन्त्रता के सबसे प्रथम दूत थे आप ही सर्व प्रथम भारतीय थे—जि पूर्ण स्वतन्त्रता का सबसे पहले प्रचा किया। यही नहीं कि उन्होंने अ पत्र द्वारा देश को पूर्ण स्वतन्त्रता सन्देश दिया हो—अपितु क्रियात्मक दिखाया।

इंडिया हाउस

उन्होंने सन् १८०६ में लाख रुपये लगभग एकत्र कर एक मकान खरीदा उसका नाम "इण्डिया हाउस" रख उसमें भारतीय विद्यार्थियों के लिये बोर्डि खोला ताकि देशप्रेमी नवयुवकों को आकर विद्याभ्यास करने में सुविधा रहे इसके साथ ही ६-७ छात्रवृत्तियाँ भी दे निश्चय की। जिनके नाम स्वामी दयानन्द हरबर्ट स्पेन्सर, राणा प्रताप, और शिवा

आदि थे। एक वजीफे पर कोई विद्यार्थी इण्डिया हाउस रहते हुए २-३ साल गुजार सकता था। यह वज़ीफा प्राप्त करने वाले को एक प्रतिज्ञा-पत्र लिख देना होता था कि वह कभी भारत-सरकार की नौकरी न करेगा और जब उसमें सामर्थ्य हो, यह रकम वापस कर देगा। रकम वापस करने का उद्देश्य यही था कि यह क्रम स्थायी रूप से जारी रखा जा सके। इन वृत्ति लेने वालों में एक कलकत्ता के मुसलिम विद्यार्थी मि० सुहरावर्दी हैं जो बहुत देर तक यह वज़ीफा लेते रहे और बाद में प्रतिज्ञा-भंग कर दी। और रकम वापिस देने से भी इन्कार कर दिया। परन्तु एक विद्यार्थी सावरकर थे जिन्होंने इस वजीफे का हक़ देश के लिये जीवन अर्पण कर पूरा कर दिया।

पूर्ण स्वतंत्रता के सिद्धान्त में इतनी निष्ठा रहते हुए भी उनकी नीति खुद बच कर रहने की थी। १९०७ में जब भारत में भारी बेचैनी फैली हुई थी पार्लियामेंट में प्रश्न किये गये—कि सरकार पं० श्यामकृष्णजी वर्मा को कब तक विष उगलने देगी। पण्डितजी ने अनुभव किया और तुरन्त ही अपना सामान लेकर लन्दन छोड़ दिया—और पेरिस में आकर रहने लगे। पैरिस में मि० राना और मेडम राका के साथ मिल कर एक संस्था खोल कर काम करना आरम्भ किया—और यहीं से अपना पत्र भी निकालना शुरू किया। डा० हरदयाल जब सन् १९०८ में पंजाब छोड़ कर बाहर चले गये—तो यह पैरिस आकर पंडितजी के पास ही कुछ दिनों तक ठहरे रहे। उधर मि० सावरकर इण्डिया हाउस का प्रबन्ध करते थे। और कभी कभी पैरिस आते जाते थे। सन् १९५० में मि० सावरकर को गिरफ्तार कर लिया—तब से इसके बाद पण्डितजी का काम बहुत शिथिल पड़ गया।

१९१३ के करीब फ्रांस और इंग्लैंड की मैत्री बढ़ गयी। इसके फलस्वरूप पण्डितजी भी पैरिस छोड़कर जिनेवा चले गये। तब से अब तक वहीं रहे। यूरोपियन युद्ध और बार बार स्थानान्तर होने के कारण यहाँ आने पर पण्डितजी का काम समाप्त ही हुआ सा समझना चाहिये, कारण यहाँ पर भारतीय कम पहुँचते हैं। १९१३ के अन्त में अमेरिका से वापिसी पर मैं कुछ दिन इंगलैंड रहा था बीच में मुझे जिनेवा जाने की आवश्यकता पड़ी वहीं मैंने श्याम जी और सरदार अजीत सिंह जी के दर्शन किये।

इंगलैंड में इनके पास १५-२० लाख रुपया सुना जाता था—यह रकम पैरिस रहते हुये और भी बढ़ती गई। जिनेवा में चूंकि खर्च पहिले वर्षों की अपेक्षा बहुत कम हो गया था इसलिये यह रुपया और भी बढ़ा होगा। लंडन में ही इनकी अवस्था ७० वर्ष के लगभग हो चुकी थी। उनकी प्रकृति बड़ी हीं सादी थी। छोटे बड़े सभी से इनका व्यवहार, सम्मान, प्रेमपूर्ण था। राजनैतिक घोर धार्मिक विषयों पर विवाद करने की इनकी बड़ी प्रबल इच्छा रहती थी। प्रायः रात के समय इण्डिया हाउस में आते—विवाद आरम्भ हो जाता—१-१, २-२ बज जाया करते—परन्तु इनकी बातें न समाप्त हुआ करतीं।

बाइबिल में चमत्कार

[श्री विश्वप्रकाश बी. ए., एल. एल. बी.]



नुष्य पर चमत्कारों का बड़ा प्रभाव पड़ता है। यदि आप सुनते हैं कि कोई महात्मा नगर में आया है तो लोग यही प्रश्न करते हैं "भाई वह क्या कर सकता है?" यदि मित्रों ने चमत्कार बताये तो आपकी श्रद्धा जमने लगती है। यही कारण है कि इस समय जादूगर, और पहुंचे हुये महात्मा अपनी धाक जमाने के लिये थोड़े से चमत्कार दिखलाने की चाल चलते हैं। बुद्धिमान् होने के कारण वे बहुत सी ऐसी चाल की बातों का प्रयोग करते हैं जिनको साधारण जनता न पकड़ सके। मट्टी से रुपया बनाना और रुपये को मट्टी कर देना, खाली झोली में से तरह तरह से अद्भुत पदार्थ निकाल देना—इसी प्रकार की अनेकों बातें सुनने में आती हैं।

शिक्षित पुरुष भी कभी कभी धोखे में आजाते हैं पर अशिक्षित जनता तो ऐसे पुरुषों पर पूर्ण रूप से विश्वास कर लेती है। वास्तव में देखा जाय तो अशिक्षित जनता को विश्वास दिलाने के लिये इन चमत्कारों से बढ़ कर और कोई सीधा मार्ग अब तक बना ही नहीं है। हिन्दुओं के ग्रन्थ पुराण में बहुत सी ऐसी बातें भरी हुई हैं। यहाँ पर हम बाइबिल में से कुछ उद्धरण देकर यह सिद्ध करेंगे कि उसमें भी चमत्कारों की बहुत महिमा है।

"And, behold, there came [a] leper and worshipped him, sa[y]ing, Lord if thou will, th[ou] canst make me clean.

"And Jesus put forth [his] hand, and touched him, sayin[g] I will; be thou clean. And i[m]mediately his leprosy was clea[n]sed."

(St. Matthew VIII, 2-[3])

एक कोढ़ी प्रभु ईसा के स[मीप] आया। उसने बन्दना के पश्चात् [कहा] "भगवन् यदि आपकी इच्छा हो, तो [मैं] स्वस्थ हो सकता हूं।" ईसा ने [अपना] हाथ उसके ऊपर रक्खा और कहा "[मुझे] स्वीकार है। तू स्वस्थ होजा और उ[सका] कोढ़ दूर हो गया।"

क्या अच्छी बात है। ईसा के [छूने] मात्र से ही पुरुष का रोग दूर हो ग[या] दवा की आवश्यकता ही न पड़ी।

"And when Jesus was c[ome] into Peter's house, he saw [his] wife's mother laid and sick [of a] fever.

"And he touched her h[and] and the fever left her; and [she] arose."

(St. Matthew VIII, 14-[15])

जब ईसा पीटर के मकान पर [गये] तो उसने देखा कि पीटर की सास [ज्वर] में पीडित पड़ी है। उसने अपना

लगाया। ज्वर भाग गया और वह उठ खड़ी हुई।

"And, behold, there was a woman which had a spirit of infirmity eighteen years, and was bowed together and could in no wise lift up herself."

"And he laid his hands on her; and immediately she was made straight, and glorified God."

(St. Luke XIII, 11-13.)

एक स्त्री १८ वर्ष से लुंज थी और वह उठ नहीं सकती थी। ईसा ने उस पर हाथ रक्खा और वह ठीक हो गई।

"...He spat on the ground, and made clay of the spittle, and he anointed the eyes of the blind man with the clay."

"And said unto him, Go, wash in the pool of silasm. He went his way therefore and washed, and came seeing.

(St. John IX, 6-7)

एक आदमी जन्म का अन्धा था। ईसा ने जमीन पर थूक कर मट्टी का अंजन बना लिया और अंधे आदमी की आंख में लगा दिया और उससे कहा कि सिलोम के तालाब में जाकर आंख धो आवे। वह गया, आंखों को धोया और लौटने पर उसकी आंखों में ज्योति आ गई थी।

"They brought unto him many that were possesssed with devils and he cast out the spirits with his word and healed all that were sick."

(St. Matthew VIII, 16.)

"उसके समीप बहुत से ऐसे लाये गये जो भूत-प्रेतों के प्रभाववश थे। उसने भूतों को निकाल दिया और बीमारों को स्वस्थ कर दिया।"

"एक स्त्री जो १८ वर्षों से बीमार थी उसके पीछे से आई और उसका कपड़ा पकड़ लिया। क्योंकि उसका विचार था कि ऐसा करने से वह स्वस्थ हो जायगी। ईसा ने फिर कर देखा और कहा पुत्री तू स्वस्थ होजा और वह स्वस्थ हो गई।"

सेंट मैथ्यू (IX, 20-21-22)

एक गूंगा आदमी उसके पास लाया गया जिसको भूत सताता था। ईसा ने भूत निकाल दिया और वह गूंगा बोलने लगा।

सेंट मैथ्यू (IX-32)

गूंगे अंधे लाये गाये जो भूत के प्रभाव में थे। ईसा ने स्वस्थ कर दिया। गूंगे बोलने लगे और अंधों के ज्योति आ गई।

सेंट मैथ्यू (XIII--22)

महात्मा ईसा ने रोगियों को स्वस्थ करने के अतिरिक्त और भी बहुत से चमत्कार दिखलाये थे। रोगियों को स्वस्थ करने के विषय में यह असम्भव बात नहीं है क्योंकि इसके पक्ष में बहुत सी दलीलें दी जा सकती है, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि असम्भव बातें जो कि सृष्टि नियम के सर्वथा प्रतिकूल है वे भी महात्मा ईसा ने कर दिखाई:—

महात्मा ईसा जहाज के द्वारा एक रेगिस्तान को चले गये और लोगों ने जब यह सुना तो वे भी पैदल चले गये। सायंकाल के समय उसके अनुयायी उसके पास आये। उन्होंने कहा कि यह रेगिस्तान है इसलिये इस भीड़ से कह दिया जावे कि वे गांव में जाकर भोजन की सामग्री ले आवें।

"But Jesus said unto them, they need not depart; give ye them to eat.

"And they say unto him, we have here but five loaves, and two fishes.

"He said, Bring them hither to me,

"And he commanded the multitude to sit down on the grass, and took the five loaves, and the two fishes and looking up to heaven, he blessed, and broke, and gave the loaves to his disciples and the disciples to the multitude.

"And they did all eat, and were all filled and they took up of the fragments that remained twelve baskets full.

"And they that had eaten were about five thousand men, beside women and children."

(St. Matthew XIV, 16-21)

"परन्तु ईसा ने उनसे कहा 'उनके जानेकी आवश्यकता नहीं है। उनको खानेके लिये अपने पास से दे दो'। इस पर उन्होंने कहा—'हमारे पास पांच रोटियाँ और दो मछली हैं'। उसने उत्तर दिया 'इन सबको मुझे दे दो'। ईसा ने भीड़ से घास पर बैठ जाने को कहा और रोटियाँ और दो मछलियां ले लीं। की ओर देखते हुये उसने दुआ रोटियों को तोड़ कर अपने शिष्यों दिया। शिष्यों ने भीड़ को बांट सब ने भोजन किया और तृप्त हो बचे हुये टुकड़ों से १२ टोकरियां भर स्त्रियों तथा बच्चों को छोड़कर पांच मनुष्यों ने भोजन किया था।" और

"तब ईसा ने अपने शिष्यों को कर कहा, 'मुझको इस समुदाय के दया आती है क्योंकि वे तीन दिन साथ रहे हैं और उनके पास खाने कुछ नहीं है। मैं उनको क्षुधित भेजूँगा, नहीं तो वे मार्ग में बेहोश गिर जावेंगे।" उसके शिष्यों ने 'इस जंगल में इतना भोजन कहां इतने लोग खा सकें।' ईसा ने 'तुम्हारे पास कितनी रोटियां हैं'। कहा 'केवल सात, कुछ छोटी मछ भी हैं'। प्रभु ईसा ने लोगों से जमीन बैठने के लिये कहा। उसने सात और मछलियों को लेकर धन्यवाद रोटियों को तोड़कर अपने शिष्यों दिया और शिष्यों ने लोगों को बांट उन सब ने भोजन किया और तृ गये। बचे हुये मांस के टुकड़ों से टोकरियां भर गईं थी। स्त्रियों और को छोड़ कर ४ हजार मनुष्यों ने किया।" (सेंट मैथ्यू XV, 32-

इस रोटी वाली कथा को पढ़ महाभारत की याद आ जाती है जहां वान् कृष्ण ने थोड़े से चावलों से बहुत बड़ी सेना का पेट भर दिया था (क्रमशः

समालोचना

हंस—(मासिक पत्रिक)।

वार्षिक मूल्य ३॥), प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस।

"हंस" का दूसरा अंक हमारे सामने है। इसके सम्पादक हैं हिन्दी संसार के गल्प तथा उपन्यास सम्राट श्री प्रेमचन्द बी० ए०। गल्प, लेख, कवितायें, सभी एक से एक सुन्दर तथा हृदयग्राही हैं। राष्ट्रीय सामग्री भी इसमें यथोचित मिलेगी। जिनको श्री प्रेमचन्द की रचनाओं से प्रेम हो उनको चाहिये कि इस पत्रिका को अपनायें। छपाई, चित्र, आदि को देख कर इसका मूल्य बहुत अल्प रक्खा गया है।

अफ्रिका-यात्रा—लेखक तथा प्रकाशक स्वामी मंगलानन्द पुरी, १३८ अतरसुइया, इलाहाबाद, पृष्ठ संख्या ६५८ सजिल्द, मू० ४॥)।

प्रस्तुत प्रस्तक में स्वामी जी ने अपनी यात्रा का वर्णन किया है। सन् १९१० से १९१४ तक में कई बार स्वामी जी ने अनेकों स्थानों पर अफ्रिका में भ्रमण किया और जो कुछ बातें उन्होंने देखीं या सुनी या अनुभव की सब इस पुस्तक में दी गई हैं। इस पुस्तक के पढ़ने से अफ्रिका देश के विषय में हमारा अच्छा परिज्ञान हो सकता है। वहां के रहने वाले भारतीयों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। पुस्तक सब प्रकार से सुन्दर है और ऐसी यात्राओं की पुस्तकों की हिन्दी में बहुत आवश्यकता है। जनता को चाहिये कि इस पुस्तक को अवश्य पढ़े।

Vedic Tenets according to Dayanand ले०—स्वा० मंगलानन्द पुरी, प्रकाशक L. S. Verma & Co. 138 अतरसुइया, इलाहाबाद। पृष्ठ संख्या ६० मू० ।) सजिल्द ।-)

इस पुस्तक में संक्षेप से सभी वैदिक सिद्धान्त अंग्रेज़ी भाषा में दे दिये गये हैं। पुस्तक की उपयोगिता परिशिष्टों के लगने से जिनमें आर्य्य साहित्य की पुस्तकें, आर्य्य संस्थायें आदि है, अधिक बढ़ गई है।

जीवन स्मृति—मूल लेखक कविसम्राट श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर। अनुवादक श्री सूरजमल जैन। प्रकाशक मित्र-ग्रंथमाला-कार्य्यालय सीतलामाता बाज़ार इन्दौर पृ० संख्या ३३२, मूल्य २)

इस पुस्तक में कविसम्राट श्री टागोर महाशय के जीवन के अनुभव उन्हीं की ललित भाषा में दिये हुये हैं। पुस्तक बहुत ही शिक्षाप्रद तथा मनोरंजक है। सफ़ाई, छपाई, कागज़ सभी उत्तम हैं। परन्तु अनुवाद हिन्दी मुहाविरे के अनुकूल नहीं है। प्रत्येक पृष्ठ पर ऐसा प्रतीत होता है मानों अनुवादक की मातृ-भाषा हिन्दी नहीं है। हिन्दी मुहाविरों के स्थान में मरहठी मुहाविरों की भरमार है। फिर भी न तो आशय समझने में कठिनाई होती है न मनोरंजकता में कमी।

माया—कहानियों की सचित्र मासिक पत्रिका। वार्षिक मूल्य ५)। सम्पादक श्री क्षितीन्द्र मोहन मित्र मुस्तफ़ी और श्री विजय वर्मा।

इस उत्कृष्ट पत्रिका का तीसरा अङ्क हमारे समक्ष है। कहानियां सभी मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। पत्रिका प्रशंसनीय और अपनाने योग्य है।

शंका समाधान

शंका

(१) प्रत्येक कर्म मनुष्य किसकी प्रेरणा अथवा आज्ञा से करता हैं ?

समाधान

(१) प्रेरणा कई तरफ़ से हो सकती है। कभी अन्य पुरुषों की प्रेरणा से काम किया जाता है। जैसे किसी ने कहा अमुक कर्म करो। हम करने लगे। कभी स्वयं अपनी ओर से हमने विचारा कि यह काम करने में यह लाभ होगा। विचार के पश्चात् निश्चय किया कि अच्छा यह काम करना चाहिये। कभी प्रेरणा ईश्वर की ओर से भी होती है। उस प्रेरणा को ईश्वरीय कहा जा सकता है जो न तो अन्य पुरुष की ओर से की गई हो और न हमारी बुद्धि ही उसमें सहायता देती हो किन्तु हम एक अनिर्वचनीय आन्तरिक शक्ति द्वारा उस काम को करने के लिये खिंचे से जा रहे हों।

शंका

(२) तथा उस काम के पूरा करने में इन्द्रियों के अतिरिक्त क्या किसी और से भी सहायता लेता है ?

समाधान

(२) प्रथम मनसे, फिर इन्द्रियों से, फिर अन्य पदार्थों से भी। परन्तु मन आत्मा का सबसे पहला साधन है। ही के द्वारा आत्मा इन्द्रियों से क[ाम ले] सकता है। और इन्द्रियों के ही [द्वारा] आत्मा वाह्य पदार्थों से। कठो[पनिषद्] में आत्मा को रथी, शरीर को [रथ,] बुद्धि को सारथी, मन को [लगाम] और इन्द्रियों को घोड़े बताया [है।] परन्तु जिस प्रकार रथ पर रथी [अलग] और सारथी अलग होता है और [सारथी] केवल रथी की आज्ञा पर चलता [है,] कभी विरुद्ध भी चल सकता है उस [प्रकार] आत्मा अलग और बुद्धि अलग न[हीं।] बुद्धि, उपलब्धि और ज्ञान यह [तीनों] एक ही हैं (न्याय दर्शन १।१।[१५]) और आत्मा के गुण हैं। [आत्मा] अपने इस गुण द्वारा निश्चय कर[के मन] द्वारा इन्द्रियों को कर्म करने के [लिये] प्रेरित करता है। उपनिषद् की यह [उपमा] केवल एक-अङ्गी है सर्वाङ्गी नहीं।

कभी कभी कहा जाता है कि [हमारे] मन ने हमारी आज्ञा के विरुद्ध का[म कर] लिया। परन्तु ऐसा नहीं है। [प्रत्येक] कर्म का कर्त्ता आत्मा ही है। मन [कर्म] का साधन मात्र है कर्त्ता नहीं। एक [कर्म] में दो स्वतंत्र कर्त्ता नहीं हो सकते। [मन] यदि स्वतंत्र नहीं तो मन आत्मा के वि[रुद्ध] कर कैसे सकता है ? वस्तुतः बात [यह है] कि आत्मा में भला बुरा विचार करने [की] भी शक्ति है जिसे बुद्धि कहते हैं।

निरन्तर कर्म करते २ उसे कर्मों के एक नियत मार्ग पर चलने का स्वभाव भी हो जाता है उस मार्ग पर चलने में कष्ट कम उठाना पड़ता है। जैसे गाड़ी के पहिये गाड़ी की लीक पर सुगमता से चल सकते हैं। अब यदि आत्मा प्रबल है तो सुगम पथ की परवाह न करता हुआ अपने ज्ञान के अनुकूल दुर्गम पथ का भी अवलम्बन करेगा। परन्तु यदि निर्बल है तो पुरानी लीक में बह जायगा। और अपनी बुद्धि के विपरीत भी कर्म डालेगा। परन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं कि मन ने आत्मा के विरुद्ध कर डाला। किया तो आत्मा ने ही। परन्तु विचार शक्ति का तिरस्कार करके अभ्यस्त और सुगम पथ का अवलम्वन कर लिया। यही भेद है।

कभी कभी उचित अनुचित जानने के लिये भीतर से प्रबल प्रेरणा होती है उसको ऋषि दयानन्द ने ईश्वर की ओर से माना हैं (देखो सत्यार्थ-प्रकाश समुल्लास ७)।

शंका

(३) क्या कभी कोई समय ऐसा भी होता है जिसमें जीवात्मा कर्म न करता हो? प्रलय काल में जीवात्मा कुछ न कुछ कर्म करता है या नहीं?

समाधान

(३) प्रलय काल की अवस्था सुषुप्ति जैसी होती है। उस समय काम नहीं कर सकता। जीव का स्वाभाविक गुण प्रयत्न तो है परन्तु प्रयत्न का केवल यही अर्थ है कि साधन मिलने पर कार्य्य कर सकता है। कल्पना कीजिये कि मैं लिख सकता हूँ। परन्तु यदि क़लम, कागज, स्याही नहीं तो कैसे लिखूँगा? ईश्वर बिना साधनों के कर्म कर सकता है परन्तु जीव अल्प है। उसके लिये साधन चाहिये। प्रलय में साधन नहीं होते। प्रलय और सृष्टि में यही भेद है। सृष्टि होती ही इसलिये है कि जीव के कर्म के लिये साधन प्राप्त हो जाय। यदि प्रलय में भी जीव काम कर सकता होता तो प्रलय भी सृष्टि की भाँति हो जाती।

शंका

(४) मन और अन्तःकरण भिन्न हैं या एक?

समाधान

(४) मन शब्द भिन्न २ स्थानों में भिन्न २ अर्थों में उपयुक्त हुआ है। कभी तो मन समस्त अन्तःकरण के लिये आता है। कभी अन्तःकरण की केवल एक शक्ति के लिये, जैसे मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार मिल कर अन्तःकरण चतुष्टय कहलाते हैं।

नोट—बहुत से भाइयों को धार्मिक विषयों पर अनेक शंकायें रहती हैं और उनके समाधान का अवसर नहीं मिलता। गत मास में हमने "गायत्री और २३ अक्षर" विषयक शंका का समाधान किया था। अभी हमारे पास प्रतापगढ़ के एक भाई का पत्र आया है जिसमें उन्होंने वही शंका की है, उनको "वेदोदय" का पता नहीं था। अन्य शंकायें भी उन्होंने भेजी हैं जिनका समाधान यहां किया जाता हैं। यदि सज्जनवृन्द हमारे पास अपनी शंकायें भेजते रहेंगे तो 'वेदोदय' यथाशक्ति उनकी सेवा करने का बचन देता है। (सम्पादक)



आर्य्य साहित्य मण्डल की स्थापना

यह बहुत बड़े सौभाग्य की बात है कि बहुत दिनों बाद एक ऐसी लिमिटेड कम्पनी का निर्माण हो पाया है जो वैदिक साहित्य पर उत्कृष्ट ग्रन्थ तय्यार करके प्रकाशित करेगी। इस मण्डल का उद्देश्य होगा :—

१—संसार की समस्त प्रसिद्ध भाषाओं में वेदों के सरल अनुवाद प्रकाशित करे।

२—वेदों के मूल गुटके तथा अनुवाद सरल एवं सुलभ दामों में मोटे और पतले टाइपों में नाना प्रकार के निकाले।

३—ब्राह्मण ग्रन्थों, उपनिषदों, श्रौतसूत्रों और शाखा संहिताओं के सरल भाषाभाष्य प्रकाशित करे।

४—वेद विषयक दुर्लभ ग्रन्थ प्रकाशित करे।

५—आर्य साहित्य के अन्यान्य ग्रन्थ भी प्रकाशित करे।

६—स्कूल तथा कालेज के विद्यार्थियों के लिये धार्मिक तथा अन्य उपयोगी विषयों की पुस्तकें प्रकाशित करे।

इस लिमिटेड कम्पनी की पूंजी दो लाख रुपए की होगी और १०) के हिस्से रहेंगे।

इस समय तक आर्य्यसमाज में … की धूम रही है। भजनों की पुस्तकों … दस संस्करण निकल गये है। इसके … गाली-गलोज वाली पुस्तकों की भी … चरचा रहती है। लोग ऐसी पुस्तकें … पसन्द करते है जिनमें मुसलमानी … ईसाई धर्म की हंसी की गई हो। … अनुचित रुचि के कारण लोगों ने … साहित्य को तिलाञ्जलि दे दी है। … समाज में उत्तम पुस्तकें न बनती … और न वे प्रकाशित ही हो पाती है। … अभाग्यवश प्रकाशित भी हो गईं तो … उनको नहीं मंगाती जिसका फल यह … है कि प्रकाशकों का इतना साहस न … पाता कि वह ऐसी दूसरी पुस्तक प्र… कर सकें। आर्य्य साहित्य मंडल की … वेद भाष्य सरल भाषा में हो रहा है। … तथा अथर्ववेद का भाष्य समाप्त हो ग… यजुर्वेद भाष्य की एक पुस्तक जनता के … में पहुंच चुकी है।

इस मंडल का उद्घाटन ९ मई … को महात्मा नारायण स्वामी जी … प्रधान आर्य्य सार्वदेशिक सभा के … कमलों द्वारा हुआ। यहां पर उनके … भाषण में से थोड़ा सा अंश दिया जाता …

देशों और जातियों की सबसे उत्तम सम्पत्ति उनके विद्वान् और उनका साहित्य है। उन्नत देशों और सभ्य जातियों ने इस बात का खूब अनुभव किया है।···इङ्गलैण्ड के एक विद्वान् से पूछा गया कि, बतलाओ यदि हिन्दुस्तान के राज्य और शेक्सपीयर इन दोनों में से तुम्हें एक को छोड़ना ही पड़ जाय, तो तुम किसको छोड़ोगे। इस पर विद्वान् ने कहा कि हिन्दुस्तान का राज्य छोड़ देंगे, परन्तु शेक्सपीयर को नहीं छोड़ सकते भारतवर्ष को तो शेक्सपीयर से भी बढ़कर उज्ज्वल रत्नों के निकालने का सौभाग्य है।···अमेरिका में एक साहित्य संस्था ने निर्णय किया था कि, कालिदास के नाटक संसार में सबसे उच्च कोटि के हैं।···इस प्रकार भारतवर्ष के दर्शनों और उपनिषदों के आगे संसार भर के दार्शनिक सिर झुकाते हैं। वेद, ब्राह्मण, उपनिषदें, सूत्र ग्रन्थ, सम्पत्ति हैं, जिनको हमें त्रिकाल में भी कभी त्याग नहीं करना चाहिये, प्रत्युत इनकी रक्षा करने का उद्योग करना चाहिये।

आर्यसमाज ने प्रचार भी खूब किया, संस्थाएं और शिक्षणालय भी बहुत खोले परन्तु उसमें एक यही त्रुटि है कि, उसने अपने साहित्य को बढ़ाने का यत्न बहुत कम किया है। इसी त्रुटि के कारण आर्यसमाज अभी उन्नति के मार्ग में पीछे है। हर्ष है कि, "आर्यसाहित्यमण्डल" इस त्रुटि को पूर्ण करने का यत्न कर रहा है। मण्डल के लिये बड़े सौभाग्य की बात यह है कि, उसको श्री पं० जयदेवजी जैसे विद्वान् हाथ लगे हैं। वे गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक होते हुए भी वेद विषय और कर्मकाण्ड तथा मीमांसा के अच्छे ज्ञाता हैं। उन्होंने मीमांसातीर्थ की उपाधि भी प्राप्त की है। उनके लिये भी यह सौभाग्य की बात है कि, उनको आर्यसाहित्य मण्डल जैसी संस्था प्राप्त हुई है।

आर्यसमाज के क्षेत्र में महर्षि दयानन्द··· के बाद भी कई विद्वान् हुए जैसे—श्री पं० शिवशङ्करजी काव्यतीर्थ, श्री पं० आर्यमुनिजी और श्री पं० तुलसीरामजी, परन्तु उनको एक बड़ी असुविधा यह रही कि, उनके साथ कोई प्रकाशक या संस्था नहीं थी, परन्तु उक्त पं० जी को तो वह भी प्राप्त हैं। इस सहयोग से उन्होंने कार्य्य भी बड़ा उत्तम किया है।

महर्षि दयानन्द के बाद में जितने भी और आर्य्य विद्वान् वेदभाष्य करने वाले हुए, उनके भी ग्रन्थों पर बराबर समालोचनाएं होती चली आई हैं। इसी प्रकार उक्त पं० जी के वेदभाष्य पर आलोचना हो रही हैं। यह तो होगी ही। आपने सामवेद के पश्चात् अथर्ववेद का पूरा भाष्य किया है। इस वेद पर अभी तक एक भी पूर्ण भाष्य नहीं था। सायण का भाष्य तो केवल एक तिहाई मंत्रों पर ही है। बहुत से भागों पर उनका भाष्य नहीं है। आपने इस वेद पर भाष्य पूरा कर दिया है। मैंने अभी तक सामवेद पूरा और अथर्ववेद प्रथम खण्ड देखा है, वे स्थल भी देखे हैं जिन पर आलोचक आलोचना कर रहे हैं। मुझे उनके भाष्य में एक भी ऐसा स्थल नहीं दीखता, जिसके कारण आर्यसमाज पर किसी प्रकार का आक्षेप हो सके। यदि कोई स्थल मिलेंगे, तो मैं मण्डल को अपने विचार लिख कर भेज दूंगा। यों तो त्रुटियां रहना स्वाभाविक है। लेखक लोग ग्रंथ लिखेंगे और समालोचक समालोचना भी करेंगे। टीका-टिप्पणियां होनी ही चाहिये। यही साहित्य के उन्नत होने का सामान्य नियम है। इसके

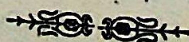
सिवा दूसरा तरीक़ा नहीं है, परन्तु समालोचकों को चाहिये कि, वे अच्छी नीयत और सद्भाव से समालोचना करें। समालोचना करते हुए उसमें बुरे भाव कल्पना करना बहुत बुरा कार्य है। समालोचकों को चाहिये कि, जो त्रुटियां देखें अपने सद्विचारों सहित लिख कर मण्डैल के संचालकों के पास भेजें, जिससे उन पर विचार किया जाय और आगामी संस्करणों में उन ग्रन्थों को उत्तरोत्तर उन्नत किया जाय। यही शिष्टता का मार्ग है।

मण्डेल ने जिन उत्तम उद्देश्यों से इस कार्य को उठाया है, वह प्रशंसनीय है। मंडल को अभी तक आर्य्य पुरुषों ने जिन सद्भावों से सहायता दी हैं और दे रहे हैं मुझे आशा है कि, वे आगे भी उसी सद्भाव से देते रहेंगे। अब मैं घोषणा करता हूं कि आर्य्य-साहित्य-मण्डल लिमिटेड उद्घाटित किया गया"।

स्वामी सत्यानन्द जी

बहुत से ऐसे लोग होते हैं जिनके विषय में कुछ भी लिखना शिष्टता के विपरीत होता है। पर कभी कभी ऐसा समय आ जाता है कि लिखे विना काम नहीं चलता। स्वामी सत्यानन्द जो भी ऐसे महापुरुषों में से हैं जिनका हम बड़ा आदर करते हैं और करेंगे। वे योग्य हैं, त्यागी हैं, बुद्धिमान हैं, इसीलिये हम प्रार्थना करने का साहस करते हैं। आर्य्य समाज को स्वामी पर बड़ा गर्व है और उनकी अमृतवर्षा से सहस्रों भक्तों की तृप्ति हो जाती है। पर समझ में नहीं आता कि उन्हें अपने शिष्य बनाने की बात क्यों सूझी। इस समय भी उनके भक्त उनकी आज्ञा का यथोचित पालन करते पर गुरुडम की एक नई लहर उन्होंने क्यों चलाई। हमारा तो यह विश्वास है कि इसमें भी उन्होंने कुछ न कुछ आर्य्य समाज का लाभ ही सोचा होगा। पर यह बात ऐसी है जो हमें ऐसे बहुत से लोगों को खटकती है। हमारी उनसे प्रार्थना है और अनुरोध है कि वह कृपा करके इस बात को पुनः विचार ले और अपनी सम्मति को प्रकट करें। इसके अतिरिक्त दूसरी बात राम महिमा की है। स्वामी जी का कहना अक्षरशः सत्य है कि एक परमात्मा को चाहे जिस नाम से ध्यान करें। हमें भी इसमें कोई आपत्ति प्रतीत नहीं होती। केवल एक बात खटकती है। स्वामी दयानन्द जी ने यह लिखा है कि ईश्वर का मुख्य नाम "ओ३म्" है। इसके अतिरिक्त "राम नाम" अब तक ऐसे लोगों के आश्रित रहा जिनका हम खण्डन करते रहे हैं।

हमें पूर्ण आशा है कि स्वामी जी इन दोनों बातों पर विचार करेंगे और जनता को इनके गूढ महत्व दर्शाने की कृपा करेंगे।



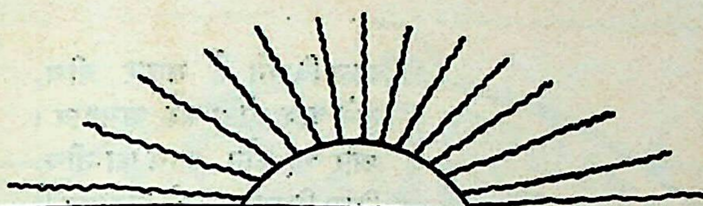
वेदोदय



[ऋषि दयानन्द के परम-भक्त, आर्य्य समाज के स्तम्भ]
मुनिवर पं० गुरुदत्त विद्यार्थी एम० ए०

KALA PRESS, ALLAHABAD.

ओ३म्



वेदोदय

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३। ४। १। १]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती हैं।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग १ } अषाढ़, संवत् १९८७ ; दयानन्दाब्द १०५; जुलाई १९३० आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३० { संख्या ४

प्रहेलिका

[श्री सत्यप्रकाश, एम. एस-सी., एफ. आई. सी-एस.]

उदधि में उठतीं लहरें लोल,
एक पर गिरतीं आकर एक।
द्वीप यह निर्जन डांवाडोल,
गंवाया तूने पथिक विवेक॥

तरी यह तेरी क्यों विच्छिन्न,
हुआ है भंग अरे पतवार।
और क्यों बैठा तू है खिन्न,
चलेगा क्या तू अब उस पार।

दूर है तट तू साधन हीन,
अकेला और अभागा बाल।
एक पर आतीं एक नवीन,
घटायें लेने तेरा हाल॥

बोल किसने है सागर बीच,
तुझे अब छोड़ा कर असहाय।
और वह कौन हृदय का नीच,
किया जिसने तुझको निरुपाय॥

अरे तू इसी भांति अनजान,
रहेगा कब तक विपदाग्रस्त।
किधर से आया यह जलयान,
कहां पर जाकर होगा अस्त॥

किया था तूने कोई पाप,
किसी का तूने या उपहास।
किसी क्रोधी मुनि का यह शाप,
क्रूर नृप का या पीड़ित दास॥

अभागी मां का शिशु नादान,
पिता से अथवा वंचित बाल।
निराशा से आकुल सन्तान—
खींच तुझको लाया कंकाल॥

तपस्वी है या परम विरक्त,
छोड़ कर सुख का सब भंडार।
यान में बैठा हो परित्यक्त,
सिद्धि के कर भीषण उपचार॥

किसी मायावी ने या आज,
किया यह जादू का है खेल।
कुपित या तुझसे कोई राज,
तुझे जो भेजा है इस जेल॥

किसी नटनागर का यह मंच,
जहां पर होगा कोई रंग।
विपंची होगा जहां विरंच,
जहां पर होंगे भंग अभंग॥

कभी क्या होगा तू स्वच्छन्द,
विधाता के पहुंचेगा द्वार।
हुआ जब जन्म नयन थे बन्द,
बन्द ये होंगे जाती बार॥



वेदों की सूक्ति

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमकृत ।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि ॥

(ऋग्वेद मण्डल, १०, सूक्त ७१ । मं० २)

(यत्र) जहां (धीरा) बुद्धिमान पुरुष (मनसा) बुद्धि से (पुनन्तो) पवित्र करके (वाचम्) वाणी को (अकृत) कहते हैं (इव) जैसे (तितउना) चलनी से (सक्तुम्) सत्तुओं को (अत्र) वहां (सखायः) मित्र लोग (सख्यानि) मित्रता के भावों को (जानते) जानते हैं । (एषां) इनकी (अधिवाचि) वाणी में (भद्रा) कल्याण करने वाले (लक्ष्मी) लक्ष्मी (निहिता) रहती है ।

सत्तुओं को चलनी से छानने का विधान है । बिना छाने उनमें कूड़ा करकट मिला रहता है । या भूसी के वह कण मिले रहते हैं जिनको खाना हानिकारक हो सकता है । चलनी से छानने में सत्तुओं का सूक्ष्म भाग नीचे आ जाता है और स्थूल अनुपयुक्त भाग ऊपर रह जाता है ।

वाणी बोलने वालों को भी इसी प्रकार अपनी वाणी को शुद्ध रखना चाहिये । जैसे सत्तुओं के लिये चलनी चाहिये उसी प्रकार बातों की चलनी, बुद्धि है । वेद का आदेश है कि बिना बुद्धि से छाने हुये कभी बात न कहो । बुद्धि वाणी की करकशता तथा हानिकारकता को दूर कर देती है । जिस प्रकार छने हुये सत्तू खाने से शक्ति बढ़ती है इसी प्रकार सोच समझ कर बात कहने वाले की बात का प्रभाव पड़ता है । ऐसी बात मित्रता के भावों को बढ़ाती है और जो पुरुष इस प्रकार बात कहते हैं उनकी वाणी में कल्याण करने वाली लक्ष्मी का का वास रहता है ।

परमात्मा ने यों तो सभी को जीभ दी है । इस जीभ का मुख्य काम बोलना है । परन्तु "मुखे जिह्वास्ति, अतः वक्तव्यं" अर्थात् मुंह में जीभ है इसलिये अवश्य बोलना चाहिये यह नियम शान्ति तथा लाभ का देने वाला नहीं है । लोग बिना समझे बोल उठते हैं । और लाभ के बदले हानि उठाते हैं । इसी बोलने की बदौलत सैकड़ों घर तबाह हो जाते हैं । हजारों बड़े बड़े युद्धों की तह में

यही "बोलना" था। तलवार एक को मारती है परन्तु जीभ हजारों का सफ़ाया कर देती है। यह केवल इसलिये कि लोग वेद के इस आदेश को भूल जाते हैं कि चलनी से सत्तुओं को छान कर खाओ वैसे ही मन से छान कर वाणी बोलो। सत्तुओं में या तो भूसी होगी या बाहरी कूड़ा, यह दोनों ही हानि करेंगे। वाणी में या तो कर्कशता होगी या अनर्गलता। यह दोनों ही हानि करते हैं। भूसीदार सत्तू गले में छिदते हैं सुगमता से निगले नहीं जा सकते। कर्कश वाणी भी सुगमता से निगली नहीं जा सकती। यह कानों को छीलती हुई जाती है जैसे भूसी गले को। सुनने वाले इस पर सुगमता से विचार नहीं कर सकते। कर्कशता उनको बात के लाभ-प्रद भाग से भी लाभ नहीं उठाने देती। लोग आधा सुन कर ही क्रुद्ध हो जाते हैं फिर कैसे सम्भव हो सकता है कि मित्रता के भाव उत्पन्न हो सकें? किन्हीं मित्रों को शत्रु बनाना हो तो सबसे सरल उपाय यह है कि सीधी से सीधी बात में कर्कशता उत्पन्न कर दो। मीठे से मीठे सत्तुओं को अगर चाहते हो कि खाने वाला न खा सके तो उसमें भूसी के मोटे भाग को रहने दो।

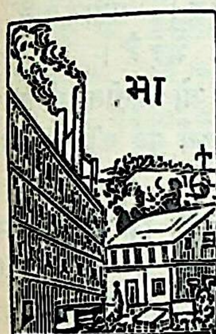
वाणी का दूसरा हानिकारक अंश अनर्गलता है। जैसे सत्तुओं में बाहरी चीजें जैसे कंकड़ियां आदि मिल जाती हैं और उनके मिलने से स्वादिष्ट से स्वादिष्ट सत्तू भी किसी काम के नहीं रह[illegible] इसी प्रकार वाणी की अनर्गलता वा[illegible] को विषयुक्त कर देती है। जिस बात [illegible] लाभ नहीं उसको क्यों कहो चाहे [illegible] भी क्यों न हो?

कुछ लोग समझते हैं कि बात [illegible] सच है तो अवश्य कह दो। वह आ[illegible] पीछा नहीं देखते। झट कह उठते हैं ऐसे लोगों को मुँहफट कहा जाता है अर्थात् उनका मुँह इतना फटा हुआ [illegible] कि बात स्वयं उनके मुँह से निकल पड़[illegible] है वह उस पर नियंत्रण नहीं रख सक[illegible] ऐसे लोग सच के रूप में विष उगल[illegible] हैं और अपनी तथा संसार की शान्[illegible] भंग कर बैठते हैं। उनकी वाणी [illegible] लक्ष्मी का निवास नहीं होता। [illegible] चलनी के टूट जाने से सत्तुओं का कू[illegible] भी सत्तुओं के साथ नीचे आ जाता है इसी प्रकार मुँहफट लोगों का हाल है वेद की आज्ञा है कि अनायास आव[illegible]श्यकता के विना मत बोल उठो। [illegible] विचार कर लो कि तुमको कहने [illegible] अधिकार है या नहीं। और यदि कह[illegible] का अधिकार भी है तो क्या ऐसे कह[illegible] से कोई होती हुई हानि दूर हो जायग[illegible] या चुप रहने से हानि बढ़ जायगी [illegible] यदि यह दोनों शर्तें पूरी न हों तो कह[illegible] से चुप रहना अच्छा है। सदा या[illegible] रखना चाहिये कि मन वाणी की चलनी है। जो मन से विचार करके भली प्रका[illegible] शुद्ध कर लिया गया है वही बोलना चाहिये।

शंकर, रामानुज और दयानन्द

[श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

[१]



रतवर्ष अपने दर्शन-शास्त्र के लिये प्रसिद्ध है। इसके षट् शास्त्र जगत् विख्यात हैं। इन शास्त्रों को यह रूप देने से पूर्व भारत वासियों ने कितनी उन्नति करली होगी यह बात केवल इन शास्त्रों के अध्ययन से जानी जा सकती है। परन्तु मध्य-कालीन भारतीय दर्शन गगन को देदीप्यमान करने वाले दो अद्भुत तारे शंकर और रामानुज थे। आजकल का धार्मिक हिन्दू जगत् एक अर्थ में इन दो महानुभावों के प्रभाव क्षेत्रों में बटा हुआ है।

शंकर एक महान् पुरुष था। संसार में ऐसे मनुष्य बहुत कम उत्पन्न होते हैं। एक युग में कई शङ्कर तो हो ही नहीं सकते। कई युगों में भी एक शङ्कर उत्पन्न होना दुर्लभ है। शांकर मत के विरोधी पहले भी थे और अब भी हैं। परन्तु कोई पुरुष जिसके दर्शन शास्त्र से कुछ भी परिचय है शंकर की अद्भुत और अनुपम शक्ति का लोहा माने विना नहीं रह सकता।

शंकर की फिलासफी का मूल मन्त्र यह है "एकं ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।" केवल एक ही सत्ता है अर्थात् ब्रह्म। इससे इतर कोई दूसरी सत्ता है ही नहीं। ब्रह्म का निरूपण उपनिषद् के शब्दों में यह है "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म।" ब्रह्म सत्य है, ज्ञान है और अनन्त है। ब्रह्म को वाणी से वर्णन नहीं कर सकते, मन से मनन नहीं कर सकते। ब्रह्म गुण और गुणी के द्वन्द्वों से रहित है अर्थात् ब्रह्म में किसी गुण का समावेश नहीं। वह न बुरा है न भला। न काला न पीला। ब्रह्म कर्त्ता और क्रिया के द्वन्द्वों से भी मुक्त है अर्थात् वह कुछ करता नहीं। ब्रह्म ज्ञाता और ज्ञान के द्वन्द्वों से भी परे है अर्थात् यह नहीं कह सकते कि ब्रह्म अमुक वस्तु को जानता है। ब्रह्म केवल ज्ञान है ज्ञाता नहीं है।

यदि ब्रह्म ज्ञाता होता तो उसके लिये ज्ञेय भी चाहिये था। जब जानने की वस्तु न हो जानने वाला हो ही नहीं सकता। जब मैं कहता हूँ कि मैं जानता हूँ तो प्रश्न होता है कि तुम क्या जानते हो? जिस प्रकार देखने वाले के लिये वह वस्तु भी चाहिये जिसे देखा जा सके। उसी प्रकार जानने वाले के लिये भी वह वस्तु अवश्य होनी चाहिये जिससे उसको ज्ञाता कह सकें। विना ज्ञेय के ज्ञाता नहीं होता। यदि ब्रह्म ज्ञाता हुआ तो उसका ज्ञेय भी होगा ज्ञेय हुआ तो दो वस्तु हो गई ज्ञात और ज्ञेय। फिर अद्वैत कहां रहा? इसलिये शंकर स्वामी कहते हैं कि ब्रह्म "ज्ञान" है ज्ञाता नहीं।

यदि ब्रह्म कर्त्ता होता तो वह कोई क्रिया अवश्य करता। क्रिया का फल किसी और वस्तु पर पड़ता। क्योंकि जिस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय होते हैं उसी प्रकार कर्त्ता, कर्म और क्रिया भी होते हैं। जब कर्म ही नहीं तो क्रिया क्या और क्रिया नहीं तो कर्त्ता कैसे कह सकते हैं? यदि क्रिया और कर्म मानों तो अद्वैत नहीं रहता। इसलिये ब्रह्म कर्त्ता नहीं।

यदि ब्रह्म में गुण मानो तो गुण और गुणी के सम्बन्ध को स्थापित करना पड़ेगा। उन गुणों को कारण समझने के लिये ब्रह्म के सिवाय अन्य वस्तुयें भी होनी चाहिये। अतः फिर वही कठिनता रहेगी अर्थात् अद्वैत न रहेगा। अतः शंकर स्वामी का मत है कि ब्रह्म एक सत्ता मात्र है। उसको वैशेषिक के द्रव्य, गुण, कर्म आदि छः पदार्थों की कोटि में नहीं ला सकते। तो क्या ब्रह्म के सिवाय कोई और भी सत्ता है? कदापि नहीं। सत्ता केवल एक ही होती है। कई नहीं। उपनिषद् कहती है "नेह नानास्ति किंचन्"। "यहां कुछ भी बहुतायत नहीं है"। जो कुछ है वह सब एक ही है।

फिर जो देखते हैं वह क्या है? हमको तो एक ब्रह्म के सिवाय अनेक पदार्थ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। सूर्य्य है, चांद है, पृथ्वी है, वृक्ष हैं, पर्वत हैं, नदियां हैं। हमारा शरीर है। हमारे भाई का शरीर है। असंख्य मनुष्यों के शरीर हैं। फिर इनसे आगे चलकर करोड़ों पशु पक्षी और कीट पतंग हैं। इन सब के होते हुये कैसे कहा जा केवल ब्रह्म ही है। अन्य सब नहीं।

शंकर स्वामी उसका उत्तर देते हैं "यह सब माया है। हम को अविद्या कई वस्तुयें प्रतीत होती हैं।" "प्रतीत हो और "होने" में बड़ा भेद है। य नियम है नहीं कि जो प्रतीत हो अवश्य हो ही। सूर्य्य पूर्व की ओर निकलता प्रतीत होता है। परन्तु शास्त्र विशारद कहते हैं कि वस्तुतः सूर्य्य की ओर निकलते हैं सूर्य निकलता। रेल में बैठने वाले को सड़ वृक्ष चलते प्रतीत होते हैं। वस्तुतः चलते नहीं। पानी में लकड़ी डाल तिरछी प्रतीत होगी। यद्यपि वह है और पानी से निकालने पर सीधी प्रतीत होती है। इस प्रकार यदि बार मान लिया गया कि वस्तुयें प्रतीत होती हैं वैसी नहीं,

And things are not what t seem,

तो फिर केवल इसलिये कि दीखता है हम इसके अस्तित्व को मान सकते। हां यह कह सकते हैं यह सब संसार व्यवहार दशा में पारमार्थिक दशा में नहीं। यद्यपि निकलता नहीं फिर भी व्यवहार की में यही कहते हैं कि सूर्य्य निकल आ हम रेल में बैठकर कानपुर पहुँचे वास्तव में हम आते हैं न कि कान फिर भी व्यवहारिक भाषा में कह कि कानपुर आ गया। इसी प्र यद्यपि संसार का बहुत्व केवल व्याव है तथापि वास्तव में यह कुछ है नहीं

इसके लिये दो तीन उदाहरण दिये जाते हैं :—

(१) जैसे अंधेरे में लोग रस्सी को सांप समझ कर डर जाते हैं, और उजाले में रस्सी को देख कर फिर अपनी मूर्खता पर हँसते हैं उसी प्रकार इस संसार को देख कर हम समझते हैं कि यह है। वस्तुतः यह नहीं है।

(२) जैसे स्वप्न में हम भिन्न भिन्न प्रकार के पदार्थों को देखते हैं। वास्तव में वह पदार्थ नहीं होते। इसी प्रकार जगत् के नाना पदार्थों की प्रतीति होती है उसी समय तक जब तक हम स्वप्न देख रहे हैं। कमरे में अकेला चारपाई पर पड़ा हुआ मनुष्य स्वप्न में अपने को असंख्यों पुरुषों की भीड़ में व्याख्यान देता हुआ देख सकता है। परन्तु जब आंख खुली तो अकेला ही अकेला। वह सब असंख्यों पुरुष विलीन हो गये, क्यों ? इसलिये कि वह वास्तव में न थे। केवल स्वप्न दशा में थे। इसी प्रकार व्यवहार दशा में तो सूर्य्य, चन्द्र आदि सब हैं परन्तु जब ज्ञान हो गया तो केवल एक ब्रह्म ही ब्रह्म है अन्य कुछ नहीं।

(३) जैसे बाजीगर तमाशे के लिये सैकड़ों रुपये, मेवे आदि दिखा देता है परन्तु वह कुछ होते नहीं, इसी प्रकार संसार है कुछ नहीं। केवल हमने बाजीगर के समान यह सब अपना पराया आदि नानात्व (बहुतायत) रच रक्खा है। ज्योंही यह खेल समाप्त होगा हम ही हम रह जायंगे।

शंकर के मतमें यह नानात्व की प्रतीति ही बन्ध है। जिस प्रकार स्वप्न देखने वाला मनुष्य कल्पित वस्तुओं के भय से भयभीत होता है और उसका दुख उसी समय तक है जब तक स्वप्न है, इसी प्रकार मनुष्य बन्धन में उसी समय तक है जब तक अपनी "सत्ता" और अपने से इतर की "असत्ता" का ज्ञान नहीं हो जाता। जब समझ में आ गया कि रस्सी है सांप नहीं; तो भय किस बात का ? और जब ज्ञान हो गया कि मैं ब्रह्म ही ब्रह्म हूँ, और मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं तो फिर शोक मोह या तृष्णा किस बात की ?

इसलिये शंकर के मत में मोक्ष का एक मात्र साधन ज्ञान है।

ऋते ज्ञानान्न मुक्ति।

अर्थात् "विना ज्ञान के मुक्ति नहीं" ऐसा तो सभी मानते हैं। परन्तु शंकर स्वामी कहते हैं कि "ज्ञानेनैव मुक्ति" अर्थात् ज्ञान मात्र से ही मुक्ति हो जाती है। अतः शंकर के मत में कर्म की आवश्यकता नहीं। शंकर ज्ञान को विद्या और कर्म को अविद्या कहते हैं। मनुष्य कर्म क्यों करता है ? उसे क्रिया में फंसने की क्यों आवश्यकता होती है ? केवल इसलिये कि वह अपने स्वरूप को नहीं समझता। स्वप्न देखनेवाला अपने स्वप्न में प्रतीत हुये शत्रु से लड़ता, पुत्र को प्यार करता, और इसी प्रकार की सैकड़ों क्रियायें करता है। यदि उसे ज्ञान हो जाय कि मेरे सिवाय कुछ नहीं तो वह किससे लड़े ? किसका मोह करे ? किसके लिये क्रिया करे ? इसी प्रकार जब जीव को ज्ञान हो गया कि मैं ही वह "सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म" हूँ तो वह फिर कर्म्म किस लिये करेगा ?

फिर शंकर के मत में धर्म, पूजा पाठ, सदाचार आदि क्या वस्तु हैं? कुछ नहीं। शंकर स्वामी कहते हैं कि यह सब उसी समय तक है जब तक मनुष्य अविद्या में फँसा हुआ है। सदाचार, दुराचार, सच, झूठ, धर्म, अधर्म यह सब द्वन्द्व हैं और नानात्व के सूचक हैं। ज्ञान होते ही संसार का नानात्व (बहुतायत) नष्ट हो जायगा और हमको मालूम होगा कि

ख्वाब था जो कुछ कि देखा,
जो सुना अफ़साना था।

हां व्यवहार दशा में मन बहलाने के लिये या शान्ति प्राप्त करने के लिये हम ईश्वर की उपासना कर सकते हैं। परन्तु यह उपास्य, उपासक और उपासना भी द्वन्द्व से मुक्त नहीं। इसलिये जिसको हमने अपना ईश्वर या उपास्य देव समझ रक्खा है वह है क्या? वह भी तो माया ही है। वास्तविक नहीं। जिस प्रकार सूर्य्य, तारे, और संसार की अन्य वस्तुयें केवल प्रतीत होतीं हैं अतः असत्य हैं उनका पारमार्थिक अस्तित्व नहीं, इसी प्रकार जिसको हम अपने से भिन्न अपना उपास्य देव या [illegible] समझते हैं वह भी तो माया या अवि[illegible] ही कारण है, जब ज्ञान हो गया [illegible] समझ में आ गया कि "एकं ब्रह्म द्वि[illegible] नास्ति" तो फिर यह भी समझ में [illegible] सकता है कि "अहं ब्रह्मास्मि [illegible]" अर्थात् मैं ब्रह्म ही हूँ इससे इतर [illegible] नहीं, फिर मैं किसकी उपासना करूं[illegible] कौन मेरा इष्टदेव होगा?

इस प्रकार शंकर के मत में [illegible] आदि अनुष्ठान, दान पुण्य आदि [illegible] कर्म, उपासना आदि सब अविद्या [illegible] माया के खिलौने हैं। इनसे कोई [illegible]विक लाभ नहीं होता। हां व्यवहार द[illegible] में सन्तोष हो जाता है। वास्तविक [illegible] तो केवल उसी ज्ञान की प्राप्ति सं[illegible] है जिससे संसार का नानात्व [illegible] केवल अपने "शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव" [illegible] अनुभव हो जाय।

यह है शंकर का दार्शनिक [illegible] इसको अद्वैतवाद कहते हैं [illegible] जितना द्वित्व समझ में आ सकता था [illegible] सभी का निषेध किया गया है।

[क्रमशः]

हरिवर्षीय आर्य परिडत और वेदार्थ

[श्रीयुत राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी बड़ौदा]

[२]



फेसर मैक्समूलर ने स्पष्ट शब्दों में "फ़ीज़िकल रीलि-जन" पुस्तक में यज्ञ शब्द के अर्थ "Acts" कर्म के किये हैं और कहा है कि यज्ञ शब्द के अर्थ प्राचीनकाल में Sacrifice (पशु-हत्या वा कुरबानी) के नहीं थे। युरोप के मांस-भक्षी अनेक विद्वान् यज्ञ के अर्थ कुरबानी के करते हैं और खेद का विषय है Dr. Rajendra Lal Mitra (डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्र) से अनेक भारतीय विद्वानों ने यज्ञ शब्द के अर्थ वामी पंडितों के समान करके अनेक युरोप के पंडितों को भी प्रसन्न किया है। यह भारतीय सज्जन जब मैक्स-मूलर कृत उक्त अर्थों को जो कर्म के हैं देखते हैं तो चकित रह जाते हैं। अनेक निर्पक्ष मुसलमान मौलवी साहेबान को स्वीकार करना पड़ता है कि यवन मत के जो ५ निम्न मूल नियम हैं उनमें पशु-हत्या वा कुरबानी शामिल नहीं है अर्थात् एक विद्वान् (१) कलमा (२) नमाज़ (३) रोज़ा (४) हज (५) ज़कात मानकर और उस पर चल कर मुसलमान रह सकता है। इसलामी किताबों के पाठ से हम कह सकते हैं कि जिस प्रकार ईसाई विद्वान् मानते हैं उसी प्रकार यवन बंधु भी मानते हैं कि हज़रत आदम बागे अदन में रहते थे और मरण पर्य्यंत वह फल अन्न शाक ही खाते रहे।

हज़रत आदम ने कभी मांस नहीं खाया और न पशु हत्या वा कुरबानी की। एक ईश्वर के वह उपासक थे। अनेक सूफी मुसलमान मौलवी इस समय हैं जो मानते हैं कि एक पुरुष इसलाम के पांच रुकन मानकर मुसलमान रह सकता है उसको माँस खाने या कुरबानी करने की जरूरत नहीं। उक्त सूफी यवन सज्जन दलील के तौर पर कहा करते हैं कि स्वयं कुरान-शरीफ़ में कहीं भी मांस खाना इसलाम का रुकन नहीं कहा गया परंच हजरत मुहम्मद साहेब जौ का आटा और खजूरें खाते थे और सूरा बकर में साफ़ लिखा गया है कि अल्लाह को तुम्हारा गोश्त और लहू नहीं पहुंचता। इसी सूरा बकर के इन पवित्र और भाव पूर्ण वचन को लेकर (H. H. Agha Khan Saheb) एच. एच. आगा खान साहब ने अनेक लेख गत वर्ष प्रकाशित किये यह दिखाने को कि कुरान-शरीफ में कुरबानी का खण्डन मौजूद है। इसलिये जो सज्जन यवन जिज्ञासु यज्ञ शब्द के सच्चे अर्थ जानना चाहें उनकी सेवा में हम निवेदन करेंगे कि स्वयं यजुर्वेद का प्रथम मंत्र "श्रेष्ठ तम

कर्म" के अर्थ में यज्ञ शब्द ले रहा है। उसके पीछे संस्कृत के पुराने अर्थ बोधक ग्रन्थ निरुक्त ने (१) संगतिकरण (२) देव पूजा (३) और दान यह तीन अर्थ यज्ञ के किये हैं। इनमें हिंसा वा पशु हिंसा की गंध कभी कोई नहीं दिखा सकता।

इसलिये यज्ञ के अर्थों में पशु-हत्या कभी नहीं शामिल हो सकती।

जब महर्षि दयानन्द ने निरुक्त आदि पुराने ग्रन्थों और निरुक्तोक्त तर्क ऋषि (दलील ऋषि) के आधार से वेदों के अर्थ किये तो लोग चकित हो गये कि बात क्या है? कौन से अर्थ वेद के हो सकते हैं जो सत्य भी हों। दृष्टान्त की रीति से ऋषि दयानन्द ने जब अग्नि शब्द के अर्थ गति, विद्युत आदि के किये तो कई भारतीय सज्जनों को संदेह हुआ कि इन अर्थों से वेद तो विज्ञान की पुस्तक सिद्ध हो रही है। पर उक्त सज्जनों की सेवा में हम निवेदन करना चाहते हैं कि आप प्रोफेसर मैक्समूलर की पुस्तक 'फ़ीज़िकल रीलिजन' पढ़ जावें, उसमें आपको अनेक वैज्ञानिक अर्थ एक अग्नि शब्द के वेद में मिलेंगे। अग्नि शब्द वेद में आग, गरमी, पाचक-शक्ति, बादलों की विद्युत, जीवन-शक्ति इत्यादि अर्थों में मैक्समूलर ने वेदमन्त्र लिख लिख कर दर्शाया है। इसलिये जो सज्जन कहते थे कि वेद में क्या विज्ञान की बातें हैं, उनको उक्त प्रोफेसर के अनेक अर्थों को स्वयं देखकर निश्चय कर लेना चाहिये कि वेद विज्ञान का भी कोष है।

उक्त प्रोफेसर ने ऋग्वेद सम्ब[न्धी] एक अन्य स्थल पर लिखा है कि सं[सार] के पुस्तकालय में ऋग्वेद सब से पु[राना] ग्रन्थ है। मानवी-भाषा की उत्पत्ति [पर] विचार करने के लिये प्रोफेसर मैक्समू[लर] ने दो अमर ग्रन्थ लिखे हैं जिनका ना[म] "The Science of Language" भाषा विज्ञान है। इन दो ग्रन्थों के दो[नों] भागों के सार सूत्र निम्न प्रकार हैं।

[१] एक समय था जब [इस] भूलोक पर मानव जाति की ए[क] भाषा थी।

[२] मानवी भाषा ईश्वर प्रदत्त है मनुष्य-कृत नहीं।

[३] पशु और मनुष्यों में भा[षा] के कारण भारी भेद है।

[४] संसार की सब उन्नत भा[षाएं] (Roots) धातु जन्य हैं।

[५] संस्कृत अन्य भाषाओं [की] बड़ी बहिन है।

युरोप में डारविन मत को [विशेष] प्रचार से कई विद्वान् मान रहे थे [कि] मानवी भाषा बड़े बन्दरों की नक[ल से] बनी होगी किन्तु मानवी शरीर के श[रीर] कर्म तथा कपाल रचना पर विशेष प्र[योग] (Experiments) करने वाले विज्ञानि[कों] को आजकल मानना पड़ा कि बन्दरों [की] खोपरी वा मस्तिष्क में वाणि[-केन्द्र] (Speech Centre) नहीं है।

इसलिये डारविन मत की विचि[त्र] कल्पना का भारी खंडन उक्त वि[ज्ञान] सम्बन्धी इस तत्वदर्शन से हो गया

निम्न उद्धरण अंगरेजी में देना आवश्यक है।

"In one part of our brain is the *speech centre,* which is not found in the ape nor in dumb idiots. It is not fully formed in babies till they are a year old, as we may guess from their being unable to talk. It was when man uttered the first articulate word about anything that the gulf which separates him from all other animals was fixed...............when we analyse words we see that they have come from roots."

(*The childhood of the world by Edward Clodd.*)

[शेष फिर]

प्रकृति

[श्री चिन्तामणि जी वर्मा "मणि"]

हुए तिरोहित श्याम पटल ये,
पवन लगा बहने स्वच्छन्द।
हरी हरी हरियाली छायी,
जीव चराचर सब सानन्द ॥

दृश्य मनोरम चातक चंचल,
गाते सरस मधुर प्रिय गान।
शान्तवान इस हृदयस्तल में,
पावन भावों का आह्वान ॥

सुमनों ने भी छोड़ी श्वासें,
आई रजनी शीघ्र समीप।
हुआ अंधेरा छिन्न भिन्न फिर,
उदय हुआ "मणि" पूर्व प्रदीप ॥

प्रभाव

[एक ऐतिहासिक घटना के आधार पर]



"महाराज, आज आप मेरे यहां भोजन करने की कृपा करें।"

"कदापि नहीं।"

'नहीं' शब्द इतने प्रावल्य के साथ कहा गया कि सेठ शम्भूनाथ जी सहम गये। उनको दुबारा कुछ कहने का साहस नहीं हुआ और अपना सा मुँह लिये घर की ओर चल दिये।

सेठ जी अपने नगर में उच्च कोटि के धनाढ्य थे। सरकार में उनका मान था। बिरादरी वाले उनके सामने चूं नहीं करते थे। रहा नगर का 'ब्राह्मण समुदाय' वह तो सेठजी का अनेक प्रकार से ऋणी था। जिस नगर में सेठजी जैसा कर्ण उपस्थित हो, उस नगर में केवल कनागतों में ही ब्राह्मणों को इतना धन मिल जाता था कि उनको साल भर तक मूँछों पर ताउ देने, दण्ड पेलने और भांग छानने के सिवाय और किसी बात की आवश्यकता ही नहीं होती थी। बड़े से बड़ा पण्डित सेठ जी के घर न्योता जीमना अपना परम भाग्य समझता था।

भाण्ड, भंडेले और वेश्याओं की भी सेठ जी के दरबार में कुछ कमी न थी। ईश्वर ने पैतृक सम्पत्ति इतनी दे रक्खी थी कि पानी की तरह उलीचने पर भी कम न होती थी। सेठ जी के घर में नित्य प्रति होली सी मची रहती थी। सेठ जी की सबसे प्यारी वेश्या [illegible] पण्डितों को बात की बात में गहने [illegible] कर फेंक देती थी। यही कारण [illegible] पण्डित लोग उसको लक्ष्मी का [illegible] कहते थे। रहा वेश्यापन! यह [illegible] किसी प्रकार अखरता न था, [illegible] देवों के देव इन्द्र के यहाँ भी तो [illegible] रायें रहा करती हैं। यदि सेठ [illegible] इनको अपने हृदय तथा स्थान में [illegible] दी तो क्या बुरा किया? यह तो इन्द्र [illegible] ही अनुकरण मात्र है। रहा मांस [illegible] का प्रश्न। वह तो मनु के एक [illegible] से ही हल हो जाता था।

प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्।

सेठ जी से नगर के सभी खुश [illegible] सिवाय एक प्राणी के। और वह [illegible] सेठ की सेठानी मर्यादा। स्त्रियों [illegible] अपने पतियों के दुर्व्यवहार पर पड़ा [illegible] होता है। सेठानी मर्यादा का भी [illegible] हाल था। वह बिचारी रात दिन [illegible] करती थी। जितना अधिक सेठ [illegible] आनन्द मङ्गल मनाते थे उतना ही [illegible] विचारी के हृदय पर वज्रपात हो [illegible] था। उसने वर्षों गौरी पार्वती की [illegible] धना की। परन्तु कुछ फल न निक [illegible] जब कभी आधीरात को उसकी [illegible] खुल जाती और बैठक की हूहक [illegible] कान में पड़ती उसकी छाती पर [illegible] सा लोट जाता। "हे ईश्वर, [illegible] हमारे घर पर इतना प्रकोप क्यों [illegible]

क्या यह इसी प्रकार नष्ट भ्रष्ट हो जायगा ? आपने मुझे किसी दरिद्र भिखारी को क्यों न सौंपा ? हे गौरी माता ! तुमने बड़े बड़े कुवेरपतियों को छोड़ कर एक फ़कीर शिव से विवाह किया था क्योंकि शिव सदाचार की मूर्त्ति थे। और तुमसे प्रेम करते थे। शोक कि मुझे इतनी बुद्धि न थी। नहीं तो मैं भी अपने पिता से अनुरोध करके किसी निर्धन सदाचारी से अपना नाता जोड़ लेती।" परन्तु मर्य्यादा एक हिन्दू रमणी थी उसे अपने पति पर क्रोध आता था परन्तु वह फिर भी सती स्त्रियों की भांति उसकी हितचिन्तिका थी और ईश्वर से उसके कल्याण के लिये प्रार्थना करती थी।

सेठ जी थे तो उदार, परन्तु फ़िज़ूल खर्च न थे। जब कोई लङ्गड़ा लूला उनके घर आ जाता तो उसे यही कह कर मार भगाते थे कि "जैसा करोगे, वैसा पाओगे, हे पापियों तुमने पाप किया तव तो लंगड़े लूले हुये ऐसों की सहायता करना ईश्वर के साथ बग़ावत करना हैं। देश हितैषी संस्थाओं के संचालकों की हिम्मत ही नहीं पड़ती थी कि सेठ जी के यहां जा सकें। बहुत से तो यह समझते थे कि वहां जाने से कहीं हमारे सदाचार में बट्टा न लग जाय। यदि कोई मन चला वहां पहुंच भी जाता था तो सेठ जी ऐसी मीन मेष निकालते थे कि उसको उलटे पैरों ही भागना पड़ता था।

यह था सेठ जी का कच्चा चिट्ठा। आज सेठ जी को बड़ा आश्चर्य था। यह कौन साधु है जिसने मेरे घर खाने से इनकार कर दिया। आज तक मुझे कभी ऐसा अपमान सहना नहीं पड़ा था। यही साधु कल मेरे पड़ोसी लाला दीनदयाल के घर भोजन करने गया था। दीनदयाल में क्या सुरख़ाव का पर लगा है ? उसकी हैसियत मुझसे हज़ारवां हिस्सा भी नहीं है। आज मैं साधु को बग्घी पर बिठा कर लाता। दो वर्ष हुये अमुक मठ के महात्मा आये थे। कैसी धूम धाम से दावत की गई थी। सोने चांदी के बर्तनों में खाना खिलाया था। दीनदयाल के घर में क्या है ? एक चांदी का बर्तन नहीं। सोना तो उसने सपने में भी नहीं देखा। वही साधारण भोजन। परन्तु इस साधु ने मेरे निमंत्रण को इस बुरी तरह अस्वीकार किया। यदि नगर में यह बात फैल जाय कि सेठ शम्भूनाथ ने एक साधु को निमंत्रण दिया और उसने डांट के साथ "कदापि नहीं" कह दिया तो मेरी वात दो कौड़ी की हो जाय। मैं उसके पास गया ही क्यों ? मेरा उससे नाता ही क्या ? ऐसे साधु सैकड़ों आया करते हैं।"

सेठ जी साधु के पास से गाड़ी पर बैठे घर की ओर जा रहे थे। तो इसी प्रकार के विचार उनके हृदय में उठ रहे थे। गाड़ी के घोड़े मस्ताना चाल से जा रहे थे परन्तु सेठ जी के हृदय की गति मन्द हो रही थी। उन पर पाला सा पड़ रहा था।

× × ×

तीन महीने व्यतीत हो गये। परन्तु सेठ जी के हृदय का कांटा न निकला।

ज्यों ज्यों समय अधिक होता था उसकी चुभन और अधिक होती जाती थी। यद्यपि सेठ जी के यार दोस्त पहले की भांति अब भी आते थे परन्तु सेठ जी को अब उन बातों में आनन्द नहीं आता था। एक दिन मर्य्यादा अपने कमरे में बैठी थी कि सेठ जी आगये। सेठ जी इस प्रकार कभी पहले मर्य्यादा के निकट नहीं आये थे। आज उनके चेहरे पर उदासी थी। मुख पीला पड़रहा था। मर्य्यादा को आश्चर्य तो हुआ परन्तु खड़ी होगई। सेठजी ने कातर स्वर से कहा "प्यारी, मैं आज तुमसे एक परामर्श करने आया हूँ।" मर्य्यादा ने 'प्यारी' शब्द कभी सुना ही नहीं था और न उसे, इसे जीवन में सुनने की आशा थी। वह कहने लगी, "सेठ जी, मैं तो आपकी दासी हूं। मैं आपको क्या सलाह दे सकती हूं? आप मेरे पूज्य हैं। बुद्धिमान् हैं।"

"नहीं, नहीं तुम बात न बनाओ। आज तीन महीनों से मुझे बड़ा रञ्ज हो रहा है। तुमने सुना होगा कि इस नगर में एक स्वामी आये थे। दीनदयाल के घर उनका भोजन था।"

"हां सेठ जी सुना तो था कहते हैं वह बड़े अच्छे महात्मा थे। इससे अधिक मैं नहीं जानती।"

"मैं एक दिन अपनी गाड़ी पर बैठा उधर से निकल रहा था। स्वामी दयानन्द के पास सैकड़ों आदमी बैठे थे। मेरा जी भी चाहा कि चलूं वहां जाकर मैंने उनसे भोजन की प्रार्थना की। परन्तु उन्होंने डांट कर उत्तर दिया 'नहीं कदापि नहीं'। तीन महीने हो गये। परन्तु अब भी मुझे ऐसे प्रतीत हो रहा है मानों स्वामी मुझे डांट रहे हैं और कहते हैं 'नहीं कदापि नहीं'। पहले तो मुझे क्रोध आया कि इस साधु ने मुझे जैसे सम्मान युक्त का अनादर किया। परन्तु अब मुझको ऐसा मालूम होता है कि मेरे घृणित जीवन को उस साधु ने किस प्रकार भांप लिया और इसीलिये उन्होंने मुझे डाँट दिया।"

मर्य्यादा बोली, "सेठ जी, मैं क्या कह सकती हूं? साधुओं की शक्ति विचित्र होती हैं। आप स्वयं बुद्धिमान हैं।"

सेठ जी.—"अब मैंने पक्का निश्चय कर लिया है कि मैं अपना सुधार करूंगा। दीनदयाल को मैं तुच्छ समझता था परन्तु यद्यपि वह मुझसे दरिद्र है उसके सदाचार पर किसी को सन्देह नहीं। मेरे मुंह पर वे लोग मेरी बड़ाई करते हैं क्योंकि मुझ से धन प्राप्त होता है। परन्तु मैं समझता हूं कि और लोग भी दुराचार की अवश्य बुराई करते होंगे। मैं आज से अपना जीवन सुधारूंगा और देखूंगा कि अब की बार वह स्वामी मुझसे कैसा व्यवहार करते हैं"।

× × ×

एक वर्ष व्यतीत हो गया। सेठ जी के जीवन में बड़ा परिवर्तन हुआ। चम्पा कभी की चम्पत हो गई। यार दोस्त भी अब सेठ जी के पास नहीं आते। मर्य्यादा को अब अपने पति

विषय में कोई शिकायत नहीं है। सेठ जी नित्य ईश्वराराधना के पश्चात् अपना व्यापार करते हैं। बहुत सों को सेठ जी के इस परिवर्त्तन पर आश्चर्य है। आज नगर में विज्ञापन निकला कि गत वर्ष की भांति स्वामी दयानन्द सरस्वती नगर में पधारे हैं। उनके अमृतरूपी उपदेशों की अमुक स्थान पर वर्षा होगी। जिसको अमृतपान करना हो आवे।"

सेठ जी, विज्ञापन देखकर उछल पड़े, "अरे यह वही महात्मा हैं जिन्होंने मुझ जैसे नीच उद्धार कर दिया। उनके पैरों पर मत्था देकर अपना जीवन सफलीभूत करना चाहिये।"

सेठ जी मर्य्यादा भी व्याख्यान सुनने गई और स्त्रियों में बैठ गई ऋषि का प्रत्येक वचन उन दोनों के हृदय को प्रभावित कर रहा था। मर्य्यादा तो स्वामी जी को कोटिशः धन्यवाद दे रही थी कि उनके द्वारा उसका सुहाग लौट आया। सेठ जी अब गत वर्ष के सेठ जी न थे। उनका जीवन पवित्र हो गया था। वह अब बिल्कुल बदल चुके थे।

× × ×

कहते हैं कि ऋषि दयानन्द ने सेठजी को संध्या और हवन करना सिखाया। और जिस गार्हपत्य अग्नि की उनके घर में ऋषि द्वारा स्थापना हुई थी। वह अभी तक नहीं बुझी। आज सेठ जी संसार में नहीं हैं। उनके पुत्र और पौत्र बड़ा धार्मिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उनको अभिमान है कि ऋषि दयानन्द ने उनके घर को सच्चा घर बना दिया।

—आनन्द

आर्य समाज और सनातन धर्म

[श्रीयुत देवेन्द्रचन्द्र जी विद्याभास्कर]



प्राचीन वैदिक युग में आर्य शब्द का ही सर्वत्र प्रचार था। देहधारी अपने को आर्य, देश को आर्य-वर्त कहने में अपना गौरव समझते थे किन्तु यावनीकाल में आर्यों की सन्तान ने अपने पवित्र आर्य शब्द की अवहेलना की यहीं तक नहीं अपितु अपनी जननि जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि के मानने वाली आर्य सन्तानों ने जन्म भूमि आर्यवर्त का नाम भी परिवर्तित कर दिया, स्वयं को हिन्दू तथा देश को हिन्दुस्तान कहना ही मुख्य हो गया। गयासुल्लाग़ात के देखने से पता चलता है कि हिन्दू शब्द के अर्थ गुलाम के हैं। वास्तव में भारतीय आर्य पुरुषों ने जब से हिन्दू (गुलाम) शब्द को अपनाया तभी से दासता के पाश में फंस अपनी दीन हीन स्थिति करा डाली। अब भी इस गुलामी के तौक़ को छोड़ने के लिए तैयार नहीं। मुझे सब से बड़ी प्रसन्नता उस समय हुई जब मैं बनारस के प्रख्यात विश्वनाथ के मन्दिर को देखने के लिए गया उसके मुख्य द्वार पर स्पष्ट लिखा हुआ है कि "आर्य धर्मेतराणां प्रवेशो निषिद्धः" अर्थात् आर्य धर्म से इतर मनुष्यों का प्रवेश निषिद्ध है। अब इस पर प्र… यह उठता है कि आर्य धर्म क्या तथा उससे इतर धर्म क्या है। आज के पंडित आर्य धर्म की खोज न… इतर धर्म सनातन हिन्दू धर्म को… मुख्य धर्म मान बैठे हैं। इसी… आर्य-समाज में दो प्रधान शाखाएं… वर्तमान कालिक आर्यसमाज एवं… सनातन हिन्दू धर्म समाज मानी… लगीं। दोनों समाज प्राचीन वै… आदर्श को मानने वाले वेदोपासक… किन्तु कई भ्रान्त धारणाओं के… दोनों में ही मनोमालिन्य वैमनस्य… न्तिक मतभेदों के कारण होता चला… रहा है!

यदि इस सम्बन्ध में दोनों स… के कर्णधार सतर्कता से काम न लें… और भी निकट भविष्य में अधिक वैम… बढ़ जाने की आशङ्का है। तथा इ… परिणाम स्वरूप जो भारतीय जनता… महती क्षति होंगी उसके विचार मात्र ही हृदय को चोट पहुंचती है।

वर्तमान् कालिक सनातन धर्म… अब तक उन मिथ्यावादियों की प्रच… की हुई रूढ़ियों को नहीं छोड़ा, उसने… तक देशकाल का विचार कर अपने… कोण को बदलने का अनुभव नहीं… जिसके कारण हमारा नित्य नैतिक… होता जा रहा है। तथा साथ ही… संख्या का भी ह्रास हो रहा है। …

अपने गृह्यसूत्रों एवं नाना भांति के स्मृति ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं तो स्पष्ट पता चलता है कि समय २ पर देश काल के अनुसार प्राचीन आर्य विद्वान् ऋषियों के स्मृतियां (अर्थात् क़ानून) बनाए तथा सामाजिक सिद्धान्तों का संशोधन कर देश काल के अनुसार परिवर्तन किया गया। यदि देश काल के अनुसार सामाजिक संशोधन नहीं किये गये होते तो आज आर्य जाति जीवित दशा में दिखाई नहीं देती। यह अटल सिद्धान्त है कि जो जाति अपनी गतिविधि देशकाल के अनुरूप नहीं कर लेती वह कभी चिरस्थाई नहीं रह सकती इस बात का पता प्राचीन ऐतिहासिकों के अनुशीलन से विदित होता है कि सैकड़ों जातियों का केवल नाम मात्र इतिहास के पृष्टों पर अंकित है किन्तु उनके अस्तित्व का कोई पता नहीं चलता। इसीलिए यदि आर्य (हिन्दू) जाति अपना अस्तित्व बनाए रखना चाहती है तो उसको देशकाल के अनुसार जीवन बनाना पड़ेगा। आर्य समाज के प्रवर्तक प्रातः स्मरणीय महर्षि दयानन्द सरस्वती ने इस बड़ी भारी कमी का अनुभव किया उन्होंने ज्ञान चक्षुओं से देखा कि यदि वर्तमान् दशा में ही हिन्दू जाति की वागडोर को न न संभालते हुए छोड़ दिया जायगा तो निकट भविष्य में हमारी आर्य जाति का लेश मात्र भी दिखाई नहीं देगा। इसीसे उन्होंने १८७५ में बम्बई में आर्य विद्वानों की सभा कर आर्यसमाज की स्थापना की और पाखण्ड खंडनी पताका हाथ में लेकर महर्षि ने शास्त्रार्थों की धूम मचा दी। सनातन धर्म में जो अन्धकारवश मूर्ति पूजा श्राद्ध इत्यादि २ नाना भांति की नई रूढियाँ ढोंगियों द्वारा प्रचलित हो चुकी थीं उनका खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया। सनातनधर्मी भाइयों के हृदयों पर इसका असर हुआ और सत्य वैदिक ज्ञान के झंडे के नीचे मस्तक झुकाया और आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये। हां कुछ कट्टर पंथी जिनकी उदर पूर्ति का साधन ही मूर्खता जड़ता फैलाए रखने में है उनको दुःख हुआ और साथ ही अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए उन्होंने घोर विरोध करना प्रारम्भ कर दिया। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि श्री स्वामी दयानन्द जी महाराज ने आर्य समाज द्वारा सनातन वैदिक धर्म की रक्षा उस कठिन अवसर पर की। जिस समय उसकी दशा नौका में वैठी हुई जनता को जो विना नाविक के अथाह जल में चक्कर लगाती हुई भंवर में फंस डूब रही थी परिस्थिति में दयानन्द रूपी पतवार ने डूबती नाव को किनारे लगाया और सनातन वैदिक धर्मानुयायियों की रक्षा की। आर्यसमाज ने न केवल रक्षा ही की अपितु अपनी हिन्दू जाति को पुनर्जीवित बनाए रखने के लिए कितने ही बलिदानों को भी हंसते हुए मातृ वेदी पर चढ़ा दिया।

सनातन धर्मी भाई सनातन धर्म को सिर्फ बालविवाह करने विधवा विवाह, शुद्धि, अछूतोद्धार का खंडन करने भर को ही सनातन धर्म माने हुए हैं।

वे यह नहीं सोचते कि शारदा बिल का विरोध करके छोटे २ बच्चे बच्चियों का विवाह कराकर अपनी विचार संकीर्णता के कारण हिन्दू (आर्य) जाति को

सर्वनाश की ओर ले जा रहे हैं। वास्त-
विक सनातन धर्म क्या है धर्म वस्तु
किस चिड़िया को कहते हैं इस पर
कभी विचार तक नहीं करते। प्यारे
भाइयो! शास्त्रकारों का वचन है कि
'यतोऽभ्युदय निश्रेयसिद्धिः सधर्मः' जहां
निरन्तर अभ्युदय होता रहे, वही धर्म है
किन्तु इसके विपरीत आपके आचार
व्यवहार से तो पतन होता जा रहा है
फिर धर्म कहाँ रहा। विधवा विवाह,
अछूतोद्धार, शुद्धि आदि की प्राचीन आ-
चार्यों ने व्यवस्था दी है या नहीं; स्मृति
आज्ञा देती है या नहीं हम इस पचड़े में
पड़ना नहीं चाहते। थोड़ी देर के लिए
मान लीजिए कि हमारी स्मृतियाँ हमें
इनकी आज्ञा नहीं देतीं तो भी हमें अपनी
आवश्यकतानुसार समय एवं स्थिति का
ध्यान रखते हुए उन पुरानी व्यवस्थाओं
को संशोधित और परिवर्तित करने का
पूर्ण अधिकार हैं। वह स्मृतिकार हमारी
ही तरह मनुष्य थे उन्होंने उस समय की
स्थिति का अध्ययन किया था उस समय
की मानवी गति विधि को मर्यादानुसार
व्यवस्थाएँ निर्धारित की थीं किन्तु अब
समय ऐसा आ गया कि हम उन व्यव-
स्थाओं से लाभ प्राप्त न कर दुःख और
हानि प्राप्त कर रहे हैं। ऐसी अवस्था में
हमारा परम कर्त्तव्य हो जाता है कि
समाज में भले ही क्रान्ति बग़ावत मचे;
भले ही शास्त्रार्थों की जगह शस्त्रार्थों का
प्रयोग हो हमें अपनी कर्तव्य परायणता
दिखानी चाहिए। आर्य समाज के नेताओं
को चाहिए कि वह एक शीघ्र ही नई
स्मृति ग्रन्थ की रचना करें। उन प्राचीन
ग्रन्थों को संशोधित परिवर्त्तित रूप में करें

जिनसे कलिकाल में बची बचाई
संस्कृति की रक्षा हो सके। गुरुकु
प्रतिवर्ष सैकड़ों की संख्याओं में
निकलते हैं, किन्तु आज हमारे गुरु
का भी इस ओर ध्यान नहीं। वह
लते ही उदर पूर्ति के लिये आश्रय
लगते हैं और जिस सच्ची लगन
वैदिक सभ्यता की पताका महर्षि ने
थी उसको सीचने में तनिक भी हाथ
वंटाते। वेद सम्बन्धी ज्ञान बहु
कम प्राप्त होता है, वेदों का स्वा
केवल कहने मात्र का काम रह गया
इस कमी को दूर करना आर्य स
का कर्त्तव्य है। सनातन धर्म की
आर्य समाज ने भ्रातृभाव का प्रचार कि
उदारता पूर्वक अपनी सेवाएं हिन्दू
के अर्पण की किन्तु फिर भी आर्य
समाज में बहुत सी कमियां हैं, वह पू
को प्राप्त नहीं हो सका है। आज
समाज ने अपनी गतिविधि को बिल्कु
परिवर्तित कर दिया है। महर्षि दया
जी महाराज ने पाखण्ड खण्डनी पता
हाथ में लेकर यह नहीं विचारा था
हमारे इस व्यवहार से हिन्दू भाइयों
हृदयों को चोट पहुँचेगी तथा अन्य
महाराजाओं के गढ़ों में शेर की
गरजते हुए कभी भय नहीं किया
इनकी राज्य सत्ता के अन्दर हम पीसे
जा सकते हैं। उन्होंने वैदिक ज्ञान
सर्वत्र प्रचार करना अपना कर्त्तव्य सम
था और वास्तविक सच्चे सनातन वै
धर्म का सन्देश मूर्तिपूजा का खंडन
पहुँचाया था। परन्तु आज हमारे
समाजी भाइयों ने शास्त्रार्थों को बन्द
दिया वह कहते हैं कि अब संगठन

समय है हिन्दुओं का हृदय दुःखी होता है। अब आवश्यकता नहीं रही आदि २। मैं अपने उन आर्य नेताओं से पूंछता हूं कि शास्त्रार्थों के बन्द करने के बाद आपकी कितनी संख्या वृद्धि तथा आर्य वैदिक धर्म का प्रचार हुआ।

मेरा अनुमान है कि आर्य समाज का प्रचार जिस तेज़ी से शास्त्रार्थों के समय में हुआ वह अब नहीं। कारण स्पष्ट है कि उस समय उपस्थित जनता पर विशेष प्रभाव पड़ता है। दोनों पक्षों का सत्यासत्य प्रगट हो जाता है, हृदयों पर स्वतः ही ठेस पहुँचती है और सत्य सनातन वैदिक धर्म को अपना लिया जाता है। लेखों तथा व्याख्यानों से उतना काम नहीं होता जितना काम एक शास्त्रार्थ से होता है। आर्य-समाज को अपनी नीति बदलनी चाहिए और उसे किसी की भी परवाह न कर धारा प्रवाह से खण्डन मण्डन में उतर पड़ना चाहिए। तथा अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा कर संसार में बौद्धसम्प्रदाय की तरह अपना प्रभुत्व कम से कम भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम २ नगर २ में आर्यसमाज स्थापित कर जता देना चाहिये कि आर्यसमाज हिन्दू जाति का रक्षक, आर्य मर्यादाओं का पालक, दीन अनाथों का आश्रय दाता है। अन्त में कवि की एक उक्ति देकर लेख समाप्त करता हूँ :—

गुणार्जनोच्छ्राय विरुद्ध बुद्धयः।
प्रकृत्य मित्राहि सताम साधवः॥

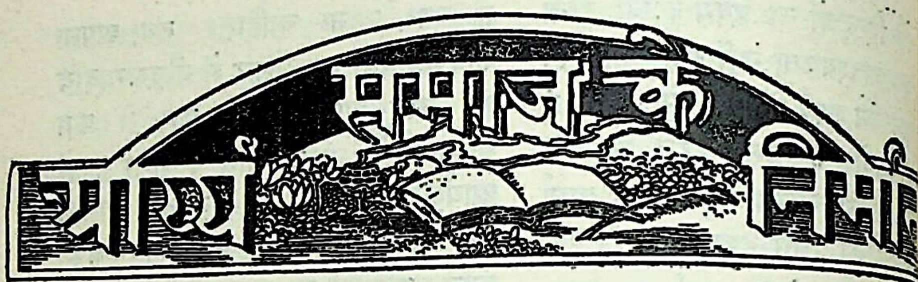
अर्थात् उत्तम गुणों से द्वेष रखने वाली जिनकी बुद्धि है ऐसे दुर्जन, सज्जनों के स्वभाव से ही शत्रु होते हैं।

इनकी आर्य समाज को परवाह न कर अपने आर्य वैदिक ज्ञान को और भी उन्नत दशा में मनुष्यों के कर्णगोचर कराने का सफल प्रयत्न करना चाहिये।

कृतज्ञता प्रकाश

निम्न सज्जनों ने "वेदोदय" के ग्राहक बनाकर भेजे हैं; हम उनके बड़े कृतज्ञ हैं :—

बा० चन्द्रिका प्रसाद जी, सुल्तानपुर (७ ग्राहक), श्री बाबू-लाल जी, सागर (२), पं० शिवनारायण जी शुक्ल, लखीमपुर (५) श्रीमती प्रेमकली, श्री भैयालाल जी कटनी, श्री चन्द्रसहाय जी बरेली, श्री चुन्नीलाल जी संसोली, श्री काशीनाथ जी, प्रतापगढ़।



मुनिवर पं० गुरुदत्त एम० ए०

[प्रोफेसर सत्येन्द्र एम. ए.]

महर्षि दयानन्द की मृतशय्या से जो चिनगारी निकली वह सीधे पं० गुरुदत्त के हृदय में प्रवेश कर गई। पं० गुरुदत्त जी को देखते ही ऋषि दयानन्द को आभास हो गया था कि इस नवयुवक के शरीर में वह वड़ी आत्मा विद्यमान है जो संसार को इधर से उधर कर सकती है। यही कारण था कि उन्होंने अपने अन्तिम समय में सब लोगों को अपने पास से हटा दिया और केवल एक प्राणी को अपने पास बैठा रहने दिया। यह पं० गुरुदत्त जी ही थे। ऋषि की मृत्यु ने उनके हृदय में एक नवीन ज्योतिर्मयी शक्ति उत्पन्न कर दी जो उनके आगामी जीवन में देखते है। पं० जी की वेदों पर अपूर्व श्रद्धा उनका उत्साह, हृदय-हारणी वक्तृता। उनका पवित्र जीवन, उनकी २७ वर्ष की आश्चर्यदायिनी योग्यता तथा विद्वत्ता, अब भी उनके लिये हमारे हृदयों में श्रद्धा तथा सम्मान उत्पन्न कर देती है।

जन्म तथा आरम्भिक जीवन

मुनिवर पं० गुरुदत्त का जन्म २६ अप्रेल १८६४ ई० को मुल्तान नगर में हुआ। आपके पिता लाला रामकृष्ण फ़ारसी के अपूर्व विद्वान् थे और अध्या[illegible] के पद पर कार्य्य करते थे। लाला [illegible] कृष्णं की कई सन्तान उत्पन्न होकर [illegible] गई। इसका माता पिता के हृदय [illegible] स्वास्थ्य पर बड़ा प्रभाव पड़ा। एक [illegible] आप अपने कुलगुरु के पास गये [illegible] कहा कि जगदीश से प्रार्थना कीजिये [illegible] एक पुत्र रत्न हमको मिले। निदान [illegible] गुरुदत्त ने जन्म लिया तो वह बच्चे [illegible] लेकर गुरु के पास गये और गु[illegible] उनका नाम मूला रख दिया। [illegible] थोड़े दिनों के बाद ही उन्होंने विरक्त [illegible] को देखकर आपका नाम वैरागी [illegible] दिया। पं० गुरुदत्त जी सबसे छोटे [illegible] थे इस कारण माता पिता आपको [illegible] प्रेम से रखते थे। आरम्भ से ही आप[illegible] बुद्धि अद्वितीय थी। जिसके बहुत [illegible] उदाहरण हमको आगामी जीवन [illegible] मिलेंगे।

शिक्षा

लाला रामकृष्ण जी अध्याप[illegible] इसलिये गुरुदत्त की शिक्षा का [illegible] अपने ऊपर ले लिया। अनुभवी होने [illegible] कारण पिता ने पं० गुरुदत्त को [illegible] अच्छी शिक्षा दी। पांच वर्ष के आयु [illegible]

पहले ही अक्षरबोध करा दिया और साधारण गणित का भी ज्ञान हो गया इतना सीखने के बाद अंग्रेजी पढ़ाने की की बारी आई। लाला रामकृष्ण अंग्रेजी पढ़े हुये नहीं थे। पर अपने पुत्र को शिक्षा देने के लिये बड़ी अवस्था में भी अंग्रेजी पढ़ी और अपने पुत्र को बड़े प्रेम से शिक्षा देने लगे।

आठ वर्ष की अवस्था में आप स्कूल में भरती हुये। आपका ज्ञान अन्य सहपाठियों से कहीं अधिक था। इसके अतिरिक्त आपकी बुद्धि इतनी तीव्र थी कि सब चकित हो जाते थे। वे घंटों बैठे हुये कुछ न कुछ सोचा करते थे और उन्होंने चित्त को इतना एकाग्र कर लिया था कि किसी, बाधा के होते हुये भी वह अपना कार्य्य करते रहते थे। उनके इस वैराग्य से माता पिता को बड़ी चिंता रहती थी। एक दिन रात्रि के समय आप बहुत देर तक तारों की ओर देखते रहे। आपकी माता ने डांट कर कहा कि यह क्या करते हो आपने उत्तर दिया "मां आकाश में उन चमकते हुये तारों और उन भिन्न भिन्न आकृतियों को देखिये, उसका बनाने वाला ज़रूर कोई है और मैं उस तक पहुंचने की विधि ढूँढ रहा हूं। तू भी ऐसी ही कर।" १८ वर्ष के बालक के लिये यह बात कहना बड़ा आश्चर्य प्रद है।

स्कूल जीवन में पं० गुरुदत्त ने बहुत सी पुस्तकें पढ़ डाली। बहुत कम मुल्तान में ऐसी लाइब्रेरी होंगी जिनमें जाकर पं० जी ने पुस्तकों का अध्ययन न किया हो। इस अवस्था में आप फ़ारसी में बड़ी उत्तम कविता किया करते थे। आपके गुरु ने इंडिया इन ग्रीस (India in Greece) और बाइबिल इन इंडिया (Bible in India) नामक दो पुस्तकें आपको पढ़ने के लिये दीं।

× × ×

विचारों में क्रान्ति

इस समय पंजाब प्रान्त में पाश्चात्य सभ्यता तथा विचारों की वृद्धि हो रही थी। देश के नवयुवक पाश्चात्य चमक दमक पर लट्टू हो रहे थे। ईसाई मिश्नरी मूर्ति पूजा तथा अनेक अन्य कुरीतियों का इतनी ज़ोर से खंडन करते थे कि कोई भी शिक्षित पुरुष ईसाइयों से बहुत शीघ्र ही सहमत हो जाता। वास्तव में यह दोष हिन्दू मत रक्षकों का था जिन्होंने अपने मत की पुष्टि में कोई कार्य नहीं किया था। जो युक्तियां अपने मत की पुष्टि में देते थे वे इतनी लचर थीं कि पढ़े लिखे लोग कभी भी उससे सहमत नहीं हो सकते थे। पं० गुरुदत्त जी ने जब ईसाई मिश्नरी के मुख से ये युक्तियां सुनी तो उनको अपना हिन्दू मत बहुत खुखला प्रतीत होने लगा।

× × ×

हिन्दू जाति का कर्णधार

ऐसे समय में जब कि ईसाई मत की तूती बोल रही थी, जब शिक्षित तथा अशिक्षित समाज पाश्चात्य सभ्यता की ओर आकर्षित हो रहा था, लोग हिन्दू

धर्म को छोड़कर बाइबिल पर विश्वास करने लगे थे, एक सुधारक का जन्म हुआ। यह सुधारक महर्षि दयानन्द थे, जिन्होंने अपने अपूर्व तपोबल, अद्वितीय योग्यता तथा उत्कट परिश्रम से हिन्दू जाति को एकदम बचा लिया। उन्होंने अपनी युक्तियों से शिक्षित समाज को जो हिन्दू धर्म के पंजे से निकलना चाहता था अपने वश में कर लिया। पं० गुरुदत्त जी भी उक्त ऋषि की ओर आकृष्ट हुये। आप के मित्र पं रेमलदास जी तथा लाला चेतनानन्द जी आर्य्य-समाज के सभासद बन चुके थे और अनेक अवसरों पर पंडित गुरुदत्त जी से ईश्वर तथा अन्य धार्मिक विषयों पर वार्तालाप हुआ करता था। पं० गुरुदत्त जी ने सत्यार्थप्रकाश का पाठ किया और २० जून, १८८० ई० को आर्य-समाज के सभासद बन गये। अपने जीवन में उन्होंने १८ बार इस पुस्तक का पाठ किया था। आपका कहना था कि जितनी बार मैंने इस पुस्तक को पढ़ा उतनी बार मुझको नई नई बातें मिली।

× × ×

संस्कृत-अध्ययन

आर्य्य-समाज के सभासद बनने पर पं० गुरुदत्त जी का ध्यान संस्कृत की ओर गया। उनको अष्टाध्यायी मिल गई और उन्होंने इस पुस्तक को पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसको पढ़ते ही उनकी रुचि संस्कृत की ओर लग गई और उन्होंने आर्य्य-समाज मुल्तान से कहा कि संस्कृत पढ़ाने के लिये किसी विद्वान् को बुला दो। पं० गुरुदत्त की प्रतिभा को देखकर आर्य्य-समाज [illegible] प्रधान ने पं० अक्षानन्द जी को बुला दिया और पं० जी इनसे अष्टाध्यायी पढ़ने लगे। योग्य होने पर भी अक्षानन्द जी पं० गुरुदत्त को सन्तुष्ट न कर सके, इसलिये उन्होंने स्वयं संस्कृत पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसमें स्वामी दयानन्द जी के वेदांग प्रकाश से [illegible] सहायता मिली। डा० वैलन्टाइन [illegible] संस्कृत की व्याकरण (Easy lessons in Sanskrit Grammar) पर [illegible] पुस्तक लिखी थी। इससे पं० जी [illegible] विशेष सहायता मिली। कुछ संस्कृत ज्ञान होने के पश्चात् उन्होंने ऋषि दयानन्दकृत ऋग्वेद भाष्य भूमिका का अध्ययन किया। थोड़े दिनों में पं० गुरुदत्त जी [illegible] इतनी योग्यता बढ़ गई थी कि वे संस्कृत में बड़ी सरलता से लिख और व्याख्यान दे सकते थे।

× × ×

कालिज में

नवम्बर १८८० ई० में [illegible] परीक्षा में सफल होकर पं० गुरुदत्त [illegible] लाहौर आये और यहां के गवर्नमेंट कालिज में अध्ययन करने लगे। [illegible] कालिज के प्रिंसपल डा० लीटमर (Leitmer) बहुत योग्य पुरुषों में [illegible] जाते थे। कालिज में आते ही इनकी योग्यता से प्रोफेसर तथा प्रिंसपल इनसे प्रेम [illegible] लगे। यहां पर इन्होंने बहुत सी पुस्तकों का अवलोकन किया जिससे [illegible] विचारों में बड़ा परिवर्त्तन आरम्भ [illegible] गया और इनका ईश्वर में विश्वास उठ [illegible] कालिज में एक धार्मिक क्लब खोला [illegible] जिसका मुख्य श्रेय आपको ही था।

क्लब के सभासदों में दो का नाम विशेष रूप से लिखने योग्य है—लाला लाजपतराय और दूसरे महात्मा हंसराज। इस समय आपने Regenerator of Arya Varta में बहुत से सुन्दर लेख लिखे।

× × ×

महर्षि दयानन्द की मृत्यु

९ अक्टूबर १८८३ ई० को लाहौर में यह सूचना मिली कि ऋषि दयानन्द अजमेर में मृत्युशय्या पर पड़े हुये हैं और उनके बचने की कोई भी आशा नहीं है। इस समाचार के आते ही लाहौर आर्य्य समाज ने लाला जीवनदास तथा पं० गुरुदत्त जी को अजमेर भेजा। पं० जी ने देखा कि ऋषि के सारे शरीर के ऊपर फफोले पड़े हुये हैं। आप ने ऋषि को सब से पहले इसी अवसर पर देखा था और ऋषि दयानन्द ने भी पहिली बार उनकी मुखाकृति को देख यह जान लिया था कि इस मनुष्य से बड़ी बड़ी आशायें रक्खी जा सकती हैं। मृत्यु के कुछ समय पहले ऋषि ने अपने वस्त्रों को बाट दिया और अपने अनुयायियें से कह दिया कि कमरे को खाली कर दो। कमरा खाली कर दिया गया। परन्तु पं० गुरुदत्त जी को उन्होंने अपनी मृत्युशय्या के पास बैठा लिया। न जाने पंडित जी के हृदय में कौन २ से विचार उठ रहे होंगे। उन्होंने देखा कि मृत्यु के समीप होने पर भी ऋषि दयानन्द बड़े शान्त थे, उनके मुख पर भय के कोई चिह्न न थे। पं गुरुदत्त इसको देखकर बड़े हैरान होगये। वे सोचने लगे कि साधारण पुरुष मृत्यु के समय व्याकुल होते हैं, रोते हैं, और चिल्लाते हैं, पर यह क्यों इतना शान्त है। ऋषि दयानन्द के मुख से अन्तिम शब्द निकले "भगवन्! तेरी इच्छा पूर्ण हो।" इसके बाद महान् आत्मा शरीर को छोड़ कर चली गई। अब पं० गुरुदत्त जी को पता चल गया कि जो पुरुष ईश्वर में विश्वास रखता है, उसे किसी प्रकार का भय नहीं हो सकता। कालिज में अध्ययन करते समय जो विचार आपके हृदय में उठे थे जिससे आपका विश्वास ईश्वर पर से हट गया था, वे सब दूर हो गये। इस समय से ईश्वर की लगन आपको लग गई।

× × ×

महर्षि का स्मारक

महर्षि की मृत्यु का समाचार पहुंचते ही लोग बड़े दुःखी हुये। ला० सांईदास जी के समान पुरुष भी रोने लगे और उनके विचार में न आता था कि किस प्रकार अब कार्य्य किया जायगा। आर्य्य समाज लाहौर के लोग सोचने लगे कि ऋषि का क्या स्मारक बनाया जाय। एक सज्जन ने दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज खोलने का प्रस्ताव किया। लोगों ने इस प्रस्ताव को बहुत पसन्द किया। पर इस समय तक पं० गुरुदत्त जी अजमेर से लौट कर नहीं आये थे और बिना उनका परामर्श लिये यह कार्य्य आरंभ नहीं किया जा सकता था। पं० गुरुदत्त जी की अवस्था २० वर्ष से भी कम थी, पर उनकी योग्यता तथा कार्य्य-कुशलता पर लोगों का अटल विश्वास था। पं०

गुरुदत्त जी के लिये यह क्या कम गौरव की बात थी कि वृद्ध मनुष्य उनके परामर्श के लिये रुके रहें। जब तक उन्होंने अपनी सम्मति नहीं दे दी तब तक यह प्रस्ताव जनता को नहीं बताया गया। पं० जी ने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर लिया और अजमेर से लौटने पर शीघ्र ही उन्होंने एक बड़ी ओजस्विनी वक्तृता दी। लोगों के हृदय उनके व्याख्यान को सुन कर पिघल गये। ८ नवम्बर १८८३ को कालिज का प्रस्ताव जनता के सामने रक्खा गया। पं. जी के प्रभाव के कारण ७०००) रुपया जमा हो गया।

× × ×

डी० ए० वी० कालिज की लगन

डी. ए. वी. की कालिज ऐसी संस्था का सूत्रपात हो गया था। पर इस कार्य्य के लिये रुपये की बड़ी आवश्यकता थी। पंडित गुरुदत्त जी इस समय कालिज के विद्यार्थी थे पर अध्ययन के लिये बहुत कम समय मिलता था। वे स्वयं इतने योग्य थे कि बिना कालिज की पुस्तकों को रटे हुये ही परीक्षा में सफल हो जाते थे। लाला लाजपति राय जी का कहना है कि एफ. ए. की परीक्षा के लिये उन्होंने कभी भी गुरुदत्त को कोर्स की पुस्तकें पढ़ते नहीं देखा। तिस पर भी आप विद्यार्थियों में सर्व प्रथम रहे। १८८५ ई० में आपने बी. ए. की परीक्षा पास कर ली और अब जी जान से वे कालिज के काम में लग गये कालिज के लिये वे स्थान स्थान पर जाकर चन्दा मांगने लगे। पं० गुरुदत्त जी के व्याख्यान इतने विद्वत्तापूर्ण तथा प्रभावशाली होते थे कि शिक्षित समाज भी लट्टू हो जाता। लाहौर के एक व्याख्यान से १००००) मिले, रावलपिण्डी में १६००) मिले। पेशावर में व्याख्यान से २६००) मिले। अमृतसर में स्त्रियों ने अपने आभूषण उतार २ फेंक दिये और ९०८) नकद मिल गये। इसी प्रकार जिस स्थान पर पंडित जी जाते लोग ऋषि दयानन्द के स्मारक में सहायता देते।

+ × ×

एम० ए० की परीक्षा

पंडित गुरुदत्त जी का बहुत सा समय आर्य्यसमाज तथा कालिज के काम में लगता। लोग उनके घर पर परामर्श लेने, धार्मिक शंकाओं के मिटाने के लिये बराबर आया करते। इन सब कारणों से उनको पढ़ने का समय बिल्कुल भी न मिला। परन्तु आश्चर्य है कि ऐसी अवस्था में भी पंडित जी एम. ए. की परीक्षा में सर्व प्रथम रहे। एम. ए. में आपका विषय भौतिक विज्ञान (Physics) था। पास करते ही आपको लाहौर के गवर्नमेंट कालिज में असिस्टेंट प्रोफेसरी मिल गई। १८८७ ई० डाक्टर ओमन के चले जाने पर प्रोफेसर बना दिये गये।

× × ×

पिता की बीमारी

कालिज में पद मिल जाने पर पं० जी का अधिक समय आर्य समाज और

कालिज में लगता रहा। परन्तु १८८६ ई० में पिता जी बीमार पड़ गये और इस वर्ष वे जनता की सेवा न कर सके। पिता जी की अवस्था बहुत खराब हो गई और उनकी इच्छा थी कि पुत्र उनके पास सदा रहे। पं० जी ने बड़े प्रेम भाव तथा परिश्रम से पिता की शुश्रूषा की। १८८६ ई० संयुक्त प्रान्त में एक प्रति-निधि दल भेजने का निश्चय हो गया था और पंडित जी ने उसमें जाना स्वीकार कर लिया था। उनको इस बात का बड़ा खेद रहा कि वे इसमें सम्मिलित न हो सके।

+ × ×

कालिज मिशन

दूसरे वर्ष १८८७ ई० की गर्मियों की छुट्टियां आई। पं० जी की बड़ी इच्छा थी कि इस बार के डेपूटेशन में आप अवश्य जावें। पिता जी ने आपकी इच्छा देखकर आपको जाने की आज्ञा दे दी। सन् १८८७ ई० के जुलाई मास में यह डेपूटेशन लाहौर से चला। इसके सदस्य निम्न थे:- लाला ज्ञानचन्द्र एम० ए०, लाला मदन-सिंह एम० ए०, लाला द्वारिकादास एम० ए०, लाला लाजपतराय, मियानी के रईस लाला ज्वालासहाय जी और स्वयं। ये लोग जहाँ २ गये वहीं इनको सफलता मिली। लौटने पर पंडित जी ने जो व्याख्यान रावलपिण्डी में दिया उसमें से कुछ उद्धृत करते हैं :—

" यदि तुम्हें विश्वास है कि तुम्हारे अन्दर आत्मा है, यदि तुम्हें विश्वास हैं कि बाह्य शरीर के नाश के साथ ही तुम्हारे जीवन का अन्त नहीं हो जायग। प्रत्युत तुम्हारे भीतर कोई ऐसा पदार्थ भी है जो तुम्हारे शरीरान्त के बाद भी जीता रहेगा और यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारी यह आत्मा उन्नति करता रहे और यदि तुम्हें इस बात का पता है कि विद्या द्वारा ही यह काम हो सकता है तो तुम्हें डी० ए० वी० कालेज की प्रतिष्ठा में अवश्य सहायता देनी चाहिये। आत्मा की उन्नति का काम मनुष्य मात्र की उन्नति का काम है इसलिये हिन्दू, मुसलमान और ईसाई सब को इस पुण्य कार्य में सम्मिलित होना चाहिये"।

कैसे जोरदार शब्द हैं। इस अपील से १२५३ रु० ४ आ० ६ पाई० एकत्र हुये।

× × ×

पिता की मृत्यु

रावलपिण्डी से आने पर उन्हें सूचना मिली कि उनके पिता जी का देहान्त हो गया। पं० जी ने फ़ौरन मुल्तान को तार दिया कि शव को जब तक पहुंच न जायं रक्खा जावे। आपके सम्बन्धी जानते थे कि आप पिता जी का हिन्दू प्रथा के अनुसार दाहकर्म न करेंगे, इस कारण आपकी माता से शीघ्र ही अन्त्येष्टि संस्कार करने को कहा। पर माता पुत्र की इच्छा के विपरीत न जा सकती थी। पिता की मृत्यु से आप अत्यन्त दुःखी हुये।

× × ×

१८८७, १८८८, १८८९ ई०

पंडित गुरुदत्त जी के जीवन में तीन वर्ष कठिन परिश्रम के रहे। पिता जी की मृत्यु पर घरेलू चिन्तायें बढ़ गईं और

आर्यसमाज का कार्य्य क्षेत्र बढ़ गया। इस समय पं० जी की ख्याति बहुत बढ़ गई थी और स्थान २ से व्याख्यान देने के लिये निमंत्रण आते थे। पं० जी ने कोई निमंत्रण अस्वीकृत न किया। आपको कालिज के लिये लम्बे २ सफ़र उठाने पड़े जिससे आपका स्वास्थ्य बिल्कुल ख़राब हो गया। मित्रों ने आपको सलाह दी कि सब काम को छोड़ कर स्वास्थ्य की ओर ध्यान दें। परन्तु पंडित जी की आन्तरिक आत्मा उन्हें आराम न लेने देती थी। उनके घर पर सदा लोगों की भीड़ लगी रही, जो पंडित जी के पास आते वे उनकी अपूर्व बुद्धि को देख कर चकित हो जाते। आपने एक महाभाष्य संघ खोला जिसमें लोग आपसे महाभाष्य पढ़ने आया करते थे। प्रोफेसरी छूट जाने पर आपने वैदिक मेगज़ीन के नाम से एक पत्रिका निकालनी आरम्भ की। इस पत्रिका का इग्लेंड में भी आदर किया गया और पंडित जी की विद्वत्ता की ख्याति बहुत बढ़ गई।

× × ×

पंडित जी की बीमारी

इस समय तक पंडित जी का स्वास्थ्य बहुत बिगड़ चुका था। अथक परिश्रम करने से उनको क्षय रोग हो गया और मुखादि से रुधिर गिरने लगा। ऐसी अवस्था में आप गुजरानवाला लाये गये और डा० फतेहचन्द आपका इलाज [illegible] लगे। रोग इतना बढ़ गया था कि कुछ [illegible] लाभ नहीं हुआ और आप लाहौर [illegible] गये। वहां पंडित नारायण दास [illegible] इलाज करते रहे। आरम्भ में जादू [illegible] सा लाभ प्रतीत हुआ पर थोड़े दिनों [illegible] वैसी ही अवस्था हो गई। लोग [illegible] जीवन से निराश हो गये।

× × ×

जवनिका पतन

पंडित जी की अवस्था शोचनीय [illegible] गई। १८ मार्च १८९० ई० [illegible] आ गया। जिसको देखो उसके मुख [illegible] हवाइयाँ उड़ रही थीं। लोग कह [illegible] कि अब बचना असम्भव है। [illegible] इसी व्यग्रता में व्यतीत हुआ। रात्रि [illegible] पांच पाँच मिनट में आपकी नाड़ी [illegible] जानी लगी। १२ बजे रात को पं० [illegible] ईशोपनिषद् पढ़ने को कहा। प्रातः [illegible] हुआ ७ बजे १९ मार्च को पंडित [illegible] शरीर को छोड़ विदा हो गये।

इस प्रकार पंडित जी का [illegible] हुआ। २७ वर्ष की अवस्था में पंडि[illegible] ने वह कार्य्य करके दिखा दिया जो [illegible] कई सौ वर्षों में भी न कर स[illegible] आपकी अपूर्व योग्यता, आर्य्य सम[illegible] सच्ची लगन, उत्कट परिश्रम तथा स[illegible] का स्वभाव, आर्य्यसमाज की [illegible] सदा हरी रक्खेगा।

———

बाइबिल में चमत्कार

[श्री विश्वप्रकाश, बी. ए., एल.-एल. बी.]



तांक में बाइबिल से कुछ उद्धरण दिये गये थे। यहां पर थोड़े से और दिये जाते हैं :—

"And straightway Jesus constrained his disciples to get into a ship and to go before him unto the other side, while he sent the multitudes away.

"And in the fourth watch of the night Jesus went unto them walking on the sea.

"And when the disciples saw him walking on the sea, they were troubled, saying, it is a spirit and they cried out for fear."

"But straightway Jesus spake unto them, saying, Be of good cheer it is I; be not afraid."

(St. Matthew XIV 22, 24-26.)

"प्रभु ईसा ने अपने शिष्यों से समुद्र के उस पार जहाज पर जाने को कहा और भीड़ से जाने के लिये कह दिया। रात्रि के चौथे पहर में ईसा समुद्र के ऊपर पैरों से चलते हुये गये। जब कि उनके शिष्यों ने उनको समुद्र पर चलते देखा तो बहुत भयभीत हुये और कहने लगे कि यह कोई प्रेत आ रहा है और चिल्लाने लगे। परन्तु ईसा ने उनसे कहा, "प्रसन्न हो, यह मैं हूँ, भय मत करो"।

एक स्त्री आई और कहने लगी कि मेरी पुत्री बीमार है। भूत प्रेतों ने उसे घेर लिया है। बहुत सिफ़ारिश के बाद

"Then Jesus answered and said unto her, O women great is thy faith : be it unto thee even as thou will. And her daughter was made whole from that very hour."

(St. Matthew XV, 28.)

ईसा ने उत्तर दिया और उससे कहा "स्त्री तेरी मुझ में अपार भक्ति है। जैसा तू चाहती है वैसा हो जाय। उसी समय से उसकी पुत्री चंगी हो गई।

"Lord, have mercy on my son : for he is lunatic, and sore vexed : for oft times he falleth into the fire and oft into the water."

"And I brought him to thy disciples and they could not cure him."

(St. Matthew XVII, 15-16.)

मालिक, मेरे पुत्र के ऊपर दया करो, क्योंकि वह पागल है, अनेकों बार आग और पानी में गिर चुका है। मैं उसको आप के शिष्यों के पास ले गया था पर उसे वे चंगा न कर सके"। ईसा ने उसे चंगा कर दिया।

"Now in the morning as he returned into the city he hungered.

"And when he saw a fig tree in the way, he came to it, and found nothing thereon, but leaves only, and said unto it, Let no fruit grow on thee hence forward for ever. And presently the fig tree withered a-way."

(St. Matthew XXI, 18-19.)

प्रातःकाल जब वह शहर को लौटकर आया तो उसे बहुत भूक लगी। और जब उसने मार्ग में एक अंजीर का पेड़ देखा तो उस पर पत्तियों को छोड़कर उसे कुछ न मिला। उसने शाप दिया, "इस समय से तुझपर फल न लगेंगे।" फ़ौरन अंजीर का वृक्ष सूख गया।

"And there arose a great storm of wind, and the waves beat into the ship, so that it was now full."

"And he rose and rebuked the wind, and said unto the sea, Peace, be still. And the wind ceased, and there was a great calm."

(St. Mark IV, 37-39.)

ईसा ने अपने शिष्यों को जहाज़पर भेज दिया। मार्ग में समुद्र ने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। "समुद्र में तूफ़ान बढ़ आया और लहरें जहाज में आने लगीं और जहाज़ जल से भरने को था इस अवस्था से शिष्य घबड़ाये और ईसा को जगाया जो सो रहा था। "वह उठे, वायु को बुरा भला कहा समुद्र से कहा, शान्त हो जा। वायु गई और तूफ़ान शान्त हो गया"।

एक मनुष्य में असंख्य भूत हुये थे। वह कब्र में रहता था किसी में इतनी शक्ति न थी कि वश में कर सके। उसको लोहे जंजीर से जकड़ दिया गया था पर जंजीर तोड़ डाली थी। वह रात चिल्लाता रहता था। ईसा के पास दौड़ा आया और प्रार्थना की।

"For he said unto him, come out of the man, thou unclean spirit."

"And he asked him, what thy name? And he answered saying My name is Legion: for we are many."

(St. Mark V 8-9.)

प्रभु ईसा ने उस (भूत) से कहा कि हे अपवित्र जीव तू इस मनुष्य के शरीर में से निकल आ। फिर ईसा ने भूत से पूछा "तुम्हारा नाम क्या है"। उसने कहा "मुझे Legion (समुदाय) कहते क्योंकि मैं बहुत हूँ"।

प्रभु ईसा की आज्ञा से उस मनुष्य के शरीर से तो भूत निकल गये उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि वे देश से निकाले न जांय। और सूअर के शरोर में प्रविष्ट होने आज्ञा दी जाय।

"And forth with Jesus gave them leave. And the unclean spirits went out, and entered into the swine: and the he

ran violently down a steep place into the sea (they were about two thousand) and were choked in the sea."

(St. Mark V, 13.)

"शीघ्र ही प्रभु ईसा ने उनको आज्ञा दे दी और अपवित्र आत्मायें भागीं और सूअरों के शरीर में बस गईं। सूअरों का वह झुंड समुद्र की ओर भागा (इनकी संख्या २ हज़ार के लगभग थी) और समुद्र में डूब गया"।

यहूदियों का पुरोहित बैठा हुआ था कि उसके घर से किसी ने आकर कहा "तुम्हारी लड़की मर गई" ईसा ने कहा घबड़ाने की क्या बात है। उसने जाकर देखा कि घर वाले सब रो रहे हैं।

"And he took the damsel by the hand, and said unto her, Talitha Cumi; which is, being interpreted, Damsel, I say unto thee, arise.

"And straight way the damsel arose, and walked."

(St. Mark. V, 41,42.)

"उसने लड़की का हाथ पकड़ा और कहा "तालिया क्यूमि", अर्थात् उठो। वह लड़की उठी और चलने लगी"।

ईसा को न जाने क्या भय हुआ कि उसने अपने शिष्यों से "स्पष्ट शब्दों में आज्ञा की कि कोई इस घटना को न जाने"।

"And he charged them straitly that no man should know it."

(St. Mark V, 43.)

प्रभु ईसा को सूली दे दी गई और वह दफ़न कर दिया गया।

"And when they looked, they saw that the stone was rolled away: for it was very great."

"And entering into the sepulchre, they saw an young man sitting on the right side, clothed in a long white garment and they were affrighted."

"And he saith unto them, be not affrighted: Ye seek Jesus of Nazareth. which was crucified: he is risen: he is not here; behold the place where they laid him."

(St. Mark XVI, 4, 5, 6.)

जब उसके शिष्य गये तो उन्होंने देखा कि पत्थर हटा हुआ है। यह बहुत बड़ा था। क़ब्र में जा कर देखा कि दाहिने ओर एक नवयुवक लम्बा सफ़ेद चोगा पहने बैठा हुआ है। वे बहुत भयभीत हो गये पर उसने जैनसे कहा, "भयभीत न हो। तुम ईसा को ढूंढ़ते हो, जिसको सूली दे दी गई है, वह उठ बैठा है। वह यहां नहीं है। उस स्थान को देखो जहां दफ़न किया गया था।"

"Now when he came nigh to the gate of the city, behold, there was a dead man carried out, the only son of his mother, and she was a widow and much people of the city was with her.

"And when the lord saw her, he had compassion on her, and said unto her, weep not.

"And he came and touched the bier and they that bare him stood still. And he said, young man, I say unto thee, Arise."

(St. Luke. VII, 12, 13, 14.)

जब वह नगर के फाटक के समीप आया, वहां पर उसने देखा एक मृत पुरुष को लोग लिये जाते हैं। वह मा का एक मात्र पुत्र था जो विधवा थी और नगर के बहुत से मनुष्य उसके साथ थे। जब ईसा ने उसे देखा तो उस पर दया आई और कहा रोओ मत। वह आया और उसने अर्थी को छू लिया। अर्थी लेजाने वाले बिल्कुल शान्त थे। उसने कहा "नवयुवक मैं तुमसे कहता हूं, उठो।"

"Then he called his twelve disciples together and gave them power and authority over all devils and to cure diseases.

"And he sent them to preach the kingdom of God, and to heal the sick."

(St. Luke IX, 1-2.)

"तब ईसा ने अपने बारह शिष्यों को बुलाया और उनको भूतों को वश में करने तथा रोगों को दूर करने की शक्ति दी। और उसने प्रचार करने तथा रोगियों को अच्छा करने के लिये भेजा।"

एक अंधा आदमी सड़क पर बैठ कर भागता था। उसको एक भीड़ जाते ज्ञात हुई तो उसने पूछा कि क्या बात है। लोगों ने कहा कि ईसा इधर से गया है।

"And he cried, say Jesus, thou son of Dvaid, mercy on me.

"And they which went fore rebuked him, that should hold his peace: bu cried so much the more, son of David have merc me."

"And Jesus said unto Receive thy sight: thy hath saved thee."

(St. Luke XVIII, 38, 3...)

अन्धे ने चिल्ला कर कहा के पुत्र ईसा, मेरे ऊपर दया करो लोग उसके आगे थे उन्होंने शान्त को कहा परन्तु वह चिल्लाता र डेविड के पुत्र मुझपर दया करो।" कहा, "तुमको नेत्र-ज्योति मिल गई विश्वास ने तुझे बचा लिया है।"

एक विवाह में ईसा अपने शि साथ निमंत्रित किया गया। उस भी उसके साथ गई। जब शराब गई तो मा ने ईसा से कहा कि पास शराब नहीं है। ईसा ने छः के बर्त्तन मगवाये।

"Jesus saith unto them the waterpots with water. they filled them up to brim.

"And he saith unto t Draw out now, and bear the Governor of the feast. they bare it

"When the ruler of the feast had tasted the water that was made wine, and knew not whence it was, (but the servants which drew the water knew)."

(St. John II, 7, 8, 9.)

ईसा ने उनसे कहा, "पानी से बर्त्तनों को भर दो" और उन्होंने किनारे तक पानी भर दिया। और उनको आज्ञा दी कि इसको दावत के प्रबन्धक के पास ले जाओ। नौकर ले गये। जब उसने पानी चाखा तो वह शराब थी और उसको यह मालूम नहीं था कि वह कहाँ से आ गई। लेकिन नौकरों को इस बात का ज्ञान था।

जेरूसलेम में एक तालाब था जिसमें रोगी लोग स्नान करने आते थे। उनका विश्वास था कि ऐसा करने से वे स्वस्थ हो जावेंगे। इस भीड़ में एक ३८ वर्ष का रोगी था और उसमें इतनी शक्ति नहीं थी कि भीड़ में से होकर स्नान कर ले। ईसा ने उसे देखा कि बहुत देर से पड़ा हुआ है।

"Jesus saith unto him, 'Rise, take up thy bed and walk'."

(St. John V, 8.)

ईसा ने उससे कहा "उठो, अपनी खाट उठाकर चलने लगो." वह रोगी स्वस्थ होगया और चलने लगा।

लेजेरस बीमार पड़ा उसकी बहिन ने कहला भेजा कि ईसा आकर उसे चंगा करदे। परन्तु ईसा मसीह दो दिन तक न गये और इसी बीच में लेजेरस मर गया। जब तीसरे दिन पहुँचे तो मरथा ने कहा, "यदि आप यहां आ गये होते तो मेरा भाई न मरता। परन्तु मैं जानती हूं कि कि अब भी जो आप ईश्वर से मागेंगे, आपको ईश्वर देगा।"

"Jesus saith unto her...he that believeth in me though he were dead, yet shall he live."

(St. John XI, 25.)

"ईसा ने उससे कहा कि जो मुझमें विश्वास रखता है, वह मर जाने पर भी जीवित हो जायगा।" इसके बाद वह उस स्थान पर गया जहां लेजेरस दफ़न कर दिया गया था। उसने पत्थर हटवाया और ईश्वर से प्रार्थना की।

"And I know that thou hearest me always : but because of the people which stand by I said it, they may believe that thou hast sent me."

(St. John X, 25.)

"मुझे विश्वास है कि सदा आप मेरी बात सुनते हैं, परन्तु इन लोगों के लिये जो मेरे पास खड़े हैं, मैं कहता हूं, जिससे उनको विश्वास हो जाय कि आपने मुझे भेजा है। 'इसके बाद उसने कहा, लेजेरस उठ आओ और वह उठ आया.'

(क्रमशः)

शङ्का समाधान

शङ्का

ॐ

पत्र सं० १८४

कार्यालय,
आर्य—प्रतिनिधि स
मध्यप्रदेश व विदर्भ (बरा
स्थान जबलपुर.
तिथि आषाढ़ कृ० ३ सं० १९८७ वि० दयानन्दाब्द
तारीख १४-६-३० ई०

सेवा में श्रीमान् पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम.

भ्रातृवर नमस्ते,

कृपा करके यह बताने का कष्ट करें कि वर्ण व्यवस्था के विषय में आप किस निश्चय पर पहुँचे हैं। निम्न-लिखित श्रेणियों को आपकी सम्मति में किस वर्ण में गिनना चाहिये।

(१) न्यायाधीश—जज, मुन्सिफ आदि।

(२) वकील, बारिस्टर, रियासतों के दीवान।

(३) राज्याधिकारी—कलक्टर, तहसीलदार, कानूनगो, पटवारी, मुख्तार।

(४) अदालत के कर्मचारी क्लर्क आदि।

(५) साधारण क्लर्क-डाकखाना, रेल, बैङ्क आदि।

(६) स्कूल मास्टर।

(७) डाक्टर, वैद्य।

(८) इञ्जीनियर—मैकेनिकल, एलेक्ट्रिकल, मकान व सड़क के तथा नहर विभाग के।

(९) शिल्पकार, लोहार, बढ़ई, खरादी, फिटर आदि।

(१०) युद्ध सामग्री बनाने [illegible] कारखानों के उच्चाधिकारी जो [illegible] प्रवन्ध आदि में सहायक होते हैं।

(११) युद्ध सामग्री बनाने [illegible] कारखानों के शिल्पकार और साधा[illegible] शिल्पकारों के वर्ण में क्या कोई [illegible] होगा।

(१२) जमीदार, मालगुजार [illegible] ताल्लुकेदार।

(१३) साधारण कृषक।

(१४) सम्पादक व पुस्तक [illegible] व प्रकाशक तथा प्रेस के अन्य कर्मच[illegible]

(१५) बुनकर (जुलाहे) [illegible] कातने वाले, रुई धुनने वाले—हा[illegible] मशीन से।

(१६) पुलिस के सिपाही [illegible] अधिकारी।

(१७) युद्ध के सिपाही यद्यपि [illegible] धारण दृष्टि से इनका क्षत्री गि[illegible] सकता है। परन्तु एक किसी सज्[illegible] ने कभी कहा था कि, चूंकि वे वेतन [illegible] हैं। इसलिये सेवक हुये। उसके [illegible]

गाम स्वरूप व शूद्र हुये। परन्तु मुझे यह बात युक्ति संगत नहीं प्रतीत होती क्योंकि किसी न किसी रूप में वेतन सभी को मिलता है। उनका यह भी कहना था कि जब तक स्वराज्य न मिल जाय तब तक वर्ण व्यवस्था का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। परन्तु हमारी सम्मति में तो स्वराज्य न मिल जाने पर भी सामाजिक स्थिति में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा क्योंकि जो राज्य अभी तक प्रचलित है। उसमें अधिक उलट फेर की आशा नहीं की जाती केवल शायद रिपब्लिक हो जाने पर भी हमारी कठिनाइयाँ वैसी ही रहेगी। क्योंकि राजा भी एक वेतन भोगी तथा अस्थायी नौकर कहा जा सकता है। तब फिर वर्ण व्यवस्था के लिये क्या केवल नौकरी मात्र के आधार पर सभी को शूद्र गिन लेना उचित होगा या उनके कार्य्यों को जैसा कि ऊपर वर्गीकरण किया गया है। ध्यान में रखकर वर्ण-व्यवस्था की जायगी।

रामेश्वरराव गायकवाड़

मंत्री सभा

समाधान

यह प्रश्न जटिल हैं। परन्तु हम अपनी वैयक्तिक सम्मति प्रकट करते है। शास्त्रों में सामान्य नियम दिये हैं। इनको ही अपने विचारानुसार लागू किया है। बहुत से ऐसे पेशे हैं जिनमें भेद करना कठिन है। मौलिक सिद्धान्त के विषय में कोई मतभेद नहीं। अर्थात् समाज का मुख ब्राह्मण हैं, बाहु क्षत्रिय, उरु वैश्य और पैर शूद्र। इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य द्विज हैं, शूद्र द्विज नहीं। तीन वर्णों का द्विज होना और एक का द्विजों से बाहर होना एक ऐसा सिद्धान्त हैं जो बहुत सी कठिनाइयों को दूर करने में सहायता देगा। हमारी यह सम्मति नहीं कि 'वेतन भोगी होना' या 'सेवा करना' शूद्र का लक्षण है। क्योंकि एक प्रकार से तो सभी जीविका उपार्जन करते है और जीविका के भिन्न २ साधनों में से वेतन एक है। कोई ऐसा भी समय हो सकता है जब सिक्के प्रचलित न हों और वेतन का जो रूप आज है वह न हो। परन्तु इससे वर्णों के वर्गीकरण में कोई बाधा नहीं पड़ती। 'सेवा' शब्द भी भिन्न भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होता है। जब हम कहते हैं कि मनुष्य मात्र में सेवा भाव होना चाहिये। उस समय सेवा का अर्थ 'परोपकार' होता है और इस अर्थ में सेवा करने वाले शूद्र नहीं। प्रत्येक ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य किसी न किसी अर्थ में दूसरों की सेवा करता है।

वस्तुतः द्विजों और शूद्रों में यह भेद है कि द्विज बुद्धिमान् और विद्वान् होने के के कारण अपने 'गुण' और 'स्वभाव' के अनुकूल अपना 'कर्म' निश्चित कर सकते हैं। शूद्र बुद्धि और विद्या के अभाव के कारण अपने ऊपर कोई उत्तरदायित्व नहीं रखते। उनकी श्रेणी द्विजों और पशुओं के मध्य की है अर्थात् वह केवल दूसरों की आज्ञा का पालन कर सकते हैं स्वयं कुछ भी निश्चित नहीं कर सकते। ऋषि दयानन्द ने एक स्थल पर लिखा है कि यत्न करने के पश्चात् जब सिद्ध हो जाय कि अमुक पुरुष की बुद्धि ऐसी कुण्ठित है कि वह विद्या प्राप्त ही नहीं कर सकता तो उस की शूद्र संज्ञा होगी। यदि

इसी सिद्धान्त पर कार्य्य किया जाय तो मानना पड़ेगा कि किसी जाति में शूद्र बहुत न होंगे, पाठशालायें सब बच्चों के लिये होंगी। सबकी बुद्धि का विकास करने के साधन उपस्थित होंगे। फिर भी जो इन साधनों से लाभ न उठा सकेंगे उनको ही शूद्र माना जायगा। यह शूद्र क्या करेंगे? इनमें स्वयं तो किसी कार्य्य का भार उठाने की योग्यता न होगी। दूसरों के संकेत पर कार्य्य कर सकेंगे। इसी को 'सेवकाई' कहते हैं यही शूद्र का शूद्रत्व है।

अब आइये द्विजों के वर्गीकरण पर। यह द्विज अर्थात् वह पुरुष जो अपने ऊपर उत्तरदायित्व ले सकते हैं तीन बड़ी २ कोटियों में विभक्त होंगे :—प्रथम वह जो धार्मिक सिद्धान्तों के मौलिक नियमों की खोज करेंगे, उनके विषय में व्यवस्था देंगे और पाठ अथवा व्याख्यान अथवा लेख द्वारा उनका प्रचार करेंगे। यह ब्राह्मण होंगे।

दूसरे वह जो शारीरिक शक्ति द्वारा समाज की रक्षा शारीरिक अत्याचारों से करेंगे। यह क्षत्रिय होंगे।

तीसरे वह जो कृषि, कला कौशल, व्यापार आदि द्वारा धन तथा धन को उत्पन्न करने वाली वस्तुओं के निर्माण, परिवर्त्तन आदि में भाग लेंगे। यह वैश्य होंगे।

यह भिन्न भिन्न कर्म गुण, और स्वभाव की भिन्नता के अनुकूल भिन्न २ होते हैं, गुण का अर्थ है योग्यता, स्वभाव का अर्थ है रुचि जो निरन्तर कर्मों के देखने से ज्ञात होती है। एक पुरुष केवल अपना मकान बेचने से वैश्य या नहीं कहलाया जा सकता। यदि उसको कार्य में रुचि है तो निरन्तर मकान येगा और बेचेगा। उसी के लाभ से जीविका होगी। उस समय ही वह कहलाया जा सकता है। एक राजा किसी दूसरे मनुष्य को वेद पढ़ा सकता है। परन्तु वह क्षत्रिय इसलिये है कि रुचि राजकीय कर्मों में है और उन्हीं वह निरन्तर करता है।

केवल नौकरी करने से कोई नहीं हो सकता। नौकरी कई प्रकार हैं। कालिज का प्रिंसिपल या गुरुकुल मुख्याधिष्ठाता भी नौकर हो सकता क्योंकि वह किसी संस्था से वेतन है, उसकी आज्ञाओं का पालन कर और उसी के द्वारा उसकी नियुक्ति है। यही हाल मुख्य सेनाध्यक्ष है। यह नौकरियां स्टेशन की कुली या पंखा कुलीगिरी से सर्वथा भिन्न शब्दों पर न जाइये, उनके अर्थों विचारिये, अर्थ स्पष्ट हैं।

अब भिन्न २ व्यवसायों को अलग लीजिये :—

ब्राह्मण

(१) न्यायाधीश, जज, मुन्सिफ आदि; वकील, बारिस्टर, मुख्तार, मास्टर, डाक्टर, वैद्य, आदि, सम्पादक पुस्तक लेखक, प्रकाशक आदि।

क्षत्रिय

(२) रियासतों के दीवन, कलक्टर तहसीलदार, क़ानून गो, पटवारी, जमींदार मालगुज़ार, तालुकेदार, पुलिस के सिपाही तथा अधिकारी, युद्ध के सिपाही।

वैश्य

(३) इञ्जिनियर, मेकेनिकल आदि, शिल्पकार लोहार, बढ़ई आदि, युद्ध सामग्री बनानेवाल, उच्च तथा उनके सहायक, युद्ध सामग्री बनानेवाले, कारखानों के शिल्पकार, बुनकर (जुलाहे) वा सूत कातने वाले, रूई धुनने वाले हाथ से या मशीन से, तेल पेरने वाले, कृषक आदि पुस्तक विक्रेता आदि सब वैश्य।

हय है मोटा २ वर्गीकरण। किसी २ व्यवसाय में बहुत थोड़ा अन्तर होता है और यह जानना कठिन होता है कि इनको किस वर्ण में रक्खा जाय। परन्तु उस व्यवसाय की प्रधानता को देखकर व्यवस्थापक संस्थाये उसका वर्ण निर्धारित कर सकती हैं।

स्वराज्य और वर्ण व्यवस्था' से कुछ अधिक सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता। क्योंकि स्वराज्य का यह अर्थ तो है नहीं कि ज्योंही स्वराज्य मिल। हमको सब वैदिक अधिकार प्राप्त हो गये।

मैंने इस विषय पर ट्रैक्ट संख्या २९ "आर्यसमाज क्या है" में और लखनऊ की "सुधा" की एक लेखमाला में 'समाज सुधार' शीर्षक के अन्तर्गत विस्तार पूर्वक लिखा है।

ब्राह्मण की गौ

(समालोचनात्मक)

इस नाम की एक पुस्तक गुरुकुल काङ्गड़ी के प्रस्तोता महोदय ने हमारे पास भेजने की कृपा की है। पुस्तक के लेखक हैं श्री पं० देवशर्मा जी "अभय" विद्यालङ्कार। छपाई, कागज़ आदि सभी अच्छे हैं।

पुस्तक के नाम से पुस्तक के विषय पर कुछ प्रकाश नहीं पड़ता। हमने खोला तो समझ में नहीं आया कि किस विषय की पुस्तक है। परन्तु आद्योपान्त पढ़ने से अवश्य ही प्रभावित होना पड़ता है। यह वस्तुतः अथर्ववेद काण्ड ५ के १८ वें सूक्त की व्याख्या रूप है। इस सूक्त में १५ मंत्र हैं। लेखक ने इन १५ मंत्रों में से प्रत्येक का पहले शब्दार्थ और फिर विस्तृत व्याख्या की है। इससे पहले प्रारम्भिक विवेचना में 'ब्राह्मण', 'गौ', 'वैतहव्य', 'अदन' आदि शब्दों की इस प्रकार व्याख्या कर दी है कि पाठक को विषय-प्रवेश में कठिनाई नहीं पड़ती। साधारण अनुवादों के देखने से ज्ञात होगा कि इस मंत्र में यह विधान है कि जो राजा ब्राह्मण की गौ को खा जाता है उसका नाश हो जाता जाता है। परन्तु 'अभय' महोदय ने बताया है कि ब्राह्मण का अर्थ है 'प्रजा का सच्चा नेता'। 'भारतवर्ष में वर्तमान युग में गान्धी जी का जो स्थान है, यदि पाठक उसे ध्यान में रखें तो उन्हें इस सूक्त के

ब्राह्मण की कल्पना ठीक २ आ जायेगी।' "गो-शब्द का अभिप्राय तो निश्चय से वाणी ही है। अब हम प्रत्येक मंत्र का अर्थ तथा भाव योग्य व्याख्याता के शब्दों ही में देते हैं:—

नैतां ते देवा अददुस्तुभ्यं नृपते अत्तवे मा ब्राह्मणस्य राजन्य गां जिघत्सो अनाद्याम्।

(नृपते ?) हे राजा ? (ते देवाः ?) उन प्रसिद्ध देवताओं ने (एतां) ब्राह्मण की यह वाणी गौ (तुभ्यं) तुझे (अत्तवे) खा डालने के लिए (न अददुः) नहीं दी थी। इसलिए (राजन्य ?) हे क्षत्र-शक्ति युक्त राजा ? तू (ब्राह्मणस्य) ब्राह्मण की (अनाद्यां) कभी भी न खाने योग्य या कभी भी न खायीं जा सकने वाली (गां) इस वाणी का [मा जिघत्सः] खातमा कर डालने की इच्छा मत कर।

अक्षद्रुग्धो राजन्यः पाप आत्म-पराजितः। स ब्राह्मणस्य गाम-द्यात् अद्य जीवानि मा श्वः॥

[अक्षद्रुग्धः] इन्द्रियों से द्रोह को प्राप्त अर्थात् अजितेन्द्रिय [पापः] अत-एव पापी [आत्म पराजितः] आत्मा से हारा हुआ या अपने आप पराजित हुआ हुआ [राजन्यः] जो राजा होता है [सः] यह ही [ब्राह्मणस्य गामद्यात्] ब्राह्मण को वाणी को बन्द करता है। यद्यपि वह [अद्य जीवानि] आज बेशक जीवित है [मा श्वः] पर कल नहीं रहेगा।

आविष्टिताघविषा पृदाकू[…] चर्मणा। सा ब्राह्मणस्य रा[…] तृष्टैषा गौरनाद्या॥

[एषा ब्राह्मणस्य अनाद्या […] ब्राह्मण की यह अनाशनीया वाणी [																	…] जब प्यासी होती है अर्थात् बोल[…] तीव्र इच्छा वाली होती है; तब [सा] वाणी [चर्मणा आविष्टिता] चम[…] ढकी हुई [पृदाकूः] सर्पिणी [इव] तरह [अघविषा] भयंकर विषवा[…] जाती है।

निर्वै क्षत्रं नयति हन्ति वर्चो[…] रिवारब्धो विदुनोति सर्वम्। ब्राह्मणं मन्यते अन्नमेव स वि[…] पिबति तैमातस्य॥

रोकी गई ब्राह्मण की वाणी [वै […] निःनयति] राष्ट्र में से क्षत्र को नि[…] देती है [वर्चः हन्ति] तेज का नाश[…] देती है और [आरब्धः अग्निः इव] […] गाई हुई आग की तरह [सर्वं वि दु[…] सब कुछ जलाने लगती है। इस[…] [यः ब्राह्मणं अन्नं एव मन्यते] जो […] ब्राह्मण को खा जाने की चीज सम[…] है [सः तैमातस्य विषस्य पिबति] […] घोला हुआ विष पीता है या सांप का[…] पीता है।

य एनं हन्ति मृदुम् मन्यमा[…] देवपीयुर्धनकामो न चित्ता[…]

सं तस्येन्द्रो हृदयेऽग्निमिन्ध
उभे एनं द्विष्टो नभसी चरन्तम् ॥

जो [देवपीयुः] दैव भाव का नाशक [धनकामः] धनलोभी राजा [न चित्तात्] नासमझी के कारण [मृदुं मन्यमानः एनं हन्ति] इस ब्राह्मण को कोमल, दुर्बल समझ कर हनन करता है, [तस्य हृदये] उस राजा के हृदय में [इन्द्रः] इन्द्र [अग्निं समिन्धे] आग जला देता है, और [एनं चरन्तं] जब यह चलता है— या आचरण करता है, काम करता हुआ है तब [उसे नभसी] द्यौ और पृथिवी दोनों ही—अर्थात् इन लोकों में स्थित सब देवता [द्विष्टः] इससे द्वेष करते हैं ।

न ब्राह्मणो हिंसितव्योऽग्निः
प्रियतनो रिव । सोमोह्यस्य
दायाद इन्द्रोअस्याभिशस्तिपाः ॥

(प्रियतनोः अग्निः इव ब्राह्मणः न हिंसितव्यः) प्यारे शरीर की अग्नि की तरह ब्राह्मण होता है अतः उसकी हिंसा नहीं करनी चाहिये । (अस्य) इस ब्राह्मण का (सोमः हि सोमरूप जगदीश्वर (दायादः) सम्बन्धी है और (इन्द्रः) इन्द्ररूप परमेश्वर (अभिशस्तिपाः) हिंसा से बचाने वाला है ।

शतापाष्ठां निगिरति तां न शक्नोति
निःखिदन् अन्नं यो ब्रह्मणां
मल्वः स्वाद्वद्मीति मन्यते ॥

[यः मल्वः] जो अपनी धारणा शक्ति का अभिमान करने वाला राजा ब्रह्मणां अन्नं स्वादु अद्मि इति मन्यते] ब्राह्मणों को (सताता) मैं स्वादु अन्न खा रहा हूँ ऐसा समझता है वह शतापाष्ठां) सैकड़ों आपद से भरी हुई इस वस्तु को (निगिरति) निगल तो जाता है पर (निःखिदन् न शक्नोति) इसे हज़म नहीं कर सकता ।

जिह्वा ज्या भवति कुल्मलं वाङ्,
नाडीका दन्तास्तपाभिदिग्धाः ।
तेभिर्ब्रह्म विध्यति देवपीयून्,
हृद्बलैर्धनुभिर्देवजूतैः ॥

जिस धनुष में (जिह्वा ज्या भवति) जीभ डोरी [प्रत्यंचा] होती है, [वाक् कुल्मलं] उच्चारित शब्द वाणदण्ड होता है, [नाडीकाः दन्ताः] नाड़ियाँ (ज्ञानतन्तु) वाणाग्र (वाण के दांत) होते हैं, (तपसा अभिदिग्धाः) जो कि दांत (आग की जगह) तप से तीक्ष्णीकृत होते हैं (तेभिः) ऐसे उन (देवजूतैः) देवों से प्रेरित (हृद्बलैः धनुभिः हृदयबल रूपी धनुष से (ब्रह्म) ब्राह्मण (प्रजानेता सत्याग्रही) (देवपीयून) देव द्रोही प्रजापीडक राज्याधिकारियों को (विध्यति) वेध करता है ।

(क्रमशः)



टर्की और अनेक पत्नी-प्रथा



न्चेष्टर गार्डियन नामी प्रसिद्ध पत्र का कौंस्टें-टीनोपिल का संवाददाता लिखता है कि कौंस्टें-टीनोपिल की म्युनिसिपलिटी उन परिवारों की गणना करा रही है जिन में अनेक पत्नी प्रथा अब तक उपस्थित है। पाठकों को याद होगा कि चार वर्ष पूर्व टर्की में अनेक पत्नी प्रथा के विरुद्ध नियम पास हो चुका है। उस समय यह भी पास हुआ था कि जिन पुरुषों में नियत तिथि के पूर्व अनेक पत्नियों से विवाह कर लिया होगा उनको उन पत्नियों के साथ पूर्ववत् रहने की आज्ञा दी जायगी। अब म्युनिसिपलिटी यह जानना चाहती है कि अनेक पत्नी-प्रथा के हटाने में और पूर्वीय देशों से इस कलंक के टीके को मिटाने में वह कहां तक सफल हो सके हैं।

परन्तु एक बात नोट करने की है, अभी वह साधन नहीं सम्पादित किये जा सके जिनके द्वारा टर्की वाले अ पत्नी प्रथा को पाप समझने लगें। जब तक कोई जाति किसी प्रथा पाप और धर्म विरुद्ध नहीं समझती समय तक उसको सर्वथा त्याग करने लिये तत्पर नहीं होती। राजकीय नि क्षणिक होते हैं उनको स्थायी बनाने लिये धर्म सम्बन्धी आधार की आव कता होती है। राजकीय नियम या अपरिमित शक्ति सम्पन्न राजे बनाते या राजकीय सभायें। पहली दशा में राजों के परिवर्त्तन होते ही नियमों परिवर्त्तन हो जाता है। जहां राजा ब नियम भी बदल गये। परन्तु सभा द्वारा बने हुये नियम भी बहुमतानु बनते हैं। बहुमत के बदलने में एक पत्य से तो अधिक देर लगती है फिर बहुत बदल सकता है। आज एक का बहुमत है तो कल दूसरे दल इस प्रकार जो बात आज अराजक वह कल सराजक हो सकती है। पर धर्म का आधार मनुष्यों के मस्तिष्क सीधा प्रभाव डालता है। और धर्म न्यून मत वाले दल या व्यक्ति भी धर्म समझते हैं। समस्त देश में

व्यक्ति ऐसा हो सकता है जो प्रचलित प्रथाओं को अधर्म समझ कर उन का प्रतिरोध करे और उनके प्रतिरोधक दल की संख्या बढ़ाये।

यह बात राज की ओर से नहीं हो सकती। टर्की में भी वर्तमान परिस्थिति में अधिक से अधिक जो कुछ हो सकता है, वह किया है। कमाल पाशा नीतिज्ञ हैं, धर्मज्ञ नहीं, उन्होंने टर्की की राज्य-प्रथा के सुधार करने का दायित्व लिया है वह मानव जाति में धर्म का सुधार करने का दम नहीं भरते।

इसलिये यद्यपि अनेक-पत्नी-प्रथा में न्यूनता हुई हैं तथापि अनेक-पत्नीप्रथा को अधर्म और पाप मानने वाले लोग अधिक नहीं, बहुत सी पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं जिनमें इस बात की पुष्टि की गई है कि हज़रत मुहम्मद साहेब की चलाई हुई अनेक-पत्नी-प्रथा में बहुत से गुण हैं और यह कदापि पाप-युक्त नहीं। हाँ इसके साथ साथ यह भी कहा जाता है कि टर्की में आर्थिक कठिनाइयों के कारण अनेक-पत्नी-प्रथा मिटती जाती है। कौंस्टेंएटी नोपिल, स्मर्ना और अन्य बड़े बड़े नगरों में नियम पास होने से पहले ही अनेक-पत्नी-प्रथा में बहुत कमी हो चुकी थी। एक समय था कि बास्फोरस के निकट के विशाल भवनों में गृह-पति की दो या तीन पत्नियों, उसकी अविवाहित दासियों, तथा उसके पुत्रों की वेश्याओं की सेना की सेना दृष्टिगोचर होती थी। परन्तु दो तीन पीढ़ियां में यह सब लुप्त हो गई।

लोगों का कहना है कि अनेक-पत्नी-प्रथा बुरी नहीं परन्तु यह समाज की उस प्रथा के अधिक अनुकूल है जिसमें लोग बद्दुओं की भाँति एक स्थान पर नहीं बसते। कुछ लोगों का विचार है कि मुसल्मानी अनेक पत्नी प्रथा में फ़ारिस वालों के संसर्ग से अधिक दोष आ गये हैं। इसीलिये इसको त्याग देना चाहिये। एशियाटिक टर्की के पूर्व प्रान्त में अब भी अनेक-पत्नी-प्रथा जीवित है। वहाँ कई पत्नियों का होना सम्मान का कारण समझा जाता है, परन्तु अब फिरने वाली जातियां एक स्थान पर बसने लगी हैं और इसी-लिये यह प्रथा भी कम होती जाती है।

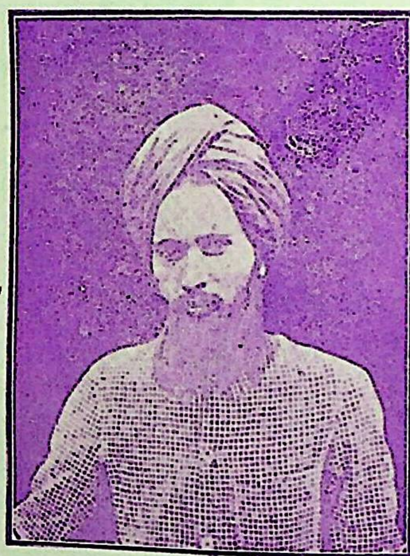
तथापि एक बात स्पष्ट है कि टर्की वाले इस प्रथा को जड़ मूल से नष्ट करना चाहते हैं। परिवारों की संख्या करने में यह भी देखा जायगा कि कितने वर्षों में मृत्यु द्वारा रही सही अनेक पत्नियाँ लुप्त हो सकेंगी जिससे भविष्य में टर्की का पारिवारिक जीवन स्वच्छ रहे।

भारतवर्ष में भी अनेक पत्नी प्रथा को बुरा नहीं समझा जाता। तथापि राजों या पहाड़ी प्रदेशों को छोड़ कर साधारण जनता में प्रति सहस्र एक भी परिवार में अनेक-पत्नी-प्रथा का चिह्न न मिलेगा। हां राजा दशरथ की तीन पत्नियों तथा श्री कृष्ण जी की सोलह सहस्र एक सौ आठ रानियों आदि की कथायें जब तक प्रचलित है उस समय तक हिन्दू जाति अनेक-पत्नी-प्रथा को पाप और घृणित तथा असहनीय नहीं समझ सकती। इसमें सन्देह नहीं कि श्री रामचन्द्र जी के उज्वल जीवन ने एक

पत्नीव्रत का आदर्श बताया है तथापि प्रत्येक पुरुष मर्य्यादा पुरुषोत्तम तो बनना नहीं चाहता। हमको ज्ञात है कि आर्य्य-समाज के एक प्रसिद्ध लेखक और विद्वान् अनेक-पति-प्रथा को तो सर्व-नाशक समझते हैं परन्तु अनेक-पत्नी-प्रथा के वह समर्थक हैं। हर्ष का स्थान है कि हमको इस प्रकार के विचार रखने वाले एक ही महाशय का नाम ज्ञात है और यदि कोई घटना उनके विचारों में भी परिवर्त्तन कर दे तो अच्छा हो। क्यों हमको अनेक-पत्नी-प्रथा सर्वथा वै धर्म के विरुद्ध प्रतीत होती है। ऋषि द नन्द का भी यही आदेश है। पश्चि प्रदेशी में टर्की के समान आन्दोलन हो चाहिये, जब तक यह प्रथा किसी रूप विद्यमान रहेगी स्त्री जाति में अ अभिमान और पुरुष जाति में सद्गु के भाव नहीं रह सकते।

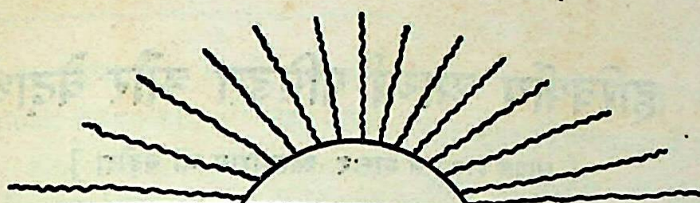
पं० धर्म भिक्षु जी

बड़े दुःख से लिखना पड़ता है कि श्री पं० धर्मभिक्षु जी का स्वर्गवास २० जून १९३० ई० को लखनऊ में हो गया। हैजे के रोग से आक्रान्त होकर इस छोटी सी अवस्था में एक होनहार विद्वान् चल बसा। पं० जी अर्बी और फ़ारसी के बड़े ज्ञाता थे और आपने इस्लाम धर्म का बहुत अच्छी तरह अध्ययन किया था। बड़े २ मौलवियों के साथ ब निर्भीकता के साथ शास्त्रार्थ करते थे और आपके व्याख्यानों का जनता ऊपर बड़ा प्रभाव पड़ता था। आ प्रतिनिधि सभा पंजाब के कुछ दिनों आप उपदेशक रहे उसके बाद लख चले आये। आर्यसमाज को आपसे ब बड़ी आशायें थीं। हम उनके सम्बन्धि के साथ सहानुभूति प्रकट करते हैं।



त्याग-मूर्त्ति महात्मा हंसराज जी

ओ३म्



पश्चात प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३।४।१।१]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती हैं।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग १ — श्रावण, संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०५; अगस्त १९३० — आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३० — संख्या ५

ईश महिमा

[श्रीयुत पं. राजाराम पाण्डेय "मधुप"]

अंकित है तू हृदय-भित्तिपर,
कैसे तुझे भुलाऊं मैं।
तू है जगदाधार प्रेममय
कैसे तेरे गुण गाऊं मैं॥

रुख तेरे दृग कोणों का पा,
नित उगते सूरज तारे।
नियत समय तक चमक व्योम में,
फिर होते ओझल सारे॥

तेरा ही गुण कल कल स्वर में,
सरिता यहां सुनाती हैं।
अखिल विश्व की कुसुम क्यारियां,
महिमा तेरी गाती हैं॥

भूपर तृण संकुल का तूने,
फर्श बिछाया हरा भरा।
अगल बगल में कुसुमित होकर,
फूल उठी यह मुदित धरा॥

नित नव जग में प्रकृति नटी का,
तू अभिनय दिखलाता है।
निशा दिवस जाड़ा गर्मी,
षट ऋतु का तुही विधाता है॥

शुद्ध प्रेम से जो जन तुझको,
हे अखिलेश! रिझाते हैं।
भव-बन्धन के पचड़े से वे,
छूट शीघ्र ही जाते हैं॥

हरिवर्षीय आर्य्य पण्डित और वेदार्थ

[श्रीयुत राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी बड़ौदा]

[३]

THREE Lectures in America यह लघु पुस्तक प्रोफ़ेसर मैक्स-मूलर कृत है। जब उक्त भाषा-शास्त्री पाताल देश (अमरीका) में गये तब वहाँ के अनेक लोग यह बात सुनकर चकित हुए कि प्रोफ़ेसर ने अपनी पुस्तकों के नाम History of Language न रखकर The Science of Language नाम क्यों रखा। इसका उत्तर उक्त ग्रन्थकर्त्ता ने अपनी पुस्तक में विस्तार पूर्वक दिया है कि यदि मानवी भाषा, मनुष्य की कृति होती तो वह अपनी पुस्तक का नाम History शब्द से रखते और उस दशा में भाषा का वह इतिहास लिखते। जब कि मानवी भाषा मानवी कृति नहीं हो सकती तब ही तो उन्हें अपनी पुस्तक के साथ Science शब्द का प्रयोग करना पड़ा जिसके अर्थ विज्ञान वा शास्त्र के होते हैं। वृक्ष आदि मनुष्य की कृति नहीं हैं इसलिये जब वृक्षों के ज्ञान के लिये Science शब्द का प्रयोग होता है. तो मानवी भाषा के लिये भी Science वा विज्ञान शब्द का, प्रयोग ही ठीक है। इस तत्व को तथा अपने अनेक ग्रन्थों में कहे हुए भाषा संबन्धी मुख्य बातों को विशेष सरल तथा रूप से दिखाने के लिये मैक्समूलर जो तीन भाषण पाताल देश में उक्त लघुपुस्तक में छपे हुए हैं।

मृत्यु से पहिले उक्त विद्वान् ने विचित्र पुस्तक रची उसका नाम My Friends था। इस पुस्तक में आर्य्य समाज और श्री स्वामी दया भी उत्तम चर्चा की है। प्रोफ़ेसर ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के संस्क को जो स्वामी दयानन्द जी कृत है चकित हो गये कि स्वामी ने पंडित मण्डली में क्रान्ति मचा कारण कि सब विद्वान् लोग Ch and Mohammaden जगत में Revelation" के तत्व को ही थे। भारत में ब्रह्मसमाज के "Book-Revelation" के विरुद्ध जरूर चर्चा की पर उनका युरोप के तर्कशास्त्रियों से मिला जानते हैं। प्रोफ़ेसर साहेब उक बतलाते हैं कि स्वामी दयानन्द सम्बन्धी उत्तम तर्कसिद्ध मत है वह हमने युरोप के वर्तमान तथा पंडितों के तर्क पूर्ण उत्तम

अनुकरण किया है। स्वामी दयानन्द जो "Book-Revelation" नहीं मानते किन्तु Knowledge Revelation मानते हैं—यह भारी तत्व स्वामी ने मानो युरोप के पंडितों से लिया यह बात प्रो० जी उक्त ग्रन्थ में दर्शा रहे हैं।

प्रोफ़ेसर साहेब की यह बात ठीक नहीं, कारण कि ऋषि दयानन्द से पहिले एक भारतीय आर्य्यऋषि एक दर्शन-शास्त्र का कर्त्ता अपने सूत्र में लिख चुका है जिसका भाषा में भाव यह है कि—

ब्रह्मशास्त्र की योनि अर्थात मूल कारण है

शास्त्र शब्द का अर्थ सब ही भारतीय पंडित चार वेद वा यथार्थ ज्ञान के करते हैं।

इसके अतिरिक्त महर्षि मनु ने अपने धर्मशास्त्र के प्रथम अध्याय में कहा है कि ईश्वर ने वेद के शब्दों द्वारा आदि काल में सृष्टि पदार्थों के नाम सिखाये हैं, तो ऋषि दयानन्द का यह महान् कथन कि जड पदार्थ पुस्तक ईश्वर कृत नहीं हो सकती किन्तु ज्ञान वा वेद का प्रकाश योगी वा ऋषियों के मन में सर्वव्यापक ईश्वर प्रेरणा द्वारा स्फुरित करते हैं Knowledge Revelation के वैज्ञानिक वा तर्कसिद्ध कोटि का होने से प्रोफेसर साहेब को भी स्वीकृत है पर वह समझते हैं कि स्वामी दयानन्द ने यह महान् क्रान्तिकारी तत्व वर्तमान समय के हम युरोपीय विद्वानों से ग्रहण किया है। अस्तु! हमने यह सिद्ध कर दिया कि दयानन्द ने यह तत्व भारतीय ऋषियों से ही सीखा है। मुनिवर महात्मा पण्डित गुरुदत्त जी की ओंकार सम्बन्धी वैज्ञानिक व्याख्या वैदिक मेगज़ीन (Vedic-Magazine) में पढ़ने से पाठक जान सकते हैं कि उक्त महामुनि जी ने जो उत्तम लेख लिखा है उसमें एक बात यह दर्शाई गई है कि ओ३म् शब्द जब जब नई सृष्टि फिर होगी तब भी वही अर्थ का प्रकाशक होगा, कारण कि योगीजन ही अनुभव कर सकते हैं कि शब्द और उनका सम्बन्ध नित्य बना रहेगा।

सब जानते हैं कि पूज्य पं० गुरुदत्त जी आरोढ़ा जाति में जन्मे थे। आर्य्य समाज के इतिहास में यह पहिले ऋषिभक्त हैं जो विज्ञानी, सुधारक, त्यागी, मेधावी, तर्कशास्त्री, भाषाशास्त्री होने के अतिरिक्त योगी वा योगाभ्यासी भी थे।

इसलिये जिस प्रकार सब प्राचीन भारतीय ऋषि मुनि तथा वर्तमान-काल के ऋषि दयानन्द जी वेद के प्रकाश आदि के विषय में जो सनातन आर्य सिद्धान्त रखते थे उसी आर्य सिद्धान्त के परम-पोषक विज्ञानाचार्य्य मुनिवर पं० गुरुदत्त जी भी थे।

युरोप के वर्तमान पंडित दिनों दिन भारतीय सनातन आर्य सिद्धान्तों की ओर आ रहे हैं यह बात यहां पर विशेष जनाने की हम आवश्यकता समझते

हुये अपने एक योगाभ्यासी तथा विद्वान् आर्य्य-बंधु के पत्र का अनुलेख नीचे देते हैं।

"Aum
Sri Aurobindo Ashram,
Pondicherry.
Dated Ist Feb. '30.

"........Last year at Quakers' meeting, a well known Scientist of the age, named A. S. Eddington delivered a lecture on "Science and the Unseen world" in which he proved that the knowledge through senses is the indirect knowledge and the Spiritual experience (न यत्र चक्षुर्गच्छति) is as hard facts of reality as that observed by Scientificmen in the Laboratory. This has created a sensation in the Scientific world."

Your Affectionate,
Banmali Sadhak,
B. A., LL. B.

मुनिवर पं० गुरुदत्तजी सदैव अपने भाषणों में कहा करते थे कि ऋषि दयानन्द से कुछ उतरता हुआ दूसरा योगी इस समय अमेरिका का Andrew Jackson Davis (एन्ड्रू जेकसन डेवीस) है। इसने लगभग २० ग्रन्थ अंग्रेजी में लिखे हैं। उनमें से ६ ग्रन्थ तो उस जिज्ञासु को पढ़ने चाहिये जो योग-विद्या और योगिओं की मेधावी शक्तियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहते हैं। उनके नाम निम्नलिखित हैं।

1. Nature's Divine Revelation.
2. Harmonia (Vol. I)
3. Do. (Do. II)
4. Do. (Do. III)
5. Do. (Do. IV)
6. Do. (Do V)

योगी डेवीस की जीवन घटना और योग-सिद्धि का वर्णन प्रथम ग्रन्थ के उपोद्घात में है। उसके पाठ करने से विदित होता है कि डेवीस जी समा[illegible] संस्कार लेकर जन्मे थे। वे कि[illegible] शाला में अभ्यास करने से पहिले [illegible] समाधि निद्रा को प्राप्त हो जाते थे [illegible] प्रलय से पहिले जगत की क्या अव[स्था] थी और सृष्टि किस प्रकार होती च[ली] गई इन सब बातों को वे अपने मुख [से] सोये हुये बोल जाते थे और ले[खक] पास से बैठे हुये लिखा करते थे। [illegible] पर एक वाक्य का उद्धरण करना अ[नु]चित न होगा।

"In the beginning there wa[s] nothing but darkness" इस [illegible] वचन को पढ़ कर सुनते हुये हम [illegible] को महामुनि पं० गुरुदत्त जी कहा क[रते] थे कि यह "तमासीत् तमसा गूढ़[मग्रे]" इस वेद मन्त्र का अनुवाद उनकी [illegible] में नहीं तो क्या है ?

गुरुकुल कांगड़ी के पुस्तकालय [में] श्री योगी डेवीस साहब के सब पु[स्तक] विद्यमान हैं। जो जिज्ञासु देखना [चाहें] वह देख सकते हैं।

वेदों का सन्देश

सत्यं बृहद्दतमुग्रम् दीक्षा तपो ब्रह्म यज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य भव्यस्य पत्न्युरुम् लोकम् पृथिवी नः कृणोतु ॥

[अथर्ववेद काण्ड १२, सूक्त १, मं० १]

(बृहत्) बड़ा (सत्यम्) सत्य (उग्रं) तीक्ष्ण (ऋतं) ऋत, (दीक्षा) दीक्षा (तपो) तप (ब्रह्म) ब्रह्मज्ञान (यज्ञः) यज्ञ (धारयन्ति) धारण करते हैं (पृथिवीं) भूमि को ॥ (सा) वह पृथ्वी (नः) हमारे (भूतस्य) गुज़रे हुये (भव्यस्य) और आने वाले कामों की (पत्नी) पालन करने वाली है। (पृथिवी) वह पृथिवी (नः) हमारे लिये (उरुं) विस्तृत (लोकं) स्थान को (कृणोतु) करे।

पृथिवी को कौन धारण करता है ? यहां छः चीजें गिनाई गई हैं (१) सत्य (२) ऋत (३) दीक्षा (४) तप (५) ब्रह्म (६) यज्ञ। इनमें पहले दो अर्थात् सत्य और ऋत के लिये दो और विशेषण दिये हैं। सत्य के लिये "वृहद्" और ऋत के लिये "उग्र"। इस प्रकार इन छः चीजों के दो भाग हो गये, पहली दो चीजें अर्थात् सत्य और ऋत। दूसरी कोटि में चार चीजें हैं अर्थात दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ।

यदि हम विचार करें तो प्रतीत होता है कि सृष्टि को धारण करने वाली दो बड़ी शक्तियां हैं—एक ईश्वर और दूसरा जीव। ईश्वर पृथ्वी बनाता है। मनुष्य उस पर नगर बसाता है। ईश्वर समुद्र बनाता है और मनुष्य कुआं खोदता है। ईश्वर नदियां बनाता है और मनुष्य नहरें तथा नाले तैयार करता है। ईश्वर सूर्य्य बनाता है और मनुष्य दीपक तैय्यार करता है। यदि ईश्वरीय शक्ति कार्य्य न करे तो पृथ्वी का सर्वथा अभाव हो जाय। और यदि प्राणी न हों तो सृष्टि किस काम आवे ? यदि जो कुछ मनुष्य ने संसार में किया है उसे वहिष्कृत कर दिया जावे तो ऐसी सृष्टि रह जायगी

जिसकी उपयोगिता तथा सुन्दरता में सन्देह होने लगे। अंगरेजी भाषा में ईश्वर के कार्य्य को नेचर (Nature) और मनुष्य के कार्य्य को आर्ट (Art) कहते हैं। नेचर और आर्ट दोनों मिल-कर ही सृष्टि की शोभा होती है। जगत् के धारण करने की यही दो बड़ी शक्तियां हैं।

पहली शक्ति अर्थात् ईश्वर पृथ्वी को दो साधनों द्वारा धारण करता है एक "बृहत् सत्य", दूसरा "उग्र ऋत"। सत्य और ऋत का वर्णन अन्य मंत्रो में भी मिलता है। शायद 'सत्य' को 'बृहत्' और 'ऋत' को 'उग्र' कहने में भी कोई रहस्य हो। सम्भव है इन विशेषणों द्वारा हम विशेष्यों के अर्थों को समझने में सुगमता प्राप्त कर सकें। मेरे विचार से 'बृहत्' विस्तार का सूचक है और 'उग्र' तीक्ष्णता का। भाव यह मालूम होता है कि विस्तृत प्रकृति ही सत्य है और तीक्ष्ण नियम जो उसमें संचालन उत्पन्न करता 'ऋत' है। पृथ्वी को धारण करनेवाली दो चीजें हैं एक तो वह वस्तु जिसका रूपान्तर पृथ्वी है दूसरा वह नियम जिसकी गहराई प्रत्येक वस्तु में दिखाई पड़ती है। यद्यपि प्राकृतिक नियम जिनसे संसार की वस्तुओं का नियंत्रण होता है कई हैं तथापि कहा जा सकता है कि वह एक ही नियम का रूपान्तर हैं जिसको ऋत कह सकते हैं। यों तो विज्ञान के भिन्न २ विभाग हैं जिनको भिन्न भिन्न नामों से पुकारते हैं जैसे रसायन-शास्त्र, भौतिकी, गणित, वनस्पति शास्त्र, जीवन-शास्त्र, मनोविज्ञान आदि। इनके नियम भी पृथक् २ हैं। एक गणित के भी कई विभाग हैं जैसे ज्यामिति, रेखा-गणित, बीज-गणित और ज्योतिष आदि। इनके भी भिन्न भिन्न नियम हैं परन्तु अन्ततोगत्वा यह सब एक हैं। इसी प्रकार गणित और भौतिकी एक है। इसी प्रकार आगे चल कर सभी शास्त्र और सायन्सें एक हो जाती हैं। वस्तुतः संसार की प्रत्येक वस्तु और प्रत्येक घटना इन शास्त्रों के सभी नियमों का क्रौसिंग सेंटर अर्थात् सम्मेलन-केन्द्र है। इन नियमों का नाम ही ऋत है। ऋत उग्र है क्योंकि इससे कोई वस्तु और कोई घटना बची नहीं है। यह सबका शासक है। इसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता, यहीं नहीं कि ऋत का उल्लंघन करने से दण्ड मिलता हैं अधिकन्तु इसका उल्लंघन करना असम्भव है। यह उग्र ऋत समस्त संसार को अपने वश में रखता है। प्रत्येक शान्तिदायक तथा शांति भङ्ग करने वाली घटना इसी उग्र ऋत का प्रकाश मात्र है। यह ऋत इतना बली है कि बड़ी से बड़ी शक्ति इससे विरुद्ध नहीं जा सकती। यह इतना निर्दयी है

किसी के रोने की पुकार नहीं सुनता। परन्तु साथ ही इतना दयालु है कि अन्त में इससे प्राणियों का हित ही होता है। ऐसे "उग्र ऋत" के बिना सृष्टि जीवित ही कैसे रह सकती। रहा "वृहत् सत्य"। यह तो स्पष्ट ही है। प्रकृति का प्रत्येक रूपान्तर इस सत्य का विस्तार है। ईश्वर ने संसार रचा इसके दो भाग हैं। वस्तुयें तथा घटनायें। दार्शनिक रीति से यह दोनों एक हैं अर्थात् घटनायें ही वस्तुओं को उत्पन्न, धारण तथा विध्वंस करती हैं। साधारण से साधारण आंख भी इस "वृहत् सत्य" का अवलोकन कर सकती है क्योंकि यह 'वृहत्' अर्थात् विस्तृत है। विस्तृत वस्तु के देखने के लिये किसी विशेष योग्यता की आवश्यकता नहीं होती। जो चीज़ बड़ी है वह किसे न सूझेगी ? सूरज, चांद, तारे, आकाश, पृथ्वी, पहाड़, नदी, जल, वायु यह सब 'वृहत् सत्य' में शामिल हैं। इनका ज्ञान असभ्य तथा सभ्य, शिक्षित तथा अशिक्षित सभी को है। अशिक्षित अफ्रीका देश के असभ्य नीग्रो भी सूरज को पहचानते और वायु से अभिज्ञ है। यह मोटी २ चीज़ें या मोटी मोटी घटनायें हैं। परन्तु इनके भीतर जो बड़ा नियम काम कर रहा है वह उग्र है; तीक्ष्ण है इसलिये सूक्ष्म है। इसे सभी नहीं देख सकते। इसके लिये सूक्ष्म बुद्धि और परिश्रमयुक्त विकास की आवश्यकता है। मेधावी और विचक्षण पुरुष ही इसका अवलोकन कर सकते हैं। इसीलिये इसको उग्र कहा है। सत्य माला के दाने हैं और ऋत उनका सूत्र है। परमात्मा इसी "उग्र ऋत" के द्वारा जगत् का धारण करता है।

परन्तु पृथ्वी के धारण करने में मनुष्य का भी हाथ हैं। ईश्वर ने सृष्टि अपने लिये नहीं बनाई। यह प्राणियों के कार्य्य क्षेत्र हैं। इसमें जीव कर्म्मों का फल भोगते और कर्म करते हैं।

ईश्वर ने सृष्टि को एक प्रकार से पूर्ण और एक प्रकार से अपूर्ण बनाया है। पूर्ण इस विचार से है कि मनुष्य के कार्य करने के लिये जितनी सहायता चाहिये थी वह सब दे दी। इससे अधिक सहायता देना मनुष्य के लिए हानिकारक होता। परन्तु अपूर्ण इस विचार से है कि मनुष्य को हाथ पैर हिलाने की आवश्यकता है। यदि सृष्टि सर्वाङ्गपूर्ण होती तो मनुष्य क्या करता। यदि सभी चीजें बनी हुई होतीं मनुष्य क्या बनाता। ईश्वर ने सृष्टि को कार्य्यक्षेत्र बनाया है परन्तु कार्य्य मनुष्य के ऊपर छोड़ दिया है। यदि जिस प्रकार ईश्वर ने पृथ्वी बनाई उसी प्रकार घर भी बना देता, यदि जैसे तालाब बनाया उसी प्रकार गिलास, कटोरे और थालियां भी बना देता तो मनुष्य का विकास कैसे होता ? इस

लिये जहां एक अर्थ में सृष्टि सर्वाङ्गपूर्ण और सुन्दर हैं वहां दूसरे अर्थ में अपूर्ण और भौंडी भी है। पृथ्वी में चौरस सड़कें नहीं हैं जिससे मनुष्य सड़कें बना सकें, महल नहीं हैं जिससे महल बनाने का यत्न हो सके। पहाड़ बड़े सुरम्य हैं परन्तु यदि मनुष्य उनपर निवास करना चाहे तो उनमें बहुत से परिवर्तन करने पड़ते हैं। सारांश यह है कि पृथ्वी का आधार न केवल ईश्वर ही है किन्तु मनुष्य को भी भरसक यत्न करना पड़ता है। किसी देश की उन्नति न केवल उसकी प्राकृतिक परिस्थिति पर ही निर्भर हैं किन्तु अधिकतर उसके निवासियों के परिश्रम और बुद्धि पर भी। एक बड़े उपजाऊ और सुरम्य देश को आलसी, मूर्ख और पापी मनुष्य खराब कर सकते हैं और एक ऊजड़ तथा भद्दे देश को परिश्रम तथा ज्ञानशील मनुष्य सुरम्य बना सकते हैं।

इस वेद मन्त्र में मनुष्य के चार काम बताये हैं जिनके द्वारा वह पृथ्वी को धारण कर सकता है अर्थात् दीक्षा, तप, ब्रह्म और यज्ञ। दीक्षा नाम है आत्मसमर्पण का मनुष्य उस समय तक कोई काम नहीं कर सकता जब तक वह उस काम में अपने को लगा न देवे। तटस्थ लोग कुछ काम नहीं कर सकते। संसार की उन्नति के लिये आवश्यक है कि हम अपने को उस उन्नति के लिये समर्पण कर [illegible] आत्मसमर्पण के पश्चात् तप [illegible] आवश्यकता होती है। किसी [illegible] को करने में जो परिश्रम तथा [illegible] होता है उसको सह सकना ही [illegible] कहलाता है। जो सुकुमार हैं जो [illegible] की कठिनाइयों का सहन नहीं [illegible] सकते उनके लिये संसार में कोई [illegible] नहीं है या यों कहना चाहिये कि [illegible] संसार है ही नहीं। ईश्वर ने सृष्टि [illegible] इतना सुगम नहीं बनाया जहाँ [illegible] परिश्रम के ही काम किया जासके [illegible] सृष्टि एक अखाड़ा है जिसमें मनु[illegible] बलवान् होना सीखता है। इस अखा[illegible] में बड़े से बड़े पहलवानों से मुकाबि[illegible] पड़ता है। यदि एक पहलवान् को पछा[illegible] दिया तो तुरन्त ही उससे प्रबल पह[illegible] वान् तालठोंक कर आ कूदता है [illegible] कहता है "कि आओ मुझे पछा[illegible] तब जानूं" यदि आप में तप [illegible] यदि आप कठिनाइयों को सहन [illegible] कर सकते तो आपको कायर समझ [illegible] अखाड़े से निकाल दिया जायगा [illegible] अखाड़ा कायरों के लिये नहीं है। [illegible] उन्हीं के लिये है जो पछाड़ खाकर [illegible] उठ खड़े होते और फिर २ तालठोंक [illegible] आ जमते हैं।

तीसरी चीज़ ब्रह्म है। ब्रह्म [illegible] अर्थ है ब्रह्म ज्ञान। आत्मसमर्पण [illegible]

तप होते हुये भी जिन मनुष्यों में ईश्वर-प्रेम नहीं वह संसार में उन्नति नहीं कर सकते। यह भूल है कि ईश्वर विचार ने संसार की उन्नति को रोक दिया। अनिष्ट तथा अयथार्थ ईश्वर विचारों ने ऐसा अनिष्ट किया यह ठीक है। अयथार्थ वस्तुयें अयथार्थ फल उत्पन्न करती ही हैं। इसमें आश्चर्य ही क्या है। परन्तु ईश्वर-प्रेम और ईश्वर-श्रद्धा को छोड़कर कभी किसी प्रकार की उन्नति नहीं हो सकती।

'यज्ञ' का अर्थ है परोपकार। वह सब कर्म जो निःस्वार्थ भाव से किये जाते हैं यज्ञ कहलाते हैं। यजुर्वेद के पहले मन्त्र में 'यज्ञ' को 'श्रेष्ठतम कर्म', कहा है। स्वार्थवश किया हुआ काम ही निकृष्ट है और परोपकार के लिये किया हुआ काम ही श्रेष्ठ। एक ही कार्य्य स्वार्थ या परोपकार के भावों के कारण निकृष्ट या श्रेष्ठ कहलाया जा सकता है क्योंकि स्वार्थ और परार्थ दोनों के परिणाम एक से नहीं होते। स्वार्थ संसार की शान्ति को भङ्ग करता और परार्थ उसको स्थापित करता है। यदि संसार के सभी पुरुष परोपकारी हो जायं तो कभी कलह न हो और उन्नति सुगम हो। स्वार्थवश लड़ाइयाँ होती हैं, स्वार्थवश मार काट होते है स्वार्थवश नाश होता है। इसीलिये कहा है कि यज्ञ पृथ्वी को धारण करता है।

इस वेद मंत्र में तीसरी वात यह वताई गई है कि पृथ्वी हमारे भूत और भविष्य की पत्नी अर्थात् पालन करने वाली है। यहां वर्त्तमान का वर्णन नहीं है क्योकि वर्त्तमान तो क्षणभर में भूत में परिवर्तित हो जाता है। यहाँ आशय केवल दो बातों से हैं अर्थात् हमने (१) क्या किया और (२) क्या करेंगे। भूत और भविष्य का घनिष्ट सम्बन्ध है। भूत यद्यपि गुजर गया परन्तु अपना चिह्न छोड़ गया। यह भविष्य के लिये मार्ग बना गया। यह पृथ्वी भूत और भविष्य दोनों की रक्षिका है। यह गुजरे हुये भूत को भी मिटने नहीं देती। किन्तु उसको आने वाले भविष्य का आधार रूप वनाकर सुरक्षित रखती है। पृथ्वी क्या है? गुजरे हुये समय के इतिहास की पुस्तक है। इसके पृष्ठों पर समस्त घटनायें अमिट चिह्नों में अङ्कित हैं। भारतवर्ष के पिछले स्वर्णकाल को लीजिये। रामायण, महाभारत तथा अन्य पुस्तकों में जो इस काल का विस्तृत वर्णन है उस पर शंका की जा सकती है। सम्भव है राम न हुये हों और किसी ने झूठ ही कथा गढ़ दी हो। सम्भव है भारतवर्ष पहले इतना उन्नत-शील न रहा हो। इसके निवासियों ने बात का बतङ्गड़ बना दिया हो। परन्तु पृथ्वी में जहाँ कहीं खुदाई होती है और

उन्नति के प्रमाण मिलते हैं उन पर कौन सन्देह कर सकता है। काग़ज़ इतिहास का एक बहुत कमज़ोर और क्षणिक साधन है। सब से बड़ी रक्षा करने वाली पृथ्वी है। यह पुराने लोगों और पुरानी जातियों के मार्ग को आने वाली जातियों के लिये सुरक्षित रखती है। इसलिये भविष्य के प्रोग्राम की रक्षा करने वाली भी पृथ्वी ही है।

मंत्र के अगले भाग में प्रार्थना की गई है कि यह पृथ्वी हमारे लिये विस्तृत स्थान को देने वाली हो।

पृथ्वी स्वयं बड़ी विस्तृत है। पृथ्वी शब्द का अर्थ यह है कि जो विस्तृत अर्थात् फैली हुई हो। परन्तु आल अज्ञ तथा क्रिया हीन पुरुषों के लि पृथ्वी बड़ी तंग है। उद्यमशील जाति के लिये सभी स्थानों पर जगह है। पर गिरी हुई और आलसी तथा दास की ज़ंजीरों में जकड़ी हुई जातियों पैर रखने के लिये भी जगह नहीं है जहां जाती है वहीं बड़े बड़े शब्दों 'नो एडमिशन' (No admission) अर्था इधर आने की आज्ञा नहीं, लिख मिलता है। पृथ्वी में विस्तृत स्थान पा सकते हैं जिन्होंने दीक्षा, तप, ब्र तथा यज्ञ को धारण किया है। जो अ 'भूत' का स्मरण करते और भविष्य दृष्टि रखते हैं।

तस्मा इन्द्राय गायत।

(ऋ० १।४।१०, १५४)

उस प्रभु के गीत गाओ।

शंकर, रामानुज और दयानन्द

[श्रीयुत पं. गंगाप्रसाद उपाध्याय एम. ए.]

[२]



रामानुज ने शंकर का विरोध किया। उनको शंकर के माया-वाद रूपी अद्वैत-वाद से कोई शांति न मिल सकी। शंकर ने माया के सहारे ही अपने अद्वैतवाद का भवन खड़ा किया था। उनका कहना था कि माया से आच्छादित होने के कारण ही एक वस्तु की कई वस्तुयें प्रतीत होती हैं जैसे मिट्टी से घिरे हुये होने के कारण एक आकाश के घटाकाश मठाकाश रूपी कई टुकड़े हो जाते हैं। परन्तु श्रीरामानुजचार्य जी कहते हैं कि "माया" अद्वैतवाद की पोषक नहीं किन्तु बाधक है। जब ब्रह्म के अतिरिक्त माया भी है तो "एकं ब्रह्म द्वितीयं नास्ति" कहाँ? यहां तो ब्रह्म के अतिरिक्त एक और हो गया अर्थात् माया। यदि कहो कि माया सत् पदार्थ नहीं तो भी ठीक नहीं। क्योंकि यदि माया अन्य समस्त जगत् के समान असत् है तो माया का क्या कारण है? असत् जगत् की प्रतीति का कारण तो असत् माया हुई फिर असत् माया की प्रतीति का क्या कारण? यदि कहा जाय कि माया न सत् है न असत्। न तो ब्रह्म के समान सत् है और शशश्रृङ्ग, अर्थात् खरगोश के सीगों के समान असत् भी नहीं तो फिर यह है क्या? और यदि कुछ भी नहीं तो संसार की प्रतीत का कारण कैसे हुई। रामानुज ने माया पर बड़े प्रबल और युक्ति युक्त आक्षेप किये हैं। कुछ यहाँ गिनाये जाते हैं:—

(१) आश्रयानुपपत्ति दोष

अर्थात् माया किस के आश्रय रह कर जगत् प्रतीति रूपी भ्रम को उत्पन्न कर रही है? जीव तो उसका आश्रय हो ही नहीं सकता। क्योंकि जीव-भाव भी अविद्या द्वारा ही कल्पित होता है। ब्रह्म के आश्रय से भी नहीं। क्योंकि ब्रह्म स्वयं प्रकाशवान् और ज्ञानस्वरूप है। ऐसा ब्रह्म माया को कैसे आश्रय दे सकता है? अन्धकार दीपक के आश्रय नहीं रह सकता। जहाँ दीपक रहेगा अन्धकार न रहेगा।

(२) तिरोधानानुपपत्ति

क्या माया ब्रह्म के प्रकाश को छिपा सकती है ? और छिपा सकती है तो कैसे ? प्रथम तो एक असत् वस्तु सत् के प्रकाश को कैसे छिपा सकती है ? दीपक के समाने दीवार आ जाय तो दीपक का प्रकाश रुक ज़ायगा। परन्तु यदि दीवार प्रतीति मात्र हो वास्तविक न हो तो प्रकाश कैसे रुकेगा ? फिर तिरो- धान का अर्थ जो शंकरमत में लिया जा सकता है वह प्रकाश का नाश ही है। यह प्रकाश का नाश कैसे होगा ? जब शङ्कर ब्रह्म को ज्ञानी नहीं किन्तु ज्ञान ही मानते हैं तो ज्ञान मात्र का तिरोधान कैसे ? और तिरोधान न हो तो जगत् की प्रतीति कैसे हो ?

(३) स्वरूपानुपपत्ति

अर्थात् माया न तो सत् ठहरती है न असत्। सत् तो कह ही नहीं सकते। असत् भी नहीं कह सकते क्योंकि शांकरमत में ब्रह्म ज्ञान मात्र है। ज्ञान कई प्रकार का होता नहीं। यदि यह दोष रूपी ज्ञान असत् है तो जिस ज्ञान के आश्रित तुम इस दोष को मानते हो वह ज्ञान भी असत् ही होगा। फिर उस ज्ञान को "सत्यं ज्ञानं" ऐसा कैसे कह सकोगे ?

(४) अनिर्वचनीयत्वानुप[पत्ति]

अर्थात् यह जो कहा कि मा[या न] सत् है न असत् किन्तु अनिर्वच[नीय है] यह भी ठीक नहीं। जितना ज्ञान है या तो सत् का है या असत् का। ऐसी चीज़ों का ज्ञान भी मानोगे [जो न] सत् हो न असत् तो ज्ञान की व्यवस्था ही न रहेगी।

(५) प्रमाणानुपपत्ति

अर्थात् ऐसी विलक्षण माया [के] लिये कोई प्रमाण नहीं।

(६) निवर्त्तकानुपपत्ति

अर्थात् यह जो कहा जाता है निर्विशेष ब्रह्म के ज्ञान से अविद्या [की] निवृत्ति होगी यह भी ठीक नहीं, [क्यों] "वेदाहमेतं" आदि श्रुतियों में ब्र[ह्म के] विशेषण दिये हैं।

(७) निवृत्यनुपपत्ति

अर्थात् बन्ध वास्तविक है। इस[की] निवृत्ति केवल अपने को ब्रह्म सम[झने] से न हो सकेगी। पुण्य पाप रूपी [कर्मों] के निमित्त से ही तो देव आदि [के] शरीर मिलता है फिर बन्ध मि[थ्या] कैसे ?

रामानुज का कहना है कि जिस [ब्रह्म] में कोई गुण नहीं वह क्या ब्रह्म है

इसका मोटो शब्दों में यही अर्थ होगा "ब्रह्म कैसा ? कैसा भी नहीं" "ब्रह्म में क्या विशेषता है ? कुछ भी नहीं"। फिर भला यह शून्य नहीं तो क्या है ?

रामानुज का मत है विशिष्टाद्वैत। शंकर का मत हैं अद्वैत। रामानुज भी अपने को अद्वैतवादी कहते हैं परन्तु उसमें विशिष्ट शब्द और मिलाते हैं। अर्थात् अद्वैतवाद तो है परन्तु विशेषता के साथ। वह विशेषता क्या है ?

जिस प्रकार शांकर मत में ब्रह्म सत् और जगत् असत् है उसी प्रकार रामानुज के मत में भी ब्रह्म सत् और जगत् असत् है परन्तु दोनों मतों की यह समानता यथार्थ नहीं क्योंकि असत् का जो अर्थ शंकर लेते हैं वह रामानुज नहीं लेते। शंकर का तात्पर्य 'असत्' से यह ह कि जो वस्तु हो न परन्तु प्रतीत होती हो। जैसे स्वप्न का हाथी या रेगिस्तान का ज़ल। परन्तु रामानुज के अनुकूल असत् का अर्थ है परिणामी अर्थात तबदील होने वाला। शंकर जगत् को असत् इसलिये कहते हैं कि वह है नहीं किन्तु प्रतीत होता है। रामानुज जगत् को असत् इसलिये कहते हैं कि वह सदा बदलता रहता है। इस प्रकार यह दोनों मत केवल इसलिये एक नहीं हो सकते कि दोनों जगत् को असत् समझते हैं। क्योंकि उनके अर्थों में भेद है। समानता या असमानता अर्थों से ली जानी चाहिये शब्दों से नहीं, देवदत्त कहता है कि "नवकम्वलोऽहम्" क्योंकि देवदत्त के पास नौ कम्वल हैं। यज्ञदत्त कहता है कि "नवकम्बलोऽहम्" क्योंकि देवदत्त के पास कम्बल तो एक ही है परन्तु नया है तो हम यज्ञदत्त और देवदत्त को समान नहीं कह सकते। इसलिये रामानुज और शंकर केवल इसलिये समान नहीं हो सकते कि वह जगत् को असत् मानते हैं क्योंकि असत् के अर्थों में बड़ा भेद है।

शंकर ब्रह्म को निर्गुण कहते हैं और गुण आदि का कारण माया को बताते हैं। रामानुज ब्रह्म को सगुण कहते हैं। वह चेतन जीव तथा जड़ ज़गत् को एक अद्वितीय ब्रह्म का 'प्रकार' मात्र बताते हैं। वह शंकर के समान ब्रह्म को केवल ज्ञान नहीं किन्तु ज्ञानी या ज्ञाता मानते हैं। वह कहते हैं कि एक ब्रह्म में कई गुण हो सकते हैं। यह गुण विना आश्रय के स्वयं तो रह नहीं सकते। ब्रह्म ही उनका आधार है, यह संसार एक ब्रह्म द्वारा "नियम्य" अर्थात् नियमित है। रामानुज यह नहीं कहते कि जीव स्वतंत्र ब्रह्म से अलग कोई सत्ता है। वह इनको ब्रह्म का प्रकार मात्र मानते हैं। रामानुज के मत में 'ब्रह्म' के दो अर्थ हैं। एक तो वह सत्ता जो अद्वितीय

है और जड़ तथा चेतन जिसके प्रकट होने के प्रकार मात्र हैं दूसरे समस्त जगत्। जब कहते हैं कि ब्रह्म से इतर और कुछ नहीं तो वहां ब्रह्म से दूसरा अर्थ लिया जाता है।

शंकर स्वामी जगत् को विवर्त्त मानते हैं। अर्थात् जगत् है नहीं किन्तु प्रतीत होता है। रामानुजाचार्य जगत् को परिणामी मानते हैं अर्थात् एक वस्तु बदल कर दूसरी वस्तु हो जाती है। दूध का दही बन जाना परिणाम है। रुई के टुकड़े का भ्रम से दही प्रतीत होना विवर्त है। शंकर भी सर्वथा परिणाम का निषेध नहीं करते। वह कहते हैं कि जब पहले विवर्त अर्थात् भ्रम से जगत् मान लिया गया तो उसके पश्चात् परिणाम का चक्र चल जाता है। इसको दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिये कि पारमार्थिक अर्थ में जगत् उत्पन्न नहीं होता केवल उसकी प्रतीति होती है परन्तु व्यावहारिक अर्थ में उसमें कार्य्य कारण आदि की शृङ्खला चल पड़ती है।

रामानुजाचार्य कहते हैं कि ब्रह्म जीव और जगत् मे व्यापक तो है और उसमें जो कुछ परिणाम होते हैं वह ब्रह्म के नियंत्रण में हैं परन्तु फिर भी ब्रह्म में उनके कारण कोई विकार नहीं आता।

ब्रह्म की दो अवस्थायें हैं एक तो "प्रलय" जब जीव तथा जड़ [illegible] सुषुप्ति की सी अवस्था में रहते हैं। [illegible] समय जड़ और चेतन में भेद नहीं [illegible] सकते। उनका होना न होने के बराबर [illegible] "सदेव सोम्य इदमग्रासीत्। एकमे[illegible] द्वितीयम्"। सत् ही था। वह [illegible] अद्वितीय था। सृष्टि की इच्छा मात्र [illegible] परन्तु वह इच्छा कार्य्य रूप में परि[illegible] नहीं हुई थी। दूसरी अवस्था है [illegible] की। शांकर मत में जगत् भ्रम मात्र [illegible] विशिष्टाद्वैत मत में ब्रह्म 'अपनी इ[illegible] से उस नानात्व को प्रकट करता है [illegible] अव्यक्त रूप में था। "स ऐक्षत बहुस्[illegible] प्रजायेयेति"। उपनिषद् कहती है "[illegible] इच्छा की कि मैं बहुत हो जाऊं।"

उपनिषदों में जो "अन्तः प्रवेश" [illegible] वर्णन है उसके विषय में दोनों आचा[illegible] की भिन्न २ सम्मतियाँ हैं। शंकर [illegible] मत में 'अन्तः प्रवेश' शब्द के [illegible] आलङ्कारिक अर्थ में है। उनका [illegible] है कि परिणाम वाद की यह शब्दा[illegible] केवल समझाने के लिये हैं। बिना व्य[illegible] हारिक दशा से सम्बन्ध रखनेवाले श[illegible] का प्रयोग किये हुये कुछ कहा ही [illegible] जा सकता इसलिये 'अन्तः प्रवेश' [illegible] दिया। परन्तु रामानुज के मत में 'अ[illegible] प्रवेश' तो सृष्टि से पहले भी था। पुन[illegible] कहने का तात्पर्य्य यह है कि सृष्टि [illegible] व्यक्त थी, अब अव्यक्त हो गई।

कोयल बोली, मोर नाचता रह गया

[श्रीमती मन्दालसा देवी]



क रमणी अपने छज्जे पर बैठी अपने पुत्र को खिला रही थी। वह कभी गाती, कभी मुंह बना कर बच्चे को चिढ़ाती, जब वह रोने लगता तो सड़क पर जाते हुये इक्के की ओर दिखाती। कभी मोटर निकलती तो कहती "राजा बाबू, देखो ऐसी मोटर मगाना उस पर मैं बैठी २ घूमूंगी।" बच्चा हंस देता और अपना सिर हिलाता। कभी कोई गदहा दिखाई देता तो कहती देखो कैसा अच्छा घोड़ा जा रहा है। पूछती—"क्या तुम इस पर चढ़ोगे"? बच्चा अपना सिर हिला देता।

ये बातें प्रतिदिन हुआ करतीं। न मा ही थकती और बच्चे का तो कहना ही क्या है। वह हर रोज़ यही हठ करता कि चल कर छज्जे पर बैठो। विचारी मां गोद में लेकर बैठ जाती। एक दिन की बात थी कि एक साधू-महात्मा की सवारी निकली। रथ पर साधू-महात्मा विराजमान थे और चारों ओर लोग चवर झल रहे थे। साथ में शंख घड़ियाल बज रहे थे।

सवारी निकल गई तो बच्चे ने पूछा "अम्मा यह क्या है"।

"यह साधू-महाराज की सवारी है"

"पर लोग बाजा क्यों बजाते हैं? साधू बाबा बच्चा तो नहीं है जो सुनकर प्रसन्न होंगे"।

"साधू-महात्मा की पूजा इसी तरह होती है। तुमने हाथ जोड़े थे या नहीं"।

"मैं हाथ क्यों जोड़ता"।

"नहीं जोड़ लिया करो। राजा-बेटा सब इसी तरह करते हैं"

× × ×

"मा, कोयल नहीं बोली"

"नहीं बेटा"

"मोर नहीं नाचता"

"न मालूम क्यों नहीं आया"

"सड़क पर मोटर निकलती है या नहीं"

"नहीं, मोटरवाले अब शहर छोड़ कर चले गये हैं"

"तो छज्जे पर तो ले चलो"

"नहीं वहां पर लोग देखेंगे"।

बच्चा बीमार पड़ा था और माता उसको छज्जे पर नहीं आने देती थी।

ज्वर की अवस्था में हवा लगने से और हालत खराब होती। जब अवस्था बड़ी शोचनीय हो गई तो माता दौड़ी हुई साधू-महात्मा के पास पहुंची।

"महाराज! मेरे पुत्र को न जाने क्या हो गया"

"किसी प्रकार की चिन्ता न कर"

"पर मेरी चिन्ता तो दूर होती ही नहीं"

"गुरु, साधू में विश्वास रक्खो तो कल्याण ही होगा। तुम जानती नहीं कि विश्वास बड़ी भारी चीज़ है। विश्वास रखने से सारे कार्य्य सिद्ध हो जाते हैं।"

माता को साधू में अपूर्व श्रद्धा थी, उसको पूर्ण-विश्वास था कि गुरु महाराज की कृपा से किसी प्रकार का अनिष्ट न होगा। उसपर गुरु महाराज ने उसको सान्त्वना देदी थी।

माता तथा अन्य घरवाले भी उसी की तरह अन्धविश्वासी थे। उसी अन्धविश्वास के सहारे रह कर किसी भी प्रकार की दवा बच्चे को नहीं दी गई।

इस प्रकार दो तीन दिन बीत गये पर ज्वर में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। दिन-रात ज्वर चढ़ा रहता, बच्चा कष्ट के दिन बिता रहा था। जब दो तीन दिन तक किसी प्रकार का लाभ न हुआ तो माता फिर गुरु महाराज पास पहुंची।

साधू-महात्मा ईश्वर भजन में थे। उनके भक्तों ने रमणी से दिया कि इस समय उनके दर्शन हो सकते। विचारी दो तीन घंटे तक पर बैठी रही अन्त में किसी प्रकार साधू आये।

"कहो बेटी! सब कुशल तो है"

"महाराज बड़े संकट में पड़ आपकी सेवा में आई हूं"

"मेरे भक्तों को संकट!"

"क्या कहूं मेरे पुत्र की बड़ी शोचनीय हो रही है। यदि दशा रही तो थोड़े दिनों से जीवित नहीं रह सकता। कोई उपाय कीजिये जिससे स्वस्थ हो मैं आपके आसरे बैठी हुई किसी प्रकार की औषध नहीं दी है"

"औपध की क्या आवश्य मैंने मंत्र फूंक दिया है। तुम्हारे चने के पहले ही चंगा हो जा बताओ कुछ भेट भी लाई हो।"

रमणी ने पाँच रुपये निकाल महात्मा के सामने रख दिये और की ओर चली। वह फूली समाती थी, न जाने उसे क्या गया हो। उसको विश्वास था कि

पुत्र अब अच्छा हो गया होगा और घर पहुंच कर उसे गोद में उठा लेगी।

घर पहुँची तो वहां पर वही हाल देखा। बच्चा उसी तरह चिल्ला रहा था। लोगों ने कहा "तुम इतनी देर तक कहां रही। बच्चे को ऐसी दशा में छोड़ना उचित नहीं है। इस समय ज्वर इतना अधिक है कि माता का सदा पास रहना अत्यंत आवश्यक है।"

वह बोली "क्या करती। बच्चे के पीछे ही घूम रही हूं। मेरी बुद्धि कुछ काम नहीं करती। आज प्रातःकाल ही उठकर गुरु महाराज के पास गई। वे अपनी समाधि में थे ऐसे समय उनके किस प्रकार दर्शन होते। जब समाधि खुली तो उन्होंने सब से पहले मुझसे ही बात की। उन्होंने कह दिया है कि मैं मंत्र फूँक देता हूं किसी प्रकार की चिन्ता न करो।"

इन बातों को सुनकर लोग शान्त हो गये और सबको विश्वास हो गया कि मंत्र अवश्य ही अपना फल दिखावेगा सायंकाल बीत गया पर बच्चे की अवस्था में किसी प्रकार का परिवर्त्तन न हुआ। रात भर बैठे २ कटी, प्रातः काल एक आदमी भेजा गया।

गुरु महाराज ने थोड़ा सा जल भेज दिया। लोगों ने प्रार्थना की कि महाराज कृपा करके एक बार उसे देख लीजिये तो अच्छा हो। आपके दर्शन मात्र से ही कुछ लाभ हो जायगा पर साधु महात्मा टस से मस नहीं हुये। कह दिया "इस जल में ब्रह्मा की शक्ति विद्यमान है। इस को अमृत ही जानो। न जाने कितने इसको पीकर मौत से बच गये हैं और न जाने कितने मुर्दे उठ बैठे हैं।"

लोग बड़े श्रद्धा भाव से उस जल को ले आये और थोड़ा २ करके बच्चे को देने लगे।

× × ×

शान्ति देवी मिलने आई। बच्चे की यह दशा देखी, एकदम दिल धड़कने लगा। बोली "बहिन यह क्या हो गया। उस सोमवार को मैं आई थी तो मैंने इसे भला चंगा देखा था। एक सप्ताह में यह दशा हो गई।"

"क्या कहूं कुछ कहते नहीं बनता"

"क्या हो गया"

"इसी तरह चार दिन से ज्वर चढ़ा हुआ है, मैंने बहुत उपाय कर डाले पर कुछ भी लाभ प्रतीत नहीं होता। न जाने मेरे भाग्य में क्या लिखा है। चार दिन से यही देख रही हूँ। न जाने ईश्वर और क्या दिखावेगा। अब तो हार कर ईश्वर के ऊपर छोड़ देती हूँ।"

"बताओ तो क्या उपाय किये"

"गुरु महाराज के पास दूसरे ही दिन गई। उसके बाद कई बार और आदमी भेजे। बिचारे से जो कुछ हो सकता था सब किया। मैं उनकी बड़ी कृतज्ञ हूँ। पर जब भाग्य ही फूट जाते हैं तो सोना भी मट्टी हो जाता है।

"गुरु महाराज वैद्य हैं ?"

"नहीं"

"हकीम हैं"

"नहीं"

"तो फिर दवा क्या दी"

"मैंने जब उनसे प्रार्थना की तो उन्होंने कहा कि बेटी घबड़ाओ मत। मुझ में विश्वास रक्खो तो सब काम बन जावेगा। जब उससे कुछ न हुआ तो दूसरे दिन उन्होंने मंत्र फूंक दिया। मुझे बड़ा आश्चर्य है कि उसने भी कुछ न किया। मैंने फिर कहलाया तो उन्होंने अमृत भिजवा दिया। उनका कहना था कि इसको पीकर मुर्दे भी जी जाते हैं।"

"हां ठीक ही कहा। अमृत को पीकर मुर्दे जी जाते हैं और ज़िंदे मुर्दे हो जाते हैं। देखो, अब समय नहीं रहा कि हम पुराने अंधविश्वासों [पर] भरोसा करें। दवा करती तो कुछ [लाभ] भी होता। अमृत तुम्हारा कुछ भी [भला] न करेगा। इन साधू महात्माओं से [सदा] होशियार रहना चाहिये। अब भी [दवा] कराओ तो अच्छा है। इन धूर्तों [के जाल] से बचो।"

"तुम तो अधर्मी हो गई हो पर [मैं] तो अपने धर्म को नहीं छोड़ सकती। राम २ गुरु महाराज को ऐसा कहने [से] पाप लगता है। भला भाग्य में जो लिखा है वह तो होकर ही रहेगा।"

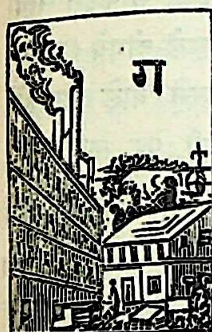
× × ×

सड़क के उसी छज्जे पर रमणी [बैठी] थी। सारा चेहरा मुर्झाया हुआ [था।] कभी २ नेत्रों से दो चार बूंदें [टपक] पड़ती थी। वह देख रही थी [सड़क] को—जिसको कुछ दिन पहिले [हिरनी] सी आंखे देखती थीं। मोटर आती [और] चाप निकल जाती। इक्के इधर से [उधर] निकल जाते पर उनको देखने वाला [कोई] न था। कोयल बोली और मोर [नाचता] रह गया।

———

बाइबिल में चमत्कार

[श्री विश्वप्रकाश, बी० ए०, एल० एल० बी०]



त दो अंकों में बाइबिल (New Testament) से कुछ उद्धरण इसलिये दिये गये थे जिससे पाठकों को यह ज्ञान हो सके कि ईसाइयों की धर्मपुस्तक में कितनी ऐसी बातें हैं जिनको एक समझदार पुरुष नहीं मान सकता। इस लेख में हम यह दर्शावेंगे कि जो बातें वे अपने धर्म की महत्ता सिद्ध करने के लिये दिखाते हैं वास्तव में ऐसी हैं जो उनकी जड़ को काटने वाली हैं।

प्रसिद्ध दार्शनिक केंट (Kant) का कहना है "Our age is, in every sense of the word, the age of criticism and every thing must submit to it. Religion, on the strength of its sanctity, and law, on the strength of its majesty, try to withdraw from it; but by so doing they arouse just suspicions, and cannot claim that sincere respect which reason pays to those only who have been able to stand its face and open examination." वर्त्तमान युग सब प्रकार से समालोचना का युग है और प्रत्येक को इसके लिये तैयार रहना चाहिये। धर्म अपनी पवित्रता तथा राजकीय नियम अपनी शान के कारण इससे दूर रहना चाहते हैं। परन्तु इस प्रयत्न में वे शंकायें बढ़ा देते हैं और उनका उतना आदर नहीं होता जितना कि उनका हो सकता है, जिनको आलोचना से किसी प्रकार का भय नहीं है।

लोगों का कहना है कि धर्म की आलोचना नहीं होनी चाहिये और हमारा कर्त्तव्य है कि जो कुछ उन पुस्तकों में लिखा है उसको आंखें बन्द करके मान लें। परन्तु इस नीति का अवलम्बन नहीं हो सकता और यदि हो भी जाय तो किसी प्रकार की बुद्धिमत्ता नहीं है। इस समय संसार में हम देखते हैं कि प्रतिदिन सहस्रों मनुष्यों के विचारों में परिवर्त्तन होता है और उस परिवर्त्तन के साथ २ मनुष्य अपने धर्म को छोड़कर दूसरे मत को ग्रहण करते हैं। यदि मनुष्य अपने धर्म ग्रन्थों पर आंख मूँद करके विश्वास करलें तो संसार में कभी भी नवीन मत ग्रहण करने वाले न हों।

परमात्मा ने हमको इसीलिये बुद्धि दी है कि हम इस बात की जांच कर सकें कि कौन सी बात मानने योग्य है और कौन सी नहीं।

ईसाइयों की धर्मपुस्तक बाइबिल में जिनके उदाहरण हम दे चुके हैं उसमें महात्मा ईसा द्वारा किये गये बहुत से चमत्कारों का वर्णन है। प्रश्न यह है कि हमको उन चमत्कारों पर विश्वास करना चाहिये या नहीं। साधारण पुरुष के सामने यदि इन चमत्कारों का हम वर्णन करें तो वे उनपर लट्टू हो जाते हैं कि अमुक पुरुष में इतना बल है, इतनी महान् शक्ति है। परन्तु यदि किसी समझदार पुरुष के सामने ये बातें रक्खी जांय तो उनके मानने के पूर्व वह उनपर मनन करेगा—ये बातें संभव हैं या नहीं। और यदि वे संभव नहीं हैं तो बुद्धिमान् लोग उस पर विश्वास न करेंगे।

बाइबिल के उद्धरणों में से कुछ ऐसे हैं जिनमें रोग निवारण किया है—कोढ़ी को अच्छा करना, ज्वर का दूर होना। ज्वर और कोढ़ के रोगियों को ईसा ने स्वस्थ किया। प्रश्न यह होता है कि उसने किसी औषध का प्रयोग किया अथवा नहीं। बाइबिल इस बात पर प्रकाश नहीं डालती। उसमें केवल इतना संकेत मात्र है कि ईसा के कहने मात्र से ज्वर और कोढ़ ऐसा भयंकर रोग बात की बात में अच्छा हो ग[...] औषध अपना प्रभाव कुछ समय के [...] दिखलाती है, परन्तु यह बड़े आ[...] की बात है कि ये रोग ईसा के कहने [...] से "अच्छा हो जा" अच्छे होगये। [...] टोना पर विश्वास करने वाले लोग [...] इस चिकित्सा प्रणाली पर लट्टू [...] सकेंगे। हमारे विचार में रोग दो [...] प्रकार से अच्छा हो सकता है—कि[...] औषध द्वारा या सृष्टि नियम के अनु[...] अपने आप।

अन्य उद्धरण इस बात के दिये [...] हैं जिनमें लोग भूत प्रेत या दुरात्मा[...] के वश में थे। भूत प्रेत ऐसी चीज़[...] भय खाना और उनका शरीर के [...] किसी प्रकार का प्रभाव होना ईसा[...] समकालीन लोग ही मान सकते [...] इस बीसवीं शताब्दि में जब कि वि[...] का इतना प्रचार हो गया है [...] सहमत होना कठिन है। भूत प्रेत [...] विश्वास करने वाले लोगों से पू[...] चाहिये कि भूत प्रेत कौन सी सत्ता है[...] वे मरने पर जीव का एक परिवर्तित [...] हैं या ईश्वर ने जैसे अन्य वस्तुयें [...] की हैं इसी प्रकार लोगों को दुःख [...] के लिये यह एक नवीन सत्ता उत्पन्न [...] दी है।

एक स्त्री लुंज थी और उठने [...] असमर्थ थी, ईसा ने उस पर हाथ [...]

दिया और १८ वर्ष से लुंज होने पर भी वह उठ खड़ी हुई। एक अंधा पुरुष था, उसको चंगा करने की रीति बड़ी विचित्र है। ईसाने पृथ्वी पर थूककर मट्टी का लेप तैयार कर दिया और उसके लगाने से नेत्रों में ज्योति आ गई। लोगों से पूछना चाहिये कि उसके थूक में कौन सी चीज़ थी या कौन सी औषध का रस टपकता था जिससे अंधे भी अच्छे हो जाते थे। कुछ लोग उसके पास ऐसे आये जिनके शरीर में भूत ने वास कर लिया था। और इस कारण वे गूंगे तथा अंधे हो गये थे। ईसा के कहने मात्र से अंधों को ज्योति मिल गई और गूँगे बोलने लगे। यदि कहीं महात्मा ईसा इस समय आ जावें तो बहुत ईसाई जो अंधे या गूंगे हैं स्वस्थ हो जावें। पता नहीं ईसा अब अपने भक्तों की क्यों नहीं याद करता।

परन्तु इन चमत्कारों से भी अधिक आश्चर्य-जनक और चमत्कार हैं। रेगिस्तान में स्त्रियों तथा बच्चों के अतिरिक्त ५००० मनुष्य थे। ईसा को उन पर दया आ गई पर उस समय ५ रोटी और २ मछलियां थीं। एक साधारण पुरुष तो यह सोचता कि किस प्रकार इन लोगों को भोजन दें पर ईसा ने इतनी ही सामग्री से इतने लोगों का पेट भर दिया। और सब लोगों के तृप्त हो जाने के उपरान्त भी १२ टोकरी रोटी आदि के बच रहे। जो इन बातों पर विश्वास करते हैं उनसे यह पूछना चाहिये कि सृष्टि के नियम से कहीं इस प्रकार विपरीत कार्य्य हो सकता है।

इनके अतिरिक्त ईसा ने मुर्दे जिलाये। जब उसको फांसी देदी गई तो तीसरे दिन क़ब्र से निकल उठा। यह सब ऐसी बातें हैं जिन पर कभी भी विश्वास नहीं किया जा सकता। मुर्दा किस प्रकार जीवित हो सकता है। जब जीव शरीर से निकल जाता है तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है। एक बार शरीर से निकलने पर पुनः किस प्रकार उसमें आ सकता है।

परन्तु ईसाई लोग एक दलील देंगे कि हमारी शक्तियाँ बड़ी परिमित है इसलिये हम उन चमत्कारों को नहीं कर सकते जो महात्मा ईसा ने किये थे। ईसा ख़ुदा का बेटा था और इस नाते वह जो चाहे करके दिखला सकता था। उन लोगों से हमको यह निवेदन करना है। हम सृष्टि में देखते हैं कि नियम काम कर रहे हैं। अग्नि का गुण है कि जिसके साथ उसका संसर्ग हो उसे जला दे। अग्नि यह गुण बदल नहीं सकती। इसी प्रकार पृथ्वी नक्षत्र, अन्य भूमण्डल एक नियम के अनुसार चल रहे हैं। इन नियमों का बनाने

वाला कौन है ?—वही परमशक्तिवाला। उसके नियम क्षणिक नहीं है कि आज कुछ दूसरे हैं और कल कुछ दूसरे हो जावें। यह नियम जो सृष्टि की आदि में बन गया है वही बराबर चलता रहेगा। जब ईश्वर अपने सृष्टि नियमों में थोड़ी सी भी ढील नहीं डालता तो इससे साफ़ पता चलता है कि वह कभी भी यह नहीं चाहेगा कि कोई भी उसके नियमों को तोड़ सके। हम तो महात्मा ईसा का ईश्वर का पुत्र होना उसी तरह मानते हैं जैसे कि हम लोग ईश्वर के पुत्र हैं। अन्तर केवल इतना ही कि ईसा की शक्ति हम लोगों से अधिक बढ़ी हुई थी। हम देखते हैं कि एक मनुष्य अधिक विद्वान् है और एक मनुष्य कुछ कम। एक मनुष्य की आत्मिक शक्ति ने अधिक विकास पाया है और दूसरे की शक्ति ने कुछ कम, एक मनुष्य में शारीरिक शक्ति अधिक है और एक में न्यून। पर इन बातों के होते हुये भी हमारी उन्नति की एक सीमा होती है। हम चाहें कितनी भी अपनी उन्नति कर लें पर हम कभी भी इस योग्य नहीं हो सकते कि ईश्वरीय नियमों में कुछ भी परिवर्त्तन कर सके।

प्रश्न यह होता है कि ये बातें महात्मा ईसा के विषय में किस प्रकार प्रचलित हो गईं। बात यह है कि महात्मा ईसा के अन्तर्धान होने पर उनके शिष्य उसकी कथा लिखने लगे परन्तु उनके शिष्य—

"Worshiped him as a di[vine] being, throned in heaven, p[os]sessing all power and autho[rity] judging the living and the d[ead] and so on. This conviction [of] theirs—of this there can b[e no] reasonable doubt — suffu[sed] transfigured, altered what t[hey] had formerly experienced [in] their association with the [man] Jesus" (*Vide* "*The Finality [of] the Christian Religion*" [by] *George Burman Foster, Prof[essor] of Philosophy and Religion, [in the] University of Chicago.*)

—सर्वशक्तिमान तथा प्रभुत्व[-सम्पन्न] ईश्वर की तरह उसकी आराधना [करते] थे जो स्वर्ग में सिंहासनारूढ़ [है] जीवित तथा मृत आत्माओं के कार्यों [को] देखता है। इस विश्वास ने जिसमें [लेश] मात्र भी संशय नहीं है—ईसा की [संगति] से होने वाले बहुत से अनुभवों [को] विकृत तथा परिवर्त्तित कर दिया।"

वास्तव में बात भी ठीक है। जब [हम] किसी पुरुष की ईश्वर के समान [पूजा] करते हैं तो बहुत सी महत्तायें [केवल] विश्वास मात्र से ही उसमें [दिख] पड़ती हैं। हम उस पुरुष के [विषय] में बहुत सी ऐसी कल्पनायें कर लेते

जो वास्तव में नहीं रहतीं। यही कारण है सेंट मार्क, सेंट मैथ्यू, सेंट लूक, सेंट जोन ने बहुत सी चमत्कारिक बातें ईसा के विषय में लिख दीं है।

चिकागो (अमरीका) यूनीवर्सिटी के फिलासफ़ी तथा धर्म विषय के प्रोफ़ेसर एक अन्य स्थान पर लिखते हैं—

"The four gospels, which are our main sources for the evangelical history are neither biographies nor strictly memorabilia, but books for purposes of evangelization and edification. They use their material much as a popular preacher retells the Parable of the Prodigal son, imaginatively reconstructing it, supplying all sorts of embellishments, and adapting it to the practical ends in view, unmindful to a degree of fidelity to the literal story."

चारों इंजीलें (जिनके उद्धरण हमने गतांकों में दिये हैं) न जीवनियां और न स्मरणीय टिप्पणियां है परन्तु ऐसी पुस्तकें हैं जो ईसाई मत के प्रचार के लिये बढ़ा कर लिखी गई है। जिस प्रकार एक उत्साही प्रचारक आश्चर्यदायी पुत्र की गाथा का वर्णन करता है, और अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए कल्पना का सहारा लेता तथा बहुत सी बातों से उसको आकर्षक बनाता है, इसी प्रकार उन्होने (सेंट मैथ्यू, लूक, जोन तथा मार्क ने भी किया। ऐसा करने में उन्होंने यह ध्यान नहीं रक्खा है कि कथायें कहीं वास्तविक रूप से भिन्न तों नहीं हो जाती हैं।

ईसा में महान् आत्मा थी परन्तु उनके अनुयायियों ने उसकी अन्य महत्ताओं को एक ओर रख दिया, और ऐसी बातें गढ़ली जिससे उसकी महत्ता कम हो जाती है। साधारण जनता उन बातों में भले ही विश्वास करले पर एक विद्वान् पुरुष उनसे सहमत नहीं हो सकता।

हमको तो बाइबिल की यह दो पंक्तियाँ बहुत जचीं। महात्मा ईसा ने अपने अनुयायियों से जो बात कही थी वही हम पाठकों के सामने रखते हैं:—

"Beware of false prophets, which come to you in sheep's clothing, but inwardly they are ravening wolves."

(St. Matthew VII, 15.)

झूठे पैगम्बरों से सावधान रहो, जो अन्दर से खूंखार भेड़िये हैं पर बाहर से भेड़ का रूप रख कर आते हैं।

शतपथ ब्राह्मण [सभाष्य]

[श्रीयुत पं. गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम. ए.]

काण्ड १—अध्याय १—ब्राह्मण १

दर्श पूर्णमासेष्टि

[इस ब्राह्मण में दो पाक्षिक यज्ञों का वर्णन है जो अमावस्या और पूर्णिमा को गृहस्थ को अग्न्याधान अर्थात् गार्हपत्य अग्नि की स्थापना के पश्चात् निरन्तर करने चाहिये। इस यज्ञ में दो दिन लगते हैं। पहले दिन गृहपति और गृहपत्नी उपवास रखते तथा यज्ञ की सामग्री एकत्रित करते और यज्ञशाला को स्वच्छ करते हैं। दूसरे दिन मुख्य यज्ञ होता है। पहले दिन फलाहार करना, चौर कराना और यज्ञशाला में भूमि पर सोना चाहिये। यज्ञ दो स्थानों पर होता है एक को आहवनीय और दूसरे को दक्षिणाग्नि कहते हैं। पहले इन स्थानों को तीन वार झाड़ू देना चाहिये और अंगूठे और छोटी उंगली की सहायता से जो कुछ रेत हो उसे निकाल डालना चाहिये। फिर तीन वार पानी डालना चाहिये कि सफ़ाई हो जाय। इसके पश्चात् तीन बार गोबर से लीपना चाहिये।

यज्ञ इस प्रकार आरम्भ होता है। पहले अध्वर्यु अग्न्युद्धरण करता है। अर्थात् वह गार्हपत्य अग्नि से अग्नि लेकर आहवनीय और दक्षिणाग्नि में रखता है। इसके पश्चात् अग्न्यन्वाधान होता है। अर्थात् गार्हपत्य, आहवनीय और दक्षिणाग्नि के ऊपर समिधायें रक्खी जाती हैं। समिधायें रखने की तीन विधियां हैं। (१) पहली विधि— पहली समिधा ऋग्वेद मंडल १० सूक्त १२८ के पहले मंत्र अर्थात्

ममाग्ने वर्चो वि हवेष्वस्तु वयं त्वेन्धानास्तन्वं पुषेम।
मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रस्त्वयाध्यक्षेण पृतना जयेम॥

का जप करके पहले आहवनीय, फिर गार्हपत्य, फिर दक्षिणाग्नि पर रखनी चाहिये और दूसरी समिधा मौन साधकर। (२) दूसरी विधि—भूर्भुवःस्वः जप कर पहली समिधा पहले गार्हपत्य, फिर दक्षिणाग्नि और फिर आहवनीय पर रखनी चाहिये और दूसरी मौन होकर। (३) तीसरी विधि—दोनों समिधायें मौन होकर ही रखनी चाहियें और क्रम यह हो—पहले गार्हपत्य, फिर आहवनीय, फिर दक्षिणाग्नि।

पहले दिन दोपहर के पश्चात् गृहपति और गृहपत्नी व्रतोपानीय अर्थात् चावल या जौ और मूंग की खिचड़ी घी डालकर खावें। और उस दिन ठीक सूर्यास्त के पश्चात् या सूर्योदय से पूर्व नैत्यिक अग्निहोत्र करें। फिर व्रत करें। पहला ब्राह्मण व्रतों से ही आरम्भ होता है।]

[१]

अनुवाद

१—व्रतमुपैष्यन्। अन्तरेणाहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ् तिष्ठन्नपऽउपस्पृशति तद्यदप उपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो तदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतो मेध्या वाऽआपः मेध्यो भूत्वा व्रतमुपायानीति पवित्रं वाऽआपः पवित्रपूतो व्रतमुपायानीति तस्माद्वाऽअप उपस्पृशति।

१—व्रत करने वाला आहवनीय और गार्हपत्य अग्नियों के बीच में खड़ा होकर पूर्व की ओर मुंह करके जल को छूता है। जल को क्यों छूता है ? इसलिये कि मनुष्य अपवित्र होता है क्योंकि वह झूठ बोलता है। इससे भीतर की शुद्धि होती है। जल अवश्य पवित्र होता है। वह सोचता है कि पवित्र होकर व्रत करूँ। जल पवित्र होता है। और इस पवित्र वस्तु के द्वारा पवित्र होकर ही मैं व्रत करूं, ऐसा सोचता है। इसीलिये वह जल को छूता है।

२—सोऽग्निमेवाभीक्ष्यमाणो व्रतमुपैति। अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामित्यग्निर्वै देवानां व्रतपतिस्तस्माऽएवै-तत्प्राह व्रतं चारिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामितिनात्र तिरोहितमिवास्ति।

२—आहवनीय अग्नि की ओर देखकर वह व्रत करता है। और इस मंत्र को जपता है।

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम् (यजुर्वेद १।५)

'अर्थात् हे व्रत के पालने वाले अग्नि देव, मैं व्रत को धारण करूंगा। मुझमें इसके करने की शक्ति हो। मैं इसका पालनकर सकूं'।

निश्चय करके अग्नि देवों का व्रतपति है। इसलिये वह अग्नि का ही सम्बोधन करता है। 'व्रतं चरिष्यामि,' (व्रत करूंगा), 'तच्छकेयं' (इसकी मुझमें शक्ति हो), 'तन्मे राध्यताम्' (वह व्रत मेरे लिये पूर्ण हो) यह सब स्पष्ट हैं (अर्थात् इनमें कोई तिरोहित या छिपा हुआ भेद नहीं है और इसकी व्याख्या की आवश्यकता नहीं)।

३—अथ संस्थिते विसृजते। अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीत्यशकद्ध्ये-

तवो यज्ञस्य संꣳस्थामगन्नराधि ह्यस्मै यो यज्ञस्य संꣳस्थामगन्नेतेन न्वेव भूयिष्ठा—इव व्रतमुपन्त्यनेन त्वेवोपेयात् ।

३—यज्ञ की समाप्ति पर व्रत का विसर्जन करता है । और यह मन्त्र जपता है :—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधि (यजुर्वेद २ । २८)

हे अग्नि व्रत के पालनेवाले देव, मैंने व्रत किया, मैं इसको पाल सका, यह व्रत मेरे लिये पूर्ण हुआ ।

जिसने यह यज्ञ समाप्त किया वह उसको पाल सका । जिसने यज्ञ को समाप्त किया उसके लिये वह यज्ञ पूर्ण हुआ । बहुधा लोग इसी प्रकार व्रत करते हैं, नीचे लिखे प्रकार भी व्रत कर सकते हैं ।

४—द्वयं वाऽइदं न तृतीयमस्ति । सत्यं चैवानृतं च सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्या इदमहमनृतात्सत्यमुपैमीति तन्मनुष्येभ्यो देवानुपैति ।

४—निश्चय करके दो ही मार्ग हैं तीसरा नहीं । एक सच और दूसरा झूठ । देव सच्चे हैं और मनुष्य झूठे ।

इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि (यजु २ । ५)

मैं झूठ से (हटकर) सच की प्राप्ति करूं ' ऐसा कह कर मानो वह मनुष्य से देव बन जाता है ।

५—स वै सत्यमेव वदेत् । एतद्धै देवा व्रतं चरन्ति यत्सत्यं तस्मात्ते यशो यशो ह भवति य एवं विद्वांत्सत्यं वदति ।

५—उसको अब सच ही बोलना चाहिये। निश्चय करके देव उसी व्रत का पालन करते हैं जो सच है । इसीलिये वह यश रूप होते हैं । जो विद्वान् इस प्रकार सच ही बोलता है वह भी यशरूप हो जाता है ।

६—अथ संꣳस्थिते विसृजते । इदमहं य एवास्मि सोऽस्मीत्यमानुषऽइव वाऽएतद्भवति यद्व्रतमुपैति न हि तदवकल्पते यद्ब्रूयादिदमहं सत्यादनृतमुपैमीति तदु खलु पुनर्मानुषो भवति तस्मादिदमहं य एवास्मि सोऽस्मीत्येवं व्रतं विसृजेत ।

६—यज्ञ की समाप्ति पर व्रत का विसर्जन करता है और इस मन्त्र को जपता है ।

इदमहं य एवास्मि सोऽस्मि ।

(यजु० २ । २८)

अर्थात् "मैं वही हूं जो मैं हूं" । जो व्रत करता है वह अमानुष अर्थात् देव हो जाता है । यह तो शोभा नहीं देता कि (व्रत के विसर्जन पर) वह कहे कि 'मैं सच को छोड़कर झूठ को प्राप्त हो जाऊँ ।' (व्रत के विसर्जन पर) वह फिर मनुष्य हो जाता है "इसलिये विसर्जन के मन्त्र को जप कर के ही विसर्जन करना चाहिये है कि मैं वही हूँ जो मैं हूं ।"

७—अथातोऽशानानशनस्यैव । तदुहाषाढः सावयसोऽनशनमेव व्रतं मेने मनो ह वै देवा मनुष्यस्याजानन्ति तऽएनमेतद्व्रतमुपयन्तं विदुः प्रातर्नो यक्ष्यतऽइति तेऽस्य विश्वे देवा गृहानागच्छन्ति तेऽस्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथः ।

७—अब इसके पश्चात् खाने और न खाने का प्रश्न है। आषाढ़ सावयस (मुनि) की यह राय है कि व्रत करने पर भोजन नहीं करना चाहिये। देव मनुष्य के मन को जानते हैं। वह जानते हैं कि जब मनुष्य ने व्रत किया है तो वह हमको प्रातःकाल हवि देगा। इसलिये सब देव उसके घरों में आ जाते हैं। चूंकि वह उसके घरों में बस जाते हैं इसलिये उसको उपवास कहते हैं।

८—तन्वेवानवक्लृप्तम् । यो मनुष्येष्वनश्नन्त्सु पूर्वोऽश्नीयादथ किमु यो देवेष्वनश्नत्सु पूर्वोऽश्नीयात्तस्मादु नैवाऽश्नीयात् ।

८—अब यह शोभा नहीं देता कि जब तक महमान मनुष्य न खालें कोई मनुष्य खावे। यदि मनुष्य महमानों के लिये यह नियम है तो देव महमानों के लिये तो अवश्य ही होना चाहिये अर्थात् महमान देवते न खालें उस समय तक खाना तो और भी शोभा नहीं देता। इसलिये व्रत के समय भोजन नहीं करना चाहिये।

९—तदु होवाच याज्ञवल्क्यः । यदि नाश्नाति पितृदेवत्यो भवति यद्युऽअश्नाति देवानत्यश्नातीति स यदेवाशितमनशितं तद श्नीयादिति यस्य वै हविर्न गृह्णन्ति तदशितमनशितंᳬ स यदश्नाति तेनापितृदेवत्यो भवति यद्यु तदश्नाति यस्य हविर्न गृह्णन्ति तेनो देवानात्यश्नाति ।

९—इस पर याज्ञवल्क्य की यह राय है। यदि नहीं खाता तो पितृ देवत्य* होता है और यदि खाता है तो देवताओं को बिना खिलाये खाता है। इसलिये वह भोजन खाना चाहिये जिसका खाना न खाने के बराबर है। जिसकी हवि नहीं दी जाती उसका खाना न खाने के बराबर है। इसलिये यदि उसको खाया जाय तो पितृ देवत्य * न होगा। इसलिये यदि उस भोजन को करे जिसकी हवि नहीं दी जाती तो उसको देवताओं को बिना खिलाये खा लेने का दोष नहीं लगता।

१०—स वाऽआरण्यमेवाश्नीयात् । या वारण्या ओषधयो यद्वा वृक्ष्यं तदु ह स्माहापि बर्कुर्वार्ष्णो माषान्मे पचत न वाऽएतेषाᳬ हविर्गृह्णन्तीति तदु तथा न कुर्याद्व्रीहियवयोर्वाऽएतदुपजं यच्छमीधान्यं तद्व्रीहियवावेवैतेन भूयाᳬसौ करोति तस्मादारण्यमेवाश्नीयात् ।

१०—इसलिये उसको केवल वनस्पति खाना चाहिये। या तो वन की औषधियां या वृक्षों के फल। इस सम्बन्ध में वर्कु वार्ष्ण (मुनि) ने कहा कि मेरे लिये उर्द पका

---

* शायद 'पितृदेवत्य' उसको कहते हैं जो अष्टका के दिन श्राद्ध करता है। श्राद्ध का नियम है कि श्राद्ध से पहले न खावे।

दो क्योंकि उर्द की हवि नहीं दी जाती।" परन्तु उसको ऐसा नहीं करना चाहिये। क्योंकि दाल जौ और चांवल का साथी है। इससे जौ और चावल में आधिक्य हो जाता ह। इसलिये वनस्पति ही खानी चाहिये।

११—स आहवनीयागारे वैतांरात्रिं शयीत। गार्हपत्यागारे वा देवान्वाऽएप उपावर्त्तते यो व्रतमुपैति स यानेवोपावर्त्तते तेषामेवैतन्मध्ये शेतेऽधः शयीताधस्तादिव हि श्रेयस उपचारः।

११—रात के समय आहवनीय शाला में सोना चाहिये या गार्हपत्यशाला में। जो व्रत लेता है वह देवों के समीपत्व को प्राप्त करता है। जो जिनके समीपत्व को प्राप्त करता है वह उनके बीच में सोता है। उसे नीचे (भूमि पर) सोना चाहिये। क्योंकि बड़ों का सत्कार नीचे से ही किया जाता है।

१२—स वै प्रातरप एव। प्रथमेन कर्मणाभिपद्यतेऽपः प्रणयति यज्ञो वाऽआपो यज्ञमेवै तत्प्रथमेन कर्मणाभिपद्यते ताः प्रणयति यज्ञमेवै तद्वितनोति।

१२—प्रातःकाल को वह (अध्वर्यु) जल को लाता है। उसका पहला काम जल को लाना है। जल ही यज्ञ है। जो पहले जल को लाता है वह यज्ञ [illegible] करता है। उससे यज्ञ ही किया जाता है।

१३—स प्रणयति। कस्त्वा युनक्ति त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा यु[illegible] त्येताभिरनिरुक्ताभिर्व्याहृतिभिरनिरुक्तो [illegible] पतिः प्रजापतिर्यज्ञस्तत् प्रजापतिमेवै[illegible] युनक्ति।

१३—वह इन अनिरुक्त व्याहृ[illegible] (वह व्याहृतियां जिनका निर्वचन [illegible] हो सकता) को जप कर जल लाता है।

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति [illegible] त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति (यजुर्वेद [illegible])

"कौन (या प्रजापति) तुझे जो[illegible] है? वह तुझे जोड़ता है। किसके [illegible] (प्रजापति के लिये) तुझे जोड़ता है उसके लिये तुझे जोड़ता है।"

प्रजापति अनिरुक्त है अर्थात् [illegible] निर्वचन नहीं हो सकता। प्रजापति [illegible] है। इसलिये इस यज्ञ के द्वारा प्र[illegible] से ही सम्बन्धित होता है।

१४—यद्वेवापः प्रणयति। अद्भि[illegible] सर्वमाप्तं तत्प्रथमेनैवै तत्कर्मणा [illegible] प्नोति।

१४—वह जल को इसलिये लाता है। जलों से यह सब संसार व्याप्त है। इसलिये इस कर्म से वह सब संसार [illegible] व्याप्त करता है।

१५—यद्वेवास्यात्र। होता वाध्वर्यु[illegible] वाग्नीध्रो वा स्वयं वा यजमानो नाम[illegible] तदेवास्यैतेन सर्वमाप्तंभवति।

१५—इससे यह भी होता है। जो प्राप्ति अध्वर्यु, ब्रह्मा, अग्नीध्र या स्वयं यजमान भी नहीं कर सकता वह प्राप्ति इस कर्म से हो जाती है।

१६—यद्वेवापः प्रणयति । देवान्ह वै यज्ञेन यजमानांस्तानसुररक्षसानि ररक्षुर्न यक्ष्यध्व इति तद्यदरक्षंस्तस्माद्रक्षाꣳसि ।

१६—वह जल को इसलिये भी लाता है। यज्ञ करते हुये देवों को असुर और राक्षसों ने रोका और कहा, "यज्ञ मत करो।" चूंकि उन्होंने रोका। इसलिये उनकी राक्षस संज्ञा हुई।

१७—ततो देवा एतं वज्रं ददृशुः। यदपो वज्रो वाऽआपो वज्रो हि वाऽआपस्तस्माद्येनैता यन्ति निम्नं कुर्वन्ति यत्रोपतिष्ठन्ते निर्दहन्ति तत एतं वज्रमुदयच्छंस्तस्याभयेऽनाष्ट्रे निवाते यज्ञमतन्वत तथो एवैष एतं वज्रमुद्यच्छति तस्याभयेऽनाष्ट्रे निवाते यज्ञं तनुते तस्मादपः प्रणयति।

१७—इस पर देवों ने जल रूपी वज्र को देखा अर्थात् खोज के निकाला। जल ही वज्र है, जल ही वज्र है। क्योंकि जहां जल जाता है वहाँ खोद कर गड्ढा कर देता है, जहां पहुंचता है उसी को जला देता है (नष्ट कर देता है) इसलिये उन्होंने जल रूपी वज्र को लिया और इसके भयरहित शासन में यज्ञ को किया। इसीलिये वह जल को लाता है।

१८—ता वसिंच्योत्तरेण गार्हपत्यꣳ सादयति। योषा वाऽआपो वृषाग्निर्गृहा वै गार्हपत्यस्तद्गृहेष्वेवैतन्मिथुनं प्रजननं क्रियते वज्रं वाऽएष उद्यच्छति योऽपः प्रणयति यो वाऽअप्रतिष्ठितो वज्रमुद्यच्छति नैनꣳ शक्नोत्युद्यन्तꣳ सꣳ हैनꣳ श्रृणाति।

१८—जल को उंडेल कर गार्हपत्य के उत्तर की ओर रखता है। जल स्त्रीलिङ्ग है। अग्नि पुलिङ्ग है। गार्हपत्य घर है। इस लिये इस घर में यह उत्पत्ति करने वाले जोड़े का सम्बन्ध होता है। जो जल लाता है वह मानो वज्र धारण करता है। परन्तु जो वज्र धारण करता है वह उस समय तक नहीं कर सकता जब तक स्वयं स्थापित न हो। नहीं तो वह उसी का नाश कर देगा।

१६—स यद्गार्हपत्ये सादयति। गृहा वै गार्हपत्यो गृहा वै प्रतिष्ठा तद्गृहेष्वेवैतत्प्रतिष्ठायां प्रतितिष्ठति तथो हैनमेष वज्रो न हिनस्ति तस्माद्गार्हपत्ये सादयति।

१९—गार्हपत्य के पास जल की स्थापना का हेतु यह है:—

गार्हपत्य ही घर है। घर ही स्थापना के योग्य है। इसलिये घर में ही ठहर कर स्थापना होती है। इसलिये यह वज्र नाश नहीं करता इसीलिये जल की स्थापना की जाती है।

२०—ता उत्तरेणाहवनीयं प्रणयति। योषा वाऽआपो वृषाग्निर्मिथुनमेवैतत्प्रजननं

क्रियतऽएवमिव हि मिथुनं क्लृप्तमुत्तरतो हि स्त्री पुमांसं समुपशेते ।

२०—वह अब जल को आहवनीय अग्नि के उत्तर को ले जाता है । जल स्त्रीलिङ्ग है और अग्नि पुलिङ्ग हैं । इसलिये जानने वाले जोड़े का सम्बन्ध होता है । इसी प्रकार जोड़ा मिलता है । क्योंकि स्त्री पुरुष के उत्तर को (बाईं ओर) सोती है ।

२१—ता नान्तरेण सञ्चरेयुः । नेन्मिथुनं चर्यमाणमन्तरेण सञ्चरानिति ता नातिहृत्य सादयेन्नोऽनाप्ताः सादयेत्स यदतिहृत्यसादयेदस्ति वाऽअग्नेश्चापां च भ्रातृव्यमिव स यथेव ह तदग्नेर्भवति यत्रास्याप उपस्पृशन्त्यग्नौ ह्यधि भ्रातृव्यं वर्धयेद्यदतिहृत्य सादयेद्यद्वुऽअनाप्ताः सादयेन्नो ह्याभिस्तं काममभ्यापयेद्यस्मै कामाय प्रणीयन्ते तस्मादु सम्प्रत्येवोत्तरेणाहवनीयं प्रणयति ।

२१—उनके बीच में किसी को न जाना चाहिये । क्योंकि उनके बीच में जाने से स्त्री पुरुष के संयोग में बाधा होगी । उसको चाहिये कि जल को सीमा के बाहर न ले जाये (अर्थात् उत्तर की ओर रक्खे पूर्व की ओर नहीं) और जब तक नियत स्थान पर न पहुँचे जल को नीचे न रक्खे । क्योंकि यदि वह सीमा के बाहर ले जाकर जल को रक्खेगा तो अग्नि और जलों की जो प्रतियोगिता सी है उसको वह अग्नि के पक्ष में बाधित कर देगा । और जब वे (यजमान या यज्ञ-कर्ता) जल को छुयेंगे तो अग्नि की प्रतियोगिता बढ़ जायगी । इसके अतिरिक्त यदि वह नियत स्थान पर पहुंचने से पूर्व जल को रक्खेंगे तो उस प्रयोजन की सिद्धि न हो सकेगी जिसके लिये जल लाया गया है । इसलिये जल को ठीक आहवनीय अग्नि के उत्तर में रखना चाहिये ।

२२—अथ तृणैः परिस्तृणाति । द्वन्द्वं पात्राण्युदाहरति शूर्पं चाग्निहोत्रहवणीं च स्फ्यं च कपालानि च शम्यां च कृष्णाजिनं चोलूखल मुसले दृशदुपले तद्दश दशाक्षरा वै विराड्‌विराडिव यज्ञस्तद्विराजमेवैतद्यज्ञमभिसम्पादयति यद्द्वन्द्वं द्वन्द्वं वै वीर्यं यदा वै द्वौ संरभेते ऽथ तद्वीर्यं भवति द्वन्द्वं वै मिथुनं प्रजननं मिथुनमेवैतत्प्रजननं क्रियते ।

२२—अब वह यज्ञ के तृणों को फैलाता है । दो दो करके बरतनों को लाता है । सूप और हवन के चमसे को एक साथ, स्फ्यं (लकड़ी की कुल्हाड़ी ?) और कपाल (प्याले) को एक साथ, शम्या और काले मृगचर्म को एक साथ, चक्की, नली और मूसल को एक साथ, चक्की के पाटों को एक साथ । इनकी संख्या दस है । क्योंकि विराट् छन्द में दस अक्षर होते हैं । यज्ञ भी विराट् है । ऐसा करने से वह यज्ञ को विराट् बना देता है । वह दो दो को एक साथ क्यों लाता है

क्योंकि दो होना शक्ति सूचक है। दो मिलकर जो काम करते हैं उसमें बल होता है। इसके अतिरिक्त जोड़े से ही सन्तानोत्पत्ति होती है। इसलिये दो से सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी जोड़ा बनाया जाता है।

---

[२]

यज्ञ सम्बन्धी सारांश

(१) यज्ञ करने वाले को पहले जल का स्पर्श करना चाहिये क्योंकि जल से पवित्रता होती है। झूठ बोलने के कारण मनुष्य में जो अपवित्रता आ जाती है उसका जल के स्पर्श से प्रतीकार होता है।

(२) 'अग्ने व्रतपते' मंत्र का जप करके व्रत करना। इसमें झूठ को त्यागने और सच को ग्रहण करने का उपदेश है।

(३) सत्य ही बोलना चाहिये। क्योंकि सत्य बोलने से मनुष्य की देव संज्ञा होती हैं।

(४) यज्ञ की समाप्ति पर समाप्ति सूचक 'व्रतमाचारिषं' आदि मंत्र पढ़ना। परन्तु इन दो मंत्रों के अन्तिम भाग में भेद है। पहले मंत्र में कहा है कि "मैं व्रत करूँगा, झूठ को छोड़कर सच बोलूंगा"। दूसरे मंत्र में समाप्ति सूचक शब्द हैं अर्थात् "मैंने व्रत किया"। यज्ञ के पश्चात् देवत्व से मनुष्यत्व को प्राप्त किया। परन्तु यह कहना तो ठीक न था कि "सत्यादनृतमुपैमि" (सच को छोड़कर झूठ बोलूँ)। इसलिये उस समय यजुर्वेद अध्याय २ के २८वें मन्त्र का अन्तिम भाग बोलना चाहिये अर्थात् "जो मैं हूं सो हूं"।

(५) एक मत है कि यज्ञ के दिनों में खाना नहीं चाहिये। यज्ञ के लिये व्रत करने का अर्थ है देवों को निमन्त्रण देना। वे निमन्त्रण पाते ही आ जाते हैं। इसलिये जब तक उनको हवि न दी जाय न खाना चाहिये। दूसरा मत है कि केवल फलाहार करे क्योंकि फल खाना न खाने के बराबर है।

(६) रात को आहवनीय या गार्हपत्य अग्नि के घर में सोवे।

(७) जल को लावे और आहवनीय के ठीक उत्तर में रक्खे। जल और अग्नि का स्त्री पुरुष का सम्बन्ध है।

(८) फिर कुश को फैलावें, तत्पश्चात् १० पात्रों को दो दो करके लावे।

यह कृतियाँ यजुर्वेद अध्याय १ के ५ और ६ मन्त्र तथा २रे अध्याय के २८ को पढ़कर की जाती हैं।

---

[३]

उपदेश तथा भाषा सम्बन्धी टिप्पणियां

(१) पवित्रं वा आपः (१।१।१)

जल पवित्र होता है।

(२) अग्निर्वै देवानां व्रतपतिः।
(१।१।२)

अग्नि देवों का व्रतपति है।

(३) सत्यमेव देवा अनृतं मनुष्याः।
(१।१।४)

सत्य बोलने वाले देव हैं झूठ बोलने वाले मनुष्य।

(४) यशो ह भवति य एवं विद्वांस्सत्यं वदति। (१।१५)

जो विद्वान् सच बोलता है वह यश वाला होता है।

(५) तेऽस्य गृहेषू पवसन्ति स उपवसथः। (१।१।७)

व्रत को उपवास इसलिये कहते हैं कि उस दिन व्रत करने वाले के घर में देव वास करते हैं।

(६) यज्ञो वा आपः।
(१।१।१२

'आप' का अर्थ 'यज्ञ' भी है।

(७) अनिरुक्तो वै प्रजापतिः।
(१।१।१३)

प्रजापति का निर्वचन (explana...
नहीं हो सकता।

(८) प्रजापतिर्यज्ञः। (१।१...

यज्ञ का नाम प्रजापति है।

(९) अद्भिर्वा इदं सर्वमा...
(१।१...

समस्त संसार जल से व्याप्त है।

(१०) यदरक्षांस्तस्माद रक्षांसि...
(१।१...

चूँकि यज्ञ करने से रोकते हैं इस...
उनको राक्षस कहते हैं।

(११) वज्रो हि वा आपः।
(१।१...

'आप' का अर्थ वज्र भी है।

(१२) एवमिव। (१।१...

'एवं' का अर्थ है 'इव' ...
'समान'।

(१३) उत्तरतो हि स्त्री पुमांस...
पशेते। (१।१...

स्त्री पुरुष के बांई ओर रहती है।

(१४) विराड् वै यज्ञः। (१।१...

यज्ञ का नाम विराट् है।

(१५) द्वन्द्वं वै वीर्यं। (१।१...

दो होना शक्ति का सूचक है।

आर्य्य समाज के निर्माता

त्याग-मूर्त्ति श्री महात्मा हंसराज जी

आरम्भ



रतवर्ष में अनेकों लहरें आईं, पर एक व्यक्ति चट्टान की तरह अड़ा रहा और उसने जो उद्देश्य बना लिया उस को कभी न छोड़ा। महात्मा हंसराज जी महाराज उन बड़ी आत्माओं में से हैं जो त्याग और तपस्या का जीवन व्यतीत करते हैं और जो उद्देश्य वे अपने जीवन का बना लेते हैं उसपर सदा डटे रहते हैं। उनको इस बात की चिन्ता नहीं है कि कौनसा ऐसा कार्य्य करें जिससे उनकी ख्याति बढ़े। कौन से आन्दोलन के नेता बन जावें जिससे लोग उनको हाथों हाथ लेवें। उनका यदि कोई उद्देश्य है तो वही जो उन्होंने बना लिया है। उसी में धुन के साथ लगे रहते हैं, वे खाते हैं तो उसी उद्देश्य के लिये, श्वास लेते हैं तो उसके लिये। महात्मा हंसराज ने आर्य्य-समाज के कार्य्य को अपना कार्य्य समझ लिया और उसी पर इस समय तक डटे हुये हैं। वृद्धावस्था को प्राप्त होने पर भी दिन रात का अधिकांश समय आर्य्य-समाज ही के कार्य्य में व्यतीत होता है।

जन्म तथा आपत्तियां

महात्मा जी का जन्म १८६४ ई० में बेजवाड़ा स्थान में जो होशियारपुर जिले में है, हुआ था। आपके पूज्य पिता जी का नाम श्री लाला चुन्नीलाल था और आपकी माता का नाम श्रीमती हरदेवी था। बचपन में महात्मा जी के ऊपर विशेष आपत्तियां आ गईं। आप दश वर्ष के भी न हो पाये थे कि आपके पूज्य पिता का देहावसान हो गया। पिता जी की मृत्यु पर घर का सारा भार आपके बड़े भाई श्रीयुत लाला मुलकराज जी पर पड़ा। महात्मा जी के बड़े भाई बड़े ही उच्च विचारों के थे जिनका वर्णन आगे किया जायगा। लाहौर में रेल के विभाग में नौकर थे और महात्मा जी भी लाहौर में आकर रहने लगे। यहाँ

के मिशन स्कूल में आपका नाम लिखा दिया गया।

बच्चे की निर्भीकता

भारतवर्ष में ईसाइयों ने सबसे पहले स्कूल खोले थे और इनके खोलने का यह उद्देश्य था कि भारतीय विद्यार्थियों को यह बतला दिया जावे कि उनका धर्म और उनकी सभ्यता खुखली है। सब बातें ईसाई धर्म में ही पाई जाती हैं। एक दिन की बात है कि आपके हेडमास्टर साहब ने भारतोय सभ्यता का खंडन किया। उन्होंने कहा कि आर्य्यों के पुरखे पत्थरों के पूजनेवाले थे, उनकी सभ्यता सबसे गिरी हुई थी और उनके धर्म में भी कुछ नहीं है। बालक हंसराज को यह बातें असह्य हो गई और उन्होंने खड़े होकर हैडमास्टर की बातें के विरुद्ध कहना आरम्भ कर दिया उन्होंने यह सिद्ध किया कि वेदों में केवल एक परब्रह्म की उपासना लिखी हुई है। हैडमास्टर इन बातों को सुन आगबबूला हो गये कि नन्हा सा बालक उनकी बातों का खंडन कर रहा है। उन्होंने कह दिया कि इस प्रकार के बालक मिशनस्कूल में नहीं पढ़ सकते।

इस झगड़े के बाद महात्मा हंसराज ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि वैदिक धर्म का प्रचार बहुत ज़ोर से होना चाहिये। अब आपकी प्रवृत्ति आर्य्य-समाज की ओर बढ़ गई। ... नियम पूर्वक आर्य्य-समाज में ... आरम्भ कर दिया।

महात्माओं की संगत

महात्माओं की संगत से ... आत्मा भी उच्च हो सकती है। ... यदि एक महान् आत्मा का साथ ... लोगों के साथ हो जाता है तो यह ... और भी बढ़ जाता है। आर्य्यस... में इस समय लाला सांईदास जी ... करते थे। आपके त्यागमय ... ने आर्य्यसमाज की तीन बहुत ... आत्माओं पर प्रभाव डाला था। म... हंसराज जी भी आपकी संगत में ... कर आर्य्य समाज के कार्य्यकर्त्ता ... गये। आपकी आर्य्यसमाज में श्रद्धा ... गई और आर्य्यसमाज के मिशन ... आप प्रेम करने लगे।

सन् १८८० ई० में जब आप इन्ट्रे... पास करके गवर्नमेंट कालिज में भर्ती ... गये तो वहाँ पर आपकी भेंट पं० गुरु... एम. ए. विद्यार्थी तथा लाला लाजपति... से हुई। इन तीनों महात्माओं ने आर्य्य... समाज का इतना उपकार किया है जि... अन्य किसी ने नहीं किया। ऋषि द... नन्द के बाद इन तीनों ने आर्य्यसमाज... की लाज रखली। यदि ये न होते ... कौन कह सकता है कि आर्य्यसमाज... का भविष्य क्या हुआ होता। ...

आश्चर्य मालूम होता है कि एक कालिज में पढ़ने वाले तीन विद्यार्थी इतनी बड़ी शक्ति रखने वाले थे कि तीनों के तीनों ही उत्कृष्ट नेता हो गये। तीनों ने आपस में धार्मिक वार्त्तालाप करके अपने विचारों को पुष्ट कर लिया था।

Regenerator of Arya Varta.

ऋषि दयानन्द इस समय देश में मूर्तिपूजा का खंडन तथा सच्चे वैदिक धर्म की स्थापना कर रहे थे। लोग वहुत दिनों से इस आशा में बैठे हुए थे कि कब सच्चे ज्ञान का सूर्य्य उदय हो जिसको देखकर लोग अपने जीवन को सफल करें। ऋषि दयानन्द के पवित्र उद्देश्यों को जनता तक पहुंचाने के लिये यह वहुत आवश्यक था कि कोई समाचार पत्र निकाला जाय जो जनता तक सच्चे ज्ञान को पहुंचा सके। आर्य्य समाज लाहौर ने अंग्रेजी में Regenerator of Arya Varta निकालना निश्चय किया। इसके सम्पादन का भार पं० गुरुदत्त विद्यार्थी तथा महात्मा हंसराज जी के ऊपर छोड़ा गया। विद्यार्थी होने की अवस्था में भी महात्मा जी बड़े उत्साह के साथ इसका कार्य करते थे। कालिज से छुट्टी पाते ही प्रेस में आकर आप अखबार के प्रूफ़ देखना, लेख लिखना तथा अन्य कार्य्य किया करते थे।

ऋषि का स्मारक

ऋषि दयानन्द जी की मृत्यु पर यह प्रश्न उठा कि उनका क्या स्मारक रक्खा जावे। आर्य्य समाज लाहौर ने यह निश्चय किया कि एक दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज की नींव डाली जावे। पं० गुरुदत्त जी ने जिस अथक परिश्रम से इस कार्य्य को किया था उसका वर्णन पं० जी की जीवनी में दिया जा चुका है।

जीवन वैदिक धर्म की वेदी पर

आर्य्यसमाज का इतना कार्य्य करते हुये भी महात्मा हंसराज ने बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण की और आपका नम्बर यूनीवर्सिटी भर में दूसरा रहा। अब प्रश्न यह था कि महात्मा जी क्या करते।

आपके बड़े भाई ने आपसे पूछा कि अब क्या करने का विचार है। त्याग-मूर्त्ति महात्मा हंसराज ने कहा "मैं चाहता हूं कि इस शरीर को देश और धर्म की वेदी पर चढ़ा दूं। मेरी यह इच्छा नहीं है कि मुझको किसी प्रकार की नौकरी मिले। या कोई उत्तम पद मिले। मैं तो निस्वार्थ वश सेवा करना चाहता हूं। मुझको कोई रुकावट मालूम होती है तो इससे कि घर वालों की रोटी की

समस्या कैसे हल की जावे।" अपने छोटे भाई के इन पवित्र विचारों को सुनकर श्री पूज्य मुल्कराज भल्ला गद्गद होगये और उन्हों ने अपने भाई को गले से लगा लिया। उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया "आज से घर की रोटी की समस्या मैंने अपने ऊपर लेली है। तुम विना किसी भी हिचक के देश के कार्य्य में लग जाओ।"

भाई की आज्ञा मिलने पर महात्मा हंसराज जी का उत्साह दुगना होगया और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि संसार की कोई भी शक्ति उनको अपन उद्देश्य से नहीं हटा सकती।

हम किन शब्दों में लाला मुल्कराज की प्रशंसा करें। महात्मा जी का परम सौभाग्य था कि उनको ऐसे बड़े भाई मिले; और आर्य्यसमाज का यह गौरव है कि इस अवनति की अवस्था में भी ऐसी उत्कृष्ट आत्मायें सेवा के लिये जन्म लेतीं है।

जीवन ज्योति चमकी

आर्य्यसमाज लाहौर का १८वां वार्षिक उत्सव था। जनता प्रेम से विह्वल होकर अमृतपान कर रही थी। इसी बीच में इस बात का घोषणा कर दी गई कि महात्मा हंसराज जी ने बिना किसी प्रकार की सहायता के अपना जीवन आर्य्यसमाज को दान देदिया है। ज... के हृदयों में कोसों में उमंगे उठ ख... हुई। आर्य्यसमाज के जीवन में य... पहला त्याग था। लोग सुनते ही द... रह गये। उनके रुधिर में बिजली दौ... गई। उनका उत्साह सीमा छोड़ क... भागने लगा। प्रान्त की समाजों ने ज... यह सुना तो उनके उत्साह की भी ... होगई।

सन् १८८६ ई० के जून मास ... दयानन्द एंग्लो वैदिक हाई स्कूल ... स्थापना हुई और त्याग के देवता महा... हंसराज जी उसके आनरेरी हेडमा... बनाये गये। आपके उद्योग से ... में एफ० ए० की कक्षायें भी खु... और अब आप उसके प्रिंसपल हो... १८९० में बी० ए० की कक्षायें ... गई और कुछ दिनों पश्चात् एम० ... की कक्षायें भी खुल गई। इस ... भारतवर्ष के बड़े २ कालिजों में ... गणना है। यह सब उसी त्यागमूर्ति ... अथक परिश्रम का फल स्वरूप है।

वैदिक धर्म का प्रचारक

डी० ए० वी० कालिज के प्रिं... होते ही महात्मा हंसराज पर बड़ा ... आपड़ा। कालिज में अध्यापन का ... करना, प्रबन्ध करना, कालिज के ... धन इकट्ठा करना उनका काम ... उसके साथ २ सारे प्रान्त की ...

आपकी ओर ही आशा लगाये बैठी हुई थीं। स्थान २ से निमंत्रण आते कि उत्सव में आकर व्याख्यान दो। सामाजिक समस्याओं को लोग आपके पास हल कराने के लिये दौड़ते। परन्तु त्यागी महात्मा हंसराज को धुन थी आर्य्य-समाज प्रचार की। रात दिन सदा परिश्रम करते रहते और विश्राम का नाम तक न लेते।

इस अथक परिश्रम का परिणाम वही हुआ जो स्वभाविक था। आपका स्वास्थ्य बिगड़ गया और इतना बिगड़ा कि लोगों को चिन्ता होने लगी। डाक्टरों ने सलाह दी कि कुछ काल के लिये लाहौर से बाहर चले जाओ जिससे लोगों से छुटकारा मिले। मित्रों ने काम न करने के लिये प्रार्थना की। सम्बन्धियों ने कहा कि स्वास्थ्य अच्छा हो जाने पर काम और भी उत्तम रूप से हो सकेगा। परन्तु बाहरे धुन के महात्मा! किसी की बात तक न सुनी और न काम करने में किसी प्रकार की कमी की। महात्मा को स्वास्थ्य की चिन्ता न थी। यदि किसी बात की चिन्ता थी तो वैदिक धर्म प्रचार की। पता नहीं कि क्या ईश्वरीय बात हुई कि आपका स्वास्थ्य अच्छा हो गया।

प्रधान पद पर

१८८९ ई० में आर्य्यसमाज के प्रसिद्ध कार्य्यकर्त्ता लाला सांईदास जी का स्वर्गवास हुआ। उन्होंने आर्य्यसमाज की बड़ी सेवायें कीं थीं और आर्य्य प्रतिनिधि सभा के प्रधान पद को सुशोभित कर चुके थे। उनकी मृत्यु पर यह प्रश्न हुआ कि किसको प्रधान बनाया जाय। सब ने एक सम्मति से महात्मा हंसराज जी के नाम का प्रस्ताव किया। और महात्मा जी प्रधान निर्वाचित हो गये।

आपत्तियों का वार

सन् १९१२ ई० में आपके ऊपर आफ़त का पहाड़ टूट पड़ा। आपकी धर्मपत्नी श्रीमती ठाकुरदेवी जी बहुत बीमार पड़ी और उनके बचने की कोई आशा नहीं रही। इसी समय में जब कि यह दुःख महात्मा जी पर था एक और दुःख आपके ऊपर आ गया। आपके सुपुत्र श्री बलराज जी पकड़ लिये गये और सरकार ने राजविद्रोह का मुकद्दमा उन पर चलाया। इस समय महात्मा जी के श्रद्धालु मित्रों ने रुपयों की थौलियाँ भेंट करनी चाहीं परन्तु महात्मा जी ने यह सब लौटा दी।

माता का अब अन्त समय आ गया था। श्रीमती ठाकुरदेवी मरणासन्न थी और उनकी अभिलाषा थी कि अपने

पुत्र के एक बार दर्शन कर लें। सरकार से प्रार्थना की गई कि ऐसी दशा में जेल के अन्दर माता को पुत्र से मिलने की आज्ञा दे दी जाय। सरकार ने प्रार्थना स्वीकार करली परन्तु पुलीस ने न मिलने दिया। उन्होंने कह दिया कि हम इसका प्रबन्ध नहीं कर सकते हैं। निदान श्रीमती ठाकुरदेवी ६ जूलाई १९१२ को बिना अपने पुत्र के दर्शन किये हुये ही चल बसीं। पुलीस के इस क्रूरव्यवहार पर हम क्या कहें।

श्री बलराज जी को पहले जन्म भर जेलखाने की सजा मिली, फिर अपील करने पर सात वर्ष कर दी गई। इन सब आपत्तियों में त्याग और सेवा की मूर्त्ति में किसी प्रकार का अन्तर न आया। समाज की सेवा जिस लग्न से वे पहले करते थे वैसी ही करते रहे।

दयानन्द शताब्दि में

सन् १९२५ ई० में ऋषि दयानन्द की प्रथम जन्म शताब्दि मथुरा नगर में मनाई गई। उस अवसर पर महात्मा जी स्वयं पधारे और अपने दर्शन तथा उपदेशों से आर्य्य जनता को कृत-कार्य्य किया।

दिल्ली की आर्य्य कान्फ्रेन्स

२३ दिसम्बर १९२६ ई० को दि[illegible] नगर में श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी [illegible] एक मुसलमान आतताई द्वारा वध[illegible] गया। इस समय अनेकों आर्य्य पु[illegible] के वध हुये तथा आर्य्यसमाज के [illegible] कीर्त्तन रोके जाने लगे। आर्य्य [illegible] में खलबली मच गई और नव[illegible] १९२७ ई० को एक भारतवर्षीय कान्फ्रे[illegible] बुलाई गई जिसके प्रधान महात्मा [illegible] बनाये गये।

तपस्वी जीवन

महात्मा हंसराज जी को देख[illegible] कोई भी यह अनुमान न कर सकेगा [illegible] ये बहुत बड़े आदमी हैं। आप साधा[illegible] वस्त्र पहनते हैं, आपका स्वभाव [illegible] सरल तथा मधुर है। जीवन भर [illegible] जो सेवायें आर्य्यसमाज तथा डी० ए० [illegible] कालिज की हैं उसके बदले कभी [illegible] आपने एक पैसा भी नहीं लिया। [illegible] निस्वार्थ सेवा के लिये जितना कहा [illegible] उतना ही थोड़ा है।

भाग्यवश महात्मा जी इस समय [illegible] जीवित है। उनका कृपाकर हमारे [illegible] पर हैं। हमारी ईश्वर से यह प्रार्थ[illegible] कि बहुत काल तक वे हमारे बीच [illegible] रहकर आर्य्यजाति की रक्षा कर सकें।



गायत्री मन्त्र और चौबीस अक्षर

तथा

वेदोदय पर आक्षेप

'वेदोदय' के दूसरे अर्थात् वैशाख मास के अङ्क में हमने एक शंका का उत्तर देते हुये लिखा था :—

"गायत्री छन्द जिसकी ओर छान्दोग्य में संकेत है २४ अक्षरों का ही होता है। परन्तु 'तत्सवितुर्वरेण्यं' मन्त्र साधारण गायत्री छन्द में नहीं, किन्तु निचृद् गायत्री छन्द में है। निचृद् गायत्री में २३ ही अक्षर होते हैं। छान्दोग्य में साधारण गायत्री की ओर संकेत है 'तत्सवितुर्वरेण्यं' वाले गायत्री मन्त्र की ओर नहीं। छान्दोग्य में यह तो लिखा नहीं कि 'तत्सवितुर्वरेण्यं' वाले मन्त्र में २४ अक्षर होते हैं। वहां तो केवल यह लिखा है कि गायत्री छन्द में २४ अक्षर होते हैं।"

इस पर साहित्योपाध्याय श्री पं० ब्रह्मदत्त जी शास्त्री एस०ए० काव्यतीर्थ ने ३ जुलाई १९३० के 'आर्यमित्र' के कई कालमों में बड़ा लम्बा चौड़ा आक्षेप किया है। पहले तो आपने छन्द शास्त्र और व्याकरण शास्त्र सम्बन्धी अक्षरों पर कई सूत्र देकर शंका का मखौल उड़ाया है। जिस का नोट लेना हम व्यर्थ समझते हैं। फिर समाधान की आलोचना इन शब्दों में की है :—

(१) मेरी राय में शंका का जो समाधान किया गया है वह भ्रम में डालने वाला है।

(२) 'तत्सवितुर्वरेण्यं' इत्यादिक मन्त्र 'निचृद्' गायत्री में नहीं है।

(३) और उसमें २३ अक्षर कदापि नहीं हैं।

(४) छान्दोग्य में 'तत्सवितुर' वाले गायत्री मन्त्र की ओर संकेत किया गया है।

आक्षेप सं० १ के विषय में पाठकगण स्वयं विचार करें।

आक्षेप सं० २ के विषय में केवल इतना निवेदन है कि—

(अ) वैदिक प्रेस द्वारा प्रकाशित मूल ऋग्वेद मण्डल ३ सूक्त ६२ मन्त्र १० पृष्ठ १९७ पंक्ति ७ में इस मन्त्र को निचृद् गायत्री लिखा है।

(आ) वैदिक प्रेस द्वारा छपे हुये मूल यजुर्वेद अध्याय ३० मन्त्र २, पृष्ठ ८ पंक्ति १५ में इसको निचृद् गायत्री लिखा है।

(इ) वैदिक प्रेस द्वारा छपे हुये मूल यजुर्वेद अध्याय २२ मन्त्र ९ पृष्ठ १०४ पंक्ति २२ में इसको निचृद् गायत्री लिखा है।

(ई) वैदिक प्रेस द्वारा छपे हुये मूल यजुर्वेद् अध्याय २२ मन्त्र २ पृष्ठ १३३ पंक्ति ४ में इसको निचृद् गायत्री लिखा है।

(उ) ऋषि दयानन्द के ऋग्वेद भाष्य पृष्ठ ९३८ पंक्ति ७ पर इसको निचृद् गायत्री लिखा है।

(ऊ) ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ १२६ पंक्ति २ में इसको निचृद् गायत्री लिखा है।

(ऋ) ऋषि दयानन्द के यजुर्वेद भाष्य पृष्ठ ६८१ पंक्ति अन्तिम में इसको निचृद् गायत्री लिखा है।

आक्षेप संख्या ३ तो रहता ही नहीं जब हम साधारण गायत्री छन्दों और निचृद् गायत्री छन्दों की तुलना करते हैं। ऋग्वेद में अनेक मन्त्र गायत्री छन्द में हैं और अनेक निचृद् गायत्री छन्द में आप इनकी तुलना कर लीजिये फिर हर एक बात स्पष्ट हो जायगी। हमने 'वेदोदय' में लिखा भी था कि 'विश्वानि-देव' इत्यादि मन्त्र गायत्री छन्द में है और इसमें २४ अक्षर हैं। परन्तु सभी निचृद् गायत्री छन्द वाले मन्त्रों में २३ अक्षर मिलेंगे। यही तो भेद है। आप इस भेद को कैसे मिटा सकते हैं?

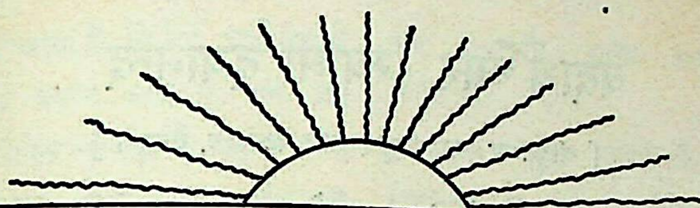
आक्षेप संख्या ४ के लिये [illegible] छान्दोग्य से एक भी ऐसा शब्द [illegible] दिखलाया जिससे सिद्ध हो सके [illegible] गायत्री छन्द नहीं किन्तु गायत्री [illegible] अर्थात् 'तत्सवितुः' इत्यादि मन्त्र [illegible] तात्पर्य है। आप लिखते हैं कि [illegible] स्सवन में यज्ञों में गायत्री मन्त्रों [illegible] ही प्रयोग होता है। यहां [illegible] बहुवचन 'मंत्रों' क्यों कहा? क्या [illegible] का तात्पर्य उन अनेक मंत्रों से [illegible] गायत्री छन्द में हैं या आपके विच[illegible] कई गायत्री मन्त्र हैं। आप प्रसिद्ध [illegible] अप्रसिद्ध का पचड़ा व्यर्थ ही लगाते [illegible] क्योंकि यदि गायत्री छन्द से छान्दो[illegible] में 'तत्सवितुः' इत्यादि से तात्पर्य है [illegible] त्रिष्टुप और जगती से किस प्रसिद्ध [illegible] से तात्पर्य होगा? क्योंकि जैसे 'तत्स[illegible]' इस मंत्र का रूढ़ि नाम गायत्री पड़ [illegible] है वैसे ही किन मंत्रों का रूढ़ि [illegible] त्रिष्टुप और जगती है? आपका [illegible] लिखना कि "जब त्रिष्टुप और [illegible] छन्दों में भी साधारण भेदों को ही [illegible] लिखा है तब निस्सन्देह गायत्री [illegible] साधारण भेद को ही उसने लिखा [illegible] हमारे मत का समर्थक है न कि [illegible] मत का। हम भी तो यही कहते हैं [illegible] जिस प्रकार छन्दोग्य में जगती [illegible] त्रिष्टुप छन्द वाले मंत्रों की ओर [illegible] है विशेष मन्त्र की ओर नहीं, इसी [illegible] गायत्री से भी गायत्री वाले मंत्रों [illegible] ओर संकेत है उस मंत्र से नहीं [illegible] तो निचृद् गायत्री छन्द में परन्तु [illegible] रूढ़ि नाम गायत्री पड़ गया है।

अलमिति वि[illegible]



पंजाब केसरी लाला लाजपतराय

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३।४।१।१]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती है।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग १ | भाद्र, संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०५; सितम्बर १९३० आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ | संख्या ६

भजन

[श्रीयुत हरिवंशराय जी बी० ए०]

प्रभो ! हम एक तुम्हारे दास।

सब तो देव अनेकों ध्यावें, हमें तुम्हीं से आस। प्रभो० !

दुख सुख में संकट सम्पत्ति में, आवें तेरे पास। प्रभो०।

बिना तुम्हारी भक्ति-नीर के, बुझे न मन की प्यास। प्रभो०।

करके कृपा हमारे ऊपर, करो हृदय में वास। प्रभो०।

पाप हटे मन से, सुन्दर गुण, आकर करें विलास। प्रभो०।

प्रभु सुनते हैं विनय हमारी, हमको है विश्वास। प्रभो०।

वेदार्थ और स्वामी दयानन्द

[श्रीयुत बा० श्याम सुन्दरलाल एडवोकेट, मैनपुरी]



थम इसके कि हम उपरोक्त विषय पर अधिक विचार करें यह उचित प्रतीत होता है कि दिखलावें कि कोई भाषा क्यों न हो, चाहे वह बोली जाती हो अर्थात् जीवित हो अथवा अजीवित, उसके किसी विशेष ग्रन्थ वा ग्रन्थों के यथार्थ अर्थ करने और समझने के लिये उसके शब्द भण्डार से सुपरिचित होने की बड़ी आवश्यकता है। विज्ञ पाठक सहमत होंगे कि प्रत्येक भाषा में अनेक शब्द होते हैं जिनके केवल विद्या-भेद, स्वर-भेद अवसर-भेद इत्यादि हेतुओं के कारण अनेकार्थ हो जाया करते हैं तथा अनेक शब्द एकार्थ वाची भी हुआ करते हैं। यदि कोई भाषा जीवित है तो तुलनात्मक रूपेण उसके विशेष ग्रन्थ वा ग्रन्थों के समझने और समझाने में विशेष कठिनता उपस्थित नहीं होती परन्तु यदि कोई भाषा अजीवित है तो उसके साहित्य के समझने में असाधारण कठिनता विद्यमान हो जाती है; क्योंकि जीवित भाषा हमसे वार्तमानिक सम्बन्ध होने के कारण हम बहुत कुछ उसके स्वरूप और आकृति से सामान्यतया सु... होते हैं। परन्तु अजीवित भाषा तात्कालिक सम्बन्ध न रहने के कारण उसके समझने समझाने में स्वभा... बहुत कठिनाइयां और उलझनें हम सम्मुख उपस्थित होती है। विज्ञ पाठक इस बात में भी आपत्ति न करेंगे कि ... भाषा में जितनी ही अधिक विशे... हो चुकती है उतनी ही अधिक ... कठिनता स्वभावतः बढ़ी हुई दशा ... प्रादुर्भूत होती है।

उपरोक्त धारणाओं को किसी ... तक अंग्रेज़ी तथा नागरी भाषा ... उदाहृत करना अधिक उपयुक्त ... होता है यथा : –

अंग्रेज़ी भाषा में एक ... [depose] डिपोज़ है जो लैटिन ... के de=down डि=डौन-नीचे ... [Pose=Pono—to place] पो... पोनो–टु प्लेस्=रखना, से बना है। ... जब यह शब्द साधारण भांति में ... होता है तो उसका अर्थ होता है ... करना; परन्तु जब वह क़ानून ...

सम्बन्ध में आता है तो वह अर्थ देता है शपथ-पूर्वक बयान करने के; एवं जब वह राज्याभिषेक सम्बन्ध में प्रयुक्त होता है तो उसके अर्थ हो जाते हैं राजसिंहासन तख्त से उतार देना; पुनः जब वही शब्द आयुर्वेद में अपना स्थान पाता है तो उसका अर्थ होता है जख्म को हमवार करना और इसी प्रकार जब वह वनस्पति शास्त्र में चला जाता है तो उसका अर्थ हो जाता है वृक्ष की शाखादि को काट छांट तथा कतर ब्योंत कर सुडौल कर देना।

इसी प्रकार एक द्वितीय शब्द [Course] है जिसके केवल [Noun] संज्ञावाची तेरह अर्थ वैब्स्टर कोष [Webster Dictionary] में लिखे हैं यथा मार्ग [भवन निर्माण] में एक ही ऊंचाई के रद्दों की दौड़; [सामुद्रिक यात्रा में] विशेष प्रकार के जल पोत [जहाज़] के मस्तूल का सबसे नीचे का भाग; [शरीर सम्बन्ध में] आर्त्तव धर्म, [प्रवचन सम्बन्ध में] शृंखला बद्ध पाठ्य पुस्तकों का व्याख्यानों का विधान; [आयुर्वेद में] शृंखला बद्ध ओषधियों का प्रयोग; [पदार्थ विद्या में] कार्य कारण पूर्वक प्राकृतिक नियम शृंखला इत्यादि; तथा क्रिया अकर्मक सकर्मक दोनों रूप में पीछा करना, पीछा कराना आदि विविध अर्थ तथा विशेषण रूप में भी अनेक अर्थ धारण करता है।

इस प्रकार प्रत्यक्ष है कि केवल विद्या-भेद से ही उपरोक्त शब्दों के अनेक अर्थ हो गये हैं, हां यह अवश्य है कि प्रत्येक अर्थ में शब्द के आवयविक अर्थ की बहुधा पूर्ण झलक विद्यमान है। इसी प्रकार एक तीसरा शब्द है अर्थात [desert] डिज़र्ट, यदि हम डि [de] को एक स्वर से पढ़ते हैं तो उसके अर्थ होते हैं वीरान और त्यक्त, तथा वीरान और त्यक्त स्थान के परन्तु यदि उक्त [de] डि को हम दूसरे स्वर से पढ़ते हैं यथा [desert] डीज़र्ट तो उसके अर्थ हो जाते हैं योग्यता संलग्न सेवा के तथा अकर्मक और सकर्मक क्रियाओं के रूप में क्रमशः उसके अर्थ हो जाते हैं छोड़कर भाग जाने और छोड़ देने के। और उक्त प्रकार में स्वर-भेद से अर्थ-भेद का होना भली-भांति प्रकट होता है।

नागरी भाषा में भी जो अभी उन्नति क्षेत्र में केवल आरम्भिक पद ही रख रही है इस अर्थान्तर के उदाहरण अनुपलब्ध नहीं हैं। यथा रस और काम शब्द। रस शब्द को इस प्रान्त भाग में सामान्यतया गन्ने के रस को कहते हैं; परन्तु आयुर्वेद में भोजन के पेट में जाकर पचने पर उसकी उस प्रथमावस्था को कहते हैं जो रक्त

बनने से पहले वहन रूप में होती है तथा पाक शास्त्र में कटुलवणादिक छः रसों में से किसी न किसी एक रस का बोधक होता है; तथा संगीत शास्त्र में वही शब्द उच्च दर्जे की आनुभाविकता का द्योतन करता है; तथा आध्यात्मिक योग में वही शब्द आनन्द विशेष का वाचक बन जाता है। यही दशा 'काम' शब्द के अर्थों की भी है। सामान्यतया हम लोग उसको काम काज के अर्थ में तो प्रयुक्त करते ही हैं; परंतु आध्यात्मिक योग में वह काम क्रोधादिक गणस्थ होकर आत्मा की एक विशेष दशा का उद्बोधक हो जाता है एवं यथा शब्द के साथ लग कर इच्छा का अर्थ देने लगता है इत्यादि।

अतएव इस बात के सिद्ध करने के लिये अधिक उदाहरणों का देना अनावश्यक है कि विद्याभेद स्वर भेद आदि के कारण एक ही शब्द के अनेक अर्थों के वाचक होने के मर्म से अनभिज्ञ पुरुष के लिये अथवा यों कहना चाहिये कि विविध विद्याओं और स्वर भेदादि के अन्तरों से अनभिज्ञ पुरुष के लिये किस प्रकार असम्भव है कि वह एक जीवित भाषा के भी विशेष ग्रंन्थ वा ग्रन्थों को यथार्थ रूप से समझ सके। पुनः वेदों के विषय में यह समस्या कितनी विकट हो जाती है इस के समझने के लिये हमको यह दृष्टव्य है कि यही नहीं कि वेद हमारी बोल चाल की भाषा नहीं रही है। किन्तु वह काल दृष्टि से हम से अत्यन्त दूर होगये हैं।

जर्मनी के सुप्रख्यात पण्डित महा मैक्समूलर महोदय वेदों की प्राचीनता विषय में अपने पुस्तक "वैदिक साहित्य इतिहास" में लिखते है कि "ऋग्वेद सं के [न केवल आर्य्यावर्त्त के] मानवी पुस्तकालय में प्राचीनतम पुस्तक है।"

मौरीज़ फ़िलिप साहिब [Morri Philip अपने पुस्तक "वेदों की शिक्षा नामी में कथन करते हैं कि अब बि खण्डन के भय के कह सके हैं कि ऋग्वे केवल आर्य्यजाति का नहीं किन्तु सम्पू संसार का प्राचीनतम पुस्तक है।

मि० राथ (M. Rath) अपने 'वे का इतिहास' नामी पुस्तक में लिखते कि मानवीय सभ्यता, साहित्य और ध का प्राचीनतम लेख वेद हैं।

अतएव ऐसे प्राचीनतम साहित्य यथार्थ अर्थ समझने के लिये जिससे सं मात्र अब अत्यन्त कालकृत दूरी पर वि मान है हमको उस सामग्री के अतिरि जिस का हमने जीवित और बोलचाल भाषाओं के विषय में दिग्दर्शन कराया क्या किसी और विशेष साधन की ज़रू है? क्या कोई और विशेष कठिनाई उपस्थित होती है? इसके परिज्ञान के लि हमको निम्न विशेषताओं और उनके पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

उलझन सं० १ :—सम्पूर्ण संस्कृतज्ञ चाहे व पूर्वी हो वा पश्चिमी इस बात में सहमत है कि संस्कृत साहित्य तीन भागों में विभक्त है । उन में से एक को हम वैदिक साहित्य कह सकते हैं जिसके एक आरम्भिक सिरे पर वेदों का अस्तित्व है तथा दूसरे सिरे पर ब्राह्मण और उपनिषत् ग्रन्थ विद्यमान हैं। तथा दूसरे भाग को हम मध्यकालीन संस्कृत साहित्य कह सकते हैं जिसमें सूत्रबद्ध दर्शन शास्त्रादि तथा मानव शास्त्र आदि अन्य आर्ष साहित्य सम्मिलित है तथा तीसरा नवीन वा अर्वाचीन संस्कृत साहित्य है जिस में भागवतादि पौराणिक लिट्रेचर तथा विविध प्रकार के नवीन काव्य व नाटकादि शामिल हैं।

वैदिक साहित्य के विषय में एक विशेष उलझन यह है जिसको महामना मैक्समूलर महोदय निम्न प्रकार अपने पुस्तक "संस्कृत साहित्य का इतिहास" में प्रकट करते हैं:—

"The Names which in Homer have become petrified and mythological, are to be found in the Vedas, as it were, in the fluid state. They never appear as appelletives not yet as proper names; they are yet organic and not yet broken and smoothed down".

Further on he says:—

"Every word retains some thing of its original meaning. Every epithet tells, every thought in spite of its most intricate and abrupt expression is true perfect and complete".

भाषान्तर—"जो नाम होमर [इस नाम से प्रख्यात कवि होमर नामी काव्य] में पाषाणवत् दृढ़ अर्थात् रूढ़ि और गाथारूप [कपोलकल्पित किस्से कहानी] कल्पित व्यक्ति हो गये हैं वह वेदों में मानो वहनशील अवस्था को धारण किये हुए हैं कहीं भी वह पदवी वा उपनाम वाची नहीं हैं और न अब तक वह किसी व्यक्ति विशेष के नाम हो पाये हैं वह सांघातिक अथवा यौगिक अवस्था में है और अब तक टूट फूट कर चिकने नहीं हो पाये हैं अर्थात् उनकी यौगिक अवस्था अब तक दृष्ट पड़ती है। "प्रत्येक शब्द में उसके आरम्भिक अर्थ की झलक वर्त्तमान है, प्रत्येक विशेषण विशेष प्रभावशील है, प्रत्येक विचार अपनी अत्यन्त उलझी और तात्कालिक वेशा के होते हुए भी सत्य सम्यक् और पूर्ण हैं।"

हम अपने सुप्रख्यात, निरुक्तकार यास्काचार्य्य के शब्दों में इसी बात को यों कह सकते हैं कि वेदों के शब्द यौगिक वा योग रूढ़ि हैं अर्थात् उनके

अर्थ धातुजन्य हैं और वही हैं जो उन शब्दों के अवयवों से निष्पन्न होते हैं जिनसे कि वह शब्द बने हैं। जो शब्द आगे चलकर कालान्तर में रूढ़ि बनगये हैं वह वैदिक साहित्य में रूढ़ि माने जाने योग्य नहीं है। यदि रूढ़ि माने जाकर उनके अर्थ किये जायगें तो वे अर्थ यथार्थ अर्थ न होंगे। किन्तु सर्वथा अनर्थ होंगे जैसा कि आगे चल कर हम प्रकट करेंगे।

उलझन सं० २:—यह उलझन पहली उलझन का ही अवान्तर भेद है। वेदों के अनेक शब्द ऐसे हैं जिनसे वैदिक समय में दो वा अधिक पदार्थों का यौगिक अर्थानुसार ग्रहण होता था परन्तु उत्तरोत्तर काल में उन शब्दों से कई एक पदार्थों का ग्रहण छोड़ दिया गया और वह शब्द केवल एक पदार्थ विशेष के अर्थ में प्रयुक्त होकर उसी पदार्थ के लिये रूढ़ि हो गये। यथा घृत शब्द जो अब केवल तप्त मक्खन के लिये प्रयुक्त होता है पहले अधिकतर अन्य पदार्थों के अतिरिक्त बहुधा जल अर्थ में प्रयुक्त होता था और वह निघण्टु में जल के नामों में गिनाया भी गया है। अहि शब्द जो अब केवल सर्प अर्थ में विद्यमान पाया जाता है पहले वैदिक समय में मेघ अर्थ में बहुधा प्रयुक्त है। यही दशा पर्वत, सरस्वती उषा, अनड्वान् इत्यादि शतशः

शब्दों के अर्थों की है। इसलिये
अर्वाचीन संस्कृत साहित्य का
जिसने वैदिक साहित्य में भली भांति
नहीं किया है वेदों के यथार्थ अ
समझने के लिये कोई विशेष सुगमता
रखता किन्तु एक प्रकार से उसका
पग २ पर अधिक कण्टकाकीर्ण हो
और उसको वेदों के अनर्थ करने
अपने पाण्डित्य से एक प्रकार का
और उत्तेजना मिलती है।

उलझन सं० ३—वेदों के अनेक
शब्द हैं जैसे भूत, प्रेत, असुर,
गन्धर्व, देव, देवता, गोमेध,
अश्वमेध, यज्ञ, स्वर्ग, नरक, आदि
वैदिक साहित्य में लेश मात्र भी
अर्थ नहीं है जिनमें उपरोक्त शब्द
संस्कृत साहित्य में प्रयुक्त पाये
और इसलिये उनके वह अर्थ जो
संस्कृत वा लोकमें प्रचलित होगये हैं
मानसिक दृष्टि के सम्मुख बलात्
होकर हमको वेदों के यथार्थ अ
विचलित होने के लिये एक प्र
प्रेरित करते हैं और यदि हमने
साहित्य में विशेष प्रकारेण रमण
किया है और उसके यथार्थ अर्थ
तत्वों को हृदयङ्गम नहीं किया है तो
लित होने में हमको बहुत सुगमता
होती है।

उलझन सं० ४:—वेदों के

शब्द परित्यक्त [Obsolete] हो चुके हैं और उनका शब्द विन्यास और वाक्य रचना तथा उनकी प्रयोगशैली अर्वाचीन संस्कृत में बहुत अंश तक लुप्त और अन्तर्धान हो चुकी है अतएव उस प्रकार के स्थलों के आने पर हमको वेदार्थ समझने में अत्यन्त उलझन पड़ती है।

उलझन सं० ५ :—वेदों के सामान्य अलङ्कार अर्वाचीन संस्कृत में या तो नितान्त छोड़ दिये गये हैं अथवा उनका प्रयोग अति अल्प रह गया है और इस लिये वेदों की आलङ्कारिक छन्द रचना से अनभिज्ञ होने के कारण हमको वेदों के यथार्थ अर्थों के समझने में बहुत आपत्ति होती है। और उनके अर्थ हमारे हृदय में अति कठिनता से बैठते हैं।

क्रमशः

वेदों की सूक्ति

यां रक्षन्त्यस्वप्ना विश्वदानीं देवा भूमिं पृथिवींमप्रमादम् ।
सा नो मधु प्रियं दुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥

[अथर्ववेद काण्ड १२, सूक्त १, मं० ७]

(यां) जिस (पृथिवीं) विस्तृत और (विश्वदानीं) सब कुछ देने वाली (भूमिं) भूमि की (देवा) विद्वान् लोग (अस्वप्ना) कभी न सोने वाले, (प्रमाद) को छोड़कर (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं (सा) वह पृथिवी (नो) हमको (प्रियम्) प्यारा (मधु) मधु (दुहाम्) दुहे । (अथो) और (वर्चसा) बल से हमको (उक्षतु) बढ़ावे ।

इस मंत्र में पृथ्वी के गुणों का वर्णन है और यह भी बताया गया है कि पृथ्वी के इन गुणों से हम को कब लाभ हो सकता है ।

पृथ्वी का पहिला गुण 'विश्वदानी' है अर्थात् यह सब कुछ देने वाली है । अन्न पृथ्वी में पैदा होता है । फल फूल पृथ्वी में उगते हैं । जल पृथ्वी में से निकलता है सोना चांदी पृथ्वी में पैदा होते हैं । मिट्टी का तेल पृथ्वी में उत्पन्न होता है । पत्थर का कोयला पृथ्वी में ही पाया जाता है । सारांश यह है कि हमारी कौन सी भौतिक आवश्यकतायें पृथ्वी से पूरी नहीं होती ? इसलिये पृथ्वी को वसुमती तथा रत्नगर्भा भी कहा है । इसलिये पृथ्वी को धरती माता कहते हैं । जन्मभूमि की जननी से इसीलिये तुलना की गई है । जिस प्रकार जननी दूध पिला कर बच्चे का पालन पोषण करती है । उस प्रकार पृथ्वी भी प्राणियों का पालन पोषण करती है ।

पृथ्वी का दूसरा विशेषण "पृथ्वी" है अर्थात् यह विस्तृत है । हमारे रहने के लिये ईश्वर ने इतना बड़ा भूमण्डल बनाया है । यह न केवल घर के समान रहने का स्थान ही है किन्तु इससे पालन पोषण की समस्त वस्तुओं की प्राप्ति होती है ।

फिर यह भूमि है कैसी ? प्रिय मधु दुहने वाली । अर्थात् जितना भौतिक सुख है वह सब इस पृथ्वी से ही मिलता है इसके अतिरिक्त 'वर्चस' अर्थात् तेज और पराक्रम की देने वाली भी पृथ्वी ही है ।

यह सब कुछ है। परन्तु इस के साथ एक बड़ी भारी शर्त भी है जिसके पूरा न होने पर यही सब कुछ देनेवाली विस्तृत पृथ्वी किसी को कुछ लाभ नहीं पहुंचाती।

ऐसे भी लोग हैं जिनके देश में सब कुछ उत्पन्न होता है और जो एक एक दाने को तरस कर मर जाते हैं। जिनके देश में मीठे पानी के पुष्कल चश्मे हैं परन्तु उनके होंठो तक एक बूंद भी नहीं जा सकती जिनके देश में हीरे जवाहर, सोना, चांदी बहुत पैदा होता है परन्तु उन को लोहे की हतकड़ी और बेड़ियों के अतिरिक्त कुछ नसीब नहीं होता। यह क्यों? वेद इस का उत्तर देता है। वेद कहता है कि केवल वही भूमि अपने निवासियों के लिये 'प्रियं मधु' और "वर्चस" अर्थात् सुखदायक पदार्थ तथा पराक्रम दे सकती है जिस पृथ्वी की वहाँ के विद्वान् लोग 'अस्वप्ना' अर्थात् जागते हुये 'अप्रमादम्' अर्थात् आलस्य छोड़ कर रक्षा करते हैं। सोवे सो खोवे और जागे सो पावे। यह एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है। वेद का भी यही उपदेश है सोने वाले लोगों ने इस वसुमती पृथ्वी से कभी कुछ नहीं लिया। केवल जागने वाले विद्वान् ही इससे लाभ उठा सकते हैं।

जिस स्थान पर मैं बैठा हूं उसमें अकथनीय धन गुप्त है। यदि मेरे पास देखनेवाली आँख हो, यदि मुझ में परिश्रम करने की शक्ति हो तो मैं इसी जगह से धन उत्पन्न कर सकता हूं। परन्तु यदि मुझ में बुद्धि नहीं या मैं आलस्य का दास हूं तो "हा, दरिद्रता" "हा निर्धनता"। "हा दुर्भाग्य" चिल्लाता हुआ एक दिन मर जाऊंगा।

किसी देश विशेष में रहना ही मेरे लिये पर्याप्त नहीं है। उसमें मुझको अस्वप्न और प्रमादरहित भी होना चाहिये। स्वप्न दशा में कौन है? वही जो देख नहीं सकता। जिसको यह ज्ञान नहीं कि किस स्थान में किस वस्तु की प्राप्ति हो सकती है वह आंखें रखता हुआ भी अंधा है या जागता हुआ भी सोता है। भारतवर्ष के लोगों में एक समय आँखें थीं। इसलिये उन्होंने बढ़िया से बढ़िया वस्तुओं की खोज की और इसी भारतवर्ष में दूध की नदियां बहा दीं।

परन्तु आज क्या अवस्था है? विदेशी लोग हमारी भूमि में से रत्न ढूँढकर ले जाते हैं। वह आते ही ताड़लेते हैं कि अमुक स्थान पर कोयला अधिक है, अमुक स्थान पर लोहे की खाने हैं। अमुक स्थान पर मीका अर्थात् अबरक पाया जाता है। अमुक स्थान पर अमुक वस्तु की उत्पत्ति हो सकती है। जिस स्थान से अन्य लोग आंखें रखने के कारण धनवान् हो जाते हैं उसी

देश के हम सोते हुये होने के कारण कुली कहलाते, निर्धन और भूखों मर जाते हैं। वेद कहता है कि तुम "अस्वप्न" हो, हम इसके विरुद्ध संसार को स्वप्न समझते और जागते हुये भी समझते हैं कि हम स्वप्न देख रहे हैं।

वेद कहता हैं कि विद्वानों को चाहिये कि आंख खोलकर और प्रमाद छोड़कर पृथ्वी की रक्षा करें। यदि हम पृथ्वी की रक्षा न करेंगे तो पृथ्वी हमारी रक्षा नहीं कर सकती, पृथ्वी की रक्षा करना आसान काम नहीं है, जो सुख की नींद सोते हैं उन्होंने कभी अपने देश की रक्षा नहीं की। देश ऐसी वस्तु नहीं है जो अपने रहने वालों की आनायास ही दास रहे। भूमि को हड़पने के लिये सभी पड़ोसी तैयार रहते हैं। इन पड़ोसियों के आक्रमण से बचाने के लिये विद्वानों को प्रमाद छोड़कर काम करना पड़ता है। उनको रातों जाग कर रक्षा करनी पड़ती है।

जिन्होंने अपने देश की अपने शत्रुओं से रक्षा की है उनके प्रमादरहित होने का इतिहास साक्षी है। वह अंधेरी रात में भी आंखें फाड़ फाड़कर देखते रहते हैं कि कहीं कोई शत्रु किसी रूप में हमारे देश पर आक्रमण तो नहीं कर रहा। वह संसार की सभी शक्तियों पर आंख रखते हैं। कौन जानता है कि किस समय कौनसी शक्ति देश के लिये अहितकर सिद्ध सके। इसलिये जितनी संस्थायें सं[illegible] में उत्पन्न होती हैं, जितने कार्य्य [illegible] के किसी भाग में किये जाते हैं जि[illegible] प्रगतियाँ इस पृथ्वी के किसी कोने [illegible] उत्पन्न होती हैं उनकी न केवल वर्त्त[illegible] परिस्थिति पर ही विचार करना है [illegible] देखना यह है कि जो शक्ति आज [illegible] है वह कल बढ़कर कितनी हो जा[illegible] और उसका हमारे देश की भावी [illegible] पर क्या प्रभाव पड़ेगा। यही देखने [illegible] लिये तो "अस्वप्न" और "प्रमादर[illegible] होने की ज़रूरत है। यदि किसी [illegible] के निवासी अपने वर्त्तमान सुखों [illegible] कारण अचेत और असावधान [illegible] जाते हैं तो यही पृथ्वी उनको सुख दे[illegible] स्थान में दूसरों को सुख देने लगती [illegible] और उनको सुख के स्थान में दु[illegible] उठाना पड़ता है।

वेद कहता है कि विद्वानों को चा[illegible] कि अपने देश की अस्वप्न और प्रमाद[illegible] होकर रक्षा करें तभी उनको 'श्रिय' [illegible] और 'वर्चस' अर्थात् सुख और यश [illegible] हो सकता है। देश उसी का है जो [illegible] की रक्षा कर सकता है। वही देश [illegible] भोग सकता है जो उसकी रक्षा करता [illegible] अन्य को न तो यह अधिकार है कि [illegible] देश को अपना कहे और न उसे [illegible] अधिकार है कि वह देश की सम्पत्ति [illegible] भोग सके।

शंकर, रामानुज और दयानन्द

[श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

[३]



स्वामी दयानन्द आधुनिक समय के सब से बड़े दार्शनिक हुये हैं। अभी उनकी गणना दार्शनिकों में नहीं है क्योंकि आर्य्य समाज का प्रवर्तक होने के कारण संसार उनको एक मत विशेष का प्रवर्त्तक समझता है। देश-सुधार तथा समाज-सुधार सम्बन्धी जो आन्दोलन वर्त्तमान काल में इस देश में हो रहे हैं उनमें स्वामी दयानन्द का इतना प्रबल भाग है कि मनुष्यों का ध्यान भी नहीं जाता कि वह समाज या देश-सुधारक के अतिरिक्त कुछ और भी थे। वैष्णव मत के नेता होने के कारण रामानुज का भी यही हाल हुआ। उन के दार्शनिक विचार उनके साम्प्रदायिक भावों के भीतर छिप गये। उनके अनुयायी उनको दार्शनिक की हैसियत से नहीं देखते और केवल वही उनके दार्शनिक विचारों पर ध्यान देते हैं जिनको दार्शनिक सिद्धान्तों के विकास से कुछ प्रेम है। अन्य तो केवल उनको भक्तिमार्ग का अग्रगन्ता समझते हैं। स्वामी दयानन्द के विषय में एक और विचित्र बात है। जिस प्रकार शङ्कर स्वामी और रामानुज स्वामी ने प्रस्थानत्रयी अर्थात् उपनिषद, गीता, तथा वेदान्त दर्शन का भाष्य किया उस प्रकार स्वामी दयानन्द ने नहीं किया। वल्लभाचार्य्य, निंबार्काचार्य्य, शङ्कराचार्य्य और रामानुजाचार्य्य तथा माधवाचार्य्य सभी ने उपनिषद, गीता, तथा वेदान्त पर भाष्य किये। उस युग की यह प्रथा हो गई थी कि जब तक इन महान् ग्रन्थों का भाष्य न कर ले कोई आचार्य्य नहीं हो सकता था और आचार्य पदवी को प्राप्त करने के लिये कोई ऐसा सिद्धान्त लेना चाहिये जिससे उस आचार्य की विशेषता भी होजाय और वह सिद्धांत इन तीनों ग्रन्थों द्वारा पुष्ट भी हो जाय।

स्वामी दयानन्द ने इस नीति का अवलम्बन नहीं किया। यद्यपि शङ्कर और रामानुज दोनों का उद्देश्य वेद-स्थापन था परन्तु विचित्र और विचारणीय बात यह है कि इन महानुभावों ने चारों वेदों को छुआ तक नहीं। समस्त शांकर भाष्यों में यत्र तत्र वेद मन्त्रों के कुछ

संकेत मिल जाते हैं। अधिकतर तो उपनिषद को ही श्रुति मान कर प्रतिपादन किया गया है। श्री रामानुजाचार्य्य के भाष्य में गीता और उपनिषद् के अतिरिक्त एक उच्च स्थान विष्णुपुराण को भी दिया गया है। वह विना विष्णुपुराण के बात तक नहीं करते। स्वामी दयानन्द पुराणों को तो किसी गिन्ती में ही नहीं समझते। रही गीता, उसे वह केवल महाभारत का एक अङ्ग समझते हैं। इन सब से अधिक मान उनका उपनिषदों में है। परन्तु उपनिषदों को भी वह स्मृति अर्थात् परतः प्रमाण ही मानते हैं। उन के मत में उपनिषदें स्वतः प्रमाण नहीं। केवल मूल चार वेद अर्थात् ऋक्, यजु, साम और अथर्व ही स्वतः प्रमाण कहलाने योग्य हैं। इस सिद्धान्त के अनुसार आश्चर्य नहीं यदि उन्होंने पहले उपनिषदों का भाष्य न करके सब से पहले ऋग्वेद का भाष्य आरम्भ किया, और वह भी इसलिये नहीं कि उनको वेद का भाष्य करना था किन्तु इसलिये कि आधुनिक समय में वेद को समझने के साधन ही उठ चुके थे। उनका थोड़े ही दिनों पीछे शरीरान्त हो जाने के कारण यह कहा नहीं जासकता कि उनकी पूरी स्कीम क्या थी। परन्तु उन्होंने "ऋगादिवेद-भाष्य भूमिका" न लिख कर 'ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका' लिखी, इससे पता चलता है कि वेदों के उपरान्त अन्य आर्ष ग्रन्थों का भाष्य करना उनको अभिमत था।

परन्तु उनके सत्यार्थ-प्रकाश और ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह बड़े अपूर्व दार्श- थे। उन्होंने बौद्धों, अद्वैतवादियों और विशिष्टाद्वैत वादियों के विषय में प्रसङ्गों के भीतर जो टिप्पणियाँ दी हैं से उन के दार्शनिक सिद्धान्तों का भाँति स्पष्टीकरण होजाता है।

स्वामी दयानन्द न तो शङ्कर के समान अद्वैतवादी थे न रामानुज के समान विशिष्टाद्वैतवादी थे। वह द्वैतवादी या कहना चाहिये त्रैतवादी वह तीन वस्तुओं का अलग और अस्तित्व स्वीकार करते हैं अर्थात् जीव तथा प्रकृति का। उनके तीनों सत् हैं। प्रकृति सत् है, जीव और चित् है, ब्रह्म सत्, चित् आनन्द भी है। वह शङ्कर के समान नहीं कहते कि "एकं, ब्रह्म द्वितीयं किं वस्तु नास्ति"। वह यह मानते हैं कि एक ही है दो नहीं। इस अंश में अद्वैतवादी हैं। परन्तु वह नहीं कहते केवल ब्रह्म ही है और कुछ है ही वह यह नहीं कहते कि ब्रह्म ही माया जीव होगया है यह जगत् केवल भ्रम या विवर्त ही है। उनको माया के में वही आक्षेप हैं जो रामानुजाचार्य

को हैं। परन्तु वह रामानुज के समान यह नहीं मानते कि जड़ तथा चेतन जगत् या जीव और प्रकृति ब्रह्म के ही प्रकार मात्र हैं। जिस प्रकार रामानुज कहते हैं कि माया के मानने से शांकर अद्वैत खण्डित हो जाता है। उसी प्रकार स्वामी दयानन्द के मत में रामानुज का विशिष्टाद्वैत भी अद्वैत का खण्डन कर देता है। जब अद्वैत में विशिष्ट शब्द जुड़ गया तो इसका अर्थ ही क्या हुआ? विशेषता से क्या तात्पर्य हैं? यदि एक ब्रह्म ही ब्रह्म है और कुछ नहीं तो न माया के लिये स्थान है न किसी अन्य विशेष के लिये। यदि ब्रह्म से इतर कोई विशेष है तो फिर द्वैत क्यों नहीं कहते। विशिष्टाद्वैत क्यों कहते हो? फिर शुद्ध ज्ञान स्वरूप, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म के जड़ और चेतन दो प्रकार हो ही कैसे सकते हैं? रामानुज जीव का ब्रह्म के साथ एकत्व स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनको जीव के ब्रह्म से अलग लक्षण प्रतीत होते हैं। वह जीव को ब्रह्म से भिन्न मानते हैं। यदि वस्तुतः जीव ब्रह्म से भिन्न है तो वह ब्रह्म का प्रकार कैसे हुआ? . . . . . .

शंकर ब्रह्म को ज्ञान मात्र मानते हैं, जिससे ज्ञाता और ज्ञेय का द्वन्द्व मिट-जाये। रामानुज ब्रह्मको ज्ञाता भी मानते हैं। फिर क्या ज्ञाता के लिये अलग ज्ञेय नहीं चाहिये। दयानन्द कहते हैं कि यदि शंकर केवल ब्रह्म ही की सत्ता मान कर बिना माया के इस संसार की व्याख्या नहीं कर सकते और यदि रामानुज माया को न मानकर ब्रह्म की सत्ता में विशेषता मानने के लिये बाधित होते हैं तो यह दोनों सीधा-साधा द्वैत मत ही क्यों नहीं स्वीकार कर लेते? माया के मानने में अनेक कठिनाइयां हैं जिसका न केवल रामानुज ने ही उल्लेख किया है किन्तु शंकर ग्रन्थों में भी पदे पदे संकेत पाया जाता हैं। इन उलझनों को सुलझाने का प्रयत्न करने पर भी शंकर इस परीक्षा में कृतकार्य्य नहीं हुये। परन्तु रामानुज के विशिष्टाद्वैत में कठिनाइयां कुछ कम नहीं होतीं। जगत् के प्रपंच की व्याख्या करनी है। बहुत्व का कारण बताना है। विवर्त तो सर्वथा अनर्थक है। संसार में विवर्त के उदाहरण भी तो दो चार ही हैं। उन दो चार उदाहरणों से समस्त जगत् को विवर्त समझ लेना भूल है। परन्तु एक ब्रह्म से परिणामवाद के अनुसार भी जगत् नहीं बन सकता। सृष्टि से पहले क्या था? केवल ब्रह्म या उससे इतर कुछ और? रामानुज के मत में जीव और प्रकृति सुषुप्ति जैसी अवस्था में थे अर्थात् उनका आविर्भाव न था। जड़ और चेतन का भेद जाना नहीं जा सकता था। अब ज़रा इस विचार का विश्लेषण कीजिये। थोड़ी देर सोचिये कि ऐसा

कहने से हमारा क्या तात्पर्य्य है ? यदि जीव सोते जैसे थे तो क्या हानि ? थे तो ! यदि थे तो अद्वैतवाद कैसा ? यह तो सीधा द्वैतवाद हो गया। यदि 'एकोऽहं बहुस्याम' का अर्थ यह माना जाय कि ब्रह्म एक है, जीव कुछ नहीं। तो क्या जीवादि परिणाम द्वारा हो जायेंगे ? यदि कहो कि जीव आदि ब्रह्म में ही समाविष्ट हैं तो समाविष्ट का क्या अर्थ है ? क्या जीव आदि उसी प्रकार ब्रह्म के साथ उपस्थित थे। जैसे सन्दूक में किताबें रहती हैं ? या उस प्रकार जैसे वट के बीज में वट का वृक्ष रहता है। कोई अर्थ लीजिये द्वैतवाद से पिण्ड नहीं छूटता।

रामानुज कहते हैं कि जीव की स्वतंत्र सत्ता नहीं रह सकती। स्वामी दयानन्द पूछते हैं कि इसका अर्थ क्या ? क्या जीव उसी प्रकार ब्रह्म के आश्रय् है जैसे गुण गुणी के आश्रित रहता है। या बालकपन, जवानी और बुढ़ापा मनुष्य के आश्रित रहते हैं ? थोड़े से विचार से ही पता लग जाता है कि जड़ चेतन जगत् का ब्रह्म से गुण गुणी का सम्बन्ध नहीं है। एक गुणी में कई गुण तो हो सकते हैं परन्तु वह परस्पर विरुद्ध न हों। एक ही समय में जड़ और चेतन दोनों प्रकार का जगत् दृष्टिगोचर होता है। मैं पत्थर पर बैठा हुआ हूं। मैं जीव हूं और पत्थर जड़। ज्ञान की अपेक्षा से चेतन जीव और जड़ पत्थर दोनों में परस्पर विरोध है। तो यह दो वस्तुयें हैं जिनमें एक दूसरे से विरुद्ध गुण हैं। जैसे एक ही घर में लोटे में ठंडा पानी हो और दूसरे में आग। या यदि यह एक ही ब्रह्म के दो प्रकार हैं तो एक ही समय में भिन्न क्यों हुये ? जब यह ब्रह्म के आश्रित हैं ब्रह्म ही के के नियंत्रण में हैं और इनकी अपनी अलग सत्ता भी नहीं तो इस भेद का कारण बताना पड़ेगा। ब्रह्म और जीव में भेद मानकर भी फिर जीव का अलग अस्तित्व न मानना समझ में नहीं आता। इससे तो शांकर मत ही अच्छा था कि उन्होंने न भेद माना न भेद की प्रतीति को ब्रह्म के कारण माना। स्वामी दयानन्द का कहना यह है कि चाहे कुछ कितनी ही खींचातानी करो द्वैत या बहुत्व से छुटकारा मिल नहीं सकता। फिर अद्वैत शब्द तो उपनिषदों में भी मिलता है। विशिष्टाद्वैत का तो कहीं पता भी नहीं लगता। अद्वैत में कुछ भी विशेषता क्यों न करो वह सीधा द्वैत हो जाता है। यह कहना कि "है तो ब्रह्म ही एक परन्तु उसमें बहुत्व के व्यक्त होने की शक्ति है" कुछ अधिक अर्थ नहीं रखता। जब तक यह न माना जाय कि बहुत्व अव्यक्त अवस्था में नित्य ही ब्रह्म में रहता है। और यदि मान लो तो अव्यक्त का अर्थ सोचना

पड़ेगा। ऐसा कहने से क्या तात्पर्य है कि जड़ और चेतन अव्यक्त अवस्था में ब्रह्म में रहते हैं। अव्यक्तत्व का अर्थ क्या है? यदि कहो कि अव्यक्त का अर्थ यह है कि कोई उस भेद को जानने वाला नहीं। तो प्रश्न यह है कि क्या ब्रह्म भी उस भेद से अनभिज्ञ है? यदि ब्रह्म जानता है कि जड़ और चेतन भिन्न हैं परन्तु सुषुप्ति जैसी अवस्था में हैं और सिवाय मेरे कोई इस भेद को नहीं जानता, तब भी तो उनकी अलग सत्ता स्थापित हो गई। एक कमरे में छः बच्चे सो रहे हैं। माता जग रही हैं। बच्चों को पता नहीं कि हम छः हैं या एक हैं। या हैं भी या नहीं क्योंकि सुषुप्ति में हैं। परन्तु मा को तो पता है। इससे उनके अनेकत्व का खण्डन नहीं होता। यदि ब्रह्म ज्ञानी है और यदि उसका ज्ञान यथार्थ है तो वह अवश्य जानता होगा कि जड़ और चेतन यद्यपि अव्यक्त हैं तथापि भिन्न हैं। दूसरा कोई जान सके या न जान सके। शंकर स्वामी का "अन्तः प्रवेश" को आलङ्कारिक मानना साधारण सी बात है। जहाँ स्पष्ट द्वैतवाद हो और अद्वैत स्थापित करना चाहो, वहाँ आलङ्कारिक भाषा बता दो। परन्तु अलङ्कार के लिये भी तो नियम चाहिये।

(क्रमशः)

महर्षि दयानन्द जी का महत्व

(कवित्त मनहरण)

[श्री अवधबिहारी लाल बी० ए० विशारद हेडमास्टर, नेशनल हाई स्कूल, प्रयाग]

[१]

बाल-ब्रह्मचारी वीर, वेद-व्रत-धारी धीर,
योगी, तपी, उपकारी, आप ही को पाते हैं।
मानवों के सुखकारी, पशु-पत्ती-हितकारी,
ईसा, मुहम्मद, मूसा कोई न दिखाते हैं॥
ईश को है प्रजा प्यारी, खग-मृग-नर नारी,
किसी को सताओ नहीं, आप ही बताते हैं।
"अवध बिहारी" धन्य, "दयानन्द" ब्रह्मचारी,
आप ही के पद पर, शीश को नवाते हैं॥

[२]

विरजानन्द-शिष्य जी ! आप न आ जाते यदि,
शिक्षिता न होतीं कभी, भारतीय नारियाँ।
अठारहो पुराणों की, अविद्या भस्म होती क्यों,
आप जो न देते हमें, वेद-चिनगारियाँ॥
यवन ईसाई देश, हिल-मिल लूट खाते,
पोप जी बढ़ाते होते, छूत की बीमारियाँ।
मातृ भाषा का न ध्यान, देश को दिलाते आप,
करता "अवध" कैसे, काव्य-किलकारियाँ॥

[३]

कपिल, कणाद मुनि, प्राचीनों का तेज सुन,
मूर्ख कहें वह नहीं तेज के निधान थे।
पूछते थे बारबार, आजकल न कोई क्यों,
उनके आत्मज में हैं जैसे वे महान थे॥
अम्बाशंकर-पुत्र जी, भवदीय तेज देख,
लोगों ने विश्वास किया, ऋषि बुद्धिमान थे।
वेदों का विधान किया, मुनियों का मान किया,
आप तो कहे "अवध" धर्म के प्रधान थे॥

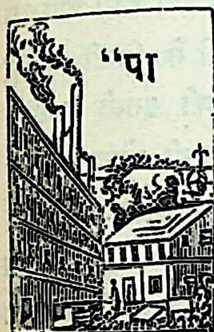
[४]

हे महर्षि दयानन्द ! आपकी कृपा से फिर,
आर्य्य देश धर्म-नाद, आज है बजा रहा।
शुद्धि का जो पाठ दिया, उसको आपने पढ़ा,
है उसी को कण्ठ कर, मुख से सुना रहा॥
आप ही का लोहा मान, वेद-मन्त्र से निखार,
लाखों बिछुड़े हुओं को, छाती से लगा रहा।
आपकी दया से देव, वस्तुतः कहे "अवध",
आर्य्य देश आर्य देश, निज को बना रहा॥

परिवर्तन

[एक सच्ची घटना के आधार पर]

[श्रीयुत " आनन्द "]



"पालागन, महाराज !"

"सुखी रहो, डिप्टी साहेब, सुखी रहो ! कहो सब प्रकार से आनन्द है ? बाल बच्चे अच्छी तरह हैं।"

"आपके प्रताप और श्रीगंगा माई की कृपा से सब आनन्द है। हम सोरों जी के स्नान को आये थे। जी में आया कि पण्डित जी के भी चरणों का स्पर्श करते चलें। पंडित जी, आपकी भागवत की कथा तो बड़ी आनन्ददायिनी होती है। आप जैसे सत्पुरुषों के दर्शन से हम गृहस्थों का भी कल्याण हो सकता है"।

"अहो भाग्य ! डिप्टी साहेब, ईश्वर चिरायु करें। आप जैसे सत्पुरुष संसार में कम दिखाई पड़ते हैं। कहिये, आपका बदरिया वाला मन्दिर तो तैय्यार हो गया न ? अब आपने अपना नाम अमर कर लिया। जो लोग सोरों के स्नान को आवेंगे वह अवश्य ही आपके मन्दिर में दर्शन करने जायंगे और न केवल आप को ही इसके बदले मुक्ति का लाभ होगा किन्तु दूसरे पुरुषों को भी इस असार संसार से पार होने के लिये सामग्री हाथ आयेगी। डिप्टी साहेब, ऐसे उच्चपद पर पहुंचकर बहुत से लोग धर्म को भूल जाते हैं। परन्तु आप जैसे सज्जनों के सहारे ही धरती थमी हुई है, कहिये कुछ दिन रहना होगा ?"

"हां महाराज ! मैं कुछ दिनों यहाँ ठहर कर श्री भागवत की कथा का अमृत पान करना चाहता हूं। आप जैसा भागवत का विद्वान् यहाँ सैकड़ों कोस के बीच में दिखाई नहीं पड़ता। मन्दिर बनवाने की मेरी बड़ी लालसा थी। मेरे पिता जी परामर्श करते करते ही इस लोक से चल बसे। मैं भी वृद्ध हुआ। मन्दिर बनाने के बराबर संसार में और कोई पुण्य है ही नहीं, आज मेरी माता जी जीवित होतीं तो मन्दिर को देख कर कितना आनन्द मनातीं"।

श्री बाबू तन्सुखराय और पं० अङ्गद-राम शास्त्री में यह बातें हो रही थीं। डिप्टी साहेब सोरों से १५ मील की दूरी पर जिला एटा के एक गाँव के रहने वाले थे। और श्री पं० अङ्गद शास्त्री सोरों के बड़े प्रसिद्ध पंडित। पं० जी की विद्वत्ता प्रसिद्ध थी। बहुत से पण्डित दूर दूर से शास्त्रार्थ करने आते और बात की बात में

मुंह की खाकर चले जाते। डिप्टी तन्सुख-राय एक प्रसिद्ध डिप्टी कलक्टर थे। आज से पचपन वर्ष पहले भारतवर्ष की वही दशा नहीं थी जो आज है। अंग्रेजी शिक्षा की बहुत कमी थी। कलकत्ता युनिवर्सिटी खुल चुकी थी। परन्तु संयुक्त-प्रान्त के लोग भी उसी युनि-वर्सिटी के ग्रेजुएट होते थे। जिस समय का हम वर्णन कर रहे हैं संयुक्त प्रान्त में एक भी ग्रेजुएट नहीं था। हमारे डिप्टी-साहेब भी अंग्रेजी नहीं जानते थे। केवल उर्दू पढ़े थे परन्तु डिप्टी कलक्टरी मिल गई थी। यह सब से बड़ा पद है जो किसी हिन्दुस्तानी को मिल सकता था। डिप्टी शब्द में अब भी कुछ आकर्षण है। भारतीय जनता 'डिप्टी' शब्द का अर्थ नहीं जानती। अङ्गरेजी का डिपटी (Deputy) शब्द मातहत अर्थात् नीचे पद का द्योतक है. डिप्टी कलक्टर का अर्थ है 'कलक्टर से नीचे।' परन्तु 'डिप्टी' शब्द भारतीय जनता में 'उच्च' का पर्य्याय हो गया है। इसीलिये 'डिप्टी साहेब' होना धरातल के स्वर्ग में पहुँच जाने के समान है। हमारे डिप्टी साहेब इस उच्च पद पर पहुँच कर बहुत बड़ी सम्पत्ति के स्वामी बन गये थे। प्रथम तो वेतन भी पुष्कल था परन्तु इसके अतिरिक्त ऊपर की आय भी कुछ कम न थी। ऐसी सम्पत्ति को प्राप्त करके डिप्टीसाहेब ने सोरों के निक मील पर बदरिया नामक स्थान में मन्दिर बनवा दिया था। श्री अङ्गद शा डिप्टी साहेब के घर के पण्डित थे, उन्हें दक्षिणा भी पुष्कल मिलती थी। आश्च ही क्या यदि पंडित जी ने डिप्टी साहे के मन्दिर निर्माण की इतनी सराह की। काम सराहना के ही योग्य था क्यों कि जिस युग का हम वर्णन कर रहे उसमें ईश्वर की बनाई हुई मूर्त्तियों इतना मान न था, जितना मनुष्यकृ मूर्त्तियों का। लोग दाने दाने को तर कर ईसाई हुये जाते थे। अनेकों मिश की नींव ही उस समय पड़ी थी पर हिन्दू दान वीरों का विश्वास था कि मि की ईंटों को खड़ा करने से ही हिन्दू जीवित रह सकेगी चाहे हिन्दू बच्चे के सब नष्ट हो जाँय।

× × ×

अङ्गद शास्त्री भागवत पुराण कथा कह रहे थे। सैकड़ों लोग अ पान कर रहे थे। यकायक एक आया और जनता के बीच में बैठ गया थोड़ी देर उसने कथा सुनी फिर उठ कहने लगा कि अमुक शब्द व्याकर की रीति से अशुद्ध है। जिस भाग बनाने वाले को संस्कृत व्याकरण भी बोध नहीं था उसकी बनाई हुई पुस् को पढ़कर आप स्वयं अपने को औ जनता को क्यों भ्रम में डाल रहे हैं।

अङ्गद शास्त्री का मुख लाल हो गया। धर्म पुस्तक का इतना अपमान और ऐसे धुरन्धर पण्डित के सामने। न जाने कितने पं० आये और बात की बात में परास्त होकर चले गये। यह कौन साधु है जो इस अभिमान के साथ उनके धर्म-ग्रन्थ की अवहेलना करता है। चिमटा हिलानेवाले साधुओं को पाण्डित्य से क्या काम? वह व्याकरण क्या जाने? "श्रीगणेशाइदं नमः" घोट लिया और बस! अङ्गद शास्त्री को वैयाकरण होने का अभिमान था। फिर आजतक किसी ने भागवत को अशुद्ध नहीं बताया था। भागवत अशुद्ध हो भी कैसे सकता था? जिसके निर्माता स्वयं साक्षात् भगवान् व्यास जी हों उसमें अशुद्धि की क्या संभावना? उन्होंने एक सूत्र पढ़ा। परंतु साधु ने तुरन्त ही उसको काट दिया।

दो चार बार वादविवाद हुआ। शास्त्री जी का क्रोध विस्मय में परिणित हो गया। ऊंट जब पहाड़ के तले होकर निकलता है तभी समझता है कि मुझसे भी ऊची कोई चीज है। शास्त्री जी ज्यों ज्यों अपने प्रति-पक्षी के मुख की ओर देखते जाते थे उसका तेज उनके भीतर प्रवेश करता जाता था। जिस साधु को उन्होंने चिमटा हिलाने वाला समझा था। वह वास्तव में व्याकरण का सूर्य्य निकला। शास्त्रीजी अवाक् रह गये। साधु के चेहरे पर साधारण सी मुस्कराहट थी। ऐसा प्रतीत होने लगा मानो यह बच्चों से बात कर रहा है। जनता भी आश्चर्य के मारे सन्नाटे में आ गई। सोरों में ऐसा पंडित आज तक नहीं आया था।

× × ×

थोड़ी देर मौन साधने के पश्चात् शास्त्री जी, ने फिर बोलने का साहस किया:—

"साधु जी, आपकी युक्तियां तो अकाट्य प्रतीत होती हैं परन्तु एक बात समझ में नहीं आती। शायद आप मेरी परीक्षा मात्र लेना चाहते हैं।"

"वह क्या?"

"मैं उत्तर न दे सकूँ यह दूसरी बात है परन्तु क्या भागवत् में भी कोई अशुद्धि हो सकती है?"

"नहीं! पण्डित जो, आप अवश्य योग्य हैं। उच्चकोटि के वैयाकरण हैं। आपकी विद्वत्ता में कोई संशय नहीं। मैं आपकी परीक्षा लेने नहीं आया किन्तु यही कहने आया हूँ कि भागवत में वस्तुतः अशुद्धियां हैं।"

"भागवत और अशुद्धि। यह कैसे हो सकता है?"

"कैसे! कैसे का क्या अर्थ? क्या भागवत वेद है?"

"वेद नहीं तो पुराण तो है?"

"तो क्या हुआ? पुराण भी नहीं, इसको तो नवीन कहना चाहिये। पुराण

तो शतपथ ब्राह्मण आदि ग्रन्थ हैं जिनमें भारतवर्ष के प्राचीन ऋषि, मुनि, याज्ञिकों तथा ब्रह्मवेत्ताओं का वर्णन है। मैं नहीं समझता कि लोग भागवत को पुराण कहकर क्यों भ्रम में पड़े हुये हैं।"

"भगवन् ! यह तो साक्षात् वेद व्यास महाराज का बनाया हुआ है! इसमें अशुद्धि कैसी ? यदि हम किसी शब्द को सिद्ध नहीं कर सकते तो यह हमारी निर्बलता है। सम्भव है आर्ष प्रयोग हो।"

"भोले पण्डित जी, आप क्या कह रहे हैं ? मुझे बहुत से पण्डितों से बात चीत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। परन्तु आप जैसे योग्य पण्डित को सोरों जैसी छोटी नगरी में देख कर आश्चर्य जनक आनन्द होता है। मैंने लोगों से आपकी प्रशंसा सुनी, इसीलिये आपके स्थान तक आया। जहाँ कहीं मुझे किसी उच्चकोटि के विद्वान् की सूचना मिलती है। मैं अवश्य उससे साक्षात्कार करता हूँ। परन्तु मुझे आपका 'आर्ष प्रयोग' सुनकर हँसी आती है। क्या आर्ष प्रयोग के लिये कोई नियम नहीं ? क्या जैसी अशुद्धियाँ मैंने आपको जताई है वह आर्ष प्रयोग की कोटि में आ सकती है ?"

"यह तो आप ठीक कहते हैं।"

"एक और बात है ! आर्ष प्रयोग होता है ऋषि प्रणीत पुस्तकों में। भाग-वत जैसी अण्ड-बंड पुस्तक किस ऋ[षि] की बनाई है जिसमें आर्ष प्रयो[ग हो] सके ?"

"व्यास भगवान की।"

"प्रमाण ?"

"सभी कहते हैं।"

"बस ! जनश्रुति ही प्रमाण है[?] चलो छुट्टी हुई। फिर कथा कहने [क्यों] बैठे हो। इस जनता के ही पीछे [चल] पड़ो। पंडितों का यह काम नहीं [कि] आँखें मीच कर जो लोग कहें [उसे] मान ल[ें]। जब से भारतवर्ष के पंडितों ने अन्ध विश्वास करना आरम्भ [कर] दिया तभी से—

"अन्धेन नीयमाना यथान्धाः"

की गति को प्राप्त हो गये। [पंडितों] का काम तत्व की खोज करना है [न कि] लोगों के पीछे दौड़ना।"

"तो क्या भागवत को व्यास [जी ने] नहीं बनाया ?"

"कौन से व्यास जी ने ?"

"वही वेद व्यास जी, जिन्होंने [महा]भारत रचा या जिन्होंने वेदों को [चार] भागों में विभक्त किया।"

"शान्तं पापं ! शान्तं पापं ! [पण्डित] जी आप क्या कहते हैं ! वेद व्यास[जी के] बाप दादों के सामने चारों वेद [उसी] प्रकार उपस्थित थे जैसे आज हैं। [इन] वेदों को पढ़ कर तो वह वेद व्यास

लाये। उन्होंने महाभारत अवश्य रचा परन्तु भागवत जैसे तुच्छ ग्रन्थ उनके रचे नहीं हो सकते।"

"फिर भागवत को किसने रचा ?"

"अजी किसी ने रचा हो। इससे क्या ? कहने का तात्पर्य्य तो यह है कि वेद व्यास ने नहीं रचा। क्या आप ऐसी छोटी बात भी नहीं देख सकते कि महाभारत की शैली और भागवत की शैली में कितना भेद है ऋषि महर्षियों का कथन कैसा सरल और स्वाभाविक होता है! यह बात भागवत में कहाँ ?"

\+ \+ \+

पन्द्रह दिन व्यतीत हो गये! अङ्गद शास्त्री की कथा बन्द है। क्यों बन्द है ? इसका कारण कोई नहीं जानता। लोगों में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ हैं। कोई कहता है कि एक साधु ने परास्त कर दिया। इसकी लज्जा से बाहर नहीं आते! कोई कुछ कहता है कोई कुछ। जितनी मुँह उतनी बातें। परन्तु सेरों में उस दिन के शास्त्रार्थ की चरचा बहुत है।

आज आधी रात का समय है। अङ्गद शास्त्री अपने कमरे में चारपाई पर पड़े करवट बदल रहे हैं। उनको नींद नहीं आ रही। ऐसी दशा उनकी कई दिन से है। उनके हृदय में अनेक प्रकार की तरङ्गें उठ रही हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कोई तूफान आ रहा हो! वह अपने चित्त को बहुत कुछ शान्त करना चाहते हैं परन्तु शान्ति के स्थान में क्रान्ति हो रही है। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ़ हो रहे हैं! उनकी समझ में नहीं आता कि क्या करें और क्या न करें। धर्म संकट में हैं। साधु से अनेक बार शास्त्रार्थ के पश्चात् भेट हुई। अब केवल व्याकरण सम्बन्धी अशुद्धियों का प्रश्न ही नहीं रहा! अब तो बात बहुत आगे बढ़ गई। क्या मान रहे थे और क्या हो गया! साधु ने निश्चय कर दिया कि भागवत न तो वेद ही है न पुराण! यह तो एक कपोल कल्पित ग्रन्थ है जिस की कथा कहनी और सुननी स्वयं अपने को और समस्त संसार को भ्रम में डालने के तुल्य है। अधर्म है! पाप है! यही नहीं! जो मूर्त्ति-पूजा धर्म का मुख्य स्तम्भ समझी जाती है वह भी पाप है! कैसी आश्चर्य-जनक बात है कि अब तक जिस बात को धर्म समझते थे उसको आज से पाप समझने लगें और ईसाइयों की भांति मूर्त्तियों को उठा कर फेंकदें! क्या सब झूठे हैं और दयानन्द ही सच्चा है ? यह क्या प्रच्छन्न ईसाई तो नहीं है जो हिन्दू धर्म को भ्रष्ट करने के लिये आ गया हो ? ईसाई तो हो नहीं सकता क्योंकि वेदों को मानता है। पुनर्जन्म को मानता है। ऋषि महर्षियों के ग्रन्थों के प्रमाण देता है। यज्ञों की

प्रतिष्ठा करता है। ईसाई ऐसा कदापि न करेगा। युक्तियां ऐसी प्रबल देता है कि मेरे सब संशय दूर हो गये। मैं अब तक अपने को पंडित समझता था परन्तु दयानन्द ने मुझे निश्चय करा दिया कि मैं सर्वथा भूल में था। समझता था कि मूर्त्ति पूजा वेदानुकूल है। दयानन्द कहता है कि एक मन्त्र भी दिखादो ! वस्तुतः हो तो दिखाऊं। मैं छल कपट क्यों करूं ? इससे मेरे आत्मा को क्या लाभ होगा ? परन्तु एक बात है ! यदि मैंने किसी से कहा कि मूर्त्ति-पूजन विहित नहीं तो सारी सोरों नगरी मेरे पीछे पड़ जायगी। आयु भर का कमाया हुआ यश मिट्टी में मिल जायगा। भोजन के लाले पड़ेंगे ! जितने यात्री, सेठ साहूकार आज पूजते हैं, मुझसे चंपत हो जायेंगे। मुंह देखना भी पसन्द न करेंगे। जिस प्रकार दयानन्द को लोग ईसाई कहते हैं। मुझे भी कहेंगे। परन्तु क्या धन और यश के लिये आत्मा का हनन कर दूं ? क्या लोगों के भय से सत्य को छिपालूं ? ऐसे पाण्डित्य से भी क्या लाभ जो आत्मोन्नति में बाधा डाले। ऐसे यश का क्या करना जो छल कपट से प्राप्त हो ? ऐसे धन को लेकर क्या करूँगा जिससे यह लोक भी विगड़े और परलोक भी। क्या शास्त्रों में नहीं लिखा कि

नहि सत्यात्परो धर्मः

यदि सत्य गया तो सब कुछ गया ! इस लिये चाहे कुछ हो मैं कल से घोषणा दूंगा कि मूर्त्ति पूजा पाप है। ... ढोंग है।

परन्तु है बड़ा दुस्तर काम! ... सोचता हूं कि ऐसा करने से भयङ्कर ... णाम होगा ! तो रोमांच खड़े हो जा... मेरे घरवाले ही मेरी निन्दा करेंगे। ... कहेंगे कि एक साधु ने इसको बहका... वह व्याकरण क्या समझें और ... प्रमाणों की क्या परवाह करें! ... क्या सच के छिपाने से मुझे ... मिलेगी ? और क्या सच के प्रकट ... से शान्ति मिलेगी ? सोरों के ... पीछे तालियां बजायेंगे। शान्ति तो ... गई न यों शान्ति न त्यों शान्ति! ... क्रान्ति ही क्रान्ति है। परन्तु एक बा... यदि सच छिपाता हूं तो मन की ... को कैसे रोकूँ ? दयानन्द कहता है ... पण्डितों को सच के लिये सर्वस्व ... देना चाहिये। यदि शान्ति और ... दोनों जाते हैं तो शान्ति को छो... सच को बचा लेना चाहिये! जहां ... है वहां सब कुछ है। शान्ति भी ... जायगी। वेद भगवान का उपदेश है

"असुर्या नाम ते लोका अन्धेन तमसा ... तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो ..."

इसलिये चाहे जो कुछ हो मैं ... मेरी ... का हनन नहीं करूँगा।

में आ गया कि मूर्त्ति पूजा पाप है अवश्य पाप है।

× × ×

दूसरे दिन प्रातःकाल एक बोरा भर पीतल मूर्त्तियों के रूप में अङ्गद शास्त्री के घर से निकली और गंगा में प्रवाहित कर दी गई।

× × ×

डिप्टी तन्सुखराय के घर पुत्र का विवाह है। इधर उधर से मेहमान इकट्ठे हो रहे हैं। बारात की तैयारियाँ हो रही हैं। उनके एक सम्बन्धी बाबू श्यामलाल ने कहा "श्री परिडत अङ्गद शास्त्री जी नहीं आये" ?

"वह नहीं आयेंगे। अब से हमारे घर के परिडत हाथरस के पंडित सदासुखलाल जी होंगे। वह आगये हैं। वही विवाह का कृत्य करायें।" डिप्टी साहेब ने मुंह बनाकर कहा।

"क्यों ? क्या शास्त्री जी नाराज़ हो गये ? आपने ऐसे योग्य पंडित को क्यों अप्रसन्न कर दिया ? आप तो उनके बड़े भक्त थे।"

"अब अङ्गद, पं० अङ्गद नहीं रहे।"

"क्यों ? क्या हुआ ?"

"वह ईसाई हो गये।"

"ईसाई ! क्या कहते हैं आप ?"

"मैं ठीक कहता हूं ! ईसाई हो गये ईसाई' अब हमारा उनसे कोई सम्बन्ध नहीं रहा। क्या तुमने नहीं सुना कि उस दिन सोरों में उन्होंने दयानन्द स्वामी नामी एक ईसाई के कहने से सब मूर्त्तियां गंगा में वहा दीं। अब वह देवतों की निंदा करते हैं। हम तो ऐसे आदमी का मुंह भी देखना नहीं चाहते !"

"बड़े आश्चर्य की बात है ऐसा बड़ा पंडित। ऐसा धर्मात्मा। ऐसा विद्वान् और यह परिवर्तन।"

"अजी गिरते क्या लगता है। बहुत पढ़ने से दिमाग खराब हो जाता है। पढ़ना तो उतना ही चाहिये जितना निभ सके। सुनते हैं दयानन्द स्वामी में जादू की शक्ति है। वह लोगों को बहका लेता है। मैं जब सोरों में था तो लोगों ने उसकी बहुत सी बातें बताईं। मैं तो नहीं गया। न उसके पास किसी को जाना चाहिये। न वह भी बहक जाय !"

"आप ठीक कहते हैं। कलियुग है। कलियुग ! कलियुग का तो प्रभाव ही यह है कि देवतों की निन्दा हो। हम नहीं समझते थे कि अङ्गद पंडित भी बहक सकते हैं। हम सबको खबरदार रहना चाहिये।"

\+ + +

अलीगढ़ के गवर्मेन्ट स्कूल के बोर्डिङ्ग हाउस में बेलोन का एक बद्रीप्रसाद नामी लड़का पढ़ता है। वह आर्य्य सामाजिक है। जबसे यह लड़का पढ़ने आया है

आर्य्यसमाज का प्रचार बढ़ता जा रहा है। यमुना प्रसाद नामी एक लड़का जो कुछ दिन पहले अचलताल पर दर्शन करने जाया करता था अब सन्ध्या हवन करने लगा है। बद्रीप्रसाद के कमरे में बारह लड़के रहते हैं। पहले यह सब तम्बाकू पीते थे। परन्तु अब इन्होंने इस बुरे व्यसन को छोड़ दिया। कमरे में प्रातःकाल ही हवन की सुगन्ध आती है। नित्य धर्म चरचा रहती है।

आज बद्रीप्रसाद के कुछ सम्बन्धी आये हुये हैं। वह बोर्डिंग हौस में ठहरे हैं। यह हैं तो बेलौन की देवी के पंडे परन्तु हैं आर्य्य सामाजिक। इनका कमरे के सभी लड़कों के साथ प्रेम है। यमुना प्रसाद का वार्तालाप में विशेष भाग होता है। उसने दो सज्जनों को सम्बोधित करके पूछा।

"आपका नाम ?"

"रामरत्न।"

"और आपका ?"

"रामरज।"

बद्रीप्रसाद ने बात काट कर कहा, "देखिये यमुना प्रसाद जी! यह दोनों महाशय ऋषि दयानन्द के प्रसिद्ध शिष्य श्री अङ्गद शास्त्री जी के सुपुत्र हैं जिन्होंने ऋषि से शास्त्रार्थ करने के पश्चात् सोरों जी में अपनी बोराभर मूर्तियों को गङ्गा में बहा दिया था।"

यमुना प्रसाद ने उत्तर दिया, "ठीक ठीक, मुझे भी कुछ याद है ?"

बद्रीप्रसाद, "तुम को याद है ? तुम तो उस समय उत्पन्न भी न हुये होगे।"

यमुना प्रसाद—"मैंने अपनी माता जी के द्वारा सुना था कि श्री अङ्गद शास्त्री जी हमारे घराने के पुरोहित थे। मेरे बाबा के बड़े भाई डिप्टी तन्सुखराय जी उनके बड़े भक्त थे। उन्होंने बदरिया में एक मन्दिर भी बनवाया था जो आज कल मौजूद है। कहते हैं कि हमारे बाबा ने अङ्गद शास्त्री को उस दिन से छोड़ दिया जब से सुना कि वह ईसाई हो गये। अब भी मेरे ताऊ अर्थात् डिप्टी साहेब के पुत्र के यहाँ हाथरस के पंडित आया करते हैं। मेरे बाबा भी कहा करते थे कि सुना गया है कि एक दया-नन्द नामी इसाई साधु आया है। जो कहता है कि मूर्तियाँ पत्थर हैं इनकी पूजा न करनी चाहिये।"

"आज यदि तुम्हारे बाबा होते तो तुमको उसी ऋषि दयानन्द का अनुयायी देखकर क्या कहते ?"

———

श्रावणी पूर्णिमा

(उपाकरण विधि)

[श्रीयुत पं. सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए० एल० टी .]



वैदिक काल में लोग वेदों का पठन पाठन करते थे और उन्हीं के मनन में अपना अधिकांश समय बिताते थे। इतर संस्कृत साहित्य का तो निर्माण हुआ ही न था फलतः लोग वेदों का ही अभ्यास करते थे। फिर परिवर्त्तन प्रारम्भ हुआ सांसारिक झगड़ों में व्यग्र रहने तथा आलस्य और प्रमाद के वशीभूत होने के कारण वेदों के पठन पाठन में न्यूनता होने लगी। कुछ विद्वान् लोगों को आवश्यकता प्रतीत होने लगी कि लोगों को वेदों के मुख्य २ विषय समझाये जांय। और इस प्रकार ब्राह्मण ग्रन्थों का निर्माण हुआ।

कालान्तर में दशा फिर बिगड़ी और उपनिषद और शास्त्रों ने उस दशा को सम्हालने का प्रयत्न किया और लोगों की श्रद्धा वेदों की ओर फिर बढ़ने लगी पर कुछ काल के पश्चात् वेदों के मनन के स्थान में शास्त्रीय उलझनों में ही विद्वान् अपना अधिक समय बिताने लगे और कुछ लोग उपनिषदों से प्रभावित होकर एकान्तवास और योगाभ्यास में मग्न हो गये। धीरे २ उपनिषदों का मुख्य उद्देश्य भी लुप्तप्राय हो गया और जिसके मन में जो आया उपनिषद् बनाने लगा और उपनिषदों की संख्या बढ़ गई।

समय ने फिर पलटा खाया और लोग आलस्य-ग्रस्त हो गये और वेद तथा वैदिक काल स्वप्नवत् दिखाई देने लगा। गाढ़निद्रा के उपरान्त कुछ लोगों को चेत हुआ और उन्होंने अपनी २ स्मृति से कुछ वैदिक विषयों पर प्रकाश डालना आरम्भ कर दिया। अब संस्कृत साहित्य स्मृतियों के रूप में हमारे सामने वृद्धि करने लगा। उपनिषदों के समान कुछ लोगों ने अपनी २ कृतियों से स्मृतियों की भरमार कर दी। कालान्तर में स्मृतियों का मुख्य उद्देश्य भी हमारी आंखों से ओझल हो गया। लोग वेदों का नाम तो जानते थे पर वैदिक मंत्रों के स्थान में उपनिषद् तथा गीता आदि के वाक्यों को ही उद्धृत करके "इति श्रुतिः" की पुकार मचाने लगे।

समय एकसा नहीं रहता। संस्कृत साहित्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया और शास्त्रों तथा उपनिषदों का स्थान काव्य

ग्रन्थों, और पौराणिक साहित्य ने ले लिया। पौराणिक कहानियों और उनकी सस्ती मुक्ति ने लोगों के चित्तों से वेदों के प्रति रही सही श्रद्धा भी उठा दी। किस को पड़ी थी कि व्यर्थ वेदों और शास्त्रों के पचड़े को लेकर बैठता। परिणाम यह हुआ कि वेदोंके स्वाध्याय की तो कौन कहे लोगों को नूतन बढ़ते हुये संस्कृत साहित्य को भी पढ़ने का पर्याप्त अवसर न मिलने लगा य यों कहिये कि सस्ती मुक्ति के सामने वेदों के बताये मार्ग पर चलना लोगों ने व्यर्थ सा ही समझा।

जब लोगों की दशा बिगड़ने लगी लोगों ने दैनिक तथा नैमित्तिक यज्ञादि कार्यों को भुला दिया और उनका जीवन वाममार्ग आदि अनेक मतमतान्तरों के रङ्ग में रंगा जाने लगा तो कुछ विचारवान् विद्वानों ने फिर करवट बदली और साधारण जनता को उनके नित्य कर्म की ओर आकर्षित किया और सारे मनुष्य जीवन को नियम-बद्ध शृङ्खला में बाँधने का प्रयत्न किया और प्रत्येक दैनिक या नैमित्तिक कृत्य में वैदिक मन्त्रों को उचित स्थान दिया। प्रत्येक आश्रम तथा वर्ण के कर्त्तव्य तथा प्रत्येक संस्कार की विधि हमारे सामने समुचित रूप से रक्खी गई। कुछ न्यूनाधिक परिवर्त्तन के साथ यह दशा कुछ काल तक रही और गृह्य-सूत्रों की बताई विधि के अनुकूल ही लोग अपने नित्यकर्मों को करने लगे। इन गृह्य सूत्रों ने जहाँ लोगों की दिन चर्या को नियम बद्ध करने का प्रयत्न किया वहाँ साथ ही साथ यह भी ध्यान रखा कि लोग वर्ष में अपना कुछ समय अवश्य केवल वेदों के ही पठन पाठन तथा स्वाध्याय में ही वितावें और एतदर्थ उन्होंने समय भी निर्धारित कर दिया।

गृह्य सूत्रों के अवलोकन से पता चलता है कि भिन्न २ पर्वों और वृहद् यज्ञादि की विधि को उन्होंने विस्तृत रूप दिया और किस प्रकार कौन पर्व मानना चाहिये, बताया। इन्हीं पर्वों में से एक पर्व श्रावणी पूर्णिमा का भी है। इस पर्व के महत्व की युक्तियों तथा सामाजिक परिवर्त्तन पर दृष्टि डालने से पूर्व यह उचित प्रतीत होता है कि यह बताया जाय कि गृह्य सूत्रों की इस सम्बन्ध में क्या राय है।

गृह्य सूत्र बताते हैं कि श्रावणी पूर्णिमा से उपाकरण विधि प्रारम्भ होकर तैषी (पुष्य) नक्षत्र (पौष मास) को समाप्त होती है। तैषी नक्षत्र के बाद ही उत्सर्जन विधि का वर्णन है। इस प्रकार यह पर्व उपाकरण विधि का प्रारम्भ काल है:—

श्रवणा पक्ष ओषधीषु जातासु हस्तेन पौर्णमास्यां वाध्यायोपाकर्मं ॥२॥

तैषी पक्षस्य रोहिण्याम् पौर्णमास्याम् वोत्सर्गः ।८

हिरण्य केशिगृह्यसूत्र । सप्तमः पटलः । पृ० ८३ ।

[भारती भवन प्रयाग पु० संख्या ६६]

श्रवणादित्येके ॥ ६२ ॥ गोभिल ३ प्रपा० २ काण्डिका ॥

(भाष्यकर्त्ता:—चन्द्रकान्त तर्कालङ्कारः— ज्यैष्ठ सामिक व्रत तृतीय भागे चोर्णे, व्रतान्ते वा ब्रह्मचारिणे ज्येष्ठ साम्नां यत् श्रवणमाचार्येण क्रियते, तस्मात् श्रवणात् प्रभृतिमृण्मयेऽश्नीयात् न च पिबेदित्येके आचार्या मन्यन्ते ॥६२॥

प्र० ३।३ काण्डः—'गोदान व्रतान्ते देव पर्वणां श्रवण विधानात् श्रवणादूर्ध्वमेवाध्ययने प्राप्ते वेदारम्भस्य कालो विधातव्यः । उपाकरणञ्च छन्दसाम् वक्तव्यम् । इति (टीकाकारः) ।

प्रौष्ठपदीं ७ हस्तेनोपाकरणम् ॥ १ ॥ प्र० ३ । का० ३ ॥

'प्रौष्ठपदो भाद्रपदः । तस्येयम् पौर्णमासी प्रौष्ठपदी । उपाकरणं प्रकृष्टग्रन्थाध्ययनम्' —इति केचित् [टीकाकारः] ।

व्याहृतिभिर्हुत्वा शिष्याणां ७ सावित्र्यनुवचनं यथोपनयने ॥२॥

आचार्याणांञ्चोदकोत्सेचनमुभयत्र ॥१२॥

आचार्याणा मन्येषाञ्चऋष्यादीनां तर्पणं कर्त्तव्यं'—(टीकाकारः)

श्रवणामेक उपाकृत्यैतमासावित्रात् कालम् कांक्षन्ते ॥१३॥

श्रवणां श्रवणयुक्ताम् श्रावणस्यपौर्णमासीं इति केचित् । कस्मात् ? 'श्रवणेन श्रावण्यां पौर्णमास्यां' इति गृह्यान्तरात् । "श्रवणाम् श्रवण नक्षत्राम्" इत्यपरे । कस्मात् ? । 'श्रवणेन श्रावणस्य' इति गृह्यान्तरात् (टीकाकारः) ।

तैषीमुत्सृजन्ति ॥ १४ ॥ 'तिष्यः पुष्य नक्षत्रम् । तद्युक्ता काचित् तिथिः सातैषी ।

तिष्ये तु छन्दसाम् कुर्यात् वहिरुत्सर्जनम् द्विजः माघमासस्य वाशुक्ले पूर्वाह्ने प्रथमेऽहनि' —मनुः ।

'श्रवणेन श्रावण्याम् पौर्णमास्याम्' इत्युपाकरणं सूत्रयित्वा, 'पौषस्य रोहिण्यां मध्यमायां वाष्टकायामध्यायानुत्सृजन्ति 'इति पौषे मास्युत्सर्गं सूत्रयाञ्चकार' ॥ (टीकाकार:)

पारस्कर गृह्यसूत्र:—पृ० ३७५ का० २

अथातोऽध्यायोपाकर्मं ॥ १ ॥ ओषधीनाम् प्रादुर्भावे श्रवणेन श्रावण्याम् पौर्णमास्या ७ श्रावणस्य पञ्चमी ७ हस्तेन वा ॥ २ ॥

..........जुहोति ॥ ३ ॥

(हरिहर) अथ पञ्चमहायज्ञानन्तरं अध्यायस्य उत्सृष्टस्य अध्ययनस्य उपाकर्म उपाकरणं व्याख्यास्यत इति शेषः । तच्चाग्निमतोऽध्यापन प्रवृत्तस्यैव भवति । छन्दस्याम्युपाकृत्याधीयीतेति वचनात् । उपाकरणस्य चावसथ्याग्नि साध्यत्वात् निरग्नेर्नाधिकारः'

स्थालीपाकं श्रपयित्वाऽक्षतधानाश्चैक कपालम् पुरोडाशं धानाम् भूयसीः पिष्ट्वाऽऽज्य भागाविष्ट्वाऽऽज्याहुती जुहोति ॥३॥

'तच्च श्रवणमासस्य पञ्च दश्याम् कर्त्तव्यम्' —(हरिहरः)

पौषस्य रोहिण्यां मध्यमायाम् वा ऽष्टकायामध्यायानुत्सृजेरन् ॥ १ ॥ २ का० । १२ क०

इन गृह्य-सूत्रों के प्रमाणों से हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि श्रावणी का महत्व।

१—वेदों का श्रवण करने और औरों को सुनाने के कारण है।

२—श्रावण की पूर्णिमा पर यह पर्व मनाया जाता है।

३—उपाकरण विधि इस पर्व का मुख्य हेतु है।

४—यज्ञ करके केवल उत्कृष्ट ग्रन्थों (वेदों) का अध्ययन करना ही उपाकर्म विधि कहलाती है। यज्ञ करना और वेदों का स्वाध्याय करना ही मुख्य तथा आवश्यक है।

५—उपाकर्म विधि श्रावण पञ्चमी, अथवा पौर्णमासी अथवा भाद्रपद पौर्णमासी अथवा हस्त नक्षत्र से प्रारम्भ होकर तैषी (पुष्य) नक्षत्र, अथवा पौषमास के रोहिणी नक्षत्र अथवा माघ के शुक्ल पक्ष तक समाप्त होती है।

६—उत्सर्जन विधि के बाद ही इतर साहित्य का अध्ययन करना चाहिये।

७—इसमें वही कृत्य करना पड़ता है जो कि उपनयन संस्कार में।

८—आचार्य तथा ऋषि आदिकों सेवा आदि से सन्तुष्ट करना चाहिये।

इससे स्पष्ट है कि इस पर्व का सम्बन्ध विशेष रीत्या वेदाध्ययन से ही है।

अब हम आजकल की लौकिक प्रथा तथा युक्तियों को लेते हैं।

१—लोग कहते हैं कि विजया दशमी क्षत्रियों का, दीप-मालिका वैश्यों का, होलिका, (संवत्सरेष्टि) सब जनता का, विशेष पर्व है। उसी प्रकार श्रावणी पौर्णिमा ब्राह्मणों का पर्व दिवस है। इसी लिये यज्ञोपवीत परिवर्त्तन विशेषरीत्या इस अवसर पर किया जाता है। ब्राह्मण ही नहीं अपितु द्विजमात्र यज्ञ करके यज्ञोपवीत धारण करते हैं।

८—अभी दाक्षिणात्यों में यह प्रथा है कि इस पर्व पर यज्ञ करके पर्याप्त संख्या में यज्ञोपवीतों को चन्दन केशर आदि से रङ्गकर वर्ष भर के प्रयोग के लिये रख लेते हैं और यदि यज्ञोपवीत बदलते हैं तो इन्हीं में से लेते हैं और नहीं। वे यज्ञ करते हैं। और ऋग्वेदी ऋग्वेद का, यजुर्वेदी यजुर्वेद का, सामवेदी सामवेद का, और अथर्ववेदी अथर्ववेद का, पाठ करते हैं और सुनाते हैं और वर्ष भर के लिये यज्ञोपवीत रख लेते हैं।

३—बड़ौदा में वेदों की परीक्षा भी इसी मास में ली जाती है और इसी पौर्णमासी को उत्तीर्ण छात्रों को दीक्षायें दी जाती हैं।

४—आर्य्यों की पर्व पद्धति भी इन्हीं गृह्य सूत्रों के आधार पर यज्ञ करने के उपरान्त वेदों के स्वाध्याय का नियम बताती है और यही कारण है अब आर्य प्रतिनिधि सभाओं ने इसी अवसर पर विशेषरीत्या वैदिक सप्ताह मनाने की आयोजना की है कि जिससे इस अवसर पर विशेष रूप से लोग वेदों का स्वाध्याय करें। वेदों का उपदेश हो और वैदिक मंत्र ही हमारे कर्णगोचर हों और हम 'भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम' को चारितार्थ कर सकें।

मेरा विचार तो यह है कि यह पर्व पुराने स्नातकों के दीक्षान्त संस्कार तथा नवीन ब्रह्मचारियों के गुरुकुल प्रवेश का समय है। यद्यपि पुरानी गुरुकुल प्रथा अब अधिक प्रचलित नहीं हैं तथापि हमारा विशेष कर आर्य्य समाजिकों का यह कर्त्तव्य है कि वे इस बात पर विचार करें कि यदि हम इसको वैदिक सप्ताह कहते हैं तो किस प्रकार इसको वास्तविक बनाने का प्रयत्न करें। जिस प्रकार इस से पूर्व समय में भिन्न भिन्न परिवर्त्तनों पर अनेकानेक आचार्यों ने वैदिक साहित्य के उभारने का बीड़ा उठाया था इसी प्रकार इस आधुनिक काल में भी जब कि पाश्चात्य सभ्यता से हमारा भारतवर्ष तथा समस्त संसार प्रभावित हो रहा था और लोगों को वेदों के प्रति घृणा दिलाई जारही थी प्रातः स्मरणीय महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आचार्य ऋण चुकाने के हेतु वेदों के उद्धार का कार्य अपने हाथों में लिया और वैदिक नाद की गूँज समस्त संसार में फैला दी।

ऋषि ने वही सम्पत्ति अब हमको सौंपी है। पर हम क्या करते हैं? साधारण यज्ञ करना, कुछ भजनों का सुनना, यदि व्याख्यान दिलचस्प कोई हो तो सुन लेना या उपनिषदादि की कथा हुई तो थोड़े से समय के लिये सुन लेना और वेद प्रचार के लिये चन्दा (दान नहीं) दे देना बस, प्रतिवर्ष यही क्रम रखना। वेद पाठ के सम्बन्ध में तो दस वर्ष पहिले जो हम को अशुद्ध सन्ध्या के मन्त्र याद थे वे ही अब भी हैं। उन्नति हमने किञ्चितमात्र भी नहीं की। वेदों का तो नहीं, पर हाँ "वेदों का डङ्का आलम में बजवा दिया ऋषि दयानन्द ने" का नाद अवश्य दूसरों को सुनाते हैं और अब हमने भी जय जयकार के नाद लगाने आरम्भ कर दिये हैं। क्या वैदिक सप्ताह का यही उद्देश्य है? वस्तुतः देखा जाय तो जिस समाजिक सुधार के काम को आर्य्य समाज ने अपने हाथों में लिया था उस को तो अब लोगों ने भी अपनाना प्रारम्भ कर दिया है अब यदि कोई कार्य्य बचा है केवल वेदों का उपदेश तथा वेदों के

स्वाध्याय ही है। वैदिक सप्ताह अथवा श्रावणीपर्व हमारे लिये तभी उपयोगी होगा जब कि प्रत्येक आर्य्य इस बात का व्रत कर ले कि मैं प्रतिदिन कुछ थोड़ा बहुत वेद के मन्त्रों का पाठ तथा उनके अर्थों पर विचार करने का प्रयत्न करूँगा प्रति वर्ष पर्व पर वह विचारे कि कितना कार्य मैंने गत वर्ष इस सम्बन्ध में किया और कितना करना है। यदि इस प्रकार का कोई क्रम नहीं रक्खा जाता तो हमारा वैदिक सप्ताह का मनाना केवल ढोंग मात्र ही रह जाता है।

आओ, परमात्मा से प्रार्थना करें कि वह जगदीश्वर हमको बल दे, शक्ति दे। साहस दे और मेधा बुद्धि दे जिससे कि हम ऋषि के कार्य को पूरा कर सकें। संसार इस समय आगे बढ़ा जा रहा है। वैदिक साहित्य रखते हुये भी हम पिछड़े हुओं में हैं। याद रखना चाहिये कि श्रावणी पर्व या वैदिक सप्ताह से वैदिक पाठ का आरम्भ होता है और यह स्वाध्याय न्यून से न्यून माघ तक तो अवश्य रहना चाहिये। ऐसा ही गृह्य-सूत्र-कारों का मत है। परमात्मा हमको सुबुद्धि दे कि हमारी श्रद्धा वेदों के प्रति उत्तरोत्तर बढ़ती जाय और हम संसार को दिखा सकें कि किस प्रकार पर्व मनाने चाहिये।

यहाँ यह कहना अनुचित न होगा कि यदि प्रत्येक विद्वान् या विचारवान् व्यक्ति, अधिक नहीं तो कम से कम दो चार को ही अपने २ मुहल्ले में इकट्ठा करके वेदों का पाठ और स्वाध्याय प्रारम्भ करदे तो कुछ काल बाद हम यह अनुभव करेंगे कि उन दो चार के ही हृदयों में वेदों के प्रति श्रद्धा बल पकड़ गई है और हमारे चारों ओर का वायु मंडल वैदिक सुगन्ध से सुगन्धित हो गया है। और उससे हम ही नहीं, अपितु हमारे सहवर्ती भी लाभ उठा सकते है। इस प्रकार का कार्य क्रम बनाने से न तो हमको अधिक उपदेशकों की ही आवश्यकता पड़ेगी और न अधिक धन की। न इससे उत्सवों की भांति हम को कुपच का रोग ही लगने का भय है। वैदिक सप्ताह हो या वार्षिक उत्सव, दो तीन दिन तक इतना भोजन दिया जाता है कि कुपच हो जाता है। इस क्रम में ऐसा कोई भय ही नहीं है। तभी हमारा वैदिक सप्ताह सफल होगा। अथवा नहीं।

'तन्मे मनः शिव संकल्पमस्तु'। 'श्रद्धां प्रातः हवामहे श्रद्धां माध्यन्दिनं परि' ऋ० मं १०। सू०। १५। मं ५। 'अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि। व्रतं च श्रद्धां चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितो अहम्। यजुः अ० २०। २४। हे परमात्मन्। मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो। हमारे हृदयों में आपके तथा आपके दिये वैदिक ज्ञान के प्रति सायं प्रातः तथा-दिन भर श्रद्धा बनी रहे। हे व्रतों के पालन करने वाले प्रभो! मेरा व्रत पूरा हो, मेरी श्रद्धा में न्यूनता न हो, मुझे यज्ञ में दीक्षा मिल चुकी है। मैं व्रत को पालन कर सकूँ। यही आपसे प्रार्थना है।



लाला लाजपतराय

"स्वामी दयानन्द मेरे गुरु हैं, मैंने संसार में केवल उन्हीं को एक मात्र अपना गुरु माना है। वे मेरे धर्म के पिता हैं और आर्य्य-समाज मेरी धर्म की माता है।"

"जब मेरा आर्य्य-समाज से सम्बन्ध हुआ, मैं अठारह वर्ष का बालक था। मैंने अपने अवकाश का उत्तम समय इसी संस्था में बिताया है। मैंने इसके बहुत से कार्यों में अग्रभाग लिया है। मुझमें यदि कोई गुण हैं तो वे आर्य्य-समाज के प्रभाव से आये हैं।"

—लाला लाजपतराय।

लालाजी ने जब जन्म लिया तो एक स्त्री ने आकर आपके पिता से कहा "तुम्हारे बेटा तो हुआ है, परन्तु वह कुछ बेडौल सा है, उसका रंग तो बड़ा काला कलूटा सा दिखाई देता है।" उस स्त्री को क्या पता था कि जिस बालक के विषय में में वह कह रही है, वह भारत का एक रत्न होगा। उसकी इतनी प्रतिभा होगी जिसके सामने अच्छे से अच्छे पुरुषों की ज्योति भी मन्द पड़ जायगी। जो भारत का गौरव पाश्चात्य देशों में बढ़ावेगा।

× × ×

जन्म

२८ जनवरी सन् १८६५ ई० को लाला लाजपतराय का जन्म ज़िला फीरोज़पुर के एक ग्राम ढोडिकी में हुआ। इस समय आपकी माता अपने पिता के यहां थीं। लालाजी के पिता पूज्य लाला राधाकृष्ण जी थे। आपका वंश एक साधारण श्रेणी का था। लाला राधाकृष्ण जी उर्दू फ़ारसी के बड़े ज्ञाता थे और पंजाब के शिक्षा विभाग में अध्यापन का कार्य करते थे। अपनी योग्यता के कारण आपने बड़ी ख्याति उपलब्ध कर ली थी। १५ वर्षों तक अध्यापन कार्य करने के उपरान्त सन् १८८८ ई० में आप ने पेन्शन ले ली। अस्सी वर्ष की अवस्था को प्राप्त होकर आपका देहावसान ११ दिसम्बर १९२३ को हुआ। इस बड़े जीवन में लाला राधाकृष्ण ने अपने पुत्र की ख्याति को अपने नेत्रों से

देखा। इसके अतिरिक्त पुत्र के जेल जाने, देश से निकाले जाने का दुःख भी आपको सहना पड़ा। यहां तक कि मृत्यु के समय भी वे अपने प्रतिभाशाली पुत्र के दर्शन न कर सके।

लाला राधाकृष्ण अध्यापक थे, इस कारण उन्होंने स्वयं अपने पुत्र को आरम्भिक शिक्षा दी। लाला लाजपतराय का स्वास्थ्य बचपन में अच्छा न था, तिसपर भी वे बड़े परिश्रमी थे तथा अपने सहपाठियों में आपका बड़ा मान रहता था। १८७७ ई० में आपने मिडिल परीक्षा उत्तीर्ण की और इसमें आपको छात्रवृत्ति भी मिली। इसके बाद दिल्ली के गवर्नमेंट स्कूल में अंग्रेजी की शिक्षा पाने लगे। इस समय लाला जी को दो काठिनाइयां का सामना करना था। एक तो आपका स्वध्य अच्छा नहीं रहता था, इसके अतिरिक्त धनी न होने के कारण आर्थिक कष्ट भी कुछ कम न था। परन्तु अपनी तीव्र बुद्धि के सहारे आपने कलकत्ता और पंजाब यूनिवर्सिटी की प्रवेशिका परीक्षा पास की। इसमें भी आपको मिडिल की तरह छात्रवृत्ति मिली और एफ. ए. की पढ़ाई आपने आरम्भ कर दी। एफ.ए. के साथ आपने मुख्तारी पढ़ना आरम्भ कर दिया। मुख्तारी परीक्षा में सफल होने पर आपने कालिज छोड़ दिया और जीवन में उत्तीर्ण होगये।

× — + ×

जगरांव में धूम

सन् १८८३ ई० में जगरांव [illegible] लाला जी ने मुख्तारी आरम्भ की। [illegible] समय आपकी अवस्था केवल १८ [illegible] की थी। १८ वर्ष जीवन के यों ही [illegible] जाते हैं और ऐसों की गणना [illegible] में ही की जाती है। पर अपूर्व प्रति[illegible]शाली लोगों के लिये वयस कोई वस्तु न[illegible] इस छोटी सी अवस्था में ही उन्होंने ब[illegible] ख्याति उपलब्ध कर ली। यहाँ के मुन्[illegible] राय नारायणदास एम. ए. आपसे [illegible] प्रेम करते थे। उन्होंने देखा कि [illegible] प्रतिभाशाली पुरुष इस छोटे से [illegible] पर रह कर अपने भविष्य को संकु[illegible] कर रहा है। इसलिये सलाह [illegible] किसी बड़े नगर में जाकर वकालत [illegible] लला जी रोहतक चले आये और यहाँ [illegible] आपने वकालत की परीक्षा पास कर ली [illegible] मुख्तार वकील हो गया। इस [illegible] आपकी आय २५०) मासिक हो गई [illegible] वकील हो जाने पर आप हिसार [illegible] आये। यहाँ पर आय की ख्याति [illegible] बढ़ गई और बहुत सा रुपया भी [illegible] लिया। १८९८ ई० के उपरान्त [illegible] लाहौर के चीफ़ कोर्ट में वकालत [illegible] लगे थे।

× × ×

आर्यसमाज के साथ संसर्ग

महर्षि दयानन्द के पञ्जाब में आते ही ज्योति जगमगा उठी। लोगों ने स्वामी जी के आगमन को धन्य माना और समस्त पञ्जाब के लोग आर्यसमाज की ओर आकृष्ट हो गये। लाला जी के समान प्रतिभाशील उस प्रभाव से किस प्रकार वंचित रह सकते थे। ऋषि की पवित्र ज्योतिर्मयी मूर्ति लोगों के हृदयों को बिना परिश्रम के ही आकृष्ट कर लेती थी। सन् १८८२ ई० में लाला जी के विचार पूर्ण रूप से परिपक्व हो गये और उन्होंने अब आर्य्य समाज का कार्य्य करना आरम्भ कर दिया। जगराँव, रोहतक तथा हिसार तीनों स्थानों में लाला जी के पहुँचते ही आर्य्यसमाज की स्थापना आरम्भ हो गई। हिसार में लाला जी के घर पर ही आर्य्यसमाज हुआ करती थी यहाँ पर "हिन्दी और संस्कृत स्कूल" भी आपके उद्योग से खुल गये। लाला जी में कार्य्य करने की बड़ी शक्ति थी। लीडर होने के सभी गुण उनमें विद्यमान थे। वकालत चल जाने पर उनका बहुत सा समय तथा धन आर्य्य समाज की सेवा में ही लगता था।

× × ×

डी० ए० वी० कालिज की स्थापना

ऋषि की मृत्यु पर उनके स्मारक स्वरूप एक कालिज खोला गया। कालिज के तीन सहपाठियों पं० गुरुदत्त, महात्मा हंसराज तथा लाला लाजपतराय ने डी० ए० वी० कालिज की नींव डाली। कालिज की स्थापना का विस्तृत विवरण पं० गुरुदत्त जी तथा महात्मा हंसराज जी की जीवनी में आ चुका है।

× × ×

दुःखियों के बीच में

सन् १८९६ ई० में सारे देश में बहुत बड़ा अकाल पड़ा। बङ्गाल, सी० पी० और राजपूताने में इसका सबसे अधिक प्रकोप था। देश भर में हाहाकार मच गया। ईसाइयों के मिशन ऐसे समय धन लेकर पहुंच गये। प्राणों के भय से लोग अपने धर्म को छोड़ कर ईसाई होने लगे। आर्य्यसमाज ऐसे अवसर पर किस प्रकार शान्त रह सकता था। लाला जी ने स्थान २ पर घूम कर "रिलीफ़ फंड" के लिये धन एकत्र किया। डी० ए० वी० कालिज के विद्यार्थी तथा प्रोफ़ेसर देश सेवा के लिये निकल पड़े।

× × ×

लालाजी दुर्भिक्ष कमीशन के सामने

१९०१ ई० में दुर्भिक्ष (Famine) कमीशन के सामने लाला जी गवाही देने गये। आपने सरकार की इस नीति का कि अनाथ बच्चे मिशन के सुपुर्द कर दिये जांय बड़ा घोर विरोध किया।

आपने कहा कि बच्चे ईसाइयों को न दे जाकर हिन्दुओं को दिये जाने चाहिये। राजपुताने के एक दुर्भिक्ष में ८० हजार अनाथ बच्चे ईसाई होगये थे। पर लाला जी के उद्योग के कारण अब यह होना असम्भव हो गया है।

+ × +

कांगड़े का भयंकर भूचाल

अप्रेल १९०५ ई० में कांगड़ा प्रान्त में भयंकर भूचाल आया। हजारों मकान गिर पड़े और सहस्रों मनुष्य घायल होगये। इस आपत्ति के समय लाला जी से न रहा गया और उन्होंने दुर्भिक्ष के समान इसमें भी लोगों की बड़ी सेवा की। आर्य्य समाज के कार्य्य-कर्त्ता घायलों की मरहम पट्टी करने तथा भोजन करने के लिये पहुंच गये। इसमें कार्य्य करने के कारण लाला जी की ख्याति देश व्यापी होगई।

+ + +

राजनैतिक क्षेत्र में

लालाजी ने अब अपने कार्य्यक्षेत्र को बहुत विस्तृत कर दिया। देश प्रेम उनकी नस नस में व्याप रहा था। सन् १८८८ ई० में कांग्रेस का चौथा अधिवेशन प्रयाग नगर में हुआ। लाला जी इस अधिवेशन में सम्मिलित हुये और इसके उपरान्त प्रत्येक अधिवेशन में आप उपास्थित होते रहे। सन् १९०४ ई० की कांग्रेस ने एक डेपुटेशन विलायत जाने के लिये बनाया माननोय गोखले के साथ लाला जी भी विलायत गये। सन् १९०६-७ ई० में बंग-विच्छेद के कारण देश में एक हलचल मचगई और सरकार ने लाला जी को देश के बाहर भेज देना ही अधिक उपयुक्त समझा। लाला जी मण्डाले भेज दिये गये। परन्तु पांच महीने बाद ११ मई १९०७ ई० को रिहा कर दिये गये। मण्डाले से लौटने पर आपने लाहौर में डी० ए० वी० कालिज के लिये अपील की। इस समय लोग लाला जी के व्याख्यान को सुनने के लिये एक बड़ी संख्या में आते थे। इसलिये बहुत सा दान डी० ए० वी० कालिज को मिला।

+ + +

इग्लैंड और अमरीका

लाला जी कई बार इग्लैंड गये। इग्लैंड देश में आपने भारत के हित के लिये बहुत से व्याख्यान दिये। इसी स्थान पर सन् १९१४ ई० में आपने "दी आर्य्य समाज" नामक एक पुस्तक लिखी और दयानन्द-कालिज-दिवस बड़े धूमधाम से मनाया। यहां से आप अमरीका गये। जर्मनी के साथ युद्ध छिड़ जाने के कारण आपको २० फरवरी १९२० तक भारत में आने की आज्ञा नहीं मिली। भारत में असहयोग आन्दोलन में भाग

होने के कारण आपको १८ महीने की सज़ा हो गई, पर स्वास्थ्य ख़राब हो जाने के कारण १६ अगस्त १९२३ ई० को आप छोड़ दिये गये।

\+ + +

अछूतोद्धार सभा

भारत के अछूतों की अवस्था को सुधारने के लिये लालाजी ने बड़ा कार्य्य किया। हज़ारों रुपये एकत्र करके उनकी शिक्षा के लिये पाठशालायें खोलीं, कुएँ बनवाये। एक अछूतोद्धार सभा का आपने निमाण किया जो इस समय भी कार्य्य कर रही है।

\+ + +

देहावसान

लाला जी का स्वास्थ्य ख़राब था तिस पर कार्य्य में किसी प्रकार की कमी नहीं हुई। राजनैतिक क्षेत्र में अन्तिम समय तक आप डटे रहे। साइमन कमीशन का विरोध करने के लिये ३० अक्टूबर १९२८ को लाहौर में जलूस निकाला गया। पुलीस ने लाला जी की छाती पर डंडे से वार किये। इसी समय से आपकी अवस्था ख़राब होती गई और १७ नवम्बर को अपनी कीर्त्ति को छोड़ लाला जी चल बसे। आपकी मृत्यु पर महात्मा हंसराज जी ने लिखा था "ग़ज़ब हो गया! लाला जी की मृत्यु ऐसी क्षति नहीं है जिसकी पूर्त्ति हो सके। लाला जी जैसे बहुत कम पुरुष संसार में जन्म लेते हैं, जो दूसरों के लिये जीवनोत्सर्ग करते हैं। लाला जी मुझसे आठ मास छोटे थे। उनकी मृत्यु से जाति और देश की महान् क्षति हुई है।"

\+ + +

साहित्य सेवा

लाला जी समाजिक तथा राष्ट्रीय नेता होने के अतिरिक्त साहित्य सेवी पुरुष थे। इतिहास से उन्हें विशेष प्रेम था। उन्होंने कुछ काल तक डी. ए. वी. कालिज में इतिहास का अध्यापन भी किया था। लाला जी ने कुल छोटी बड़ी २६ पुस्तकें लिखी थी। उनमें मुख्य आर्य्यसमाज, दुःखी भारत (जो मिस मेयो के उत्तर देने के लिये लिखी थी) भारतवर्ष का इतिहास; मेज़िनी, गेरीबाल्डी, अशोक, शिवाजी, दयानन्द गुरुदत्त और कृष्ण की जीवनियां विशेष रूप से उल्लेखनीय है। आपने अनेकों पत्रों का भी सम्पादन किया था। आर्य्य गज़ट के सम्पादक कुछ दिनों रहे थे। अन्तिम समय में अंग्रेजी में पीपुल (People) नाम का पत्र सम्पादन करते थे।

× × ×

महान वक्ता

लाला जी की लेखनी जितनी ज़ोरदार थी उतनी ही उनकी वक्तृतायें

प्रभावशाली हुआ करती थी। अंग्रेज़ी और हिन्दुस्तानी दोनों ही भाषाओं में वे घंटों तक बड़ा रोचक तथा हृदयग्राही व्याख्यान दे सकते थे। सन् १९८८ ई० की कांग्रेस में प्रथमवार जब वे बोले तो एक पत्र ने लिखा था।

"To hear this very young man of short stature is to be agreeably surprised. Who could a few minutes before believe that he was capable of so much...... He gave a fair promise of a first rate speaker."

"इस छोटे क़द वाले नवयुवक की वक्तृता सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। कुछ मिनिट पहले कौन जानता था कि इसमें इतनी योग्यता है। वे प्रथम श्रेणी के होनहार वक्ता हैं।"

२३ वर्ष की अवस्था में इतनी प्रशंसा की गई थी। अन्तिम जीवन में उनके समान कोई भी वक्ता देश में न था। कुछ लोगों का यह विचार है कि उनकी गणना संसार के बड़े वक्ताओं में की जा सकती है।

ब्राह्मण की गौ

अंक ४ से आगे

[समालोचनात्मक]

तीक्ष्णेषवो ब्राह्मण हेतिमन्तो, यामस्यन्ति शरव्यां न सा मृषा। अनुहाय तपसा मन्युना चोत, दूरादव भिन्दन्त्येनम् ॥

(हेतिमन्तः) इस हृदयरूपी धनुष वाले (तीक्ष्णेषवः) और इन तपःतीक्ष्ण बाणों वाले (ब्राह्मणाः) ये ब्राह्मण (यां शरव्यां अस्यन्ति) जिस बाणसमूह को छोड़ते हैं (न सा मृषा) वह कभी चूकता नहीं। (तपसा मन्युना च) तप से और मन्यु से (अनुहाय) पीछा करके वे इस तरह (एनं) इस देवपीयु को (दूरसे) दूर से ही (अव भिन्दन्ति) भेद देते हैं।

ये सहस्रमराजन्नासन् दशशता उत। ते ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा वैतहव्याः पराभवन् ॥

(ये सहस्रं अराजन्) जो सहस्रों पर राज्य करते थे (उत दशशताः आसन्) और स्वयं सैकड़ों थे (ते वैतहव्याः) वे वीतहव्य 'राष्ट्रयज्ञ की कर रूपी हवि को खा जाने वाली) सरकार के कर्मचारी लोग (ब्राह्मणस्य गां जग्ध्वा) ब्राह्मण की

वाणी को खा जाने के कारण (पराभवन्) पराभूत हो गये।

गौरेवतान् हन्यमानावैतहव्यां अवातिरत ये केसरप्राबन्धायाश्चरमाजा मपेचिरन् ॥

(ये) जो वैतहव्य (केसरप्राबन्धायाः) सुख प्रसार के लिये बन्धन रहित इस वाणी की (चरमाजां) अन्तिम चेतावनी को भी (अपेचिरन्) पचा गये, हजम कर गये अर्थात् उसे भी नहीं सुना तो (तान् वैतहव्यान्) उन वैतहव्यों को (हन्यमाना गौः एव) मारी जाती हुई ब्राह्मणवाणी ने ही (अवतारित्) परास्त कर दिया।

एकशतं ता जनता या भूमि र्व्यधूनुत। प्रजा हिंसित्वाब्राह्मणी मसंभव्यं पराभवन् ॥

(ताः जनताः एकशतं या भूमिः व्यधूनुत) वह जनसमूह सैकड़ों का था जिसे कि भूमि ने कम्पित कर दिया। (ब्राह्मणीं प्रजां हिंसित्वा) ब्राह्मण की प्रजा को सताने के कारण वे वैतहव्य (असम्भव्यम्) विना सम्भावना के ही पराभवन्) परास्त हो गये।

देवपीयु चरति मर्त्येषु, गरगीर्णो भवत्यस्थिभूयान्। यो ब्राह्मणं देवबन्धुं हिनस्ति, न स पितृयाणमप्येति लोकम् ॥

(देवपीयुः) दैवभाव का द्वेषी मनुष्य (मर्त्येषु गरगीर्णः चरति, अस्थिभूयान् भवति) लोगों में विष पिये हुये की तरह फिरता है और उसकी तरह हड्डी हड्डी वाला हो जाता है। (यः) ऐसा जो देवपीयु (देवबन्धुं ब्राह्मणं हिनस्ति) दैवभाव के पालक ब्राह्मण का हिंसन करता है (सः पितृयाणं लोकं अपि न एति) वह पितृयाण लोक को भी नहीं प्राप्त होता।

अग्नि र्वै नः पदवायः सोमो दायाद उच्यते। हन्ताभिशस्तेन्द्रस्तथा तद् वेधसो बदुः ॥

(अग्निः वै नः पदवायः) अग्निरूप प्रभु निश्चय से हमारा आगे ले जाने वाला पथप्रदर्शक है और (सोमः दायादः उच्यते) सोमरूप प्रभु हमारा दायाद है, (इन्द्रः अभिशस्ता हन्ता) इन्द्ररूप प्रभु हमारी हिंसा से रक्षा करने वाला है [तत् तथा वेधसः विदुः] सचमुच इसी तरह ज्ञानी ब्राह्मण लोग अनुभव करते हैं।

इषुरिव दिग्धा नृपते पृदाकूरिव गोपते। सा ब्राह्मणस्येषुर्घोरा तया विध्यति पीयतः॥

(नृपते) हे मनुष्यों के पालक राजा (दिग्धाः इषुः इव) ब्राह्मणवाणी विषबुझे तीर का काम करती है, (गोपते) हे गौ के पालक राजा (पृदाकूः इव) ब्राह्मणवाणी सर्पिणी की तरह हो जाती है। (सा ब्राह्मणस्य घोरा इषुः, तया पीयतः विध्यति) ब्राह्मण का उसकी वाणी ही उत्कट हथियार है जिससे कि वह देवहिंसकों का वेधन कर देता है।



मद्रास प्रान्त में ऋषि का मिशन

पाठकों को यह सुन कर बड़ी प्रसन्नता होगी। कि सुदूर वर्त्ती प्रान्तों में भी वैदिक धर्म की दुन्दुभि बज रही है, जनता में ऋषि दयानन्द के सिद्धान्त फैल रहे हैं। मद्रास प्रान्त में श्री पंडित एम० जे शर्मा सन् १९१६ ई० से बड़ी संलग्नता के साथ इस कार्य्य में उद्योग कर रहे है। पं० एम० जे० शर्मा बड़ी धुन के पुरुष हैं और अकेले बिना धन की सहायता के भी उन्होंने अपने कार्य्य में किसी प्रकार की ढील नहीं डाली है।

इस तामिल देश में हिन्दू समाज इस समय बड़े संकट में है। साढ़े तीन करोड़ हिन्दू भाई ईसाई तथा मुंसलमानों के हाथ अपने धर्म को तिलांजलि दे रहे हैं। हिन्दुओं में सामाजिक कुरीतियां ऐसी प्रचलित होगई हैं जिनके कारण दुःखी हिन्दू अन्य धर्म को ग्रहण करना अधिक उपयोगी समझते हैं।

इस तामिल प्रांत में अछूतों को कुत्तों से भी नीच देखा जाता है। कुत्तों का सन्मान भी दिया जाता है और इन बेचारे अछूतों को पेड़ तक की छाया में खड़ा होने का अधिकार नहीं हैं क्योंकि इनके खड़ा होने से पेड़ अशुद्ध हो जायगा। यहां तक कि अगर किसी ब्राह्मण के घर में आग लग जाय चाहे घर का सब सामान जल कर राख हो जाय लेकिन बेचारे इन अछूतों को आग बुझाने का भी अधिकार नहीं है। क्योंकि इनके आग बुझाने से ब्राह्मण देवता का मकान भ्रष्ट हो जायगा। यहां तक नहीं अगर किसी अछूत को किसी चीज़ की जरूरत हो तो वह दुकान से कम से कम ४० गज के फ़ासले पर खड़ा होगा उसको यह बोलने का अधिकार नहीं है कि मुझको यह चीज़ चाहिये। जिस समय दुकानदार की दुकान पर कोई ग्राहक न रहेगा उस वक्त दुकानदार

इस विचारे अछूत से यह पूछने की जरूर कृपा करेगा कि बोल क्या चाहिये तब यह विचारा अछूत वहीं से बोलेगा कि कपड़ा या और जिस चीज की जरूरत होगी- फ़र्ज करो इस बिचारे को एक कपड़े की आवश्यकता है तो दुकानदार अपनी दुकान में से ही इस विचारे अछूत को कपड़ा फेंक देगा और जितने दाम इसकी समझ में आवेगें उतने बोलेगा इस विचारे को कम या ज्यादा कहने का अधिकार नहीं है। फौरन दाम निकाल कर दे देने होंगे, चाहे कपड़ा अच्छा हो या बुरा फिर वह उस- को लौटा भी नहीं सकता प्यारे भाइयों जिस देश में अछूतों के साथ ऐसा व्यव- हार किया जाता है तो आप स्वयं ही अनुभव कर सकते है कि अछूतों की क्या दशा होगी। इतना ही नहीं यहां तक दुर्दशा है कि किसी समय सख्त गर्मी पड़ रही हो और एक अछूत चला जाता हो तो उसको इतना अधिकार नहीं है कि जरा देर के लिये पेड़ की छाया में ही जरा बैठ दम ले ले इसको यह भय रहता है कि अगर पेड़ की छाया में खड़ा हो गया तो पेड़ भी भ्रष्ट हो जायगा। विचारे अछूत सड़क पर भी नहीं चल सकते यह विचारे सड़क से इन ब्राह्मण देवताओं के भय से ५०० गज की दूरी पर रहते हैं।

इस समय शर्मा जी की कार्य्य प्रणाली इस प्रकार है।

(१) शर्माजी ने यहां पर धर्मार्थ औषधालय खोल रखा है जिसके द्वारा ग़रीब लोग लाभ उठा चुके हैं औषधालय से भी वैदिक धर्म प्रचार में बहुत सहायता मिल रही है।

(२) ऋषि दयानंद अनाथालय जिस- के द्वारा भी हिन्दू अनाथों की रक्षा हो रही है इस तामिल प्रान्त में दूसरा कोई हिन्दू अनाथालय नहीं है।

(३) भजन मंडली भी शर्मा जी ने अच्छी तैयार की है जो आर्य्य समाज के तामिल भजनों द्वारा अच्छा प्रचार करती है।

(४) शर्माजी ने स्कूलों में जाकर भी प्रचार करना शुरू कर दिया है। छोटे २ बच्चों को ईश्वर प्रार्थना वैदिक संध्या हवन मंत्र और हिन्दी भजन सिखाये जाते हैं। इस समय श्रीमान् पंडित एम जी शर्मा जी तीन स्कूलों में जाकर प्रतिदिन वैदिक धर्म की शिक्षा देते हैं जिसमें ६०० के करीब लड़के वेद मन्त्रों का उच्चारण करते हैं उन स्कूलों के नाम यह हैं।

(१) कृष्णारामपुरम आर्य्य समाज का खास स्कूल।

(२) मञ्जन कारतरु एल० बी० एल०

(३) एन० एम० ब्रादर्स बाल स्वामी मैनेजर।

किस आर्य्य का ऐसा हृदय होगा जो इन बातों को सुन कर न पसीजे। उत्तर भारत

की आर्य्य समाजों, आर्य्य प्रतिनिधि सभाओं, सार्वदेशिक सभा तथा अन्य प्रेमियों का यह कर्त्तव्य है कि धन से माननीय पंडित एम० जे० शर्मा की सहायता करें। इस समय तक उनके उद्योग से ३२ ट्रैक्ट तामिल भाषा में निकल चुके हैं। जो महाशय ट्रैक्टों के लिये धन भेजेंगे उनका नाम ट्रैक्ट पर छाप दिया जायगा। सहायता मदुरा आर्य्यसमाज द्वारा दी जा सकती है।

स्वर्गवासी पं० रामजी लाल शर्म्मा

३० अगस्त १९३० को सायंकाल के ७ बजे श्रद्धेय पं० रामजी लाल शर्म्मा का स्वर्गवास होगया। इस दुःखमय घटना को सुन कर किसका हृदय शोक से न भर जायगा। पं० जी बहुत पुराने आर्य्यसमाज के सेवी थे और आर्य्यसमाज चौक के प्रधान अनेकों वर्षों तक रह चुके थे। उनका मुख्य कार्य्यक्षेत्र हिन्दी-सेवा था इस कारण सम्भवतः आर्य्य उनसे अधिक परिचय न हों। परन्तु हिन्दी का प्रचार करना आर्य्यसमाज का एक मुख्य उद्देश्य है और इसकी पूर्त्ति जैसी शर्माजी ने की वैसी बहुत कम करते हैं। कई वर्षों तक हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आप प्रधान मन्त्री रहे और सम्मेलन का कार्य्य बड़े परिश्रम से किया। आप "विद्यार्थी" और "खिलौना" दो अच्छे मासिक पत्रों का सम्पादन भी करते थे। इसके अतिरिक्त कई दर्जन सुन्दर पुस्तकें लिखी हैं। लिखने के अतिरिक्त आप मधुर वक्ता भी थे। आपके स्वर्गवास से एक प्रसिद्ध हिन्दी सेवी तथा एक सच्चा सहृदय आर्य्य पृथ्वीतल से उठ गया।



अद्वैतवाद

विद्वान् लेखक ने इस वृहत् ग्रन्थ में शंकर के अद्वैतवाद की तीव्र आलोचना की है। एक २ युक्ति को पढ़कर आप फड़क उठेंगे। पुस्तक युक्तियों तथा प्रमाणों से भरी पड़ी है। प्रत्येक प्रेमी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। मू० १॥)

सर्व-सिद्धान्त संग्रह

प्रणेता—श्री स्वामी शंकराचार्य्य

अनुवादक—पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए०

इस पुस्तक में चारवाक, नास्तिक, बौद्धों, सांख्यो, मीमांसिक तथा वेदान्तियों आदि भारतीय भिन्न भिन्न शास्त्रों के सिद्धान्तों का समासरूप से वर्णन किया गया है। मूल्य ॥)

उत्कृष्ट काव्य ग्रन्थ

प्रतिबिम्ब

(श्री सत्यप्रकाश जी एम० एस-सी)

चित्ताकर्षक, प्रभाव-शाली तथा रसीली कविताओं का संग्रह है। आरम्भ में १६ पृष्ठों की भूमिका भी दी हुई है। साधारण संस्करण ॥।), राज-संस्करण १॥)

ब्रह्म-विज्ञान

(श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी)

ईश तथा श्वेताश्वतर उपनिषदों का सरल भाव-पूर्ण अनुवाद। मू० =)

पद्य पयोनिधि

(श्री विद्याभूषण 'विभु')

'विभु' जी की राष्ट्रीय, प्राकृतिक, ऐतिहासिक मनोहर कविताओं का संग्रह है। मू० ॥)

सुहराब और रुस्तम

(श्री विद्याभूषण 'विभु') पिता पुत्र के युद्ध की करुणा जनक कहानी सरल छंदों में मू० ।)

चित्रकूट चित्रण

(श्री विद्याभूषण 'विभु') इस पुस्तक को पढ़कर चित्रकूट की अनुपम प्राकृतिक शोभा नेत्रों के सामने आ जाती है। मू० ।=)

सब प्रकार की पुस्तकें मिलने का एक मात्र पता:—

कला कार्यालय, प्रयाग।

Reg. No. A. 2041

Printed & published by Ganga Prasad (Editor) at the 'Kala Press',


वेदोदय

अनुक्रमणिका

१—आर्य्य समाज के निर्माता [श्री विश्वप्रकाश बी ए०, एल०एल०बी०]
धर्मवीर पं० लेखराम ६८, १०९
स्वा० श्रद्धानन्दजी महाराज १५३, १८६
पहलवान चिरंजीवलाल २३४
२—ऋषि (कविता) पं० राजाराम पांडे 'मधुप' ११६
३—ऋषि का प्रताप (कविता) श्री अवध बिहारीलाल 'अवध' बी० ए० विशारद २२
४—ऋषि की मानसिक तरंगे। [पं० देवेन्द्र चंद्र विद्याभास्कर] १८२
५—एक आर्य हृदय की भावना (कविता) पण्डित सूर्य्यदेव शर्मा विद्यालंकार, एम० ए०, एल० टी०] २०१
६—क्रान्ति-कारी दयानन्द [श्री हरिवंशराय बी० ए०] २०२
७—जीवन-धारा [श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल-एल०, बी०] ९३, १३७
८—त्याग-मूर्ति पं० मोतीलाल जी नेहरू [श्रीयुत विश्वप्रकाश जी बी० ए०, एल-एल० बी०] २२८
९—दीपमालिका [पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए० एल० टी०] ३४
१०—दीपावलि का है त्योहार (कविता) [श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी० ३१
११—दयानन्द मुनि आये (कविता) [श्री चिन्तामणि 'मणि'] ३३
१२—धर्म परीक्षा (कहानी) श्री हरिवंशराय बी० ए० २३
१३—नारसिंही—कहानी—[श्री चिन्तामणि जी "मणि"] २१४
१४—पुनर्दर्शन [श्री चिन्तामणि "मणि"] १७०
१५—पुराणों पर एक दृष्टि [श्री पं० सत्यव्रत जी उपाध्याय बी० ए०-एल० टी०] १२९
१६—बोध विलास कविता [श्रीयुत "कर्ण" कवि महोदय] १२१
१७—भारत विरुद (कविता) [श्रीयुत "कर्ण" कवि महोदय] ४१
१८—भुला दो भेद भाव को (कविता) श्री पंडित सोमदेव शास्त्री, काशी १८५
१९—भूत (कहानी) [श्रीमती सुदक्षिणा देवी वर्मा] ५७
२०—मेधा याचना (कविता) श्री पं० सूर्य्यदेव शर्म्मा साहित्यालंकार एम० ए० १६१
२१—मुक्ति की युक्ति [श्रीयुत पं० कृष्णानंद जी] ५२, ९७

२२—व्रत-साधना (कविता) श्री पं० सूर्य्यदेव शर्म्मा साहित्यालंकार एम० ए० ८१

२३—विचार तरंग

मतवाला साथी (कुसुम)

आर्य्यसमाज और खंडन [पं० सूर्य्यनारायण गुप्त काशी] ११७

गोस्वामी तुलसीदास कौन थे [विद्यानिधि श्री पं० रजनीकान्त जी शास्त्री बी० ए० बी० एल०] १७४, २२३

२४—वेदार्थ और स्वामी दयानन्द- [बा० श्यामसुन्दर लाल जी एडवोकेट, मैनपुरी] २, ८२

२५—वैदिक धर्म और मोक्ष [श्री पं० देवेन्द्र चंद्र जी विद्याभास्कर, काशी] २१०

२६—वैदिक स्वराघात [प्रो० धीरेन्द्र वर्मा एम० ए०, प्रयाग विश्वविद्यालय] २३१

२७—वेदों का स्वाध्याय [राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी बड़ौदा] १२३, २०३

२८—वेदों की झांकी ११, ४९, ९०, १२६ १६८, २०८

२९—वेदों की संसार के लिये आवश्यकता [श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०] ४५ ८८, १७८

३०—शतपथ-ब्राह्मण-भाष्य- [पंडित गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०] ७५, ११३, १४८, १९५, २११

३१—शंकर, रामानुज और दयानन्द पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए० [illegible]

३२—शंका समाधान १९४, २१८

३३—स्वातन्त्र का वास्तविक अर्थ [श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट आगरा] [illegible]

३४—सामवेदी-स्वर [श्री सत्यप्रकाश एम० एस-सी० एफ० आर० ए० एस०] [illegible]

३५—स्वर्ग [श्री पं० देवदत्त जी बुलन्दशहर] १०३, [illegible]

३६—समालोचना

शास्त्र वैदिक कर्त्तव्य [illegible]

इज़हारे हक़ीकत [illegible]

मेरी ईरान यात्रा [illegible]

३७—सम्पादकीय

पहला दीपक [illegible]

क्या गुरुकुल शूद्रों के लिये हैं [illegible]

देश का दृष्टिकोण [illegible]

परदे के पीछे [illegible]

परदा के प्रेमी [illegible]

शिव का उपवास [illegible]

उषा काल

वेदों के विषय में अनूठी पुस्तक [illegible]

नेत्र यज्ञ



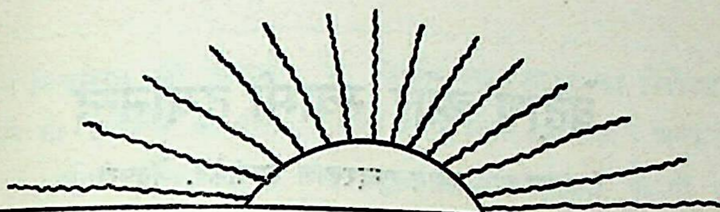
उदीर्ध्वं ! जीवो असुर्न आगात्। अप प्रागात् तम । आज्योतिरेति । आरैक् पन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः । (ऋ० १।११३।१६)

उठो ! हम तक जीवन आरहा है । अन्धेरा जारहा है । उजाला आरहा है । प्रकाश [सूर्य्य] की यात्रा का मार्ग खुल गया । हम ऐसे स्थान पर आगये हैं जहां जीवन की संवृद्धि हो ।

Rise! Life has come to us. Darkness has gone. Light is coming. She has left a path for the sun to travel. We have come where life is prolonged.

कला प्रेस, प्रयाग ।

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३।४।१।१]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती है।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग २ | आश्विन संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०६; अक्टूबर १९३० | सं० १
आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ | पूर्ण सं० ७

दीपावलि का है त्योहार

[श्री विश्वप्रकाश बी० ए०, एल० एल० बी०]

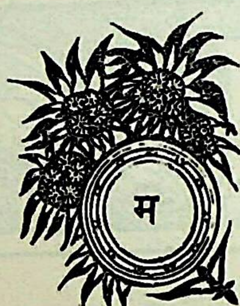
हर्षित होकर दिये जलाते
तरह तरह के मोद मनाते
ऋषिवर! पर तुम नहीं दिखाते
दर्शन दो क्यों अब तरसाते
दीपावलि का है त्योहार

मन्द भाग मुनिराज! हमारे
जो तुम हमसे दूर सिधारे
हार गये ये लोचन सारे
थक कर बैठ गये बेचारे
दर्शन का दे दो उपहार
दीपावलि का है त्योहार

अंध कूप में वेद समाते
वेद ज्ञान को कौन बताते
ऋषियों को सब लोग भुलाते
इसीलिये फिर आज बुलाते
करने को जीवन संचार
दीपावलि का है त्योहार

वेदार्थ और स्वामी दयानन्द

[श्रीयुत बा० श्याम सुन्दरलाल एडवोकेट, मैनपुरी]



हर्षि दयानन्द ने जहां यथार्थ अर्थ के द्योतन और वाक्यार्थ बोध के लिये चार सामान्य नियम सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में बतलाये हैं अर्थात १ आकांक्षा [किसी विषय पर वक्ता और वाक्यस्थ पदों की पारस्परिक अपेक्षा]; २ योग्यता [जिससे जो हो सके जैसे जल से सींचना]; ३ आसक्ति [पारस्परिक पद सम्बन्ध] तथा ४ तात्पर्य्य [वक्ता का प्रयोजन], वहां वेदों के यथार्थ अर्थ बोध के लिये ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के पृष्ठ ३४१ पर निम्न आवश्यकता प्रकट की है।

"मनुष्य लोग वेदार्थ जानने के लिये "अर्थ-योजना सहित व्याकरण—अष्टाध्यायी, धातु पाठ उणादिगण, गणपाठ और महा भाष्य; शिक्षा; कल्प; निघण्टु निरुक्त; छन्द और ज्योतिष ये छः वेदों के अंग। मीमांसा, वैशेषिक, न्याय, योग, सांख्य और वेदान्त ये छः शास्त्र जो वेदों के उपांग अर्थात् जिनसे वेदार्थ ठीक २ जाना जाता है। तथा ऐतरेय, शतपथ, साम और गोपथ ये चार ब्राह्मण इन सब ग्रन्थों को क्रम से पढ़ के अथवा जिन्होंने उन सम्पूर्ण ग्रन्थों को पढ़ के जो सत्य सत्य वेद व्याख्यान किये हों उनको देख के वेद का अर्थ यथावत् जान लेवैं।"

ऋषि के उपरोक्त कथन से प्रकट है कि इस लेख के पूर्व भाग में वेदों के यथार्थ अर्थ करने के लिये जिन आवश्यकताओं और उलझनों का हमने दिग्दर्शन कराया है उन सब को दूर करने का एक मात्र उपाय वह है जिसका महर्षि ने इस प्रकार द्योतन किया है अर्थात् जब तक वेदों को सांगोपांग उपरोक्त ब्राह्मण ग्रन्थों सहित न पढ़ा जायगा अथवा जब तक वेदों के सत्य व्याख्यानों का अवलोकन न किया जायगा वेदार्थ को समझना असम्भव है तथा उपरोक्त कथन पर विचार करने से यह बात भी सुगमता से समझी जा सकती है कि हमारे दुर्भाग्य से आजकल के उच्च कक्षा के प्रौढ़ पण्डितों में से प्रति शतक नहीं किन्तु प्रति सहस्र ए

पण्डित भी ऐसा न निकलेगा जो वेदार्थ करने वा समझने की उपरोक्त योग्यता सम्यक प्रकार से रखता हो। कारण यह है कि अष्टाध्यायी तथा निरुक्तादि ग्रन्थों के पठन-पाठन को शैली दीर्घ काल से त्यक्त हो चुकी है और उन ग्रन्थों का पठन पाठन और अनुशीलन सर्वथा जाता रहा है। द्वितीय वर्त्तमान पठन पाठन शैली से निष्णात् पण्डितों को साधारण ज्ञान बहुत न्यून प्राप्त कराया जाता है। उनको प्रायः यह बात भी नहीं बतलाई जाती कि पृथ्वी जिस पर हम रहते हैं हिरण्यकश्यप द्वारा चटाई की भांति लपेटलीजानेवाली कोई चपटी वस्तु है वा क्या ?। स्वामी दयानन्द के संसारक्षेत्र में अवतीर्ण होने से पहले तो प्रायः ये महानुभाव व्याकरण को पढ़कर व्याकरणी पण्डित बन जाना ही अपनी शिक्षा का ध्येय समझ लेते थे और व्याकरण को संस्कृत भाषा के पारङ्गत करने के लिये अनुपम साधन समझने के स्थान में जैसा कि महाभाष्य में उसको बतलाया गया है उसको अपने पाण्डित्य का अन्तिम उद्देश्य समझ बैठते थे और यदि कोई उनमें से साहित्य पढ़ते भी थे तो नवीन काव्य कलाप ही पर्य्याप्त समझा जाता था और यदि बहुत अधिक विचार गया तो दर्शन शास्त्रों में से किसी एक शास्त्र का विशेषज्ञ हो जाना पर्याप्त गिना जाता था। अन्य किसी दर्शन का साधारण प्रकार से भी पढ़ना नितान्त अनावश्यक समझा जाता था।

हर्ष है कि स्वामी दयानन्द के विचारों और आर्य्यसमाज के उपदेशों ने इस आकुञ्चित दृष्टि कोण में बहुत कुछ परिवर्त्तन उत्पन्न कर दिया है परन्तु अब तक पठन पाठन की शैली में विशेष अन्तर नहीं हुआ है। और वेदों में पण्डित वर्ग की श्रद्धा किञ्चित भी जागृत नहीं हुई है। कारण यह प्रतीत होता है कि जैसा मैंने ऊपर लिखा है उनका पाण्डित्य वेदों के समझने में सहायक नहीं किन्तु प्रतिबन्धक है। नवीन संस्कृत को पढ़ कर और वेदों को श्री सायणाचार्य्यादि के भाष्यो के द्वारा अवलोकन करके यह असम्भव है कि कोई पुरुष वेदों के प्रति श्रद्धा अनुभव कर सके।

यही कारण है कि महर्षि ने आर्ष ग्रन्थों के पठन पाठन की ही शर्त्त वेदों के पढ़ने और समझने के लिये आवश्यक नहीं समझी किन्तु यह भी आवश्यक समझा कि अनार्ष ग्रन्थों का पठन पाठन भी पृथक् रक्खा जावे। वेदों के समझने के लिये आर्ष साहित्य में रमण करने की ज़रूरत है। आर्ष ग्रन्थों में पढ़नेवाले को इतना अभ्यासी होना चाहिये कि

जिस प्रकार अर्वाचीन संस्कृत की ज्ञाता मानसिक वृत्तियों के सम्मुख वैदिक शब्दों के अवैदिक और अयथार्थ अर्थ मूर्त्तिमान् होकर नृत्य करने लगते हैं उसी प्रकार उसके मस्तिष्क के सम्मुख वैदिक शब्दों के निरुक्तादि द्वारा निरूपित और सांकेतित अर्थ सहसा प्रादुर्भूत होने का अवकाश प्राप्त करें।

कदाचित कहा जावे कि कम से कम व्याकरण के विषय में उपरोक्त धारणा-ठीक नहीं प्रतीत होती क्योंकि सिद्धान्त कौमुदी मनोरमादि बड़े वड़े व्याकरण के ग्रन्थ पढ़ाये जाते हैं जिनमें कोई विषया अष्टाध्यायी का ऐसा नहीं है जो उनमें न हो पुनः अष्टाध्यायी की ही शर्त्त लगाना कदापि आवश्यक नहीं समझी जा सकती। परन्तु विज्ञ पाठक देखेंगे कि महर्षि की धारणा अतीव समुचित है। कारण यह कि यदि हम उस बड़े अन्तर को दृष्टि से ओझल भी कर दें जो वास्तव में अष्टाध्यायी और उपरोक्त अन्य व्याकरणों में किसी २ स्थान पर पाया जाता है तो भी चूंकि अष्टाध्यायी में वैदिक और अवैदिक (लौकिक) प्रयोगों के लिये भिन्न २ स्थान नियत नहीं किये गये हैं किन्तु दोनों प्रकार के शब्दों की मिश्रित श्रृंखला बांधी गई है और जहां जो विलक्ष-

णता एक दूसरे में पाई गई है उसको २ अवसर पर जहां कि किसी विशे... किसी स्थान पर विधान है प्रकट ... गई है। अष्टाध्यायी का पढ़ने वाला ... स्वाभाविक भांति में लौकिक और ... दोनों प्रकार के प्रोयगों से अभिज्ञ ... जाता है। परन्तु यह बात अन्य व्या... में नहीं है। यथा सिद्धांत कौमुद... वैदिक क्रिया प्रयोग एक विशेष ... स्थान में निरूपित किया गया है ... उसके पठन पाठन के समय उस ... दीर्घकाल से इसी प्रकार छोड़ा जा... और छोड़ा जा रहा है जिस प्रकार ... अछूत नाम से प्रख्यात हिन्दुओं के ... भाग को शेष उच्चवर्गस्थ हिन्दू ... समझते आते और उनके स्पर्श से ... आते हैं। और इस प्रकार वर्तमान ... में पठित पंडित लोग वेदों के सम्बन्ध... लिये व्याकरण से आंशिक लाभ भी ... उठा सके। अन्यथा सम्भव नहीं था ... आर्यावर्तीय पण्डित वर्ग वेदों के ... विशाल और मनो रञ्जक अन्वेषण ... में जो महर्षि दयानन्द ने वेदार्थ के ... खोल दिया है क्यों अपने पदों को शी... शीघ्र अवतीर्ण करने के लिये तैयार ... होते। यह निश्चय है कि जब तक ... के बतलाये और सुझाये मार्ग का ...

करने के लिये अवलम्बन नहीं किया जाता और इस मार्ग में विद्वानों की कई पीढ़ी कटिबद्ध होकर काम नहीं करती तब तक वेदों का ठीक प्रकार से आद्योपान्त समझना सम्भव नहीं है। इस विषय में पाश्चात्य विद्वानों की क्या सम्मति है उसको उद्धृत कर विशेष प्रकार से हम पीछे से लिखेंगे यहां पर यह बतलाना उचित प्रतीत होता है कि महर्षि के बतलाये मार्ग और श्री सायणाचार्य्य के अवलम्बित मार्ग में क्या भेद है।

श्री सायणाचार्य्यादि के वेद भाष्यों से यह बात स्पष्ट नहीं है कि ये महानुभाव निरुक्तादि ग्रन्थों और ब्राह्मण साहित्य से अपरिचित नहीं थे। बहुधा उनके भाष्यों में उपरोक्त ग्रन्थों के वाक्य और विचार प्रमाण भूत उपस्थित पाये जाते हैं। उपरोक्त भाष्यों की भूमिकाओं में भी उपरोक्त ग्रन्थों के आश्रय लेने की आवश्यकता बतलाई गई है। परंतु बड़ा भारी अन्तर यह है कि जिन युगों में इन महानुभावों को उत्पन्न होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था वह युग वेदों के अन्वेषण के युग नहीं थे किन्तु उन युगों में वेदों और आर्ष ग्रन्थों की स्प्रिट सर्वथा भुलाई जा चुकी थी। वेदों के नाम पर यज्ञों में हिंसा को अमानुषीय वेश में भी बुरा नहीं समझा जाता था। वेदों के देवता वैज्ञानिक स्थिति से गिर कर देहधारियों की भांति अदृश्य चेतन व्यक्ति बन गये थे। राजा महाराजों की भांति उनके दर्बार और दर्बारी कल्पित हो चुके थे और उनमें आजकल की भांति नृत्य शीला वामांगनाओं [अप्सराओं] का नृत्य उच्च ऐश्वर्य्य और समृद्धि का चिह्न समझा जाता था। ईश्वर के अवतारों का विश्वास सुदृढ़ हो चुका था किन्तु जो कुछ है वह ईश्वर ही है अर्थात [हमाओस्त] सर्वेश्वरवाद का भ्रमात्मक भाव तथा माया व स्वप्नवाद जो सब नवीन वेदान्त वा अद्वैतवाद के ही शाखा प्रति शाखा रूप अवान्तर भेद है विद्वान अविद्वान सभी सर्व साधारण को जकड़ चुके थे। वेदों के चित्रखचित प्राकृतिक और वैज्ञानिक दृश्य और अलङ्कार विस्मृत हो चुके थे और उनके स्थान में कपोल कल्पित गाथायें [किस्से कहानी] प्रचलित हो गई थीं और चूंकि वेदों के नाम का सिक्का और प्रभाव पूर्ववत् ही जनता में विद्यमान था अतएव इन कपोल कल्पित सत्ताओं को ऐतिहासिक रूप देने के लिये उस समय की विद्वन्मण्डली वेदों के मन्त्रों को साक्षी रूप में पेश करने में कोई कठिनता

प्रतीत न करती थी। निदान कोई धार्मिक धारणा ऐसी न थी जो दूषित न हो गई हो और जिसकी पुष्टि में उस युग के वेद वेत्ता लोग वैदिक मन्त्रों को प्रस्तुत न कर सकते हों। अतएव सायणाचार्य्यादिक वेद के भाष्यकारों के लिये संभव नहीं था कि उक्त परिस्थिति में आर्ष ग्रन्थों के मर्म और वेद के वास्तविक अर्थों की ओर दत्तचित्त हो सकते और इसलिये निरुक्तादि और ब्राह्मणादि ग्रन्थों से बहुत अंशों में अनभिज्ञ न होने पर भी यह विचार ठीक न होगा कि उक्त महानुभावों के वेद-भाष्यों में वह दोष नहीं हो सकते जिनका होना उन युगों की परिस्थिति स्वाभाविक बना रही थी।

हम उदाहरण के लिये विज्ञ पाठकों के समक्ष एक ऐसा मन्त्र उपस्थित करना चाहते हैं जिस पर निरुक्त भाष्य विद्यमान है और जिससे ज्ञात होगा कि श्री सायणाचार्य्य जी यदि किसी अन्य कारण से नहीं तो केवल अपने युग की परिस्थिति से ही बाध्य थे और उस परिस्थिति ने या तो उनको निरुक्त भाष्य का विशेष अवलोकन ही नहीं करने दिया अथवा उनको उपरोक्त भाष्य के देने से रोक दिया और सर्वथा मूक बना दिया। यह मन्त्र ऋग्वेद मण्डल ९ सूक्त ९६ का छठवां है। मन्त्र इस प्रकार है :—

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषि र्विप्राणां महिषो मृगाणाम्। श्येनो गृध्राणां स्वधितिर्वनानां सोमः पवित्र मत्येति रेभन्।

श्री सायणाचार्य्य इस मन्त्र का अर्थ निम्न प्रकार देते हैं :—

"ईश्वर इन्द्र अग्न्यादिक देवताओं में स्वयं ब्रह्मा होकर प्रकट होता है; काव्यों और नाटकों के रचयिताओं में वह उत्त कवि की स्थिति धारण करता है; ब्राह्मणों के मध्य में वह वशिष्ठादिक होकर प्रकट होता है, इसी प्रकार वह चौपायों में भैंस, पक्षियों में बाज और वनों [जंगलों] में कुठार [कुल्हाड़ी] होकर प्रकट होता है। एवं वही उस सोमरस का भी रूपधारण करता है जो गंगा आदि के पवित्र जलों की तुलना में भी अधिक पवित्रता धारण मन्त्रों से शुद्ध और पवित्र किया जाता है।"

अब इस मन्त्र का यास्काचार्य्य कृत अध्यात्म अर्थ देखिये जो निरुक्त १४।१३ में वर्णित है।

"अथाध्यात्मं ब्रह्मा देवानामित्ययमपि ब्रह्मा भवति देवानां देवन कर्मणामिन्द्रियाणां पदवीः कवीनामित्ययमपि पदं वेत्ति कवीनां कवीयमानानामिन्द्रियाणां

मृषिर्विप्राणामित्ययमपि ऋषिणो भवति विप्राणां व्यापनकर्मणामिन्द्रियाणां महिषो मृगाणामित्ययमपि महान् भवति मृगाणां मार्गणकर्मणामिन्द्रियाणां, श्येनो गृध्राणामित श्येन आत्मा भवति श्यायते र्ज्ञान कर्मणो गृध्राणीन्द्रियाणि गृध्यते र्ज्ञानकर्मणो यत एतस्मिंस्तिष्ठन्ति स्वधिति र्वनानामित्ययमपि स्वयं कर्माणयात्मनि धत्ते वनानां वनन कर्मणान्यिन्द्रियाणाँ सोमः पवित्रमत्येति रेभन्नित्यमपि पवित्र मिन्द्रियाणय त्येति स्तूयमानो ऽयमेवैतत्सर्वमनु भवत्यात्मगतिमाचष्टे।"

उपरोक्त निरुक्त भाष्य का अर्थ और तात्पर्य पं० गुरुदत्त एम० ए० सुप्रख्यात् वैदिक स्कालर ने अपने पुस्तक [Vedic Terminology] वेदों की अर्थ शैली नामी में ऐसी उत्तमता से दिया है कि मैं उसको प्रथम अंग्रेज़ी में और पुनः देव नागेरी के भाषान्तर में देना उचित समझता हूँ :—

We will now speak of the spiritual sense of the Mantra as Yaska gives it. It is his object to explain that the human spirit is the central conscious being that enjoys all experience, "The external world as revealed by the senses finds its purpose and object, and therefore absorption, in this central being. The Indrias or the senses are called the 'devas', because they have their play in the external phenomenal world, and because it is by them that the external world is revealed to us. Hence the Atma, the human spirit is the Brahma devanam, the conscious entity that presents to its consciousness all that the senses are called the 'Kavyas', because one learns by their means. The Atma is, then, 'Padavi Kavinam' or the true sentient being that understands the working of the senses. Further the Atma is the 'Rishir Vipranam', the cognizor of sensations; 'Vipra' meaning the senses as the feelings exerted by them pervade the whole body. The senses are also called the 'Mragas' for they hunt about their proper aliment in the externel world. Atma is 'Mahisho mraganam' *i.e.* the great of all the hunters. 'The meaning is that it is really through the

power of Atma that the senses are enabled to find out, their proper objects. 'The Atma is called 'Shyena', as to it belongs the power of realisation, and Gridhras are the Indrias, for they provide the material for such realisation. The Atma, then, pervades these senses. Further this Atma is 'Swadhiter Vananam', or the master whom all Indrias serve. Swadhiti means Atma, for the activity of Atma is all for itself, man being an end unto himself. The senses are called 'Vana', for they serve their master, the human spirit. It is this Atma that being pure in its nature, enjoys all." Such that is the 'Yougik' sense which Yaska attaches to the mantra. Not only is it all consistent, and intelligible, unlike the Sayana's which conveys no actual sense ; not only is each word clearly defined in its Yougika meaning, in contradiction with Sayana who knows no other sense of the word than the popular one but ther is also to be found that simplicity, naturalness and truthfulness of meaning, rendering it independent of all time and space, which contrasted with the artificiality, burdensomeness and localisation of Sayana's sense, can only proclaim Sayana's complete ignorance of the principles of Vedic interpretation."

[देखो वैदिक टरमिलोजी पृष्ठ ३६]

भाषान्तर नागरी में :—

"हम अब मन्त्र का आध्यात्मिक अर्थ और तात्पर्य्य देंगे जैसा कि यास्काचार्य ने वर्णन किया है। यास्क महाराज का अभिप्राय इस वात की व्याख्या करने का है कि मनुष्य का जीवात्मा एक चैतन्य कैन्द्रिक सत्ता है जो सब अनुभवों [भोगों] को भोगती है। वाह्य जगत् जैसा कि हमारी इन्द्रियों द्वारा बोधित होता है अपना प्रयोजन और ध्येय और इसलिये अपनी निमग्नता को इस कैन्द्रिक आत्मा में प्राप्त करता है। इन्द्रियों को देव इस वास्ते कहा गया है कि वह वाह्य रूप रंगवाले जगत् में अपनी चेष्टा करती हैं और इसलिये वह जगत् का उद्बोधन हमको उन्हीं के द्वारा हुआ करता है अतएव मनुष्य का आत्मा देवताओं में ब्रह्मा है अर्थात्

चैतन्य सत्ता है जो इन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान को अपने भीतर ग्रहण करता है। इसी प्रकार इन्द्रियों को कवि कहा गया है प्रत्येक उन्हीं के द्वारा वाह्य जगत् का दर्शन उपलब्ध करता है। अतएव जीवात्मा कवियों में पदवी है अर्थात् वास्तविक उद्बोधन कर्त्ता सत्ता है जो इन्द्रियों की चेष्टा को समझता है। पुनः यही आत्मा विप्रों में ऋषि है अर्थात् इन्द्रियजन्य ज्ञानों का अनुभव कर्ता है। विप्र शब्द का अर्थ इस कारण से इन्द्रिय गण है कि उनके द्वारा उत्तेजित शारीरिक आवेश (feelings) सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो जाते हैं। इन्द्रियों को मृगों के नाम से भी पुकारा जाता है क्यों कि यह अपने उचित आहार का वाह्य जगत् में आखेट करती हैं अर्थात् शिकार खेलने के सदृश ढूंढ़ा करती है। आत्मा इस लिये मृगों में महिष है अर्थात् उन सम्पूर्ण शिकारियों में बड़ा शिकारी है। इसका तात्पर्य्य यह है कि वास्तव में यह आत्मा की ही शक्ति का फल है कि इन्द्रियां अपने समुचित अर्थों को प्राप्त कर सकने के योग्य होती हैं। आत्मा को श्येन भी कहा गया है क्योंकि प्रत्यक्ष करने की सामर्थ्य वास्तव में आत्मा के भीतर है और इन्द्रियाँ गृध्राः इस दृष्टि से हैं कि वह इस प्रत्यक्ष करने की सामग्री को उपस्थित करती हैं। आत्मा इस हेतु से इन्द्रियों में व्यापक है। इसके आगे आत्मा ही वनों [जंगलों] के बीच में स्वधितिः है अर्थात् वह अधि पति है जिसका अनुशासन सब इन्द्रियां मानती हैं। आत्मा स्वधितिः इस कारण से है कि उसकी सम्पूर्ण चेष्टायें अपने लिये हैं क्योंकि मनुष्य स्वयं अपने आप में अन्तिम उद्देश्य है। इन्द्रियों को वन इस दृष्टि से कहा गया है कि वह अपने अधिपति जीवात्मा से अनुशासित रहती हैं और उसकी आज्ञा पालन करती हैं। वास्तव में यही आत्मा है जो अपने स्वभाव में पवित्र होने के कारण सब भोगों का भोग करता है।

उपरोक्त यौगिक अर्थ है जो यास्काचार्य्यजी महाराज उक्त मन्त्र से निकालते हैं। यह अर्थ श्री सायणाचार्य्य के दिये हुए विपरीत अर्थों से जो वास्तव में किसी सार्थक अर्थ को नहीं बतलाते केवल सुसंगत और बुद्धि ही नहीं है एवं न केवल प्रत्येक शब्द सायणाचार्य्य के प्रतिकूल जो अपने समकालीन जनता में प्रचलित अर्थ के अतिरिक्त दूसरा अर्थ ही नहीं जानते यौगिक शैली के अनुसार स्पष्ट रूप से परिमित किया गया है किन्तु उस में अर्थ की वह अकृत्रिमता, स्वाभाविकता और सचाई पाई जाती है जिससे मन्त्र सब प्रकार के काल और दिक्बन्धनों से स्वतन्त्र हो जाता है और

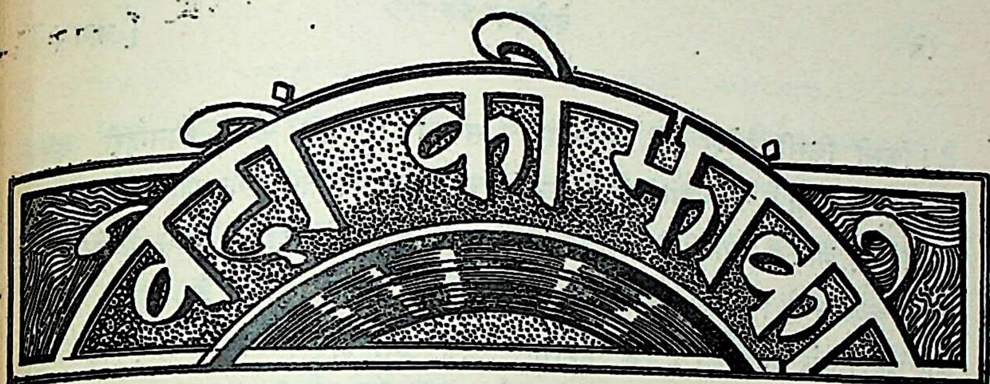
साथ ही साथ तुलना करने पर सायणा-चार्य्य के अर्थ की कृत्रिमता असह्यगरुता और संकीर्णता से उक्त महोदय (श्री सायणाचार्य्य) की वेद भाष्य के सिद्धान्तों की नितान्त अनभिज्ञता भली भांति उद्घोषित हो जाती है।"

अतएव सिद्ध है कि सायणाचार्य्यादिक वेदों के भाष्यकार अपने २ समय की दूषित परिस्थितियों में पलने और उनके वशीभूत होने के कारण वेदों के यथार्थ अर्थ समझने और उनको द्योतन करने में सर्वथा असमर्थ थे और इसी कारण से उनके अनुगामी पाश्चात्य विद्वान् तथा आज कल के प्रायः सम्पूर्ण भारतीय पण्डितगण यथार्थ पदार्थ से कोसों दूर है परमात्मा का धन्यवाद है कि महर्षि के वेद भाष्य ने बहुतेरे विद्वा... के भीतर विशेष कर अनेक पाश्चा... विद्वानों के मस्तिष्कों में इस प्रकार ... परिवर्त्तन अवश्य उत्पन्न कर दिया ... जिससे आशा होती है कि वह समय अव... आवेगा और शीघ्र आवेगा जबकि स्वा... दयानन्द का वेदों के यथार्थ अर्थ की ... प्रदर्शिकता के लिये वह आदर कि... जावे जिसके वह पूर्ण रूप से अधिका... हैं और जिसको हम अब तक प्र... करने के योग्य नहीं हुए हैं। आगे ह... यथावसर दिखावेंगे कि महर्षि के ... भाष्य का पाश्चात्य तथा पौर... संस्कृत पर क्या प्रभाव पड़ा है और ... वह वेदों के विषय में क्या सम्म... देते हैं।

जुहूमसि द्यविद्यवि

(ऋ० १।४।१)

हे ईश्वर हम प्रति दिन आपकी स्तुति करें।



[७]

या उद्दचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम।
त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः॥

(ऋग्वेद १।५३।११)

(इन्द्र) हे सर्व शक्तिमन् परमात्मन् ! (ये) जो हम लोग (उद्दचि) ऋचा अर्थात् वेदों के अनुकूल आचरण करने में (देवगोपाः) विद्वान् पुरुषों द्वारा रक्षा किये गये हैं अर्थात् सब प्रकार सुरक्षित हैं, वे हम लोग (ते) आपके (सखायः) मित्र और (शिवतमाः) अधिक से अधिक कल्याणकारी (असाम) होवें। (त्वां) आपकी (स्तोषाम) स्तुति किया करें। (त्वया) आपकी सहायता से (सुवीराः) उत्तम वीरता युक्त हों। (प्रतरं) उत्तमरीत्या (द्राघीय) बड़ी (आयुः) अवस्था का (दधानाः) धारण करते हुये।

इस मन्त्र में चार बातें कही गई हैं। पहली यह कि 'उद्दचि' अर्थात् वेदों के अनुकूल आचरण करने में "देवगोपाः" विद्वानों द्वारा सुरक्षित हों। धर्म के अनुकूल आचरण करने के लिये एक विशेष प्रकारके सामाजिक वायु-मण्डल की आवश्यकता है। समाज के नियम, समाज की प्रथायें और समाज के विचार सभी मनुष्य के जीवन पर प्रभाव डालते हैं। एक प्रकार का वातावरण वह है जिसमें मनुष्य को साधारण सदाचार से रहने के लिये भी बड़ी से बड़ी कठिनाइयां पड़ती है वह सच बोलना चाहता है पर बोलने नहीं पाता। वह ब्रह्मचारी रहना चाहता है। परन्तु या तो समाज की कुप्रथायें या समाज का विषैला वायु-मण्डल उसको व्यभिचारी बनाकर ही छोड़ता है। एक दूसरा वातावरण वह है जो इसके सर्वथा विपरीत है। इस वातावरण में आकर झूठे से झूठा मनुष्य भी सच का व्यवहार करने लगता है।

हमारी सदाचार सम्बन्धी अवस्था अधिकतर शारीरिक अवस्था के समान

है। किसी किसी प्रदेश का जल-वायु ऐसा दूषित होता है कि वहां जाते ही हम बीमार पड़ जाते हैं चाहे हम कितने ही बलिष्ठ क्यों न हों। इसके विपरीत कोई कोई प्रदेश ऐसे स्वस्थकर हैं कि महीनों से पीड़ित पुरुष के रोग को भी थोड़े ही समय में कम कर देते हैं। यही कारण है कि डाक्टर लोग भिन्न २ रोगों के रोगियों को भिन्न भिन्न प्रदेश के जल-वायु का सेवन कराने का परामर्श देते हैं। परन्तु सदाचार सम्बन्धी बातों में इसका इतना विचार नहीं किया जाता। यह एक बड़ी समाजिक त्रुटि है। हम स्वयं सदाचारी होना चाहते हैं और दूसरों को भी सदाचारी बनाना चाहते हैं परन्तु यह नहीं विचार करते कि किस प्रकार की संगति में सदाचारी रहने में सहायता मिलती है।

कल्पना कीजिये कि एक बच्चा बहुत झूठ बोलता है। प्रश्न यह है कि यह इतना झूठ बोलना क्यों सीख गया? सम्भव है कि उसके पुराने जन्म के संस्कार ऐसे हों कि वह झूठ बोलने का अधिक अभ्यासी हो। यदि ऐसा है तो हमारी वर्त्तमान सामाजिक अवस्था ऐसी होनी चाहिये थी कि वह सुगमता से झूठ बोलने के स्वभाव को कम या दूर कर सकता। आग की चिनगारी यदि पत्थर पर पड़े तो बुझ जाती है। यदि वही चिनगारी रुई या फूस के ढेर पर पड़े तो जलने लगती है। इसी प्रकार एक कुसंस्कार के घटने और बढ़ने के लिये भी सामाजिक वातावरण की आवश्यकता है।

परन्तु इसके अतिरिक्त यह भी संभव है कि उस बालक के पिछले संस्कार बुरे न रहे हों। केवल वर्तमान सामाजिक अवस्था हो उसके झूठ बोलने का कारण हो। यह भी कई प्रकार से होता है। यदि एक घर या परिवार की प्रथाओं पर विचार कर लिया जाय तो भली-भांति समझ में आ जायगा कि वही नियम किस प्रकार समाज या देश पर भी लागू होते हैं। बहुत से घरों में बच्चे इस लिये झूठ बोलने लगते हैं कि उसके अन्य माता पिता भाई बहिन झूठ बोलना साधारण सी बात समझते हैं, बहुत से इसलिये झूठ बोलते हैं कि उस घर में छोटे से छोटे अपराध के लिये भी अधिक से अधिक दण्ड दिये जाते हैं इसलिये बच्चा आत्मरक्षा के लिये बहाने बनाकर अपने दोषों को छिपाने के लिये बाधित हो जाता है। बहुत से घरानों में सच बोलना कोई प्रशंसनीय काम नहीं

समझा जाता। बहुत से घरानों में झूठ बोलने पर किसी प्रकार की ताड़ना नहीं की जाती। यही बात समाजों की है। बहुत से समाज ऐसे हैं जहां बिना झूठ के काम नहीं चलता यदि लोग जान लें कि तुम्हारे पास धन है तो रात को चुरा ले जायं या बलात्कार छीन लें। इसलिये तुम धन को छिपाकर रखते हो। धनाढ्य होते हुये भी दरिद्र के समान रहते हो। बहुत से समाजों में धर्मात्मा निर्धनों के लिये कोई स्थान नहीं। इसलिये जिसके पास कौड़ी नहीं वह भी आडम्बर बनाने और शान दिखाने के लिये बाधित होता है। बहुत से देशों में चोरी का अपराध इसलिये होता है कि लोगों के पास न तो खाने को है और न धर्म-युक्त धन कमाने के साधन हैं। भूखा क्या न करता ? जब जान पर आ बनती है तो चुराकर ही पेट पालने लगते हैं। बहुत से परिवारों में बच्चे अत्यन्त कठोर नियंत्रण में रक्खे जाते हैं। जरा सिर उठाया और दबा दिये गये। इसी प्रकार बहुत से देशों की प्रजा का हाल है। वहां किसी को स्वतंत्रता से कार्य्य करने का अवसर ही प्राप्त नहीं है। सिर उठाते ही पीटे जाते हैं, मुंह खोलते ही जेल में ठूंस दिये जाते हैं। विशेष स्थानों पर विचर नहीं सकते। विशेष प्रकार के भोजन वस्त्रों का उपयोग नहीं करसकते। विशेष विचारों को प्रकट नहीं कर सकते। इसलिये जिस प्रकार जलती हुई आग की ज्वाला ईंधन के बिना कम हो जाती है उसी प्रकार स्वतंत्रता की स्वाभाविक लालसा शनैः शनैः मर जाती है। मनुष्य स्वभाव से ही दास नहीं होता और न क्रूर ही होता है। उसे परिस्थिति ऐसा बना देती है।

एक बात और है ? कभी कभी ऐसा भी होता है कि अच्छे वातावरण में भी एक पुरुष रोगी ही रहे और धर्मात्माओं के साथ रह कर भी बदमाश सिद्ध हो। या एक पुरुष व्यभिचार-युक्त वातावरण में रहता हुआ भी सदाचारी और ब्रह्मचारी बना रहे। परन्तु ऐसे अपवाद बहुत कम होते हैं। प्रत्येक मनुष्य में परिस्थिति से लड़ने की कुछ न कुछ शक्ति होती है परन्तु वह मर्यादित होती है। एक मात्रा से अधिक का वह सामना नहीं कर सकता और पराजित हो बैठता है।

इसी लिये वेद मंत्र में कहा है कि 'उदृचि' अर्थात् वेदों के अनुकूल या धर्मानुसार आचरण करने के लिये "देवगोपाः" अर्थात् विद्वानों द्वारा सुरक्षित

होने की आवश्यकता है। इन्हीं 'देवों' को अन्य मंत्रों में 'ब्रह्म' और 'क्षत्र' शक्ति के नाम से पुकारा गया है। ब्राह्मण और क्षत्रिय विद्वान् ही मिलकर देश या जातिं की परिस्थिति बनाते हैं। समाज की परिस्थिति ऐसी होनी चाहिये कि धार्मिक जीवन के लिये इतनी कठिनाइयाँ न हों कि लोग धर्म का अवलम्बन ही छोड़ दें। जिस जाति या देश में धार्मिक कार्य करने पर जेल जाना पड़े या सूली पर लटकना पड़े वहाँ सम्भव है कि दो चार ऐसे वीर पुरुष भी निकल आयें कि प्राणों की परवाह न करें। परन्तु अधिकांश तो अवश्य ही धर्मच्युत हो जायंगे। 'देवों' का काम यह है कि ऐसों की रक्षा करें। 'देव' तो अपनी रक्षा स्वयं कर लेंगे। ऋषियों के लिये शराब खानों में भी कोई भय नहीं है। परन्तु साधारण पुरुषों के लिये तो शराब की दुकानें हानि हीं पहुँचाती हैं।

दूसरी बात वेद मंत्र में यह कही गई है कि हम ईश्वर के सखा हों। अर्थात् हम ईश्वर के जैसे गुण कर्म और स्वभाव को धारण करने के लिये प्रेरित हों। मनुष्य उसी का मित्र होता है जिस के गुण उसे प्रिय हों। और जैसों के साथ मैत्री रखता है वैसों के गुण भी उसमें आते जाते हैं। अतः सबसे उत्तम सखा ईश्वर ही हो सकता है। ईश्वर के ही प्रेम और मैत्री से हम उत्तम हो सकते हैं। और ईश्वर की मैत्री से ही हम "शिवतमाः" अर्थात् अधिक से अधिक कल्याणकारी हो सकते हैं। ईश्वर का 'सखा' का ही यह अर्थ है कि हम 'शिवतम' हों क्योंकि ईश्वर 'शिवतम' है। ईश्वर से अधिक जीव का हित करने वाला और कौन है? उसका प्रत्येक कार्य ही जीव के लिये है। उसका कोई कार्य भी अपने लिये नहीं। वह सृष्टि इसलिये नहीं बनाता कि उसकी शक्ति का प्रदर्शन हो किन्तु इसलिये कि उस की सृष्टि की जीव के लिये आवश्यकता है। उसका एक काम भी स्वार्थवश नहीं किन्तु परार्थवश है। इसलिये जो लोग ईश्वर के सखा होंगे उनका भी मुख्य उद्देश्य परार्थ होगा न कि स्वार्थ। वास्तव में परार्थ ही परमार्थ है। दूसरे की भलाई करने से अधिक धर्म है भी क्या? ईश्वर के प्यारों की क्या पहिचान है? यही कि वे कितना स्वार्थ का त्याग कर सकते हैं और कितना दूसरों के हित के लिये दुःख सह सकते हैं। दूसरों के हित के लिये दुःख सहना ही "शिवतम" होने का चिह्न है।

तीसरी बात यह है कि 'त्वा स्तोमाः' अर्थात् हम ईश्वर की स्तुति किया करें।

उसके गुण गाया करें। प्रातः सायं नित्य प्रति ईश्वर के गुणों का गान करने से मन के मल, विक्षेप और आवरण तीनों दोष दूर हो जाते हैं। जब ईश्वर की स्तुति की जाती है तो हमारे मस्तिष्क में विचार की लहरें उठती हैं। वे हमारे भावों को परिवर्त्तित और विशद बना देती हैं। उन्हीं भावों से हम में शक्ति आती है।

चौथी बात वेद मन्त्र में यह कही गई है कि "त्वया सुवीरा"। अर्थात् ईश्वर के साथ से हम वीर होते हैं। माता की गोद में कमजोर बच्चा भी अपने को जबरदस्त समझता है क्योंकि माता का बल उसके बल के साथ है। इसी प्रकार ईश्वर का साथ हमारे बल को बहुत बढ़ा देता है। वह भय और शोक से दूर हो जाता है। वह बड़ी से बड़ी धर्म विरुद्ध शक्तियों का सामना कर सकता है। वह कठिन से कठिन मार्ग का अवलम्बन कर सकता है। क्योंकि कौन सा ऐसा स्थान है जहां ईश्वर का बल उसकी सहायता के लिये उपस्थित न हो।

यदि ये सब बातें होजायें अर्थात् हम 'देवगोप' या देवों द्वारा सुरक्षित हों, 'उद्दचि' अर्थात् वेदों के अनुकूल आचरण करते हों 'ते सखायः' ईश्वर के मित्र हों' 'शिवतम' अर्थात् प्राणी मात्र के हितकर हों, 'स्तोषाम' अर्थात् ईश्वर की स्तुति करें, 'त्वया सुवीरा' अर्थात् ईश्वर के सामीप्य को अपनी शक्ति का कारण समझें, तो अन्तिम बात अर्थात् 'द्राघीय आयुः' या बड़ी अवस्था या चिरकाल तक जीवन का भी सम्पादन हो सकता है। और हमारे चिरंजीव होने का फल भी यही है कि हम अपने तथा मनुष्य मात्र के लिये हितकर हो सकें। आस्तिक्य और मनुष्य सेवा इन दोनों के जो मुख्य नियम हैं उन्हीं की ओर इस मन्त्र में संकेत किया गया है।



शंकर, रामानुज और दयानन्द

[अंक ६ भाग एक से आगे]

[श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]



ब एक प्रश्न उठता है। वह है उपासना, उपासक तथा उपास्य के सम्बन्ध का। सदाचार सम्बन्धी जीवन का सार भूत उपासना है। यदि ब्रह्म ही केवल एक निर्गुण, ज्ञान मात्र सत्ता है तो न उपासक ही कोई वस्तु है न उपासना का ही कुछ अर्थ। हम यहां मार्च १९२६ के दी कलकत्ता रिव्यू (The Calcutta Review) से एक लेख उद्धृत करते हैं :—

Morality cannot thrive in the absolute monism of Sankara. There can be no ethical life if Brahman is regarded as characterless unity. Morality demands that Brahman should be conceived as the Eternal Good-ness, who is the source of all our ideal. That the Good is supreme in heaven and earth, that the world is a moral order, is an ethical postulate. If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance. The moral "ought" does not apply to a self that is non-existent. Our will must be real, if ethics has a meaning. Moral consciousness tells us emphatically that we are as truly distinct from God, the source of our being, as we are from our fellow men.

भावानुवादः—

"शाकर अद्वैत में सदाचार को स्थान नहीं। यदि केवल ब्रह्म ही एक सत्ता है और वह भी निर्गुण। तो सदाचार के जीवन का क्या अर्थ? सदाचार के लिये आवश्यक है कि ब्रह्म में निज उत्कृष्टता मानी जाय जो हमारे सब आदर्शों का मूल हो सके। सदाचार का आधार इस नियम पर है कि अन्तरिक्ष और पृथ्वी में उत्कृष्टता सर्वोपरि है। और इस जगत में सदाचार ओत प्रोत है। यदि जीव का नित्य जीवत्व भ्रम मात्र है तो कर्त्तव्य का भाव ही निरर्थक है। यदि जीव का अस्तित्व नहीं तो उसका

"कर्त्तव्य" कैसा ? यदि सदाचार का कुछ अर्थ है तो हमारी इच्छा शक्ति का वास्तविक अस्तित्व होना चाहिये। हमारे भीतर जो सदाचार सम्बन्धी भावना है वह इस बात का प्रबल प्रमाण है कि हम वस्तुतः ईश्वर से (जो हमारे अस्तित्व का मूल है) उसी प्रकार भिन्न हैं जैसे अपने अन्य भाइयों से।"

शंकर स्वामी इस कठिनाई को समझते थे। उन्होंने अपनी आंखों से देखा था कि बौद्ध और जैन नास्तिकता के गढ़े में गिर कर किस प्रकार अपने अत्यन्त प्रिय सदाचार की जड़ पर कुल्हाड़ा मार रहे हैं। महात्मा बुद्ध संसार को सदाचारी बनाना चाहते थे। वह स्वयं सदाचार के पुंज थे और उनके भिक्षु सदाचार के आदर्श थे। परन्तु उनके दार्शनिक सिद्धान्त ऐसे न थे कि उनपर सदाचार की भित्ति खड़ी रह सकती। उन्होंने दीवार तो विशाल बनाई परन्तु रेत की। इसी लिये शंकर स्वामी ने उनका खण्डन कर के आस्तिकता स्थापित की। परन्तु मायावाद ने शांकर-प्रयत्न को भली भांति फलीभूत होने न दिया। स्वप्नवाद ने भारतवर्ष को सुला दिया। उपासना के लिये स्थान ही नहीं रहा। शंकर स्वामी ने इसका एक उपाय सोचा था। वह यह कि व्यावहारिक और पारमार्थिक दशा में भेद किया जाय। वह कहते हैं कि व्यवहार दशा में तो जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता ही है। ऐसी अवस्था में उपास्य और उपासक का भेद, पुण्य और पाप का भेद रहेगा ही। परन्तु यह उपचार क्षणिक है वास्तविक नहीं। इससे रोग क्षण भर के लिये दब जाता है, जाता नहीं। हमने ऊपर जो अङ्गरेजी का लेख दिया है उसका आगे का भाग विचारणीय है:—

There is little sense in saying that questions of morality apply only to the lower world, but are transcanded in the higher. If moral values are real, they are real at all times. Else, they cease to have any significance. In short, morality demands permanent individual, and a first Principle, that is the Good, the guiding star of all progress. But according to Sankara, individuality is an illusion occasioned by Avidya.

(P. 436-37.)

" यह कहना निरर्थक है कि सदाचार का सम्बन्ध व्यवहार दशा से है परमार्थ से नहीं। यदि सदाचार का कुछ मूल्य है तो वह प्रत्येक समय के लिये है अन्यथा

नहीं। सारांश यह हैं कि सदाचार के लिये आवश्यकता है कि नित्य जीव हों और एक सर्वोत्कृष्ट सत्ता हो जो सब उन्नति का आदर्श हो। परन्तु शांकर मत में जीव का जीवत्व अविद्या जन्य भ्रम मात्र है"।

इस लेख के लेखक एक विद्वान् आर. रामानुजाचार्य्य हैं। उनका तात्पर्य यह है कि शांकर मत में सदाचार को स्थान नहीं, रामानुज के मत में है। परन्तु यह भी भूल है। विशिष्टाद्वैत भी सदाचार के लिये उचित स्थान नहीं छोड़ता। हमने जिन वाक्यों को वक्राक्षरों (Italics) में कर दिया है उनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है। वह कहते हैं

"Moral consciousness tells us emphatically that we are as truly distinct from God, the *source of our being,* as we are from our fellow men."

अर्थात् सदाचार चाहता है कि "हमारा ईश्वर से भिन्न अस्तित्व है।"

इसकी ऊपर के वाक्य से संगति मिलाइये।

If permanent self-hood is an illusion, the notion of duty loses all its significance.

अर्थात् यदि जीव का नित्य जीवत्व भ्रम है तो कर्तव्य का क्या अर्थ? इसमें दो बातें सिद्ध हुई।

(१) जीव ब्रह्म से भिन्न है।

(२) जीव नित्य है।

यदि यह दोनों बातें ठीक हैं तो उनका यह कहना कि

the source of our being

"ब्रह्म हमारी सत्ता का कारण है' क्या अर्थ रखता है? यदि जीव नित्य और भिन्न सत्ता है तो ब्रह्म उसका कारण कैसे हुआ?

स्वामी दयानन्द इन उलझनों को इस प्रकार सुलझाते हैं कि जीव को न केवल ब्रह्म से भिन्न ही मानो किन्तु उसको अकारण भी मानो। जीव ब्रह्म के आश्रित इसलिये हैं कि नित्य जीव में नित्य ब्रह्म व्यापक है। व्यापक वस्तु व्याप्य का आधार तो है परन्तु कारण नहीं। केवल अकारण वस्तु ही नित्य हो सकती है। इस प्रकार विशिष्टाद्वैत ने शांकर अद्वैत की कठिनाइयों को सुलझाने का यत्न तो किया परन्तु वह उलझनें ज्यों की त्यों रह गईं। वस्तुतः स्वामी दयानन्द का द्वैत या त्रैत वाद ही उपास्य उपासक या सदाचार के प्रश्न को सुदृढ़ नींव प्रदान कर सकता है।

शंकर कहते हैं कि ब्रह्म निर्गुण है। गुण माया के कारण प्रतीत होते हैं अतः माया का आवरण होने से ही सगुण ईश्वर होता है। पञ्चदशी में इसीलिये लिखा है कि—

मायाख्यायाः कामधेनो-
वंत्सौ जीवेश्वरावुभौ।
यथेच्छं पिवतां द्वैतं
तत्त्वं त्वद्वैतमेव हि॥
(चित्र दीप प्रकरण श्लोक ३६)

अर्थात् माया नामक कामधेनु के जीव और ईश्वर दोनों बछड़े हैं। वे इच्छा-पूर्वक द्वैत का पान करते हैं। तत्व तो अद्वैत ही है।

ऐसे सगुण ब्रह्म के लिये जो जीव के समान ही माया का बछड़ा अर्थात् सगा भाई है किसी जीव के हृदय में उपासक का भाव नहीं उत्पन्न हो सकता। हम उपासना उसी की करना चाहते हैं जो हमसे उत्कृष्ट और हमारे समान दोषों अथवा अल्पताओं से मुक्त हो। शांकर ईश्वर तो ऐसा नहीं। इसलिये व्यावहारिक दशा में उपासना नहीं बनती। परमार्थ में तो तो बनती ही नहीं, क्योंकि उपास्य ही उपास्य रह जाता है, उपासक नहीं। या यों कहना चाहिये कि जब उपासक नहीं, तो उपासना नहीं। क्योंकि उपासना उपासक के आधीन है। और जब उपासना नहीं तो जो ब्रह्म रह गया वह भी उपास्य नहीं रहा।

रामानुज ब्रह्म के गुणों का निषेध नहीं करते। वह ब्रह्म में सभी गुणों का समावेश मानते हैं। जिस अंग्रेजी लेख का हमने ऊपर उल्लेख किया है उसीका एक उद्धरण लीजिये :—

"Ramanuja secures the unity of the Universe without sacrificing its multiplicity. The All is One. The Supreme Spirit lies at the heart of "all the choir of heaven and furniture of the earth," and unifies them into an ordered whole. "All are but parts of one stupendous whole, whose body Nature is, and God the soul." Everything is embraced in the unity and harmony of a single system. Outside the sublime spirit of the Universe there is neither life nor being. The world ls not an illusion, but it exists in Him. Matter and soul find their eternal abode in Him."

(P. 439.)

अर्थात् रामानुज विश्व की एकता को मानते हुये भी उसके बहुत्व का

निषेध नहीं करते। सब एक ही है। समस्त द्यावा पृथ्वी के भीतर एक परम आत्मा है जो सब को नियमानुसार सूत्रित करता है सब एक महान् ब्रह्माण्ड के भाग है। जिसका शरीर प्रकृति है और आत्मा ईश्वर है। समस्त वस्तुयें एक ही संस्था के अन्तर्गत हैं। विश्व के पवित्र-आत्मा के बाहर न जीवन है न सत्ता है। संसार माया नहीं है परन्तु ब्रह्म में रहता है, प्रकृ.त और जीव उसीमें नित्य रहते हैं।

एक और उद्धरण।

This subline spirit, the Essence of things, is Purushotama. Ramanuja conceives him as endowed with every perfection. "He is a magnified and glorified replica of what is best and highest and most real in man." God is not intelligence as Sankara would have it. According to Ramanuja, God is intelligent, merciful and righteons. To him belong the attributes, Truth and loving kindness. He is omnipotent. He is the source of all power. The individual soul has freedom to do what he likes. Only his freedom has certain limits. (P. 439.)

"पवित्र-आत्मा जो सब वस्तुओं [illegible] तत्व है पुरुषोत्तम है। रामानुज [illegible] मतानुसार वह सभी गुणों से स[illegible] है। मनुष्य में जो कुछ स[illegible] उच्चतम और अत्यन्त वास्तिक है [illegible] वृहत और महान् रूप वह है। शंकर [illegible] समान रामानुज उसे ज्ञान नहीं मा[illegible] उनके मत में ईश्वर चेतन दयालु, [illegible] श्रेष्ठ है। सत तथा दयालुता उ[illegible] गुण हैं। वह सर्वशक्तिमान है। [illegible] सर्व शक्तियों का भण्डार है। [illegible] स्वतंत्र है जो चाहे सो करे, हाँ उ[illegible] स्वतन्त्रता की कुछ मर्यादा अवश्य है।"

यदि ऊपर के इन दोनों उद्धरणों [illegible] विश्लेषण किया जाय तो रामानुज [illegible] विशिष्टद्वैत के लिये कोई स्थान [illegible] रहता। अद्वैत को छोड़ते हुये भी रा[illegible] नुज को 'अद्वैत' शब्द प्यारा है [illegible] वह उसको एक विशेषण (विशिष्ट) [illegible] साथ प्रयोग करते हैं। शांकर अद्वैत [illegible] धाक रामानुज के ऊपर है। वह उ[illegible] सर्वथा मुक्त नहीं हो सकते। पर[illegible] वस्तुतः वह शांकर मत के साथ अद्वै[illegible] को भी छोड़ बैठे। "Matter and so[illegible] find their eternal abode in Him" अर्थात् "प्रकृति और जी[illegible] नित्य ही ब्रह्म में रहते हैं" इसका [illegible] अर्थ है? इसे विशिष्टाद्वैत कहें [illegible]

सीधा द्वैत या त्रैत! "ईश्वर सर्व शक्तिमान् है।" "जीव की शक्ति सीमित है।" इससे जीव का अभाव तो सिद्ध नहीं होता। स्वामी दयानन्द इन झमेलों से बचने के लिये अद्वैत को सर्वथा ही छोड़ देते हैं। वह ईश्वर में गुण तो मानते हैं परन्तु साथ ही उसे निर्गुण भी कहते हैं निर्गुणता और सगुणता का अर्थ स्वामी दयानन्द वही नहीं लेते जो शंकर या रामानुज लेते हैं। शंकर ने ब्रह्म को निर्गुण अर्थात सब प्रकार के गुणों से रहित बताया। हां माया के कारण ईश्वर को सगुण माना। रामानुज ने ईश्वर में सभी गुण माने और उसे साकार भी बता दिया। यही रामानुज के अवतारवाद और सगुणोपासना की आधार शिला है। दयानन्द इस से विपरीत जाते हैं। वह निर्गुण ब्रह्म और सगुण ईश्वर में तो भेद करते नहीं। उनके लिये ब्रह्म, ईश्वर, शिव, गणेश सभी भिन्न २ नाम उस एक सत्ता के हैं। नाम अनेक हैं वस्तु एक है। इस अर्थ में आप दयानन्द को भी अद्वैतवादी कह सकते हैं क्योंकि वह एक ही ईश्वर मानते हैं अधिक ईश्वर नहीं। परन्तु स्वामी दयानन्द इस शब्द पर कुछ मोहित नहीं हैं। और न वह यह परवाह करते हैं कि कोई उनको द्वैतवादी कहे या अद्वैतवादी। उनके लिये ईश्वर की भिन्न २ अवस्थायें भी नहीं जैसे एक निर्गुण अवस्था दूसरी सगुण अवस्था। वह वस्तुतः निर्गुण और सगुण विशेषण ईश्वर के साथ नहीं जोड़ते किन्तु उपासना के साथ जोड़ते हैं। वह कहते हैं कि ईश्वर में कुछ गुण हैं। कुछ नहीं। जैसे परमात्मा सर्वज्ञ है, दयालु है, न्यायकारी है। ये तो हुये उसके गुण परन्तु वह अल्प नहीं है, अशुद्ध नहीं है। इस प्रकार ईश्वर की सत्ता में अल्पता और अशुद्धता का अभाव हुआ। बस जो गुण ब्रह्म में हैं उनका अवलम्बन करने से उपासना सगुण हुई और जो गुण ब्रह्म में नहीं हैं उनको त्यागने के लिये उनका चिन्तन करना हुई निर्गुण उपासना। मोटे शब्दों में इस को यों कहेंगे कि ईश्वर दयालु है अतः हमको भी दयालु होना चाहिये यह है सगुण उपासना।

ईश्वर अशुद्ध नहीं है। अतः हम को भी अशुद्धता से बचना चाहिये। यह हुई निर्गुण उपासना।

इसकी पुष्टि में स्वामी दयानन्द ने यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय का आठवां मंत्र दिया है जो उनके मत को भली भांति दर्शाता है:—

सपर्यगाच्छुक्रमकायमस्नाविर
ꣳ शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूस्वयम्भूः
इत्यादि —

इस मंत्र में कुछ ऐसे गुणों का वर्णन है जो ईश्वर में हैं और कुछ ऐसे गुणों का जो ईश्वर में नहीं हैं । अर्थात् वह सर्वव्यापक है, शुक्र है, शुद्ध है, कवि है, मनीषी है, परिभू है, स्वयम्भू है । यह तो हुये ईश्वर के गुण । अब ईश्वर में कौन से गुण नहीं हैं । अकायम् । अस्नाविर, अपाप, विद्धम् शरीर नहीं, नस नाड़ी नहीं, पाप नहीं ।

सच्चा उपासक अपनी त्रुटियों को समझता हुआ ईश्वर की ओर बढ़ता है जिससे उसकी त्रुटियों कम हो जाय और ज्यों ज्यों वह ईश्वर के समीप आता जाता है वह अपने को शुद्ध और पवित्र पाता है।

यहां हमने तीन महान दार्शनिकों के मत सूक्ष्म रूप में रख दिये हैं, आशा है विवेकी पुरुष इन पर विचार करेंगे।

ऋषि का प्रताप

[बा० अवध बिहारी लाल बी० ए० विशारद 'अवध']

आपके प्रताप से ही, वेद-ज्ञान वाले ऋषि,
भूत भागे, भद्रा भागे, भ्रम भागे भटका ।
दिशशूल सूली चढ़े; ग्रह सारे मर गये,
पापी पीर गाज़ी रोवें, खाके बुरा झटका ॥
जन्म की बड़ाई गई, कर्म का महत्व हुआ,
मृतकों के श्राद्ध का भी, टूटा बुरा लटका ।
मूर्तिपूजा हट गई, सन्ध्या आके डट गई,
"अवध विहारी" आर्य अब हैं बे खटका ॥

धर्म्म-परीक्षा

[श्रीयुत हरिवंशराय बी० ए०]



क छोटे से घर में एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी रहते थे। ब्राह्मण का नाम राम दास था। वह जाति से तो ब्राह्मण था, पर कर्म्म से ब्राह्मण न था। तो भी स्वभाव में ब्राह्मणत्व के कुछ संस्कार तो प्रविष्ट ही थे। पढ़ा लिखा तो कुछ ऐसा न था, पर साथ संगत से कुछ शास्त्र पुराण की बातें सुन रक्खीं थीं। और यथा सम्भव उन्हें जीवन में प्रयुक्त करने की अभिलाषा भी रखता था। वह एक दफ़्र में दर्वान का काम करता था। दस रुपये महीने पाता था। ब्राह्मणी को अपने पुराने यजमानों के यहां से सीधे इत्यादि भी मिल जाया करते थे। इसी में निर्वाह होता था ब्राह्मण के दो एक बाल बच्चे भी थे।

इतना कम वेतन पाने वाले लोग प्रायः प्रति दिन अपने खाने पीने की सामग्री मोल लेते हैं। पर ब्राह्मण का अनुभव था कि इकट्ठा सामान ख़रीदने में किफ़ायत होती है। रोज़ रोज़ के लेने में बरकत नहीं होती और अन्त में चल कर ख़र्च अधिक ही बैठ जाता है। इस लिये वह महीने भर का सामान लाकर घर में रख देता था।

महीना समाप्त हो गया था। ब्राह्मण को वेतन मिल चुका था। घर का अनाज पानी दो एक दिन पहले से ही समाप्त हो चुका था। ब्राह्मण जब दफ़्र से लौटा तब ब्राह्मणी से कहने लगा आज लेने जाऊंगा। क्या, क्या मंगाना है ? बता दो। ब्राह्मणी ने सब चीज़ें बतादी—इतना गेहूं, इतना चना, इतनी दाल, इतना नमक इत्यादि, इत्यादि। ब्राह्मण ने नोट को बड़े यत्न से फेंट में बाध लिया और बाज़ार चलने को हुआ। दरवाज़े तक गया होगा कि फिर लौट आया। बोला—मुल्लू की मां, पैसे भर आटा होतो दे दे। रास्ते में चींटियों की बिलों पर भुरकाता जांऊ"

ब्राह्मणी ने आंखें ऊपर उठाकर उसे देखा और चुप रही। ब्राह्मण फिर बोला-जा मटकियों को झार झूर मिल जायगा, पैसे भर ही तो चाहिये"

ब्राह्मणी अब तो कुछ क्रोधित होकर बोली:—"आंख में अञ्जन करने भर को

तो आटा है नहीं। इन्हें चीटियों के लिये आटा चाहिये। जाओ जब गेहूं आवेगा और पीस कर रख दूंगी तब सेर दो सेर जितना चाहना जाके चीटियों की बिलों पर उंडेल आना"

ब्राह्मण चुप चाप बाहर आया। बाजार की ओर चला। रास्ते में उसके एक आध साथी मिले। किसी से पूछता—गेहूं का आज कल क्या भाव है? किसी से पूछता—जौ आज कल कै सेर का है? मन में अपने रुपये का हिसाब किताब बैठाता चला जा रहा था। ऐसी खरीद करने का विचार कर रहा था कि दस रुपये के अन्दर ही अन्दर सब चीजें मिल जाएँ और कुछ बच भी रहे।

सड़क के एक किनारे पर कई लोग जमा थे। ज्यादातर मुसलमान लोग थे। ब्राह्मण ने देखा कि असाधारण जमाव है। स्वाभाविक ही उसके जी में आया कि देखना चाहिये क्या बात है। फिर मन में सोचा—होगा कुछ, मुझसे क्या मतलब, अभी बाजार जाना है सौदा सुलुफ लेना है, देर ही हो रही है।

भीड़ से एक शब्द निकला 'ब्यां...... ब्राह्मण ने सुना। किसी गाय की आवाज थी। उसने अपने मन में कहा, कि एक गाय चारों तरफ़ इतने आदमी क्यों इकट्ठे हैं? फिर ये ज्यादातर मियां लोग हैं। उसने सोचा तनिक चल कर देखना चाहिये। भीड़ कुछ ऐसी न थी कि ब्राह्मण को अन्दर जाने में कुछ कष्ट उठाना पड़ता। उसका शरीर दुबला पतला पर दृढ़ था पर उसने एकाएक घसना उचित न समझा। बाहर की ओर जो आदमी खड़े थे उन्हीं में से एक को अपनी ओर सम्बोधन करके कहा:—

"भैय्या क्या बात है?

"गाय है"

"गाय कैसी?"

आओ देख न लो, डंगरी सी है एक अहीर बेच रहा है"

दो एक लोग पास से इधर उधर खसक गये। गाय और गाय का बेचने वाला दोनों ब्राह्मण के सामने हो गये। एक दुबली पतली गाय थी। उसके गले में एक लम्बी रस्सी बन्धी थी। इस रस्सी का एक छोर अपने हाथ में लिये एक मोटा काले रंग का आदमी खड़ा था। अहीर था, सर पर एक जोगिया रंग का बड़ा सा पग्गड़ बांधे था। कानों में सोने की मोटी २ मुरकी पहने था। कई अशर्फियां एक सुनहरे कलाबत्तू में गुंथी हुई उसके गले में, गले से खूब सटी हुई

पड़ी थी। आधी वांह की छींट की कुर्ती पहने था जिसमें चांदी के बटन लगे थे। महीन धोती के नीचे लाल लंगोट झलक रहा था। उसके हाथ में एक बढ़िया सामी लगी हुई लाठी भी थी। पैर में जूता कैसा था यह भीड़ में दिखलाई न पड़ा। अहीर लाठी टेक कर खड़ा था।

एक मियां जी उससे बोले, "क्या अपनी ही बात पर रहोगे, मुंह की मांगी तो मौत भी नहीं मिलती।"

अहीर बोला "सोलह रुपये से कौड़ी कम की न होगी मर्जी हो लीजिये। मर्जी हो न लीजिये। मुझे बहुत सी झक झक नहीं पसन्द है।"

ब्राह्मण चुपचाप कुछ सोचता हुआ खड़ा रहा। समझ गया क्या बात है। अहीर है। गाय रक्खी। जितने दिनों तक गाय जवान थी, दूध देती थी, तब तक उसका दूध दुह दुह कर बेचा और लाभ उठाया। पर अब दूध देने योग्य नहीं रह गई बूढ़ी हो गई, तो उसे क़साई के हाथ बेचने जा रहा है। सोचा कुछ कहें। फिर सोचा। मेरे कहने से मान तो लेगा नहीं चलो अपना काम देखें। दुनियां में तो यह लगा ही रहता है—

सुर नर मुनि की याही रीती।
स्वारथ लाय करें सब प्रीती॥

फिर यह तो अहीर ठहरा। अहीर, गड़रिया, क्या जाने दया, धर्म्म। जन्म भर चोरी, बेइमानी की रोटी खाते हैं। ब्राह्मण चलने ही को था कि इतने में गाय ने अपनी गर्दन ब्राह्मण की ओर बढ़ा दी। जैसे गला सहलाने को कह रही है। अपने आप ही ब्राह्मण का हाथ गाय की गर्दन पर चला गया। वह सहलाने लगा। गर्दन ऊंची करती गई। फिर गाय ने गर्दन नीची की ब्राह्मण ने उसके मस्तक को सहला दिया। फिर उसने अपना सर ब्राह्मण के पैर के पास कर दिया। गाय के इन स्वभाव-जन्य हरकतों का ब्राह्मण और हीं कुछ अर्थ निकाल रहा था। उसका हृदय दया से भर गया। जहाँ पहले उसने सोचा था कि चुपचाप चले जायं वहाँ अब उसने यह विचार किया कि मुझे अहीर से गाय न बेचने के लिये कुछ न कुछ अवश्य कहना चाहिये। माने न माने उसकी इच्छा। बोला :—

"अहिर राम, इस गाय को क्यों बेचते हो ?"

ब्राह्मण माथे पर चन्दन लगाये हुये था। गले में तुलसी की कंठी भी दिखलाई पड़ती थी। सूरत से ही पता

चलता था कि यह कोई ब्राह्मण है। अहीर बोला :—

"हां महाराज, बेचते तो हैं तुमसे मतलब ?"

"मतलब क्या है। गऊ है—क्यों कसाई के हाथ बेचते हो। जहां तुम्हारे बीस पचीस गायें भैंसें खाती पीती होंगी वहाँ एक यह भी रहेगी। कौन बड़ी जमा खायेगी ?"

"अरे महराज ! चलो बातें करने आये हो ! ऐसे करता होता तो आज मेरे घर पचासों ऐसी वेकार गायें रह जातीं। जो न जानता हो उससे कहो। दान दक्षिणा में पाई हुई न जाने कितनी गायें चोरी छिपा कसाइयों के हाथ वेच आते हो। और हमें चले हो उपदेश देने।" "पर उपदेश कुशल बहुतेरे।"

अहीर अपनी बात खतम करके ज़रा मुस्कराया। उसके चेहरे से ऐसा मालूम होता था कि उसकी विजय हो गई, क्योंकि ब्राह्मण निरुत्तर हो गया। ब्राह्मण तो मारे शर्म के कट सा गया। अपनी दृष्टि नीचे किये हुए गाय की गर्दन सहलाता ही गया।

दो तीन मुसलमान एक कोने में खड़े होकर बातें करने लगे।

"अमें, सोलह रुपये मांगता है बहुत है, डंगरी सी तो है।"

"तुम कितना देते हो ईदू ?"

"भाई हम तो बारह देते हैं—और क्या चाहिये।"

"नहीं देता, दो रुपया और बढ़ा दो।"

ब्राह्मण ने मुसलमान खरीदारों की बात सुनी। अहीर सोलह रुपये मांगता है। ये लोग चौदह देने को आ गये हैं। अब दो रुपये की ही बात है। गाय इन कसाइयों के हाथों में जाने के क़रीब है। ब्राह्मण कुछ घबराया। सोचा क्या गऊ माता की जान इन कसाइयों के हाथों में ही जाना बदा है ? क्या अहीर इनके हाथ गाय वेचने से किसी तरह नहीं रुकेगा ? उसने कहा; सोचने सोचने में काम न चलेगा। अभी अभी गाय बिक जायगी। और फिर कुछ करते धरते न बनेगा। सोचा, दो एक हिन्दुओं से कहूँ वे ही ख़रीद लें तो एक गाय की जान बच जाय। इधर उधर देखा। कई एक हिन्दू खड़े थे। उनसे बढ़कर सब बातें कहीं। कोई लेने को तैयार न हुआ। ब्राह्मण को क्रोध सा आगया। पास के आदमियों से कहने लगा। पहले धीमे से और फिर जोश के साथ देखो इतने हिंदू हैं, एक गाय की जान नहीं बचा सकते

कहलाते हैं, राम कृष्ण के भक्त और कृष्ण ने जिन गउओं को वन वन चराया उनकी रक्षा नहीं कर सकते। कैसा कलयुग छाया है। कैसी दुनिया मतलब की हो गई है। निस्स्वार्थ धर्म्म तो किसी को करना आता ही नहीं। जब तक छाती फाड़ फाड़ कर दूध पिलाये तब तक तो गऊ माता है, और वही माता जब बूढ़ी हो जाती है तब कसाई के हाथ सौंपते हैं, धिक्कार है ऐसे हिन्दुओं को। मुसलमान गाय नहीं काटते। हिन्दू लोग कटवाते हैं। तभी तो दूध दही स्वप्न हुआ जाता है। खेती बारी में आग लगी जाती है। जान लो हिन्दुओं। इन गूंगी गउओं का श्राप तुम्हें बबाद किये देता है। कोई तो राम कृष्ण का भक्त ऐसा निकलता। जो कह देता कि 'मैं' गाय लेकर उसका प्राण बचाऊंगा।"

ब्राह्मण ने समझा था कि उसकी बातों से किसी का तो दिल पसीजेगा। पर बाजार में वह भी एक तमाशा बन गया। एक आदमी दूर पर खड़ा था। हँसकर बोला :—

"पण्डित जी महाराज, आप ही क्यों नहीं गऊ माता का प्राण बचाते!"

ब्राह्मण बोला, "शोक है कि मेरी औकात ऐसी नहीं है"

वही आदमी और जोर से बोला "बस आगया म्याऊं' का स्थान। बड़ी २ बात तो सब चूहे कर लेंगे, पर बोलो म्याऊं कौन पकड़ेगा? जब गांठ से पैसे निकालने का प्रश्न आता है तब सब दुम दबाते हैं। जैसे आप समझते हैं कि आपकी औकात नहीं है वैसे सब लोग समझते हैं कि उनकी भी औकात नहीं है।"

ब्राह्मण फिर चुप होगया। कुछ देर खड़ा रहा। फिर भीड़ से एक शब्द हुआ व्यां...... । ब्राह्मण ने यह आवाज़ सुनी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानों गाय ने उसी को बुलाया है। वह गाय के पास चला गया। फिर गाय ने ब्राह्मण की ओर गर्दन बढ़ाई। सम्भवतः पशु पक्षी दयालु हृदय को मनुष्यों से कहीं जल्दी पहचान जाते हैं। वह गला सहलाने लगा। गाय ने गर्दन ऊंची उठाई। ब्राह्मण ने उसका मुंह चूम लिया।

अहीर सोलह से उतर कर १५) पर आ गया था। क़साई १४) दे रहे थे। केवल एक रुपये का अन्तर था। इस एक रुपये का अन्तर ब्राह्मण को क़साई की छुरी और गाय की गर्दन का अन्तर जान पड़ा। उसकी आंख से आंसू निकल पड़े। उसने उन्हें इतनी जल्दी पोंछ

डाला कि मानों किसी ने देखा ही नहीं। सोचने लगा, अब जल्द ही गाय क़साइयों के हाथ में चली जायगी। एक ब्राह्मण के सामने एक गाय की हत्या होगी ! हाय मेरी आंखों के सामने क़साई इसको लेकर अपने घर की ओर घसीटेंगे।...

ब्राह्मण एकाएक चिल्ला पड़ा, "लो मैं गाय १५) में ख़रीदता हूं—लो यह दस रुपये का नोट। बाक़ी साथ चलो घर पर देता हूँ।"

अहीर ने महान् आश्चर्य्य भरी आंखों से ब्राह्मण को देखा। ब्राह्मण के प्रति श्रद्धा का अंकुर उसके हृदय में प्रस्फुरित हो पड़ा। समझ गया कि हां, यह कोई आदमी है। उसके हृदय में दया है और इसे धर्म्म का ध्यान है। जब अहीर इन विचारों में मग्न था, ब्राह्मण नोट निकालने में लगा था। ग़रीब अपना धन बड़े यत्न से रखता है। ब्राह्मण ने अपनी फेंट खोली, कई परतें अलग कीं, तब एक काग़ज़ में लपेटा हुआ नोट निकला। ब्राह्मण के हाथों से नोट लेते हुए अहीर कुछ हिचका। नोट लेने को हाथ बढ़ाते हुए उसने उनमें एक विशेष प्रकार की कम्पन का अनुभव किया। अहीर के हृदय में कोई कहने लगा, 'आज तूने एक बड़े दीन का धन अपहरण किया है।'

एक के बाद दूसरे लोग 'वाह महराज' 'वाह महराज' कह कर अपनी ओर चल दिये। जब ब्राह्मण गाय को लेकर चला तब दो एक लोगों ने ताना भी मारा, 'अभी ताव में आकर ख़रीद लिया है, जब बैठाल कर खिलावेंगे तब मज़ा मालूम पड़ेगा; तबली [illegible] जायगी'। ब्राह्मण चुपचाप चल पड़ा अहीर भी साथ हो लिया।

ब्राह्मण के चेहरे पर जो भाव थे उनका निदर्शन करना कठिन है। चिन्ता और सन्तोष का एक अनुपम मिश्रण था। सोचने लगा, 'हां' मैंने ताव में आकर गाय ख़रीद ली; फ़िज़ूल ख़रीदी। क्या मेरे एक गाय ख़रीद लेने से [illegible] गायों की जान बच जायगी ? एक गाय की जान बचाने से ही क्या बड़ा मतलब निकलेगा ? घर पर एक फूटा दाना भी नहीं है; महीने भर का काम किस प्रकार चलेगा ? गाय को भी तो खिलाने के लिये चाहिये वह कहां से आवेगा ? और अभी तो पांच रुपये और देने बाक़ी हैं ये कहां से दूंगा ? ब्राह्मणी के पास, रुपये कहां से होंगे ? ये सब बातें मुझे पहिले

सोचनी थीं। अब भी क्या अहीर को गाय नहीं लौटा सकता? जहाँ उसका जी चाहेगा जाकर बेच लेगा। मैंने सोच कर काम नहीं किया। चाहता था कि मुँह खोले, फिर कुछ सोच कर चुप हो गया।

फिर उसने विचारा, 'नहीं' मैंने ठीक किया। दस आदमी के सामने ख़रीदने की बात कहदी अब उसको कैसे पलटूं? ब्राह्मणी के पैर में फूल के कड़े हैं, उसे गिरों रख कर शेष दाम दे दूंगा पर ब्राह्मणी ने मेरी बात न मानी तो? मुझे उधार कौन देगा? ब्राह्मणी क्रोधित तो बहुत होगी। पर मुझे धर्म्म संकट में देख कर मेरी बात ज़रूर मानेगी। मेरा कोई अपराध नहीं है। मैंने गाय नहीं ख़रीदी। मुझे ईश्वर ने इसको ख़रीदने के लिये बाध्य कर दिया। भगवान्! जब मुझमें दीन-सहायक बनने का सामर्थ्य नहीं था तो मेरे हृदय में दीनों के प्रति दया क्यों दी? इतने बड़े बड़े महाजन थे। किसी और ने गाय क्यों न ले ली। उनके ले लेने में मुझे उतना ही सन्तोष होता जितना स्वयं उसका प्राण बचा कर हो रहा है। गाय पर मुझे दया आ गई। 'तुळसी दया न छाँड़िये जब लग घट में प्राण'। पर मैंने अपने बाल-बच्चों की कुछ फ़िक्र न की। वे अब भूखों मरेंगे। क्या मनुष्य की जान बचाने की चिन्ता करना पशु की जान बचाने से अधिक उचित न था? अरे! राम राम! राधेश्याम! मैं 'पशु' कह गया! गाय माता है! गाय तो देवता है! देवता के लिये मनुष्यों की जान जाये तो कोई हर्ज नहीं और जो हो गया सो हो गया। राम को इस गाय की जान बचानी थी, तब तो मैं वहां कूद पड़ा, नहीं तो भीड़ के पास जाने की आवश्यकता ही क्या थी। पर अपनी आंखों के सामने गाय की हत्या कैसे देखता! मैंने अपना धर्म्म किया। संकट आवेगा तो आवे—

शिवि, दधीच, हरिचंद नरेसा।
धर्म्म हेत सब सहे कलेसा॥

इसी प्रकार सोचते विचारते ब्राह्मण चला आ रहा था। अहीर पीछे २ आ रहा था। वह भी कुछ गम्भीर विचारों में निमग्न था। ब्राह्मण को वह बार २ सिर से पैर तक देख जाता था। रास्ते भर ब्राह्मण और अहीर में एक भी बात न हुई।

ब्राह्मणी ने घर की सफ़ाई कर रक्खी थी। सब बर्त्तन, झाड़े कर रक्खे थे। पहले से सोच रक्खा था कि किसमें दाल रक्खूंगी, किसमें जौ रक्खूंगी,

क़िसमें गेहूं रक्खूंगी। अनाज बनानें के समान सूप, चलनी इत्यादि भी मुहल्ले से मांग लाई थी। दरवाज़ा बन्द था। ब्राह्मण ने गाय को अहीर के पास छोड़ दिया और दरवाज़ा खुलवा कर भीतर गया। भीतर पैर रक्खा ही था कि ब्राह्मणी ने दरवाज़े की तरफ़ देखकर कहा।

"और अनाज।"

"अनाज तो नहीं आ सका।"

"क्यों? क्या खाया जायगा, आज चार दिन से अनाज चुका है। कहीं सेतुआ, कहीं चबेना खाना पड़ता है। बच्चे बिलबिलाते हैं।"

"शायद कल से वह भी नसीब न हो।"

"क्यों?—रुपये क्या हुये?"

"धर्म्म में लग गये।"

"साफ़ साफ़ बताओ क्या बात है?"

"बात यों है कि बाज़ार में एक अहीर एक बूढ़ी गाय क़साइयों के हाथ बेच रहा था। मुझसे यह न देखा गया मैंने उस गाय को खरीद लिया। दस रुपये पास थे वह तो दे दिये। पन्द्रह की है। पांच रुपये पास हों तो—"

रामदास अपनी बात भी न पूरी कर पाये थे कि ब्राह्मणी क्रोध से बोल उठीः—

"अरे! तुम पागल हो गये हो। बड़ा धर्म सूझा है। आदमी अपने घर में चिराग़ जला कर तब मस्जिद में चिराग़ जलाने जाता है। पहले आत्मा तब परमात्मा, खूब चले धर्म्म करने। खुद तो दाने दाने को तरसते हैं और चले हैं गऊ-रक्षक बनने। कुछ अपने लिये सोचा! कुछ इस बे मुंह के बच्चों के लिये सोचा। अरे गाय क्या पत्थर की है! उसे क्या खिलाओगे! किसने तुम्हें सुझाया था। या हमें भूंजने के लिये ये सब बातें बनाते हो! रामदास चुपचाप खड़ा रहा। ब्राह्मणी के मुंह से जो कुछ भी उचित अनुचित निकला कहती चली गई उसकी बातें क्रोध और आवेश से भरी थीं। ब्राह्मण फिर बोला:—

"अहीर दरवाज़े पर खड़ा है। कहीं से रुपये का प्रबन्ध कर—

ब्राह्मणी फिर तीक्ष्ण स्वर में बोली

"हां, मैं कमाई करती हूं न कि मेरे पास रुपये हैं। चलो देखूं किसने तुम्हें बौरहा समझ कर लूट लिया। अरे भगवान् किसने तुम्हारी अक्ल मार दी। आओ तो बाहर।"

इन शब्दों के साथ कालिका के समान वह उठी। तेजी से दरवाज़ा खोला। उनके दीवार में ज़ोर से लगने से

खड़ खड़ाहट से घर गूंज उठा। ब्राह्मण उसके पीछे चुपके चुपके बाहर आया।

पर दरवाजे पर क्या था? गाय के गले की रस्सी बाहर के टट्टर में बंधी थी। गाय एक अनाथ के समान खड़ी थी। अहीर का कहीं पता न था।

अहीर कहां गया? वह कुछ देर तो ब्राह्मण दम्पति की बातें सुनता रहा। जब उसे सारा रहस्य मालूम हुआ तो उसका हृदय जोर २ से धड़कने लगा। उसने सोचा मेरे तृणवत् स्वार्थ के कारण एक ब्राह्मण परिवार धर्म्म की बलिवेदी पर चढ़ जायगा। उस १५) से कौन मेरे धन में वढ़ती हो जायगी? उनके लिये तो यह १५) इनके जीवन मरण का प्रश्न उपस्थित करता है। यदि मेरे कारण इतना बड़ा धर्मात्मा संकटापन्न है तो मैं बड़ा पापी हूं। उसे ऐसा मालूम हुआ कि उसके पैर कांप रहे हैं उसने सोचा क्या मैं इतना बड़ा पापी हूं कि मुझसे पृथ्वी दबी जा रही है। वह क्षण भर भी खड़ा न रह सका। वह भगा—

ब्राह्मणी किसी को वहां न देख कर बोली :—

"यहां तो कोई नहीं है। कोई ठग था ठग। तुम्हें लूट ले गया। सोचा होगा. भागे भूत की लंगोटी ही सही। मरकुटही गाय के दस ही सही। तुम्हें चाहिये कि जाके थाने में रपट लिखा दो।"

ब्राह्मण ने कहा, "अहीर हमारे साथ आया था। मैंने अपनी आंखों से देखा था कि बाजार में उसे १४) मिल रहे थे। कहीं चला गया होगा। फिर लौटकर आवेगा। दाम ले जायगा।"

"जब दाम होगा तब तो ले जायगा। मैं यह कहती हूँ कि तुम्हें घरबार का भी ध्यान न रहा तुम कैसे हो गये थे उस समय। आज भांग तो नहीं पी ली थी।

ब्राह्मण की आंखों में आंसू भर आये, बोला :—

"ब्राह्मणी, ईश्वर की साक्षी देकर कहता हूं कि उस समय मुझे किसी बात का भी ध्यान नहीं था। शास्त्रों में कहा है कि गौ ब्राह्मण और स्त्री की पुकार को कभी अनसुनी न करना चाहिये। मैंने गाय की पुकार सुनी। मैं उसे अन-सुनी न कर सका। हां ब्राह्मणी! मैं उस समय नशे में था। मुझे करुणा की वारुणी ने बेसुध कर दिया था। इस गाय के आंसुओं को मैं नहीं देख सकता था। मैंने इसे अपनी शरण में ले ली।

"अपना ही ठिकाना नहीं—चले औरों को शरण देने—धन्य हो शरण दाता।"

ब्राह्मणी ब्राह्मण की बात न समझ सकी। उसने यही समझा कि उसके पति ने मूर्खता की। रात को बड़ी देर तक ब्राह्मण को बुरा भला कहती रही। सारा परिवार भूखा हो सो रहा। रात को बच्चे भूख के मारे रो रो पड़ते। गाय दरवाज़े पर ही बँधी थी। उसे चोरी जाने का भय न था।

रात ही को सारा क़िस्सा मुहल्ले भर में फैल गया था। मुहल्ले वाले सभी रामदास के काम को बुरा ही बताते थे। उससे किसी ने भी सहानुभूति न दिखलाई। एक आध मस्खरों ने कहा 'इन्हें पागल खाने भेजो।

सुबह हुई रामदास भगवान् का नाम लेकर उठा। उठकर सीधा गाय के पास गया। रामदास जैसे ही उसके पास पहुँचा उसने अपनी गर्दन उसकी ओर बढ़ाई। वह मतलब समझ गया और उसका गला सहलाने को अपना हाथ बढ़ाया इसके हाथ में गाय के गले में बांधी हुई कुछ भारी सी चीज़ लगी। हैं! यह क्या? ग़ौर करके देखा, अभी उजाला भली प्रकार नहीं हुआ था। एक पोटली गाय की गर्दन से लटक रही थी। उसने बड़ी उत्सुकता से पोटली खोली। पोटली में बीस रुपये रक्खे थे। एक छोटा सा पुर्जा भी था। उसने पुर्जे को खोला। उस पर मोटे अक्षरों में लिखा था—

"ब्राह्मण तुम धन्य हो। १०) अपना ले लो गाय तुम्हें दान। १०) प्रति मास गाय के खाने के लिये जब तक वह जीवित रहेगी तुम्हें उसके गले में बंधा हुआ मिलेगा। मेरे जीवन में तुमने बड़ा भारी परिवर्तन कर दिया—धन्यवाद चरणों में प्रणाम।"

पाठक जान गये होंगे कि रुपये का भेजनेवाला कौन था। ब्राह्मण ने भी यही अनुमान किया कि अवश्य ही अहीर यह रुपया बांध गया है। उसने अहीर को बहुत खोजा पर उसका फिर पता न चल सका। तब से हर मास के प्रथम सप्ताह में १०) गाय के गले में बंधे हुए मिलते हैं। लोग बड़ी ताक में रहते हैं कि देखें रुपये कौन और कब बांध जाता है पर किसी ने अब तक नहीं देखा। मुहल्ले के बूढ़े बूढ़ियों का कहना है कि "माखन मिश्री का खवैया, गौवों का चरैया, कृष्ण कन्हैया, यह रुपये बांध जाता है।" "उसीने ग्वाले का वेषधारण करके रामदास की 'धर्म'—परीक्षा की थी।"

मुहल्लेवाले रामदास का अब बड़ा आदर करते हैं। रामदास को गाय की सेवा में बड़ा आनन्द आता है। दफ्तर के समय को छोड़कर वे अपना अधिकांश समय इसी की सेवा में व्यतीत करते हैं। ब्राह्मणी भी पति का सहयोग देती है पर उसकी सेवा निस्स्वार्थ नहीं होती। रामदास से और उससे दो बातों पर अब भी कभी कभी लड़ाई हो जाती है। पहली बात यह है कि रामदास गोबर के विषय में बड़े उदार हैं, जो ही मांगता है उसे दे देते हैं। पर ब्राह्मणी कहती है सारी झंझट का यही इतना तो लाभ है कि उपले ईंधन के लिये मिलते हैं। जब वे भी न मिलें तो कौन व्यर्थ में धुन २ कर काम करे? दूसरी बात यह है कि ब्राह्मणी चाहती है कि गाय कुछ दूध देने वाली तो है नहीं, इसलिये उसे इतनी खली भूसी इत्यादि न दी जाय और १० रुपयों में से कुछ बचाकर अपने काम में लाया जाय। पर रामदास गाय को खली भूसी, हरी घास में खूब तृप्त रखते हैं। दस में से बचाने की कौन कहे आठ-दस आने अपने पास से भी कभी २ लगा देते हैं।

दयानन्द मुनि आये

[श्री चिन्तामणि 'मणि']

आया था वह इस धरणी पर
वेदों का करने उद्धार
वेदों की महिमा को गाने
वेदों का करने विस्तार
वेदों के गुन गाये
दयानन्द मुनि आये

धर्म कर्म का लेश नहीं था
मचा हुआ था हाहाकार
भूले थे सब नर सत्-पथ को
लिया निशा ने था अवतार
सबको मार्ग दिखाये
दयानन्द मुनि आये
विष खा प्राण गंवाये

दीपमालिका

[श्री पं. सत्यव्रत उपाध्याय, बी० ए०, एल० टी०]



धर देखो प्रकाश ही प्रकाश दिखाई पड़ रहा है। चारों ओर चांदनी की सी छटा दीख रही है। कहीं छोटे छोटे दीपकों की पंक्ति चित्त को लुभाती है। कहीं बड़े बड़े कंदील अपने अनुपम सौन्दर्य की छटा के प्रतिबिम्ब को ज्योति में देख २ मुदित होकर मस्त हो रहे हैं, और पथिकों के चित्तों में आनन्द का स्रोत बहा रहे हैं। सर्वत्र आनन्द की ही महिमा झलक रही है। सबके शरीर प्रसन्नता के मारे पुलकित हो रहे हैं। वर्ष भर के बाद लिपे पुते घर भी आज फूले नहीं समाते। आह्लाद के मारे कोई २ तो गगन से गोष्टी करने पर कटिबद्ध हो गये हैं। बड़े २ प्रासादों के शिखर आज दीपों के कारण ऐसे सुसज्जित हो रहे हैं मानों कि मणिमुकुट आज इन्हीं को अर्पण किया गया है जिस गृह में कभी प्रकाश के चिह्न नहीं दिखाई पड़ते थे आज वह भी प्रकाशित हो रहा है। आज विचारा अन्धकार को कहीं भी शरण नहीं। विचारा गली कूंचों से भागकर छोटे २ घरों में छुपा था पर वहां भी प्रकाश देवता ने इसे आ घेरा। आज दुःख है तो केवल दो को; एक अन्धकार और दूसरा कूड़ा करकट। कूड़ा करकट के ऊपर तो डंडे एक सप्ताह पहिले से ही पड़ने आरम्भ हो गये थे। रहे सहे अन्धकार को भी आज हठात् निकाल बाहर कर दिया।

यह देखो सेठ जी अपने वार्षिक आय की पड़ताल कर रहे हैं और लक्ष्मी देवी की आराधना कर रहे हैं और 'स्याम पतयो रयीणाम्' की प्रार्थना में मग्न हैं। और यह दूसरी ओर मनुष्यों का झुण्ड का झुण्ड अपनी २ प्रारब्ध की जांच कर रहा है। सारांश यह है कि आज के दिन सबके सब प्रसन्नचित्त हैं और जो जिस प्रकार अपने आनन्द को प्रकट करना चाहता है, प्रकट कर रहा है।

प्यारे मित्रो! आपने विचारा कि यह आनन्द क्यों? यह लीपा पोती क्यों? यह समस्त भारतवर्ष किसलिये आज

प्रकाशित हो रहा है, यह सारी नगरी किसलिये आज आनन्दमयी बन रही है मनुष्य क्यों अपनी २ प्रारब्ध की परीक्षा कर रहे हैं ? आज सबने शुद्ध वस्त्र किस कारण से धारण किये हैं ?

जब इस प्रकार के भाव चित्त के भीतर उथल पुथल कर रहे थे तो एक ओर से शब्द सुनाई दिया कि आज का दिन एक महान् पुरुष की अगवानी की स्मृति दिला रहा है। यही कारण है कि यह समस्त भारतवर्ष, यह सारी नगरी यह सबके सब मनुष्य अपने २ आनन्द में डूबे हुये हैं।

वह महान् व्यक्ति महाराज रामचन्द्र हैं जो कि अपने पिता की आज्ञा को पालन करके १४ वर्ष के पश्चात् पुनः अयोध्या नगरी में पधारे हैं। यह उनके आने की प्रसन्नता है कि आज सबके सब पुलकायमान हो रहे हैं। श्री राम की अनुपस्थिति के कारण जो त्रुटि हो गई थी वह अब पूरी हो जायगी और लक्ष्मी की वृद्धि होगी इसी हेतु सब मनुष्य प्रसन्न हैं।

यद्यपि आज महाराज रामचन्द्र विद्यमान नहीं हैं तथापि आज उनका यह स्मारक तथा कीर्त्ति को फैलाने वाला रिवाज उपस्थित है। यह स्मरण आते ही उस मर्यादा पुरुषोत्तम की जीवनी हमारे सामने मानो आ उपस्थित हो जाती है और हमको आदेश करती है कि मनुष्यो ! उस पुरुष की जीवनी को तुम लक्ष्य बनाओ और अपने माता पिता की आज्ञा का पालन करके स्वयं मुदित होओ और औरों को भी प्रसन्न करो।

इसीलिये जिस प्रकार आज तुम्हारे घरों में कूड़ा करकट दिखाई नहीं देता उसी प्रकार तुम्हारे चित्तों में भी मैल दिखाई न दे। तभी तुम्हारी वृद्धि होगी तभी लक्ष्मी तुम्हारे घर में आवेगी। यदि तुम लक्ष्मी देवी को बुलाना चाहते हो तो उसके ठहरने के लिये हृदय मन्दिर को शुद्ध कर लो। कुचालों को दूर कर दो और अपने आपको उसका आतिथ्य सत्कार करने के योग्य बनालो। जिन मनुष्यों ने, जिन देशों ने अपने आपको उसके योग्य बनाया वहां ही वह देवी वास करती है। देवी तो दूर रही, साधारण से साधारण व्यक्ति भी मैले घरों में प्रवेश करने में संकोच करता है।

कुछ और आगे बढ़ने पर दूसरी ध्वनि कान में आती है कि आज का दिन वह दिन है जिस दिन भारत का सपूत मा का दुलारा देश का सेवक संसार का हितैषी, आधुनिक काल में वेदों का उद्धार-

कर्त्ता बड़े वेग से आई हुई प्रबल धार में वहते जन समुदाय को बचाने वाले महर्षि दयानन्द सरस्वती अपने गुरु के आदेश को शिरमाथे रख कर गुरु ऋण से मुक्त होकर, परम पिता परमात्मा के वेद रूपी आदेश को दूसरों तक पहुँचा कर वैदिक वेदी पर अपने आपको अर्पण करके संसार के ऋण से मुक्त होकर स्नेहमयी, दयालु माता की गोद में आनन्द की नींद लेने गया है और इसलिये हम भी आनन्द मना रहे हैं। यह ठीक है कि उसके विछोह से क्षोभ भी है पर साथ ही आनन्द अधिक है कि वह अनन्त काल तक मुक्ति के आनन्द को प्राप्त करेगा।

अच्छा पर इससे हमको क्या ? क्यों नहीं ? उस योगिराज प्रतापी आदित्य ब्रह्मचारी ऋषि की जीवनी हमारी रग रग में बल सञ्चारित करेगी। उसका जीवन हमको शिक्षा देगा। उसका अनुकरण हमको योग्य बनायेगा और जिस प्रकार उस ऋषिराज ने औरों के अन्धकार को दूर करके सब को प्रकाश तक पहुंचाने का प्रयत्न किया है। वैसा ही हम भी करें। उस योगिराज ने आज के दिन दिव्य शान्ति को प्राप्त किया है जो कि प्रत्येक प्राणी का लक्ष्य होना चाहिये जैसा कि निम्न लिखित वेद मन्त्र से स्पष्ट है :-

यदि वीरो अनुष्यादग्निमि[...] मर्त्यः । आजुह्वद् हव्यमानुषक् [...] भक्षति दैव्यम् ॥ ऋ० ६।२।६॥

(यदि) जब (वीरः) पुरुष [...] चर्य द्वारा वीर्यवान् (अनुष्यात्) [...] जाय तब (अग्नि) उस ईश्वर [...] अग्नि को (मर्त्यः) मनुष्य ([...] प्रदीप्त करे, अपने अन्तरात्मा में [...] और (आनुषक्) निरन्तर ([...] प्राणापान रूप आहुतियों को (आजुह्व[...] उसमें ही समर्पण करता हुआ, योग [...] समाधिस्थ होता हुआ (दैव्यम्) [...] प्रकार की (शर्म) सुख और शान्ति [...] (भक्षति) भोग करता है। अर्थात् [...] चर्यादि आश्रमों का पालन करके [...] द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार [...] मोक्ष प्राप्त करता है।

इस वैदिक उपदेश को ऋषि ने [...] करण किया। अपने समस्त जीवन [...] उन्होंने यह दर्शा दिया कि जो [...] शरीर की रक्षा करता है और यथा[...] ब्रह्मचर्य का पालन करता है उसके [...] सांसारिक प्रलोभन ठहर नहीं सकते [...] वह सारे विघ्न को पार कर जाता [...] और अन्त में मुक्त होने का अधिकार[...] हो जाता है। अस्तु, दीपमालिका [...]

हमको उस ऋषिराज की याद दिलाता है और इस प्रकार हमारे लिये बहुत ही हितकर है।

कुछ और विचार करने पर प्रश्न उठता है कि क्या ये ही दीपावली का उत्सव मनाने के कारण हैं ?

यदि यही ठीक है तो क्या महाराज राम से पहिले यह उत्सव नहीं मनाया जाता था।

मेरे विचार में तो यह पहिले भी मनाया जाता था। वेदों के अनुशीलन से हमको यह पता लगता है कि हमारे जीवन के लिये यज्ञ कितने आवश्यक हैं। यही कारण है कि यज्ञों का आदेश हमको स्थल स्थल पर मिलता है। अथर्व वेद में मंत्र आता है :—

ऋतून् यजे ऋतुपतीनार्त्तवानुत हायनान्।
समाः संवत्सरान् मासान् भूतस्य पतये यज॥
अथर्व का० ३। सू० १०। मं ९,

मैं गृहपति (ऋतून् यजे) सब ऋतुओं में ऋतुओं के अनुकूल यज्ञ करूं; और (ऋतुपतीन) ऋतुओं के परिपालक अग्नि वायु आदि पदार्थों को भी (यजे) उचित रीति से संगत करके अपने अनुकूल करूँ। (आर्त्तवान्) ऋतुओं के पक्ष मास आदि विशेष २ भागों को भी (यजे) यज्ञ द्वारा सुखकारी बनाऊं। (उत) और (हायनान्) सब वर्षों या सब दिनों में (यजे) यज्ञ करूं। और (समाः) सब (संवत्सरान्) संवत्सरों, वर्षों, और (मासान्) सब मासों में भी यज्ञ करूं और सब कालों में (भूतस्य पतये) समस्त प्राणियों के पालक परमात्मा की (यजे) उपासना करूं।

इससे स्पष्ट है कि ऋतु परिवर्त्तन में अत्यन्तावश्यक है कि यज्ञ किया जाय। यह सब मानते हैं कि कि वर्षा ऋतु के पश्चात् प्रत्येक गृह में क्या दशा हो जाती है। वर्षा ऋतु के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक स्थान की सफ़ाई की जाय। आर्य्य हो अथवा हिन्दू, ईसाई हो या मुसलमान। कोई भी क्यों न होयह सब मनाते हैं कि वर्षा ऋतु के उपरान्त घरों की विशेष रूप से सफ़ाई की जाय। ऐसा करने से घरों का वायु हमारे लिये हितकर होगा।

वेद मन्त्रकी ओर जब हम दृष्टि डालते हैं तब तो सर्वथा स्पष्ट हो जाता है कि यज्ञ ऋतु परिवर्त्तन के दुष्परिणामों को दूर करने में कितने सहायक होते हैं। नीर समीर को अनुकूल हम यज्ञों के द्वारा ही बना सकते हैं। इसी हेतु हमारे पुरुषाओं ने इस अमुक दिन को दीपावली उत्सव मनाने के लिये उपयुक्त समझा और उसकी परिपाटी चल पड़ी।

आप कहेंगे कि यदि यज्ञ ही प्रधान कारण है तो केवल यज्ञ ही पर्याप्त होता। दीप मालिका की क्या आवश्यकता थी

हम पहिले बता चुके हैं कि इस समय प्रत्येक मनुष्य आनन्द में मग्न है। आप जानते हैं कि वर्षा-ऋतु की अच्छी या बुरी दशा पर ही वर्ष भर का आनन्द निर्भर है। यदि वर्षा अच्छी हुई आनन्द की सीमा बढ़ गई यदि न हुई तो आनन्द में न्यूनता आगई।

हमारा भारतवर्ष यज्ञों के लिये प्रसिद्ध रहा है और 'यज्ञाद्भवति पर्जन्यः पर्जन्यादन्नसंभवः' (यज्ञ से वर्षा और वर्षा से अन्न की उत्पत्ति) के पाठ को पढ़ता रहा है। यज्ञ प्रधान देश ही विश्वास के साथ कह सकता है कि वर्षा अवश्य होगी और अच्छी होगी और होता भी ऐसा ही रहा है। जब ऐसा है तो अन्न क्यों उत्पन्न न होगा? अवश्य होगा। फिर आनन्द क्यों न मनाया जाय? यही कारण प्रतीत होता है कि जिससे इस ऋतु में इस अन्धकार-मय रात्रि को दीपमाला के द्वारा सारे घरों को प्रकाशित करके आनन्द मनाया जाता है। इस कारण के साथ २ महाराज रामचन्द्र के अगवानी तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती के सब को प्रकाश दिखलाते हुये, इस भवसागर को पार करने के स्मृति दिवस इसके महत्त्व को आर्य जाति के लिये और भी बढ़ा दिया है। इसलिये इस उत्सव को मनाना हमारे लिये परमावश्यक है। परमात्मा करे दीपमालिकोत्सव प्रति वर्ष हमारे चित्तों में उत्साह बढ़ावे हम अपने हृदय मन्दिरों को गृहों के समान शुद्ध रक्खें। वायु अग्नि आदि हमारे अनुकूल हों। धन धान्य की वृद्धि हो। हम यशस्वी बनें और हम इस दिवस की भांति वर्ष के सब दिनों में स्वयं आनन्द में मग्न रहें। और औरों को आनन्दित करें। जैसा कि वेदोपदेश से प्रकट है :—

ओं यस्ते नूनं शतक्रतविन्द्र द्युम्नितमो मदः। तेन नूनं मदे मदेः। ऋग् ८।९२।१६। साम० मं० ११६।

हे शतक्रतो! हे सैकड़ों प्रज्ञाओं से युक्त, सैकड़ों क्रियाओं में कुशल! हे इन्द्र! ऐश्वर्यशील! (यः) जो (ते) तेरा (द्युम्नितमः) कीर्ति जनक ऐश्वर्यपूर्ण (मदः) हर्ष का कारण है (तेन) उससे (मदे) उत्पन्न हुये हर्ष में (मदेः) स्वयं भी प्रसन्न रह और हमें भी प्रसन्न कर।

वस्तुतः जो विद्वान् हैं, जिन्होंने अपना जीवन यज्ञमय बनाया हुआ है और जिनका यश उनके शुभ कामों के कारण सर्वत्र फैल रहा है, वे ही नर अन्त में प्रसन्नता प्राप्त करते हैं और उनके साथ उनके पास में उठने बैठने वाले भी आनन्द को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार स्वयं अप्रकाशित दीपक दूसरे दीपकों को प्रकाशित नहीं कर सकता उसी प्रकार स्वयं हर्षित न होता हुआ मनुष्य भी दूसरों के हर्ष को नहीं बढ़ा सकता। स्वयं हर्षित होकर औरों को हर्षित करना ही प्रत्येक उत्सव का लक्ष्य हुआ करता है।

सम्पादकीय

पहला दीपक



पाठकों के करकमलों में वेदोदय के इस अङ्क के पहुँचने के एक सप्ताह के पश्चात् ही कार्तिक की तमिस्रापूर्ण अमावस्या दीपमालिका के अद्भुत प्रकाश के साथ देदीप्यमान होगी। प्रकाश का अन्धकार के साथ विशेष सम्बन्ध है। पूर्णिमा की रात्रि को दीपावलि का इतना महत्व नहीं जितना अमावस्या की रात को क्योंकि अमावस्या को ही प्राणि वर्ग ईश्वरीय प्रकाश से वंचित होकर अन्धकार की पीड़ा का अधिक अनुभव करते हैं और उसी दिन उनको मानुषीय सहायता की अधिक आवश्यकता होती है।

ऋषि दयानन्द ने ४७ वर्ष हुये इसी अमावस्या के दिन अपने भौतिक प्रकाश को दैविक ज्योति से संयुक्त किया था, यदि ऋषि वैदिकयुग में हुये होते (और बहुत सम्भव है कि उस युग में किसी न किसी रूप में अवश्य रहे होंगे) तो उनके प्रकाश का हमको इतना अनुभव न होता। परन्तु ऋषि के समय वैदिक-युग, शान्तियुग, वास्तविक-सभ्यता-युग की पूर्ण अमावस्या थी। मनुष्य मात्र अविद्या रूपी अन्धकार की पापयुग कालिमा से पीड़ित हो रहा था। इस सूचीभेद्य तमिस्रा में दीपावलि नहीं किन्तु एक दीप का प्रादुर्भाव हुआ। उस दीप ने अपनी ज्योति से अन्धकार को छिन्न भिन्न कर दिया और अनेक दीपकों को प्रकाश-दान करके स्वयं ज्योतिः पुंज ब्रह्म में लय हो गया।

आज वैदिक सभ्यता के जो दिये इधर उधर टिम टिमाते दृष्टिगत होते हैं वह सब उसी महान् दीप से प्रकाशित हुये हैं। एक समय था जब वेदों का नाम तक विस्मृत हो गया था। पुस्तकें मिलना तो प्रायः असम्भव ही था।

काशी नगरी में बड़े बड़े दिग्गज परिडतों के पुस्तकालय वेद शून्य थे। जब ऋषि दयानन्द ने काशी के पौराणिक दुर्ग पर पहला आक्रमण किया उस समय शास्त्रार्थ के समय वेदों के मूल ग्रन्थ भी दुष्प्राप्य थे और इधर उधर के पत्रों को ही वेद समझ लिया गया था जिन में कई तो मूल वेदों के थे भी नहीं। जो काशी नगरी समस्त संस्कृत संसार की अग्रिणी होने का दावा करती थी वह जब वेद शून्य हो गई तो अन्य स्थानों का कहना ही क्या। वैदिक सूर्य्य की किरणों की एक झलक भी तो दिखाई न पड़ती थी। इसी वेदाध्ययन के अभाव के कारण राजा राम मोहन राय जैसे चतुर सुधारक को वेदों पर श्रद्धा होते हुये भी वेदों से उदासीन रहना पड़ा था। जहाँ कहीं वेदमंत्रों का थोड़ा बहुत पठन होता भी था वहाँ शर्त यह थी कि वेद ध्ययन किसी शूद्र या ब्राह्मणेतर के कान तक न पहुंचने पाये। वैदिक सिद्धान्त तो सर्वथा ही छूट गये थे। वेदों के उज्वल भावों का स्थान ऊट पटांग रस्मो रिवाज ने ले रक्खा था। भयानक से भयानक क्रियायें में भी वैदिक यज्ञ समझी जाती थीं। यज्ञ श्रेष्टतम कर्म (यजु १। १) होने के बजाय घोर पाप के पुंज बन रहे थे और यज्ञ कर्त्ता यजमानस्य प शून् पाहि (यजु० १। १) के स्थान में यजमान के पशुओं का प्राण लेने को ही उनकी रक्षा तथा यजमान के कल्याण का मुख्य साधन समझ बैठे थे। यज्ञ कुण्डों से केसर कस्तूरी, कपूर और घृत की सुगन्ध युक्त लपटों के स्थान में मांस की दुर्गन्ध उठा करती थी। कौन सा ऐसा अत्याचार है जो वेदों के नाम पर न किया गया हो। स्त्रियां अपने मृतपतियों के शवों के साथ इस लिये जला दी जाती थीं कि वेदों में ऐसा लिखा है, लड़कियाँ बचपने में इस लिये मार दी जाती थीं कि हिन्दू सभ्पता जीवित रहे।

इस अमावस्या में ऋषि दयानन्द का प्रकाश हुआ। उनके आते ही अन्धकार का छिन्न भिन्न होना आरम्भ हो गया। मानो सर्वथा ही नये युग का आरम्भ हुआ। आज वेदों के पुस्तक धड़ाधड़ छप रहे हैं। आज यज्ञों में पशुवध बन्द हो रहा है। जीवन के प्रत्येक विभाग में वैदिक प्रकाश की कुछ न कुछ आभा अवश्य दिखाई पड़ती है।

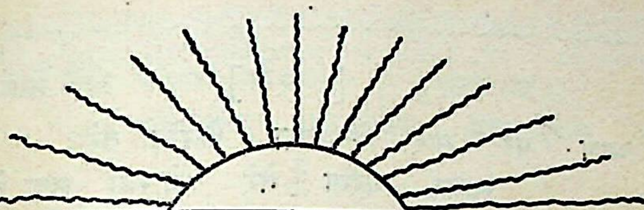
उदीर्ध्वम्जीवो असुर्न आगात्
अपप्रागात् तमः आज्योतिरेति

उठ खड़े हो जीवन हम तक आ गया। अन्धकार चला गया। देखो ज्योति आ रही है। (ऋग्वेद १। ११३-१६)



धर्मवीर पं० लेखराम जी
[आर्य्य मुसाफिर]

ओ३म्



वेदोदय

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति ।

[अथर्ववेद १३ । ४ । १ । १]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती है ।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग २ | कार्तिक संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०६; नवम्बर १९३० | सं० २
आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ | पूर्ण सं० ८

भारत विरुद

[श्रीयुत "कर्ण" कवि महोदय]

[१]

भारत ! त्वदीय गुण गरिमा न गाई जाय;
जगत प्रसिद्ध स्वर्ण-भूमि तेरा नाम है।
पाया तनु-दान तुझमें ही ऋषि-मुनियों ने;
तुही देवताओं का सदा से दिव्य-धाम है ॥
तेरे जैसा देश कोई हुआ आज तक है न;
प्रकृति-बधू का तुही नयनाभिराम है।
'कर्ण' कविराजों की अमर लेखनी से लिखा—
केवल तुझे ही गया ललित-ललाम है ॥

[२]

भाल पर भार ! हिमाचल किरीट तेरे ;
सागर चरण तेरे धो रहा सदा से है।
शोभित सुभग सुरसरि उर माल तेरे ;
बीज परहित के तू बो रहा सदा से है॥
तेरे अगणित शैल शिखर गगन चूमें ;
मद सभी देशों का तू खोरहा सदा से है।
रूपक के रूप में कुशल कवियों के द्वारा ;
तेरा ही बखान 'कर्ण' होरहा सदा से है॥

[३]

तेरा सदा भारत ! निराला रंग ढंग रहा,
देखा जिसे दृग ललचाया किये सब ॥
चाल ढाल तेरी बाँके दृश्य दिखलाती रही,
ठाट-बाट तेरे मन भाया किये सब के॥
मति-गति, सूझ-बूझ सबने सराही तेरी,
धन-जन तेरे काम आया किये सब के।
सुन्दर समुद्र तट, गिरि ग्राम 'कर्ण' तेरे,
मानस-कमल विकसाया किये सब के॥

[४]

तेरा ही तो यज्ञ-धूम भारत ! जलद बन ;
अवनी को शुद्ध जल-दान करता रहा।
तेरा ही तो सुन्दर बसन्ती वेश 'कर्ण' जैसे ;
दर्शकों के मन का विषाद हरता रहा॥
तेरा ही तो सावन सुहावन अनेक भाँति ;
अवला-जनों के हिय मोद भरता रहा।
तेरे ही तो ब्रह्मचर्य्य बल धारी सुभटों से ;
वैरी अघ-यवनों का दल डरता रहा॥

[५]

गुण-गण भारत ! प्रकट तेरे होते रहें ;
रंग तेरे ऊपर चढ़ा न फीके राग का !
होकर उदीयमान 'कर्ण' चिरकाल तक ;
मोल तू बढ़ाता रहा प्रातिभ-पराग का॥
वंशी तेरी बजती कलिन्दजा के कूल रही ;
फाग तू रचाता रहा शुद्ध अनुराग का।

प्यासे चित चातकों की प्यास तू बुझाता रहा;
जल बरसा कर विवेक युक्त त्याग का॥

[६]

तेरे भेष-भूषा, भाव भारत! सराहे गये;
जग जानता है तुझ गुण-गण-ग्राम को।
आप ही तू अपनी अनोखी एक उपमा है;
दे रहे महत्व इतिहास तेरे नाम को॥
फलती सदैव रहीं तेरी शुद्ध भावनायें;
दूर तू भगाता रहा लोभ, मोह, काम को।
'कर्ण' के समान शूर-वीर कर्म्म योगियों से;
गौरवित करता रहा तू धरा-धाम को॥

[७]

भारत! सदा से तेरा गोधन प्रसिद्ध रहा;
वारे गये जिस पर व्रजराज घन-श्याम।
बन्धु अनुराग का पढ़ाता तुही पाठ रहा;
कर अवतरित प्रतापी अवधेश राम॥
तेरी दान-वीरता निराला रंग लाती रही;
सत्य हरिश्चन्द्र का इसी से हुआ नामी नाम।
वीणा बजती रही मधुर तेरे नारद की;
'कर्ण' साम-गान तेरा होता रहा आठौ याम॥

[८]

भारत! सदा से जनता के कर्ण कुहरों को;
तेरा ही पवित्र श्रुति घोष करता रहा।
तेरा ज्ञान-गङ्गा जल पापियों के पाप-मल;
धोता रहा, मानस के ताप हरता रहा॥
खोल कर्म्म-योग के अखाड़े ठौर ठौर कब—
किस के न डर तू उमङ्ग भरता रहा।
विश्व के सुधार का तू एक मात्र भारी भार;
आर्य्य अनघों के सिर पर धरता रहा॥

[९]

सिद्ध इतिहासों से है भारत! महत्ता तेरी;
दी गई उपाधि तुझे 'कर्ण' गुण-ग्राम की।
उन्नति की दौड़ में तू आगे सबही से रहा;
होड़ किसी देश से हुई न तेरे काम की॥

तेरा सब बातों में समान अधिकार रहा;
माला ठौर ठौर जपी गई तेरे नाम की।
प्रश्न तुझसे न कोई हल करने को रहा;
शुद्ध रही सत्ता तेरे धन, जन, काम की॥

[१०]

भारत! तुझे न कोई जीत सका आज तक;
तीव्र तर्क-तीर तेरा काम करता रहा।
तेरी युक्तियों ने किया धारण प्रवल रूप;
तेरा ज्ञान-भानु भ्रम-तम हरता रहा॥
सामाजिक नीति तेरी परम उदार रही;
सदा धर्म्म-युद्ध में तू धीर धरता रहा।
लक्ष्य में अलक्ष्य तेरे बसा भरपूर रहा;
'कर्ण' तू पराये हेतु जीता-मरता रहा॥

[११]

तेरे भोज भूप कुम्भकार के भी घर तक;
विद्या का प्रकाश पहुंचाया किये बार-बार।
तेरे अहो भारत! लकड़हारे भी तो कहीं?
योग्यता की बानगी दिखाया किये बार बार॥
तेरे कवि कालिदास उत्तम कवित्व द्वारा;
रसिकों के चित्त को चुराया किये बार बार।
तेरे तोता-मैना तक भी तो वेद विषयक;
तात कर्ण-माधुरी उड़ाया किये बार बार॥

[१२]

तेरे वीर बापा, कर्ण, रावल पुरुष सिंह;
धूम वैरी दल में मचाते रहे रात दिन।
आन के हठीले हठ हारे न हमीर तेरे:
बेलि वे सुयश की बढ़ाते रहे रात दिन॥
आर्य्य सभ्यताभिमानी भारत! प्रताप तेरे,
हाथ तलवार के दिखाते रहे रात दिन।
समर सयाने "कर्ण" शेर शिवराज तेरे,
धाक यवनों पर बिठाते रहे रात दिन॥

———

वेदों की संसार के लिये आवश्यकता

[श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत् ॥

यह मनुस्मृति के तीसरे अध्याय का दूसरा श्लोक है। इसमें गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के लिये दो शर्तें रक्खी गई है। एक तो ब्रह्मचर्य्य की और दूसरी वेदाध्ययन की। इसका तात्पर्य यह है कि जिस प्रकार चाल चलन का बिगड़ा हुआ पुरुष गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट नहीं हो सकता क्योंकि इससे आगे की सन्तान की भ्रष्ट होने की आशङ्का है इसी प्रकार सुखी जीवन व्यतीत करने के लिये वेद पढ़ने की आवश्यकता है।

वेद पढ़ने के विषय में तीन नियम हैं। जो सम्पूर्ण चारों वेद पढ़ा हो वह तो सब से उत्कृष्ट है। परन्तु चार न सही दो ही सही। कम से कम एक वेद तो अवश्य ही पढ़ा होना चाहिये।

आजकल यदि विवाह के लिये यह नियम रख दिया जाय तो संसार भर में तो क्या! वेद की राजधानी भारतवर्ष में भी तीस करोड़ में तीस स्त्री पुरुष भी विवाह के योग्य नहीं पाये जा सकेंगे। परन्तु जिस समय भाषा तथा प्रथाओं के कारण वेद का पढ़ना सुगम होगा और पूर्ण युवावस्था में विवाह होता होगा उस समय यह बात आश्चर्य-जनक न रही होगी। यदि वेदों का पढ़ना असम्भव या अनावश्यक होता तो मनुस्मृति में विवाह के लिये यह शर्त कदापि न दी गई होती। आजकल इस प्रकार की शर्तें कैसी अजीब प्रतीत होती हैं। किसी युवा पुरुष या युवती स्त्री से कहा जाय कि तुम्हारा विवाह हो ही नहीं सकता और तुम गृहस्थ कहलाये ही नहीं जा सकते जब तक वेदों को या कम से कम एक वेद को समाप्त न कर लो तो यह बड़े आश्चर्य की बात प्रतीत होगी। वह युवा या युवती हँसेंगे कि "वाह। अच्छी रही। यह भी कोई शर्त है? क्या वेद पढ़ना ऐसा सुगम है कि हम चार छः मास में इनको पढ़ डालें? फिर यदि इनका पढ़ना सम्भव भी हो इससे लाभ क्या? आखिर इतना परिश्रम ही क्यों किया जाय। वेद पढ़ने से हमारा क्या हित होगा?" मनु के प्रमाण को कौन मानता है? प्राचीन काल के आर्य्यों की धुन रही होगी कि "वेद पढ़ो! वेद पढ़ो।" आजकल नई रोशनी के युग में वेदों की क्या आवश्यकता।

आजकल वेद क्यों पढ़े जाते हैं। भारतवर्ष में तो वेद पढ़ने की प्रथा ही नहीं है। कुछ लोग दो चार मन्त्रों को यह समझ कर पढ़ लेते हैं कि यह धार्मिक पुस्तक हैं और इनसे कुछ अज्ञात पुण्य होता होगा। ऐसे लोगों की संख्या भी बहुत कम है कुछ पंडित वेदों का गान करते हैं वह भी इस विचार से नहीं कि उनका पढ़ना जीवन यात्रा के लिये हितकर या आवश्यक है किन्तु इसलिये कि वह इसे धार्मिक कृत्य समझते हैं। जिस प्रकार कुरान का हाफ़िज समझता है कि कुरान के पठन मात्र से उसके स्वर्गारोहण में सुगमता हो जायगी या गुरु-ग्रन्थ साहब पर फूल चढ़ानेवाला सिक्ख समझता है कि मैं कुछ पुण्य कमा रहा हूं इसी प्रकार वेदाध्ययन करने वाले भी समझते हैं। भारतवर्ष से बाहर पश्चिमी देशों में वेदों का अध्ययन अधिक नियम अनुसार होता है और यूरोप के पूर्वीय ग्रन्थों के अध्ययन करने वाले जिनको अंग्रज़ी में ओरियण्टलिस्ट (Orientalists) कहते हैं बड़े परिश्रम से वेदों की छान बीन करते हैं। परन्तु अब तो जो कुछ वेदों का अध्ययन पश्चिम में हुआ है उसकी तह में दो बातें हैं। एक तो भारत पर आधिपत्य रखने की लालसा, दूसरे ईसाई धर्म के प्रचार की चेष्टा। जब ईसाई पादरियों ने भारत पर आक्रमण करना आरम्भ किया तो उनको यह जानने की आवश्यकता पड़ी कि जिनको वह ईसाई बनाना चाहते हैं उनके धार्मिक विचारों से अभिज्ञता प्राप्त की जाय। यह यत्न कई सौ वर्षों से होता रहा। इन पादरियों का यह तो पूर्ण विश्वास था कि बाइबिल से उत्कृष्ट कोई पुस्तक संसार में हो नहीं सकता। अब देखना केवल इतना था कि वेद बाइबिल से कितने नीचे हैं और वेदानुयायियों को किस प्रकार सुगमता से समझाकर ईसाई बनाया जा सकता है। मैक्समूलर आदि ने कई स्थानों पर बाइबिल और उपनिषदों की तुलना की है और यद्यपि उपनिषदों की बहुत प्रशंसा की है तथापि अन्तिम सिद्धान्त यही निकाला है कि बाइबिल की शिक्षा अधिक उत्कृष्ट है।

उनका सब से बड़ा यत्न यह रहा है कि जिस प्रकार हो सके भारतीयों के वेद सम्बन्धी दृष्टिकोण को बदल दिया जाय। भारतीयों का दृष्टि-कोण वेद के विषय में क्या था? यही कि वेद ईश्वर कृत, अति पवित्र धार्मिक पुस्तकें हैं? जिन्होंने कभी वेद का अक्षर भी नहीं पढ़ा वह भी वेद के नाम से प्रभावित हो जाते हैं। बहुत से भारतीय वेद को इतना उच्च समझते हैं कि वह अपनी अपवित्रता और अयोग्यता का अनुभव करके वेद को छूना भी पाप समझते हैं। उनका विचार

है कि केवल बहुत पवित्र पुरुष ही वेदों को पढ़ने का अधिकारी है। शायद वेदों की इस अनिर्वचनीय और अमीमांसनीय पवित्रता के कारण ही इन्होंने स्त्रियों और शूद्रों को वेद पढ़ने से वर्जित कर दिया होगा। जब तक भारतीयों के मस्तिष्क में वेदों का इतना मान रहेगा उस समय तक उनका ईसाइयत को स्वीकार करना कठिन है। भारतीय लोग ऐसे तो थे नहीं जैसे लुप्त प्राय अमेरिका के इनका लोग। इनका लोगों के पास एक पादरी गया और उनके सरदार को एक बाइबिल देकर कहा, "जो यह पुस्तक कहे उसको मानो।" इनका जाति के सरदार ने बाइबिल को कान पर रक्खा। उसे कोई शब्द सुनाई न पड़ा इसलिये उसने बाइबिल को फेंक कर कहा, "वह तो कुछ नहीं कहती।" पादरी को अवसर मिल गया। उसने युद्ध छेड़ दिया क्योंकि इनका सरदार ने उसकी धार्मिक पुस्तक का अपमान किया। यह तरकीब अमेरिका की जंगली जातियों के लिये उपयुक्त हो सकती थी। परन्तु भारतीय अधिक सभ्य थे। उनके पास उत्कृष्ट भाषा थी। यद्यपि यह अपने आलस्य और प्रमाद के कारण अपनी साहित्य रूपी अपूर्व पूंजी से अनभिज्ञ हो चले थे तो भी बहुत कुछ शेष था। इसलिये इनको ईसाई बनाने के लिये यह उपाय सोचा गया कि वेदों का दूसरी प्रथा से अध्याप किया जाय। इसमें कृतकार्य्यता भी बहुत हुई। जो बात मुसलमानी समय की तलवार न कर सकी वह आधुनिक यूनीवर्सिटियों और यूरोप के ओरियण्टलिस्टों ने कर दिखाई। अब भारत के नई प्रथा से पढ़े हुये संस्कृतज्ञों का दृष्टिकोण वेद के विषय में वह नहीं रहा। मैक्समूलर ने सेक्रेड बुक्स आफ़ दी ईस्ट (Sacred Books of the East) नामी जो एक उत्कृष्ट ग्रन्थमाला निकाली उसके कुछ लेखक भारतीय विद्वान् भी थे। परन्तु उनके लेखों के देखने से ज्ञात होता है कि उनके विचार अपने धार्मिक ग्रन्थों के विषय में नहीं थे जो यूरोपवालों के थे। लोकमान्य तिलक एक बहुत ही आदरणीय और उत्कृष्ट भारतीय थे। उनकी रगों में भारतीयता के लिये जोश था। वह स्वराज्य को भारतीयों का जन्म सिद्ध अधिकार समझते थे। वह संस्कृत और अंगरेजी दोनों के धुरन्धर पण्डित थे। परन्तु उन्होंने वेदों के विषय में जो कुछ लिखा उसकी शैली यूरोपियन शैली थी।

भारत पर आधिपत्य की लालसा ने भी वेदों के अध्ययन में बड़ी उत्तेजना उत्पन्न की। वही शासक हो सकता है जो शास्य जाति के मस्तिष्क को समझता हो। भारतीय मस्तिष्क के समझने के लिये वेदों का समझना अत्यावश्यक था। था। इसीलिये ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने

भारत का शासक होते ही बहुत सा रुपया वेदों के लिये व्यय किया।

इण्डिया ह्वाट कैन इट टीच अस (India, what can it teach us) नामी पुस्तक जो मैक्समूलर ने लिखी उसमें यद्यपि भारतवर्ष की भूरि भूरि प्रशंसा की गई है, परन्तु उसका मुख्य प्रयोजन यह था कि सिविल सर्विस में शामिल होने वाले अंगरेज़ विद्यार्थियों को भारत में आने और भारतीयों पर शा करने के लिये उत्तेजित किया आ अङ्गरेज़ युवकों को घर छोड़ कर स मील दूर भारत में आने के लि प्रलोभनों की आवश्यकता थी। इसलि मैक्स मूलर को चुना गया कि वह सिवि सर्विस के छात्रों को भारतीय सभ्यता विषय में व्याख्यान दें।

(क्रमशः)

आर्य समाज के प्रसिद्ध तथा अति प्राचीन कार्यकर्त्ता

माननीय राज्यरत्न मास्टर आत्मा राम जी बड़ौदा लिखते हैं:—

"वेदोदय एक उत्तम तथा उच्च कोटि का सुन्दर सचित्र मासिक है। जिसकी तुलना का कोई अनुसंधान पूर्ण मासिक सामाजिक जगत् में इस समय तक तो नहीं है।

मैं परम देव से आपके मासिक की वृद्धि तथा पूर्ण उन्नति के लिये प्रार्थना करता हूँ। मैं समझता हूँ कि यह मासिक देश तथा आर्य-समाज की भारी सेवा कर रहा है।"

वेद का सन्देश

[८]

वि जानीह्यार्यान् ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान् ।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥

(ऋग्वेद मण्डल १, सूक्त ५१, मंत्र ८)

(विजानीहि) पहचानो (आर्य्यान्) श्रेष्ठ पुरुषों को (च) और उनको भी (ये) जो (दस्यवो) दुष्ट हैं ॥ (बर्हिष्मते) ज्ञान वान पुरुष के हित के लिये (अव्रतान्) धर्म विमुख लोगों को (शासद्) कड़े नियन्त्रण में रखते हुये (रन्धय) दण्ड दो । (यजमानस्य) शुभ कर्म करने वाले के (शाकी) सहायक और (चोदिता) प्रेरक (भव) हो । (ते) तुम्हारे (ता) उन (विश्वा) सब (इत्) ही कर्मों को जो (सधमादेषु) यज्ञ आदि के सम्बन्ध में किये जाते हैं (चाकन) मैं प्रसन्नता की दृष्टि से देखता हूं ।

ईश्वर का राजा के प्रति उपदेश है। इसमें तीन बातें कही गई हैं । पहली बात यह है कि श्रेष्ठ और निकृष्ट पुरुषों का पूर्ण ज्ञान हो । प्रत्येक राजा का कर्तव्य है कि भले बुरे की पहचान करे। संसार में दोनों प्रकृतियों के लोग होते हैं अर्थात् भले और बुरे । यदि सभी भले होते तो राजा की क्या आवश्यकता थी ? वस्तुतः यह जगत् ही भद्र और अभद्र के द्वन्द्वों का समूह है । यह सृष्टि बनाई ही इस-लिये गई है कि दुष्ट अपनी दुष्टता को कम करें और श्रेष्ठ अपनी श्रेष्ठता को बढ़ावें । जिस राज में भले और बुरे दोनों एक ही प्रकार से रहते हैं वह 'अन्धेर नगरी' के समान शीघ्र ही नष्ट हो जाता है । राज के नष्ट होने से श्रेष्ठ और दुष्ट दोनों प्रकार के लोगों को हानि होती है । श्रेष्ठ अपनी श्रेष्ठता को कायम नहीं रख सकते और दुष्टों की दुष्टता बढ़ जाती है ।

मनुष्य समाज की अवस्था का व्यक्तियों की अवस्था पर प्रभाव पड़ता है । मनुष्य एक समाज में रहने वाला प्राणी (Man is a gregarious animal) है । इसका मुख्य कारण यह है कि समाज के द्वारा ही इसकी उन्नति हो सकती है ।

इसलिये मनुष्य की उन्नति के लिये उन्नत समाज और उन्नत राज्य की आवश्यकता है। समाज या राज ऐसा होना चाहिये कि श्रेष्ठ पुरुषों को शुभ-कार्य्य के करने में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। और दुष्ट लोगों को अपनी दुष्टता प्रकट करने का साहस न हो सके। जिस समाज या राज में लोग निःशङ्क होकर झूठ बोल सकते, चोरी या व्यभिचार कर सकते और दूसरों को सता सकते हैं उसमें श्रेष्ठ पुरुषों का निर्वाह कठिन ही है। उत्तम गुणों वाले पुरुषों को अधिक से अधिक अवसर देना और दुष्टों के मार्ग में बाधा उपस्थित करना ही समाज या राज का मुख्य उद्देश्य है इसीलिये वेद ने दूसरी बात यह कही कि (वर्हिष्मते) अर्थात् ज्ञानी पुरुष के हित के लिये (अव्रतान्) व्रत रहित और नियम विरुद्ध चलनेवाले पुरुषों को (शासद्) नियम में रखते हुये (रन्धय) दण्ड दो।

"अव्रत" कौन है? वही जिसका कोई 'व्रत' नहीं। जब मनुष्य का यज्ञोपवीत होता है तो वह व्रत करता है कि मैं ऋषि-ऋण, देव-ऋण तथा पितृ-ऋण को चुकाने का व्रत करता हूं। यह व्रत ही मनुष्य को आर्य्य बनाता है। आर्य्य का अर्थ है व्रतधारी। जो व्रत नहीं रखता वह 'अव्रत' है। उसी को दस्यु कहा है। अव्रत शब्द का अर्थ अधिक स्पष्ट हो जाता है जब हम इसके अंग्रेजी पर्य्याय पर विचार करें। क्योंकि आज कल यह अंग्रेजी का पर्य्याय संस्कृत पर्य्याय की अपेक्षा अधिक प्रचलित है। अंग्रेजी का वह शब्द है ड्यूटी (Duty) ड्यू का नैरुक्तिक अर्थ है ऋण; क्योंकि ड्यू (due) कहते हैं ऋण को। जो अपने को ऋणी समझता है वही उसके चुकाने का व्रत करता है। जिसने जन्म तो लिया परन्तु अपने जन्म दाता माता पिता के ऋण को स्वीकार न किया। अपनी जीवन यात्रा के लिये ईश्वर प्रदत्त वस्तुओं को भोगा परन्तु ईश्वर का ऋण न माना। विद्वानों तथा ऋषि मुनियों द्वारा सम्पादित ज्ञान से लाभ उठाया परन्तु उनका अपने को कृतज्ञ मानने की आवश्यकता नहीं समझी उसकी ड्यूटी अर्थात् ऋण तो है परन्तु उसे ड्यूटीफुल (Dutiful) अर्थात् व्रती नहीं कह सकते। वह तो अन-ड्यूटीफुल (Undutiful) अर्थात् "अव्रत" मात्र है। वेद ऐसे ही पुरुषों को अव्रत तथा दस्यु कहता है। ऐसे लोग व्रतधारियों अर्थात् आर्य्यों के मार्ग में कण्टक हैं। वह उच्छृङ्खल है। वह किसी नियम में नहीं रहते। जो मन में आया वही किया, ऋण लेकर घी पिया। और मौज उड़ाई। उनके न तो वचन का ठीक न काम का ठीक। यह लोग ज्ञानी पुरुषों को ज्ञान प्राप्त करने नहीं देते। श्रेष्ठ पुरुषों को श्रेष्ठ कर्म करने नहीं देते। और न केवल संसार की हानि ही करते

हैं किन्तु अपनी भी। वे संसार के साथ अपने भी शत्रु हैं। ऐसे लोगों के लिये वेद का आदेश है कि राजा उन को बड़े कड़े नियम में रक्खे और उनको सदा दण्ड देता रहे। इसका सब से अच्छा उदाहरण खेत से ले सकते हैं। खेत के मालिक का काम है कि वह खेत के बोये हुये पौधों तथा स्वयं उगी हुई घास को पहचाने। घास और फ़सल दोनों साथ साथ नहीं उग सकते। यदि घास बढ़ेगी तो गेहूं की उपज न होगी। योग्य कृषक घास को बढ़ने नहीं देता। और यदि बढ़ती है तो उखाड़ कर फेंक देता है। क्योंकि घास की वृद्धि ही गेहूँ की अवनति का द्योतक है। इसलिये वेद कहता है कि "बर्हिष्मते" अर्थात ज्ञानी पुरुष के हित के लिये दस्यु अर्थात् अव्रतों को दण्ड देना चाहिये।

तीसरी बात यह है कि जो यजमान अर्थात शुभ कर्म करने वाला है उसका "शाकीभव" सहायक हो। "यजमान" "अव्रत" का उलटा है। जो अव्रत नहीं वही यजमान है क्योंकि उसका कोई व्रत है। वह यज्ञ करने के लिये उद्यत है। राजा का काम है कि ऐसे पुरुषों की सदा सहायता किया करे। वस्तुतः राज्य या सुराज्य का अर्थ ही यह है कि अच्छे पुरुषों का "चोदिता" अर्थात् प्रेरक हो। समस्त राज्य का वायुमण्डल ही ऐसा होना चाहिये कि अच्छे पुरुष बड़े आनन्द के साथ अपने अच्छे कार्य्यों का सम्पादन कर सकें। उन को किसी बात की तनिक सी भी अड़चन न पड़े।

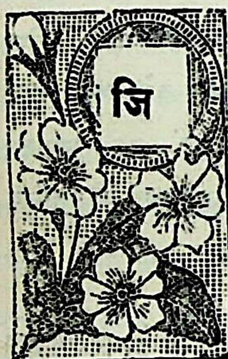
यदि ऐसा राजा हो तो ईश्वर कहता है कि हे राजन! मैं तेरे ऐसे समस्त शुभ कार्य्यों से प्रसन्न होता हूँ। क्योंकि ईश्वर की सृष्टि भी तो ऐसी ही बनी हुई है। इसमें बुरे पुरुषों को इतनी सफलता प्राप्त नहीं होती जितनी भले पुरुषों को। सृष्टि की समस्त प्रगतियां मनुष्य को कल्याण की ओर ले जाती हैं।



मुक्ति की युक्ति

[श्रीयुत कृष्णानन्द जी]

धर्मार्थ काम मोक्षाणां यस्यै कोऽपि न विद्यते
अजागलस्त- नस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥



जिस मनुष्य ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों में से एक को भी प्राप्त नहीं किया उसका जन्म बकरी के गले के थन की भांति निरर्थक है।

धर्म शब्द का मुख्य अर्थ है सत्कर्म या कर्त्तव्य कर्म। अर्थ का अभिप्राय है धन-सम्पत्ति। काम से तात्पर्य है दाम्पत्य-सुख। मोक्ष से आशय है जीवन्मुक्ति या ब्रह्मानन्द।

मनुष्य जीवन का सम्पूर्ण सुख तभी मिल सकता है जब यह चारों वर्त्तमान हों। मानव जीवन की पूर्णता इन्हीं चारों के योग से होती है। परन्तु प्रत्येक व्यक्ति इन चारों गुणों से युक्त होने में समर्थ नहीं होता। इसलिए कवि कहता है कि यदि चारों को प्राप्त न कर सके तो तीन या दो को अवश्य ही सिद्ध करना चाहिए। परन्तु जिस व्यक्ति में एक भी गुण अच्छी तरह नहीं उसका जीवन बिलकुल व्यर्थ है। इन चारों में श्रेष्ठ कौन है? इसका ठीक उत्तर प्रत्येक मनुष्य दे सकता है कि मोक्ष ही सर्वश्रेष्ठ है। परन्तु मोक्ष ऐसा पदार्थ नहीं है जो सुगमता से मिल सके। अब विचार करना चाहिए कि मुक्ति किस प्रकार से मिलती है।

मुक्ति के साधन के सम्बन्ध में भिन्न भिन्न मतवादियों के भिन्न भिन्न विचार हैं। कोई राम नाम जपने से, कोई गंगास्नान से, कोई शिव की आराधना करने से, कोई देवी की उपासना करने से, कोई राधास्वामी जपने तथा आँख कान मूंद कर प्राकृतिक ध्वनि सुनने से, कोई मूर्त्तिपूजन से, कोई तीर्थाटन से, कोई ईसा पर विश्वास लाने से, कोई रसूल पर ईमान लाने से मुक्ति मानता है। परन्तु वैदिक धर्म ब्रह्मज्ञान तथा ज्ञानपूर्वक कर्म करने को मुक्ति का साधन मानता है।

सबमें से कौन सा साधन ठीक हो सकता है, इसका विचार करने के पूर्व यह भली भांति समझ लेना चाहिए कि प्रत्येक मनुष्य में दो प्रकार की शक्ति रहती है एक ज्ञान, दूसरे कर्म। कोई

भाव या प्रवृत्ति हो इन्हीं दोनों के अन्तर्गत समझना चाहिए। उदाहरणार्थ, प्रेम को लीजिए। इसका समावेश ज्ञान के भीतर हो जाता है। और यदि प्रेम को ज्ञान के अन्तर्गत न समझा जाय तो मनुष्य में तीन शक्तियाँ माननी पड़ेगी—ज्ञान, कर्म और प्रेम।

देखिये शैशव-काल से ही ज्ञान और कर्म दोनों (और यदि प्रेम को तीसरी शक्ति मानी जाय तो तीनों) शक्तियों का बढ़ना आरंभ हो जाता है और बालक ज्यों ज्यों बढ़ता है त्यों त्यों उसकी यह शक्तियाँ भी बढ़ती जाती हैं। युवावस्था में जिस व्यक्ति में यह शक्तियाँ नहीं बढ़तीं उसकी आत्मोन्नति रुक जाती है और जिस युवा मनुष्य में यह शक्तियाँ बढ़ती रहती हैं उसकी आत्मोन्नति होती रहती है यहाँ तक कि वह मुक्ति पाने का अधिकारी हो जाता है।

ज्ञान और कर्म में यथेष्ट उन्नति करना ही मनुष्य जीवन की सफलता है। वह मनुष्य तुच्छ समझा जाता है जो ज्ञान और कर्म में उन्नति न करे। सारांश यह कि मनुष्यों में ज्ञान और कर्म यही दो (और यदि प्रेम को इन दोनों से पृथक समझें तो तीन) गुण मुख्य हैं। जीवन की सार्थकता इन्हीं दोनों पर अवलम्बित है। मनुष्य की श्रेष्ठता ज्ञान और कर्म की श्रेष्ठता पर निर्भर है। जिसका ज्ञान और कर्म* श्रेष्ठ है वही श्रेष्ठ है जिसका ज्ञान और कर्म निकृष्ट है वही अधम है।

प्रेम एक पवित्र भाव है। परन्तु प्रेम दो प्रकार का होता है एक ज्ञानाश्रित दूसरे अज्ञानाश्रित। ज्ञानाश्रित प्रेम का परिणाम शुभ वा आनन्दवर्द्धक होता है और अज्ञानाश्रित प्रेम का परिणाम अशुभ वा शोकप्रद होता है। ज्ञानपूर्वक प्रेम करने वाला यथार्थ सुख और यश को प्राप्त होगा। अज्ञानवश प्रेम करने वाला दुःख और हानि उठावेगा। इसलिए प्रेम के मार्ग में ज्ञान रूपी पथ-प्रदर्शक की बड़ी आवश्यकता है। विना ज्ञान-प्रकाश की सहायता के, प्रेमपथ का पथिक अज्ञानान्धकार में भटक कर दुःख और आपत्ति की खाई में गिर पड़ता है। अज्ञानयुक्त प्रेम को ही अन्ध प्रेम कहते हैं। ज्ञानयुक्त प्रेम की महिमा महान् है। सारांश यह कि प्रेम के मार्ग में भी ज्ञान का होना अनिवार्य है। कुछ लोग कहते हैं कि "प्रेम में नियम नहीं" यह एक अंश में सत्य है सर्वांश में नहीं। क्योंकि प्रेमवश कुछ थोड़ी सी रिआयत सभी करते हैं परन्तु प्रेम में नियम का पालन कुछ भी न किया जाय तो परिणाम दुःख

*ज्ञान में पृथ्वी से लेकर ईश्वर तक का ज्ञान सम्मिलित है और कर्म में जीवन के छोटे बड़े समस्त कर्त्तव्यों का समावेश है।

और हानि के सिवा कुछ नहीं। ईश्वर में परम प्रेम होना ही भक्ति है और मुक्ति की प्राप्ति में भक्ति भी बड़ी सहायक है।

कोई मनुष्य किसी उच्च पद पर पहुंचता है तो उसकी प्रतिष्ठा बहुत बढ़ जाती है और यह प्रत्येक मत में निर्विवाद है कि मोक्ष पद सब पदों से महान् है। मुक्ति पाने का अधिकारी लौकिक और पारलौकिक दोनों दृष्टियों से अत्यन्त प्रतिष्ठा का पात्र है। लोक में उसकी समता सम्राट भी नहीं कर सकता। जीवन्मुक्त की समता वही कर सकता है जो जीवन्मुक्त हो। कोई मतवादी यह न स्वीकार करेगा कि जीवन्मुक्त व्यक्ति से पाप का आचरण होगा या वह दुःख पड़ने पर घबरा जायगा। अतः सिद्ध है कि मुक्ति तभी मिल सकती है जब सब पाप क्षीण हो जाय और कष्ट पड़ने पर भी मन में शान्ति बनी रहे।

अब विचार कीजिये राम नाम जपने से सब पाप क्षीण होता है या नहीं। यदि कोई वैष्णव चोरी या व्यभिचार या हत्या करके राम नाम जपने लगे तो उस सम्प्रदाय की दृष्टि से उसका पाप कट गया, तब उस सम्प्रदाय के लोग उसका विश्वास क्यों नहीं करते तथा उसे दंड क्यों देते हैं यदि वे राम नाम जपने से पाप दूर होना सत्य मानते हैं तो झूठ बोलकर या चोरी करके राम नाम जपने वाले व्यक्ति का अविश्वास या निरादर करना सर्वथा अनुचित है। और यदि वे ऐसा करते हैं तो स्पष्ट सिद्ध है कि उन्हें राम नाम जपने से पाप कटने का विश्वास नहीं है। वे राम नाम के जाप से पाप दूर होना नहीं मानते केवल मुख से कहते हैं हृदय से सत्य नहीं मानते! जब पाप ही दूर नहीं हुआ तब वह मुक्ति पाने का अधिकारी किस प्रकार होगया?

इसी प्रकार गंगास्नान करने से यदि सब पाप दूर हो जाते हैं तो जो व्यक्ति झूठ बोलकर या चोरी करके गंगास्नान करले तो उसकी दृष्टि में वह निष्पाप हो गया तब उसी सम्प्रदाय के लोग उसका विश्वास और सम्मान क्यों नहीं करते? यदि वे उस व्यक्ति का सम्मान और विश्वास नहीं करते तो स्पष्ट सिद्ध है कि उन्हें गंगास्नान से पाप कटने का विश्वास नहीं है, केवल जबानी कहते हैं हृदय से सत्य नहीं मानते। जब पाप ही नहीं कटा तो मुक्ति पाने का अधिकारी किस प्रकार समझा जाय?

इसी प्रकार शिव या देवी की पूजा करने मात्र से कोई व्यक्ति निष्पाप नहीं हो सकता जब तक कि वह पापाचार को त्याग न दे। इसी प्रकार प्रतिमापूजन, देव दर्शन या तीर्थभ्रमण से पाप दूर होने का विश्वास भ्रमपूर्ण है। राधास्वामी नाम के धारण और अनहद शब्द सुनने से पाप की निवृत्ति मान लेना अन्धविश्वास है। यदि इस पर विश्वास लाने मात्र से

मुक्ति मिल जाती है तो जब कोई ईसाई झूठ बोलता या चोरी या जुल्म करता है तो ईसाई लोग उसकी पूर्ववत् प्रतिष्ठा क्यों नहीं करते तथा उसे दंडनीय क्यों समझते हैं? यदि सचमुच ईसा पर विश्वास लाने से मुक्ति की प्राप्ति मानते हैं तो वह झूठा, चोर या अन्यायी ईसाई भी निस्सन्देह मुक्ति का अधिकारी है तब फिर उस व्यक्ति का सम्मान न करना उसे अविश्वस्त या दंडनीय समझना इस बात को सिद्ध करता है कि वे ईसापर विश्वास लाने मात्र से मुक्ति की प्राप्ति नहीं मानते। यदि यह कहा जाय कि ईसा पर विश्वास लाने से तथा सत्कर्मों के करने से मुक्ति मिलती है तो उनका यह सिद्धान्त खंडित हो जाता है कि ईसा पर विश्वास लाने से मुक्ति मिलती है। ऐसी दशा में ईसाइयों को सदा यही कहना चाहिए कि ईसा पर विश्वास लाने और शुभ कर्मों के करने से मुक्ति मिलेगी। इस पर यह शंका होगी कि यदि कोई ईसा पर विश्वास न लावे और शुभ कर्मों को करे तो उसकी क्या गति होगी? यदि वे कहें कि नरक में जायँगे तो ईश्वर को अन्यायी सिद्ध करेंगे और यदि कहें कि स्वर्ग में जायँगे तो उनका सिद्धान्त खंडित हो जायगा। ईमान की दृष्टि से मूर्ख और विद्वान् दोनों ईसाई मुक्ति या स्वर्ग के अधिकारी हैं तो दोनों का समान आदर होना चाहिए परन्तु हम देखते हैं कि वे विद्वान् का विशेष आदर करते हैं और मूर्ख का कम। जब दोनों मुक्ति के अधिकारी ठहरे तो दोनों समान होगये। परन्तु आदर भाव में न्यूनाधिक्य होने से सिद्ध है कि वे सिर्फ विश्वास को ही नहीं देखते किन्तु विद्वत्ता (ज्ञान) का महत्व स्वीकार करते हैं।

यदि हजरत मुहम्मद पर ईमान लाने से मुक्ति मिलती है तो जो मुसलमान चोरी करता झूठ बोलता या जुल्म करता है उसका विश्वास और पूर्ववत् सम्मान मुसलमान लोग क्यों नहीं करते? यदि मुक्ति का कारण रसूल पर ईमान लाना है तो ईमान की दृष्टि से एक आलिम-फाजिल मौलाना और अपढ़-जाहिल जोलाहा दोनों समान हैं। जब कि विद्वान् और मूर्ख दोनों का दृढ़ विश्वास रसूल पर है तो दोनों ही स्वर्ग या मुक्ति के अधिकारी ठहरे। ऐसी दशा में दोनों का समान सम्मान होना चाहिए क्योंकि वे ईमान को प्रधान मानते हैं परन्तु हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि मुस्लिम लोग रसूल में दृढ़ विश्वास रखने वाले अपढ़ मुसलमान की वैसी प्रतिष्ठा नहीं करते जैसी एक मौलवी की अथवा हज न करने वाले की अपेक्षा हज करने वाले का अधिक सम्मान करते हैं। सारांश यह कि मुसलमान लोग सिर्फ ईमान को ही नहीं देखते बल्कि विद्वत्ता व कार्य को भी देखते हैं तब आदर करते हैं। यदि कहा जाय कि जो रसूल पर ईमान लावेगा वह शुभ

कार्य्यों को जरूर करेगा तो यह प्रत्यक्ष प्रमाण से असिद्ध है। क्योंकि करोड़ों मुसलमान इस प्रकार के हैं जो रसूल पर पूरा ईमान रखते हैं परन्तु उत्तम कार्य्य नहीं करते (यहां तक कि वे कुरान के अनुसार की कार्य नहीं करते)। इस हेतु रसूल पर ईमान लाना इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह शुभ कार्य करता है।

मुस्लिमों से यह प्रश्न हो सकता है कि जो लोग रसूल पर ईमान नहीं रखते और अच्छे २ कार्य व परोपकार करते हैं उनकी क्या गति होगी। यदि वे कहें कि दोजख में जायँगे तो इस कथन से ख़ुदा को अन्यायी सिद्ध करते हैं और यदि वे कहें कि बहिश्त में जायँगे तो उनका सिद्धान्त खंडित हो जाता है।

वैदिक धर्म में ज्ञान और कर्म दोनों जरूरी हैं। परन्तु इस बात को याद रखिये कि ज्ञान में ब्रह्म ज्ञान भी और कर्म में ईश्वरोपासना भी सम्मिलित है। जैसे गाड़ी के दोनों पहिये या पक्षी के दोनों पर जरूरी हैं वैसे ही वैदिक धर्म में मुक्ति की प्राप्ति के लिये यथार्थ ज्ञान और सत्कर्म दोनों अत्यन्त आवश्यक हैं।

मैं पहले लिख चुका हूं कि मनुष्य में ज्ञान और कर्म यही दो मुख्य शक्तियां हैं * इन दोनों शक्तियों को समुन्नत करना ही मनुष्य जीवन की सफलता है ज्ञान और कर्म की विशेषता से ही मनुष्य को अधिकार प्राप्त होता है ज्ञान और कर्म की हीनता से मनुष्य का अधिकार छिन जाता है।

अब विचार कीजिये जो मनुष्य राम राम जपने को ही अपना उद्देश समझते हैं वह ज्ञान क्यों बढ़ावेगा और बड़े कार्यों में उनकी रुचि कैसी होगी ! वह तो राम नाम जपना ही अपना परम कर्त्तव्य समझता है। इसी तरह जो मनुष्य गंगास्नान को मुक्ति का साधन मानता है वह ज्ञान को बढ़ाने और अच्छे अच्छे कर्म करने में किस प्रकार प्रवृत्त होगा! उसकी समझ में तो गंगा स्नान से मुक्ति मिल ही गई और मुक्ति से बढ़कर कोई

---

* यदि प्रेम को इन दोनों से पृथक मानकर भक्ति मार्ग पर विचार करें तो जो मनुष्य ईश्वर से प्रेम करेगा वह अपना ज्ञान अवश्य बढ़ावेगा और ईश्वर के रचे प्राणियों से प्रेम और परोपकार अवश्य करेगा। यह कभी नहीं हो सकता कि कोई मनुष्य ईश्वर से प्रेम करे और उसके रचे प्राणियों से प्रेम न करे अथवा मनुष्यों का उपकार न करे। यदि कोई व्यक्ति ईश्वर भक्ति का दावा करे और प्राणियों से प्रेम या परोपकार न करे तो समझना चाहिए कि वह धूर्त या दम्भी है। आजकल हमारे बहुत से पौराणिक भाई भक्ति पर लट्टू हैं लेकिन वे जरा भी नहीं विचारते कि गीता में किस प्रकार की भक्ति का प्रतिपादन है। वहां तो भक्ति मार्ग में ज्ञान और कर्त्तव्य कर्म त्यागने का लेश मात्र भी आशय नहीं है।

पदार्थ नहीं अतः उसके सामने ज्ञान व सत्कर्म तुच्छ हैं। उसकी समझ में गंगा स्नान करने से जीवन सफल है। यदि यह कहा जाय कि रामनाम जपने वाले और गंगा स्नान करने वाले बहुत से मनुष्य ऐसे हैं जो परोपकार और बड़े बड़े कार्य्य करते हैं तो उत्तर यह है कि जब उनका ज्ञान बढ़ता है तभी वे ऐसा करते हैं। और ज्ञान तभी बढ़ता है जब सत्संग या विद्याभ्यास किया जाय।

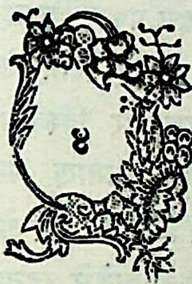
इसी प्रकार मूर्त्ति पूजने, तीर्थ में जाने, राधा स्वामी राधास्वामी जपने वा आँख कान मूँद कर अनहद नाद सुनने से जीवन को सफल समझना भ्रम है। जीवन तभी सफल है जब अपनी शक्तियों को समुन्नत किया जाय—ज्ञान खूब बढ़ाया जाय और अच्छे अच्छे कार्य खूब किये जाएँ।

महात्मा ईसा या हजरत मुहम्मद पर विश्वास लाने को ही मुख्य कार्य मानने से ज्ञान बढ़ाने और कर्त्तव्य कर्म की ओर ध्यान नहीं रह जाता क्योंकि हजरत पर ईमान लाने से मुक्ति या स्वर्ग के अधिकारी हो ही गये अतः ज्ञान बढ़ाना और कर्त्तव्यों को करना अनावश्यक या झंझट मालूम होता है। निदान ईमान लाने का सिद्धान्त मनुष्य की मुख्य दोनों शक्तियों का बाधक है।

('शेषमग्रे)

"भूत"

[श्रीमती सुदक्षिणा देवी जी वर्मा]



४ बजे सायंकाल को श्रीकृष्ण कचहरी से लौट कर आये। कपड़े भी न उतार पाये थे कि उनकी स्त्री दुर्गा ने आकर कहा कि मैं इस मकान में न रहूंगी। कोई दूसरा घर लो।

उनकी समझ में कुछ न आया कि क्या बात है क्यों कि अभी इस घर में आये दो ही दिन हुये थे। कुर्सी पर बैठते हुये पूछा—कहो क्या बात हुई। क्या यह भी मकान पसन्द नहीं है। इतना बड़ा और अच्छा मकान कहां मिलेगा?

दुर्गा—मकान बड़ा है। उसको लेकर चाटेंगे क्या? तुमको मकान मालिक ने धोखा दिया। इसमें भूत रहते हैं। जभी तक इसमें कोई और नहीं रहता था। मुझे इसमें डर लगता है। आज एक पड़ोसिन आई थी। कहती थी कि छोटी कोठरी में एक आदमी मर गया था और उसकी आत्मा अब उसमें रहती है।

श्री कृष्ण को भूत का नाम सुन कर हंसी आई। कहने लगे—"बस यही कारण है कि तुम यहां रहना नहीं चाहतीं। भूत के नाम से डर गईं। मैंने तुम्हें कितनी बार समझाया कि भूत प्रेत कुछ नहीं है।

यह सब कल्पना है। पर तुम्हारी समझ में आता ही नहीं। भला वह दिखाई भी देता है ?"

दुर्गा—"भूत क्या इस प्रकार दिखाई देते हैं ? तुम तो मुझे पागल ही समझते हो। हमारे पुरखे, सब इस पर विश्वास करते आये हैं। और इसका प्रमाण भी मिलता है। तुमको क्या है ? दिन भर तो यहां रहते नहीं हो। मुझे तो अकेले रहना पड़ता है। इस मकान में अनेक मनुष्य मर भी गये हैं।

श्री०—"यह सब केवल तुम्हारे विचार हैं। कल्पना से मनुष्य क्या नहीं सोच सकता। शायद उस कोठरी की हवा खराब हो गई होगी। और उसमें रहने से बीमारी आ जाती होगी। तुम यह सब कुछ मत सोचो। केवल उस कोठरी को काम में मत लाओ। खुली छोड़ दो। जिससे कुछ दिन में शुद्ध हो जायगी।"

दुर्गा ने अपने से बहुत हाथ पैर पटके। पर श्रीकृष्ण के विचारों के सामने उसकी कुछ न चली। वे उच्च विचार के मनुष्य थे। भूत प्रेत तो उनके लिये मनुष्यों की कल्पना मात्र ही थे।

दुर्गा उस रात को डरते २ ही सोई। बहुत देर तक तो उसे नींद ही न आई थी। प्रातः काल भी शीघ्र ही उठ बैठी। देखा कि दालान में मिट्टी का ढेर पड़ा हुआ है।

उसका दिल धड़कने लगा। नौकरों से पू
कि मिट्टी कौन लाया। सभों ने मना क
दिया कि वे नहीं जानते। अब तो दु
और भी डर गई। सोचने लगी "
ईश्वर ! मिट्टी कौन लाया ? हां, मैंने के
एक बार चूल्हा बनाने के लिये नौकरों
मिट्टी लाने के लिये कहा था। पर वे
मना करते हैं। तब क्या यह भूत का ही
काम है ?"

वह श्रीकृष्ण के पास आई। औ
मिट्टी की बात कही। उन्होंने हंस क
कहा, "बस यह सब तुम्हारा भ्रम है। तुम
ने तो मिट्टी लाने के लिये कहा था। कि
ने लाकर रख दी होगी इस में डरने की
क्या बात है ?"

दुर्गा—"लाकर कौन रख देगा।
तो पता नहीं चलता। नौकर तो म
करते हैं। क्या वे लोग झूठ बोलेंगे!"

श्रीकृष्ण ने हंस कर कहा "तब क्या
भूत तो तुम्हारी सहायता करता है।
क ो सो वही लादेगा।"

दुर्गा—"तुम को तो सब बातें हंसी
लगती हैं यह तो खोजते नहीं कि मि
कौन लाया" इतना कहते हुये वह क्रोधि
हो कमरे से बाहर चली गई।

उस दिन से दुर्गा को और भी
लगा। रात दिन भूत के विषय में
सोचा करती। उस कोठरी में जाने
तो उसकी शक्ति ही न थी। अकेले
नाना प्रकार के भाव अपने मन में

करती। यदि कहीं जरा सा खटका हुआ। बस वह उसी क्षण डर जाती कि भूत आया। एक दिन उसने कटोरी में दूध रख दिया। थोड़ी देर बाद देखती है कि वहां दूध का निशान भी नहीं है और न बिल्ली आदि ही कहीं दिखाई देती थी कि उसी ने पीलिया हो। बस उसने सोचा कि बस यह सब काम भूत का है। नहीं तो अलमारी से इस सफ़ाई के साथ दूध और कौन पी जाता।

इस प्रकार प्रतिदिन उसके लिये एक नवीन घटना हो जाती। श्रीकृष्ण तो सुन कर हंस देते और कहते कि यह केवल कल्पना है।

एक दिन श्रीकृष्ण जब सायंकाल को आये तो देखा कि दालान में दुर्गा बेहोश पड़ी है और कोई नौकर पंखा हांक रहा है कोई पानी सिर पर डाल रहा है। पूछने पर पता चला कि वह अभी बैठी थी, बैठे २ बेहोश हो गई।

थोड़ी देर में दुर्गा को होश आया। श्रीकृष्ण ने पूछा, "क्या बात है ? कैसी तबियत है"

दुर्गा—"तुमको क्या बताऊं। तुम चाहते हो कि मैं यहीं मर जाऊं। इसी लिये तो तुम यहां रह रहे हो। आज तो बेहोश ही हो गई थी। किसी दिन मर भी जाऊंगी। तब भी तुमको विश्वास न होगा।"

श्रीकृष्ण ने हंस कर कहा "क्या आज भूत ने तुमको बेहोश कर दिया। भला मैं यह कब चाहता हूँ कि तुम मर जाओ। तुम तो उसके विषय में बहुत सोचती हो? बताओ तो क्या बात हुई।"

दुर्गा—क्या बताऊं? तुम्हें मेरी बात पर विश्वास तो है ही नहीं।

श्रीकृष्ण—नहीं, बताओ, मैं विश्वास करूँगा।

दुर्गा—आज मैं दालान में अकेले बैठी हुई सिलाई कर रही थी। मैंने किसी को आंगन में से कोठरी में जाते हुये देखा। मैं डर गई कि कौन है ? पर फिर सोचा कि भ्रम मात्र है कोई कहीं नहीं है। थोड़ी देर पश्चात् फिर मुझे ऐसा लगा कि कोई कोठरी से निकल कर सामने वाले दालान में खड़ा है। मैंने पुकारा कि "कौन है ?" पहिले तो किसी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। पर मैंने डर कर जोर से फिर पूछा। तब मुझे यह सुनाई पड़ा कि "मैं भूत हूं। भूख लगी है" खाना लेने आया था। पर यहाँ दरवाजा बन्द है ?"। इतना सुनना था कि मेरे हाथ पैर ठंडे पड़ गये। मैं खड़ी हो गई। कांपते हुये स्वर से पूछा कि अब क्या चाहते हो ? उसने उत्तर दिया। "भोजन"। मैंने कहा, "अच्छा मैं तुमको दूंगी। तुम कोठरी में से चले जाओ'। इसके पश्चात् मैंने फिर उसको कोठरी की ओर जाते हुये

देखा। मुझे बड़ा डर लगा। हिम्मत न हुई कि नौकरों को बाहर से बुलाऊं। बड़े बड़े डग भरती हुई रसोई घर में गई और खाना लेकर कोठरी की ओर गई। दरवाजे पर पहुंचते ही अन्दर से किसी ने कहा कि "दरवाजे पर रख दो। मैं खा लूंगा। प्रति दिन रख जाया करो। जिससे मैं बाहर न निकलूं?" मैंने खाना तो वहां रख दिया। पर उसकी बात सुन कर मेरे होश उड़ गये। पता नहीं कि किस प्रकार इस दालान तक आई और कब बेहोश हो गई।

श्री०—खाना उसने खा लिया था या नहीं?

दुर्गा—पता नहीं। मैं तो फिर बेहोश हो गई।

श्रीकृष्ण ने देखा कि भोजन बर्तन में ज्यों का त्यों रक्खा है किसी ने छुआ तक नहीं है। फिर दुर्गा से कहा "दुर्गा! मैं तुम्हें जितना ही इन विचारों से दूर रखना चाहता हूँ उतना ही तुम इसके निकट आती हो। रात दिन भूत के विषय में सोचते रहने से तुम्हें भ्रम होगया था और कुछ नहीं। यदि भूत होता तो खाना क्यों न खाता। तुम अपने इन कुसंस्कारों को छोड़ने का प्रयास करो। यह सब कल्पना है। भूत पर विश्वास मत करो।

दुर्गा—मैं तो पहिले ही जानती थी कि तुम मेरी बातों को झूठ समझते हो। यदि आज तुम उस समय होते तो तुम्हें भी दिखला देती।" इतना कह कर चुप हो गई। पर उसे अपनी बातों पर पूर्ण विश्वास था।

दुर्गा—डर तो गई ही थी। उस रात को जाड़ा लग कर ज्वर आ गया। वर्षा काल का समय था। आकाश में बादलों की घटायें छाई हुई थीं, रह रह कर बिजली कड़क रही थी। उसी समय आंधी भी अपना विकट रूप दिखा रही थी। दुर्गा के कमरे के दरवाजे और खिड़कियों के पट हवा के धक्के से कभी बन्द होते और कभी खुलते थे।

दुर्गा सो रही थी। एकाएक उसके कानों में इस खटपट का शब्द पहुंचा। डर कर चिल्लाने लगी "वह देखो भूत आया, वह देखो! वह देखो! उसने फिर खिड़की खोली—अरे वह फिर चला गया.."

श्रीकृष्ण पास ही पलंग पर सो रहे थे, चिल्लाना सुन कर उठ खड़े हुये। दुर्गा की दशा पर उन्हें अति दुःख हुआ। समझाने लगे "दुर्गा यह भूत नहीं है यह तो आंधी के कारण खिड़की खुलती और बन्द होती है। देखो बादल गरज रहे हैं।"

दुर्गा फिर चिल्लाने लगी "तुम मुझे बहका रहे हो। क्या मुझे दिखाई नहीं पड़ता। क्या मैं अन्धी हूं। वह देखो, वह

आया—अरे फिर व—ह—आया—ब—चा—ओ।"

श्रीकृष्ण ने दरवाजे बन्द कर दिये। खिड़कियां भी बन्द कर दीं जिससे खटपट शब्द न हो। पर जब बिजली कड़कती और रोशनदानों में से कमरे में रोशनी आती। तभी दुर्गा "भूत, भूत" चिल्ला उठती। श्रीकृष्ण घबड़ा गये। यदि वह कुछ भी समझाने की चेष्टा करते तो दुर्गा और अधिक चिल्लाती। वे सोचने लगे "विधाता भी मेरे प्रतिकूल है, जभी तो आज ही बादल गरज रहे हैं। बिजली कड़क रही है।"

किसी प्रकार वह भयानक रात्रि समाप्त हुई। प्रातःकाल का आगमन हुआ। दुर्गा की दशा अभी तक शोचनीय थी। ज्वर की मात्रा अधिक थी उसे अपने तन मन का ध्यान न था। कभी कभी व्याकुल होकर कपड़े भी उतारने लगती और कहती "देखो वह भूत खड़ा है उसको खाना दो—अरे वह भोजन मांग रहा है—अरे गुस्से में आंख दिखा रहा है।" नौकरों ने यह दशा देख कर कहा—"इनपर भूत आये हैं बिना झरवाये फुंकवाये कुछ नहीं होगा।"

श्रीकृष्ण यह सुनकर और क्रोधित हुये कि इन्हीं सबों के कारण दुर्गा की यह दशा हुई। विचारे डाक्टर को लेकर आये। दुर्गा की दशा अभी वैसी ही थी—डाक्टर को देख कर फिर चिल्लाने लगी—"हटाओ—ह—टाओ,' यह भूत है—भूत है वह देखो वह इधर ही आ रहा है।"

किसी प्रकार डाक्टर ने उसकी परीक्षा की और कहा कि डरने से ऐसी दशा हो गई है। और यदि कुछ दिन यही दशा रही तो उन्माद हो जाने का भय है। किसी शान्त स्थान में ले जाना चाहिये। डाक्टर तो इतना कह कर और दवा का नाम लिख कर चले गये। पर श्रीकृष्ण चिन्ता में पड़ गये कि क्या करना चाहिये। जो पड़ोसी दुर्गा की बीमारी सुनकर आता वह यही कहता "डाक्टर की दवा से कुछ न होगा। यह तो भूत सिर पर सवार है—फुंकवाने से ही ठीक हो सकता है—हम लोग तो पहिले ही कहते थे कि यहां मत रहो—इसमें जो आता है वह एक जीव खोकर ही जाता है। तुमने हमारी बात न मानी।"

श्रीकृष्ण को तो अब भी भूत पर विश्वास न हुआ। सोचा कि यह कुछ नहीं है। पहिले तो दुर्गा रात दिन यही सोचती थी और अब ज्वर की अधिकता में भी यही चिल्लाती है। दवा देने से सब ठीक हो जायगा।

ईश्वर की कृपा से दोपहर व्यतीत होते, दुर्गा का ज्वर कम हो गया। श्रीकृष्ण यह सोचकर कि किसी अन्य स्थान पर सम्भवतः उसके मस्तिष्क को शान्ति मिले, घर में ताला डाल कर

रात को अपने पिता के पास लखनऊ चले गये।

श्रीकृष्ण ने दुर्गा की बातों में आकर वह घर छोड़ दिया। अब तो मुहल्लेवालों को और भी विश्वास होगया कि वस्तुतः इस मकान में भूत रहता है। यह बात जब ठा० शेरसिंह को मालूम हुई तो बड़े हंसे। कहने लगे 'इन बाबुओं में क्या बल है कि ऐसे मकान में रहें। देखो अब मैं रहूँगा। भूत मिला भी तो ऐसा मारूंगा कि कभी नाम न ले।'

दूसरे महीने से ठाकुर शेरसिंह उसमें रहने लगे। पहले की तरह स्त्रियों ने आकर भड़काना शुरू किया, पर ठाकुर साहब की स्त्री पढ़ी लिखी समझदार थी। स्थानीय आर्य्य-समाज में भी जाती थी। उसने मुहल्ले की स्त्रियों से कहा ठाकुर साहब के पास भूत भगाने की विद्या मौजूद है। तुम भोली भाली नहीं जानती कि भूत कोई चीज़ ही नहीं है। "लोग डर लगवा देते हैं।"

उसी कोठरी में रोज़ ठाकुर साहब हवन करते हैं। वायु भी साफ़ होगई है। मुहल्ले की स्त्रियाँ जो भूत के नाम से डरती हैं उसी कोठरी में बैठी बातें करती हैं। कुछ दिनों बाद उसी भूत वाली कोठरी में ठाकुर साहब के लड़का हुआ है।

स्वातंत्र्य का वास्तविक अर्थ

[श्रीयुत पूर्णचन्द्र जी, एडवोकेट आगरा]



रतवर्ष में वर्तमान युग स्वतन्त्रता का युग है। स्वतंत्रता शब्द से क्या अभिप्राय है, इसपर विचार करना आवश्यक प्रतीत होता है स्वराज्य आन्दोलन में कार्य्य करने से ज्ञात होता है। कि स्वराज्य में क्या अवस्था होगी इस सम्बन्ध में जनता में बड़ा भ्रम है। बहुत से किसान यह आशा लगाये बैठे हैं कि स्वराज्य प्राप्त होते ही लगान नहीं देना पड़ेगा बहुत से देनदार ऐसे हैं जिनको यह आशा है कि देश स्वतंत्र हो जाने पर रुपया नहीं देना पड़ेगा। बहुत से विद्यार्थी जो स्वभाव से पढ़ने से जी चुराते हैं वह यह समझ बैठे हैं कि अजी कै रोज़ के लिये पढ़ना स्वराज्य मिलते ही चैन की बंसी बजेगी अर्थात् बहुत से मनुष्य ऐसे जिनके मस्तिष्क में स्वतंत्रता के अर्थ निरंकुशता के हैं। जो Self. Government अर्थात् स्वराज्य और Anarchy अराजकता की दशा में कोई भेद नहीं समझते। स्वतन्त्रता उस अवस्था का नाम है जब मनुष्य बिना किसी बाधा के अपने जीवन का विकास प्राप्त कर सके विकास का यह अर्थ है कि

मनुष्य का सारा जीवन एक विशेष लक्ष्य की पूर्त्ति के लिये है और जो अवस्था उस लक्ष्य की पूर्त्ति में सहायक है उसे हम स्वतन्त्रता की अवस्था कह सकते हैं। इस के प्रतिकूल परतन्त्रता की अवस्था है। मनुष्य के जीवन के विकास में कभी तो बाधाएँ ऊपर से आती हैं कभी नीचें से और कभी दाएं बाएं। वाटिका में बहुधा ऐसे छोटे २ पेड़ दृष्टिगोचर होते हैं जो किसी बड़े पेड़ के साये के नीचे आजाने के कारण बड़े नहीं होते और न बहुत दिन तक जिन्दा रहते हैं। कारण यह होता है कि सूर्य्य का प्रकाश उन तक नहीं पहुंच सकता और उनके भाग का प्रकाश भी वह बड़ा पेड़ ले लेता है। खेतों में ऐसे बहुत से पौधे होते हैं जिनकी जड़ में छोटे २ पौधे और घासें उग आती हैं और पृथ्वी से जो शक्ति उस अनाज के पौधे के लिये प्राप्त होना आवश्यक थी उसे वह छोटी २ घासें या पौधे ले लेते हैं। हर अनाज के पौधे के लिये आवश्यक होता है कि उन छोटे पौधों का निराव (Veeding) कर दिया जावे बहुत से पेड़ों पर ऐसी बेलें चढ़ी हुई दीखती हैं जो पेंड़ की सब शक्ति को खींच कर पेड़ों को सुखा देती हैं। जो प्राकृतिक दृश्य पेड़ और पौधों में दिखाई देता है वही अवस्था पशु जगत् और विशेषतया मनुष्य जगत् की है। मनुष्यों में जो बाधाएँ उनके जीवन विकास को रोकती हैं उनमें से बहुत सी किसी बाह्य-शक्ति की ओर से आती हैं कुछ उनकी ओर से जो उनसे नीचे हैं और जिनको उन्होंने पददलित कर रक्खा है बहुत सी बाधाएँ उन समुदायों की ओर से है जो बराबर के हैं परन्तु जिनके आचार व विचार भिन्न २ प्रकार के हैं। भारतवर्ष की अवस्था को आप ले लें। भारत निवासियों के धार्मिक जीवन के विकास में अनेक गुरु और धर्म के आचार्य विशेष रूप से बाधक हैं जिन्होंने अपने प्रभाव से अपने अनुयायियों को मानसिक दासता में जकड़ रक्खा है जो न अपने अनुयायियों को स्वतन्त्रता से विचार करने देते हैं और न उन विचारों का प्रचार करने देते हैं और न उनके अनुसार कार्य्य करने देते हैं। धार्मिक स्वतन्त्रता की किसी भी देश को राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से कम आवश्यकता नहीं है। जब कभी संसार के इतिहास में धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधाएँ उपस्थित की गई हैं तो उस देश या जाति का विकास रुक गया है और उसकी दशा बहुत दुःख की हो जाती है। इङ्गलैण्ड में बादशाह आठवें हैनरी के शासन काल में ईसाइयों को बाइबिल को पढ़ने का अधिकार नहीं था और न वह स्वतन्त्रता से अपनी इच्छा के अनुसार ईश्वर से प्रार्थना कर सकते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि इङ्गलैण्ड के अनेक निवासियों को अपना देश विवश होकर छोड़ना पड़ा और उन्होंने अमरीका में जाकर एक नया उपनिवेश (New England) के नाम से आबाद

किया Bunyan की प्रसिद्ध कविता Pilgrim's Father जिन्होंने पढ़ी है वह इस इतिहास से भली भांति परिचित हैं। Martin Luther इटली के पोपों के विरुद्ध विरोध का झगड़ा इसी कारण से उठाना पड़ा कि वह धार्मिक स्वतन्त्रता में बाधक थे। दूर जाने की आवश्यकता नहीं भारतवर्ष में जब पौराणिक मत प्रचलित था इसके अनुसार ब्राह्मणों के अतिरिक्त अन्यों को वेद पढ़ने का अधिकार न था और न स्त्रियां शिक्षा प्राप्त कर सकती थीं और न कोई धार्मिक सिद्धान्त समझने में ही तर्क का प्रयोग लगा सकता था। इसका परिणाम यह हुआ कि आज हिन्दू जाति की जो गिरी अवस्था है, उससे सब भली भांति परिचित हैं। समस्त जाति वास्तविक शिक्षा से शून्य है और उसके आचार व विचार भ्रष्ट हैं। आज एक ओर भारत निवासी अंग्रेजी सरकार के विरुद्ध उनसे अधिकार प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह कर रहे हैं तो दूसरी ओर दलित जाति वाले मन्दिरों में प्रवेश के अधिकार प्राप्त करने के लिये सत्याग्रह करने पर विवश हो रहे हैं! धार्मिक परतंत्रता के साथ २ बहुत सी सामाजिक नियम भी ऐसे प्रचलित हो गये हैं जो उन्नति और विकास को हर प्रकार से रोक रहे हैं। जैसे बुरे रस्म रिवाज और चार वर्णों के स्थान में अनेक जातियां व उपजातियां, विवाह के अराड-वराड नियम इत्यादि २। विचार की दृ[ष्टि] से यदि देखा जाय तो भारत-निवासि[यों] की दशा इस प्रकार है कि पंडित और पु[रोहित] एक ओर से दलित जातियों की उप[ेक्षा] दूसरी ओर से और हिन्दू मुसल्मानों [का] आपस का विरोध तीसरी ओर से प[र]तन्त्र बनाने में और परतंत्र रखने [में] सहायक है। मेरा तो अनुमान यह है [कि] वर्त्तमान राजनैतिक अवस्था उपरोक्त दशा[ओं] का सीधा परिणाम है यदि भारतवर्ष [की] धार्मिक सामाजिक व नैतिक [दशा] शोचनीय न होती तो आज नैतिक परतं[त्रता] भी न होती और यदि आज [इन] अवस्थाओं का सुधार हो जावे तो भार[त]वर्ष को स्वराज्य प्राप्त हुये बिना नहीं [रह] सकता। स्वतंत्रता के अर्थ अनियम[ितता] उच्छृङ्खलता, उद्दण्डता के नहीं [हैं] स्वतन्त्रता के भी नियम हैं और [हों]। राजनैतिक दृष्टि में स्वतन्त्रता से [अभि]प्राय यह है कि एक शासन प्रणाली [को] दूसरे से परिवर्त्तित कर देना। हां, [यह] अवश्य होगा कि यदि देश की [अवस्था] सुधर गई तो जो शासन प्रणाली स्था[पित] होगी वह विकाश व लक्ष्य की पूर्ति [में] सहायक होगी नहीं तो केवल [नाम] मात्र का परिवर्त्तन होगा। और [अत्या]चारों के रूप बदलते रहेंगे और [जनता] यही कहती रहेगी—

"कोउ नृप होय हमें का हानी
चेरी छोड़ न होइहों रानी"

पूर्ण स्वतन्त्रता और स्वराज्य के वास्तविक प्रचारक ऋषि दयानन्द थे। जिन्होंने सत्यार्थ प्रकाश में न केवल भारतवर्ष परन्तु समस्त संसार को पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र बनाने की सर्वाङ्ग-पूर्ण विधि संसार के सन्मुख उपस्थित करदी। Political liberty अर्थात् राष्ट्रीय स्वतन्त्रता उनके बनाये हुए कार्य्यक्रम का एक आवश्यक अङ्ग है। वैदिक धर्म के अनुसार मनुष्य जीवन का उद्देश्य निश्रेयस और अभ्युदय है अर्थात् संसार में हर प्रकार से सुखी रहना और मोक्ष प्राप्त करना है।

जब प्रत्येक को नैतिक स्वतन्त्रता के लिये चेष्टा करनी चाहिये वहां उससे यह भी आशा है कि वह अन्य प्रकार की परतन्त्रताओं को भी दूर करेगा जिनके विना राष्ट्रीय स्वतन्त्रता निष्फल सी है।

समालोचना

वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र

[लेखक—पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालङ्कार विद्या वाचस्पति, सम्पादक, वेदसंदेश। प्रकाशक श्रीमान् दामोदर सातवलेकर स्वाध्याय मंडल औंध, जिला सातारा। पृष्ठ संख्या १६६ मूल्य १।)

यह एक नई मनभावनी पुस्तक है। वेद मंत्रों के द्वारा मानव-कर्त्तव्यों का ऐसा विशद वर्णन और सूक्ष्म विवेचन किसी भी ग्रन्थ में देखा नहीं गया। बड़े हर्ष का विषय है कि आर्यसमाज के साहित्य में इस ग्रन्थ रत्न के द्वारा एक बड़े अभाव की पूर्त्ति हो गई। इसमें वेद मन्त्रों की संगति लगाकर बड़ी खूबी से कर्त्तव्यों की फ़िलासफी समझाई गई है। वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, चारों वर्ण व चारों आश्रम के निदान सभी कर्त्तव्यों का भली भाँति दिग्दर्शन कराया है। ईसाई मत व बौद्ध मत के सिद्धान्तों से तुलना करके वैदिक सिद्धान्तों की श्रेष्ठता तथा वैदिक धर्म की सार्वभौमता सिद्ध की गई है। प्रस्तुत पुस्तक में निम्नांकित ५ परिच्छेद हैं—(१) वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र के १२ मूल सिद्धान्तों की व्याख्या (२) वेदोक्त वैयक्तिक और पारिवारिक कर्त्तव्य (३) यज्ञ (४) वैदिक कर्त्तव्य शास्त्र पर तुलनात्मक विचार (५) कर्त्तव्य शास्त्र की सर्वोच्चताका कारण।

इसमें कुल ३५ विषयों पर मनोहर लेख हैं। अनुभवी लेखक ने प्रत्येक विषय को बड़ी ही दूरदर्शिता, गंभीरता और निष्पक्षता के साथ लिखा है। यह काशी ना० प्रचा० सभा द्वारा प्रकाशित "कर्त्तव्य शास्त्र" के जोड़ की पुस्तक है। हिन्दू मात्र के मनन करने योग्य है तथा आर्य-समाज के लिए बड़े गौरव की वस्तु है। वैदिक धर्म के विपक्षी जो वैदिक धर्म को संकीर्ण या संकुचित समझने की भूल करते हैं वे इस पुस्तक को पढ़ कर भली

भांति समझ जायँगे कि वैदिक धर्म कितना उच्च और विशाल है। प्रत्येक मत-के विचार शील सज्जनों को इसे पढ़ कर लाभ उठाना चाहिए। यह प्रत्येक लाइ-ब्रेरी में रखने योग्य, उच्च कक्षा के विद्यार्थियों को पुरस्कार देने योग्य और बँगला, मराठी, गुजराती मद्रासी, उर्दू और अंगरेजी आदि भाषाओं में शीघ्र अनुवाद होने योग्य है। इस ग्रन्थरत्न को लिखने पर हम स्नातक पं० धर्मदेवजी सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पति को हृदय से बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि इस पुस्तक का अधिक प्रचार होगा।

—कृष्णानन्द

इज़हारे हकीकत

महात्मा गांधी जी संसार के उच्चतम व्यक्तियों में से हैं और भारतवर्ष के राज-नीतिक जीवन का तो यह साररूप ही हैं। जो पुरुष इनसे सर्वथा मत-भेद रखते हैं वह भी इनके आत्मत्याग और तपोबल की प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते।

परन्तु इतना होते हुये भी महात्माजी आखिर हैं तो मनुष्य ही बड़े आदमियों की भूलें भी बड़ी ही हुआ करती हैं। कुछ वर्ष हुये उन्होंने अपने स्वाभाविक नैतिक क्षेत्र का उल्लङ्घन करके आर्य्यसमाज और ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों पर अनेक आक्षेप कर दिये थे। यद्यपि इन आक्षेपों का प्रयोजन नितान्त राजनैतिक था तथापि धार्मिक जगत् में और विशेष कर आर्य्यसमाज के क्षेत्र में तो इन आक्षेपों ने खलबली मचा दी। आर्य्य-समाज में महात्मा जी के भक्तों की संख्या कुछ कम नहीं है। कारण यह कि आर्य्य-समाज में साम्प्रदायिक रोग बहुत ही कम है और अधिकांश लोग बाह्य-चिह्नों के सांकुचित प्रभाव में न आकर गुणग्राही होने का अधिक प्रयत्न करते हैं। तथापि हम नम्रता पूर्वक कहने के लिये बाधित हैं कि महात्मा जी ने आर्य्य सिद्धान्तों की गहराई तथा आर्य्यसमाज के जोश और प्रभाव दोनों का अन्दाजा लगाने में बड़ी भारी भूल की और बिना किसी कारण या सफलता के अपने आर्य्य भक्तों को अप्रसन्न कर दिया।

"इज़हारे हक़ीकत" उर्दू भाषा में उन सब आक्षेपों की समालोचना है जो यङ्ग इण्डिया आदि पत्रों में महात्मा जी की ओर से किये गये थे। इसके लेखक हैं दिल्ली के एक योग्य आर्य्य भाई महा-शय "ज्ञानचन्द्र" जी। यह पुस्तक सवा चार सौ पृष्ठों में लिखी गई है। कागज छपाई आदि सब उत्तम है। आक्षेपों का उत्तर बड़ी शिष्टता और प्रबलता के साथ दिया गया है। अधिकतर महात्मा जी के निज लेखों से ही उनकी भूल दर्शाई गई हैं। महात्मा जी का विशेष आक्षेप यह है कि आर्य्यसमाज के सिद्धान्त

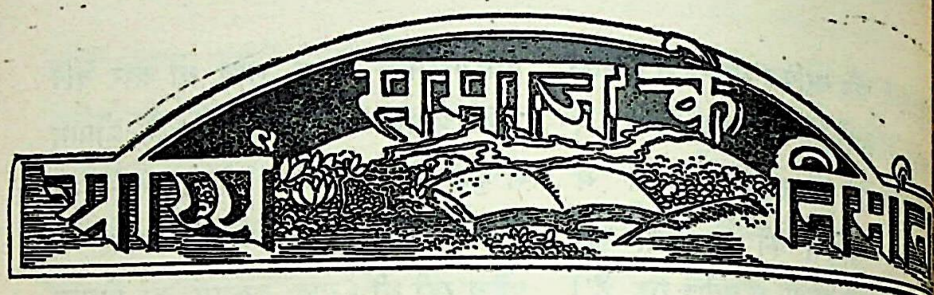
संकुचित हैं और ऋषि दयानन्द ने मुसलमानों के धर्म के खण्डन करने में अन्याय किया है। 'इज़हारे हक़ीक़त' में इन दोनों आक्षेपों की निर्बलता बड़े उत्तम और स्पष्ट शब्दों में बताई गई है। कांग्रेस कैम्प में बहुत दिनों से मुसलमानों को उचित तथा अनुचित रीति से ख़ुश करने की कोशिश चली आ रही है। हम भी यही चाहते हैं कि हमारे मुसलमान भाई ख़ुश ही रहें। परन्तु सब कुछ त्याग करने के साथ २ आर्य्यसमाज सत्य का त्याग करने के लिये तैय्यार नहीं। आर्य्यसमाज और उसके प्रवर्त्तक को तो ऐसा करना मुसलमानों के लिये भी अहितकर ही प्रतीत होता है। और कांग्रेस वालों को भी ऐसा करने में कभी सफलता न हुई, न होने की सम्भावना है। महात्मा जी स्वयं अपने जीवन को सत्य—खोजी जीवन कहते हैं जैसा कि उनके आत्म-रचित जीवन से स्पष्ट है। ऐसे जीवन में आर्य्यसमाज के सिद्धान्त—विषयक आक्षेपों के लिये कोई स्थान नहीं होना चाहिये था। जिस प्रकार महात्मा जी ने अन्य धर्मों के सिद्धान्तों को अपने समालोचना—क्षेत्र के बाहर समझा उसी प्रकार का सुलूक आर्य्यसमाज के साथ भी होना चाहिये था नैतिक क्षेत्र में आर्य्यसमाज उनके साथ था और यदि उनके प्रोग्राम में आर्य्यसमाज के प्रोग्राम से कुछ बाधा पहुंचती थी तो इससे भी अधिक बाधा मुसलमानों के प्रोग्राम से पहुँच रही थी। यदि इस्लाम का प्रोग्राम बाधक न होता तो महात्मा जी को आर्य्यसमाज पर आक्षेप करने की आवश्यकता न पड़ती।

हमने "इज़हारे हक़ीक़त" को आद्योपान्त पढ़ा। उसमें कई आवश्यक बातों पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। हमको एक ही त्रुटि दृष्टि-गत हुई वह यह कि पुस्तक समय के पश्चात् लिखी गई। फिर भी इसमें इतनी आवश्यक बातों का संग्रह है कि इसकी उपयोगिता में सन्देह नहीं हो सकता।

आर्य्यसमाज ने उस समय जो प्रतिरोध किया था उसके प्राबल्य को देखते हुये यह आशा की जाती है कि श्री पूज्य महात्मा जी तथा कांग्रेस के अन्य नेता इस प्रकार के अप्रासंगिक आक्षेपों से दूर ही रहने का यत्न करेंगे। और आर्य्यसमाज के सर्व हितकर प्रोग्राम में किसी प्रकार से बाधक न होंगे।

पुस्तक आर्य्यसमाज साहित्य प्रचारिणी सभा, आर्य्यसमाज चावड़ी बाज़ार दिल्ली से १) में मिल सकती है।

—गंगाप्रसाद एम० ए०



[७]

धर्मवीर पं० लेखराम जी

[आर्य्य मुसाफ़िर]

[श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०]

आरम्भ

धर्म-वीर लेखराम को कड़कती हुई आवाज़ इस समय नहीं सुनाई पड़ती। पर क्या हमको याद नहीं है जो कुछ उस परम-त्यागी, ईश्वर विश्वासी, निर्भीक ने आर्य्यसमाज के लिये किया है। पं० लेखराम के समान मनुष्य संसार में बहुत कम उत्पन्न होते हैं, जिनको संसार में कोई भी चीज भय नहीं दिला सकती, जो अपने सिद्धान्तों पर अटल है और अग्नि में कूदने से नहीं डरते। धर्म-वीर ने अपनी नौकरी छोड़ दी। सुखों को लात मार कर स्थान स्थान पर प्रचार के लिये कष्ट उठाते फिरे। मुसल-मानों की बड़ी सी बड़ी सभा में अकेले डटे रहे। शुद्धि जिसका इस समय हिन्दू समाज में इतना ज़ोर है, उसके जन्मदाता पं० लेखराम थे। ऋषि दयानन्द की जीवनी को संग्रह करने वाले वे सर्व प्रथम थे। अन्त में उ[illegible] प्राण भी ऋषि के मिशन की पूर्ति[illegible] लग गये।

जन्म

धर्मवीर पं० लेखराम जी का [illegible] झेलम प्रान्त के सय्यदपुर ग्राम में ८ [illegible] सवन् १९१५ वि० को हुआ। आपके [illegible] मह श्री० नारायण सिंह के दो पुत्र [illegible] बड़े महता तारासिंह और छोटे का [illegible] महता गण्डाराम था। महता तारासिंह [illegible] एक पुत्री तथा तीन पुत्र हुये जिनमें [illegible] धर्मवीर पं० लेखराम सबसे बड़े थे [illegible] पंजाब प्रान्त में फारसी का बड़ा चलन [illegible] इस कारण ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने [illegible] भी पं० जी की शिक्षा फारसी से आरम्भ [illegible] हुई। ११ वर्ष की अवस्था में आप [illegible] चचा श्री महता गण्डाराम जी के [illegible]

पेशावर चले आये। श्री० गंडाराम पेशावर पुलीस में डेपुटी इन्सपेक्टर थे। चचा के साथ पं० जी १४ वर्ष की आयु तक रहे और उसके बाद अपने ग्राम सय्यदपुर को लौट आये। पेशावर में मौलवियों को यह अपने प्रश्नों से निरुत्तर कर देते थे। सय्यदपुर के ग्राम में मुंशी तुलसीदास शिक्षा देते थे। पं० जी ने आप के ससंर्ग से अनेकों फ़ारसी पुस्तकों का अध्ययन कर लिया। फ़ारसी और पंजाबी में कविता भी करने लगे थे। यह बात तुलसीदास जी को बड़ी अप्रिय थी और इसकी शिकायत भी कई बार चचा से आपने की थी।

नौकरी तथा वैराग्य जीवन

आपके चचा पुलीस की नौकरी में थे अतः उनकी यह अभिलाषा थी कि पं० लेखराम भी पुलीस में नौकरी कर लेवें। पौष मास संवत् १९३२ (२१ दिसम्बर १८७५ ई०) को पेशावर पुलीस में पंडित जी भरती होगये। पंडित जी सच्चे काम करने वाले थे इस कारण पुलीस के महकमे में उन्होंने उन्नति की। पर थोड़े दिनों के बाद ही उनको प्रतीत होगया कि सरकारी नौकरी में वे नहीं रह सकते हैं। आर्य्य समाज की ओर झुकने के कारण पुलीस के मुसल्मान कर्म्मचारियों से वे शास्त्रार्थ कर बैठते थे।

संवत् १९३७ वि० में एक धार्मिक सिक्ख सिपाही के सत्संग से उनमें धार्मिक श्रद्धा जागृत होगई और ब्रह्म-मुहूर्त्त में ही उठकर वे गीता का पाठ करने लगते। 'श्रीकृष्ण' में उनको अपार श्रद्धा बढ़ गई और उन्होंने यह निश्चय कर लिया कि नौकरी छोड़ कर श्रीकृष्ण की जन्म-भूमि मथुरा को चले जावें। इस समय इनकी आयु २१ वर्ष की हो चुकी थी और आप के माता पिता ने चाहा कि आप का विवाह संस्कार हो जाय। परन्तु वैराग्य के प्रभाव में आकर आपने विवाह न किया।

पेशावर में आर्य्य समाज और ऋषि के दर्शन

मु० कन्हैयालाल अलखधारी की पुस्तकों को पढ़ कर पं० लेखराम जी के हृदय में वैदिक धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न होगई थी। पं० जी ने अपने चार मित्रों के साथ पेशावर में आर्य्य-समाज की स्थापना करदी। इसके अधिवेशन प्रतिदिन पं० जी के निवास स्थान पर हुआ करते। पं० जी अपने मित्रों को समझाया करते परन्तु अनेकों बातों पर उन्हें शंकायें रहती। इन शंकाओं के मिटाने के लिये लेखराम जी ने सोचा कि ऋषि से मिल कर मिटाना चाहिये। ५ मई सन् १८८० ई० को एक मास की छुट्टी ली और ११ मई को अजमेर के लिये रवाना होगये। लाहौर,

मेरठ, अमृतसर आदि नगरों में होते हुये वे १६ मई को अजमेर पहुंचे और १७ मई को सेठ फतहमल की वाटिका में गये । यहां पर पं० जी ने प्रथम बार और अन्तिमबार ऋषि के दर्शन किये और अपनी शंकायें निवारण कीं ।

अजमेर से लौटने पर

अजमेर से लौटने पर पं० जी में एक नवीन उत्साह था । आते ही पेशावर आर्य्यसमाज की ओर से "धर्मोपदेश" नामक उर्दू मासिक पत्र निकलना आरंभ किया । इसके सम्पादन का सब भार पं० जी के ऊपर था । कुछ दिनों बाद आपका तबादला सुआवी थाना में कर दिया गया। लोगों ने शायद यह सोच कर ही यह कराया हो कि पेशावर से जाने पर उनका काम बन्द हो जायगा पर फल उल्टा ही निकला क्योंकि पंडित जी उस स्थान पर रहते हुये भी बराबर आर्य्य समाज पेशावर की आर्य्य समाज के सभासद थे और १) सैकड़ा मासिक चन्दा देने के स्थान में ५) सैकड़ा चन्दा देते रहे । "धर्मोपदेश" जिसका आरम्भ उन्होंने किया था उसका सम्पादन इसी स्थान से वे करते रहे । पर इस पत्र में बड़ा घाटा आया । पंडित जी ने ५) उसकी सहायता के लिये भेजे पर पेशावर समाज के कार्य्यकर्ताओं ने उस पत्र को न निकालने का निश्चय लिया ।

सुआबी में आने पर भी मुसल्मानों से वहस ज्यों की त्यों रही । पंडित जी इतने निर्भीक थे । कि उनको किसी प्रकार का डर न लगता था । कभी २ तो अपने काम को छोड़ कर मुबाहसा करते थे । एक दिन की बात है कि इन्सपेक्टर पुलीस थाने का मुआइना करने आये और देखा कि वे अपने वहस में लगे हुये थे । इस कारण उनका ओहदा घटा दिया गया ।

नौकरी से त्याग-पत्र

पण्डित जी को सरकारी नौकरी करना बिल्कुल प्रिय नहीं था क्योंकि नौकर रहते हुये उनके कार्य्य में रुकावट होती थी । संवत् १९३६ वि० में ही उनका विचार था कि वृन्दावन जावें पर अब तो वे ऋषि के रंग में रंग चुके थे । इधर उनके मुसलमान साथियों ने कई प्रकार के अपराध लगाये थे । जूलाई १८८४ ई० को उन्होंने इस से छुटकारा पाने का निश्चय कर लिया और त्याग पत्र दे दिया । २४ सितम्बर १८८४ को उनका त्याग पत्र पेश हुआ आपके अंग्रेज अफ़सरों ने आपको सलाह दी कि इसको वापिस ले लो उन्होंने अपने कार्य्य-क्षेत्र का पूर्ण विस्

कर लिया था और किसी का कहना न माना।

गो-रक्षा विषयक प्रार्थना पत्र और शिक्षा कमीशन

सन् १८८२ ई० में पं० जी पेशावर में थे कि उनको ऋषि दयानन्द के दो पत्र मिले। ऋषि दयानन्द गो-रक्षा का प्रबन्ध कर रहे थे और उन्होंने पं० लेखराम को लिखा कि लोगों से हस्ताक्षर कराकर एक पत्र सरकार के नाम भेजा जाय। दूसरे पत्र में उनसे कहा था कि शिक्षा कमीशन के सामने पंजाब में हिंदी प्रचार के लिये लोगों से हस्ताक्षर कराकर एक मेमोरियल भेजा जाय। उक्त दोनों बातों पर पं० जी ने बड़े जोश से काम किया।

मिर्ज़ा गुलाम अहमद से भिड़ गये

मिर्ज़ा गुलाम अहमद ने "बुराहीन अहमदिया" नामक एक पुस्तक लिखी। इसमें सबसे पहले अपने को पैगम्बर सिद्ध किया तथा अन्य धर्मों का खण्डन किया। इस पुस्तक के चौथे भाग में आर्य्य सिद्धान्तों पर कटाक्ष किये। इस पुस्तक के निकलने से हिन्दू समाज में बड़ी खल-बली मच गई और कुछ लोग अपने धर्म को छोड़ कर मिर्ज़ा जी के चेले होने लगे। जम्मू के एक ठाकुरदास जी भी थे। पं० जी को ठाकुरदास के विचारों का ज्ञान हुआ तो कई बार अपनी नौकरी से छुट्टी ले लेकर जम्मू गये और उनको कादयानी होने से बचा लिया।

आर्य्यसमाज का खंडन पढ़कर पं० जी न रह सके। और उसका उत्तर देने लगे। पं० जी की पुस्तक निकलने पर आर्य्यों को बहुत आश्वासन मिला। बहुत से लोगों ने बहुत व्यय करके इसकी हस्तलिखित प्रतियां करा लीं। मिर्ज़ा जी ने लोगों को चैलेंज दिया कि यदि वे कोई अद्भुत चमत्कार न दिखावें तो २४००) देंगे। पं० जी ने कहा कि बंक में २४००) जमा कर दीजिये। इस तरह का झगड़ा चलता रहा। पण्डित जी स्वयं मिर्ज़ा जी के घर पर गये। और अपनी युक्तियों से उनका मुंह बन्द कर दिया। इसके अतिरिक्त व्याख्यानों में उनकी पोल खोलते रहे। कादियां में जहां पर मिर्ज़ा जी का बड़ा ज़ोर था वहां पर एक जबरदस्त आर्य्यसमाज पं० जी ने खुलवा दी। इन दिनों मुबाहिसों का बड़ा ज़ोर था जहां कहीं कोई चैलेंज देता लोग तार द्वारा पंडित जी को निमन्त्रित करते और पंडित जी फ़ौरन पहुँच जाते।

आर्य्य गज़ट के सम्पादक

सन् १८८६ ई० में आपकी पुस्तक "तकज़ीबबुराहीन अहमदिया" के कारण आर्य्य जगत् में आपकी बड़ी ख्याति बढ़ गई थी। १८८७ ई० में आप "आर्य्य गज़ट फीरोज़पुर" के सम्पादक बनाये गये, हर्ष की बात है कि यह पत्र साप्ताहिक रूप में इस समय तक प्रकाशित हो रहा है।

ऋषि दयानन्द की जीवनी

महर्षि दयानन्द ने अपने जीवन के सम्बन्ध में बातें अपने शिष्यों को नहीं बताई थी। उनके आत्म बलिदान पर लोगों में उनके विषयक अधिक चरचा फैल गई और लोग ऋषि दयानन्द के विषय में अधिक ज्ञान चाहते थे। १२ अप्रेल १८८८ ई० को मुल्तान की आर्य्य समाज ने निश्चय किया कि महर्षि के जीवन की खोज का कार्य्य "आर्य्य मुसाफ़िर" पं० लेखराम को सौंपा जाय। आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने १ जूलाई १८८८ ई० के अधिवेशन में इसका समर्थन किया और यह दृढ़तर कार्य्य धर्मवीर को सौंपा गया।

पण्डित जी ने लाहौर से यह कार्य्य आरम्भ किया। कुछ दिन जालन्धर में रहे, सारा दिसम्बर मास मथुरा में बिताया। यहां पर ऋषि दयानन्द के सहपाठी पं० युगलकिशोर, पं० दामोदर चौबे, पण्डित हरिकृष्ण आदि से ऋषि दयानन्द के विषय में कुछ हाल मिला। सन् १८८९ ई० भर इस कार्य्य में लगाया। अजमेर तथा नसीराबाद छावनी में होकर कुछ दिनों उन्होंने विश्राम लिया। इसके बाद पश्चिमोत्तर प्रदेशों में भ्रमण किया। अलीगढ़ में एक समाज स्थापित की। अगस्त १८९० ई० को पं० जी अधिक कार्य्य के कारण बीमार हो गये और ३ सप्ताह तक ज्वर से पीड़ित रहे। जालन्धर में बीमारी से छुटकारा पाने पर लाहौर, सहारनपुर, कानपुर होते हुये प्रयाग पहुंचे जहां पर स्वामी जी का स्थापित वैदिक प्रेस था। मिर्ज़ापुर उत्सव में २४ अक्टूबर १८९० ई० को सम्मिलित हुये। १ जनवरी १८९१ ई० को काशी शास्त्रार्थ करके आगे बढ़े, १७ जनवरी से १२ फरवरी तक दानापुर, बांकीपुर, और पटना में रहे। १४ फरवरी १८९१ को कलकत्ता पहुंचे। १२ अप्रेल को हरिद्वार के कुम्भ में गये। कई बार आपने राजपूताना में भ्रमण किया। १८९२ ई० के अन्तिम कई मास मौरवी प्रान्त में कटे जहां पर पं० जी ऋषि दयानन्द जी जन्म भूमि का पता लगाने गये थे।

इस प्रकार जहां कहीं से हो सका धर्म-वीर ने ऋषि की जीवनी इकट्ठी की। इस कार्य्य को हाथ में लिये हुए

कई वर्ष हो गये थे। लोग बड़े उत्सुक थे कि ऋषि की जीवनी शीघ्र तैयार हो जाय, परन्तु शास्त्रार्थ तथा प्रचार के काम से पण्डित जी को बिल्कुल अवकाश ही नहीं मिलता था। जब लिखने बैठते तो दूसरे ही दिन किसी स्थान से शास्त्रार्थ की सूचना आ जाती और पं० जी को जाना पड़ता। जनवरी १८९५ ई० में पं० जी के ठहरने का प्रबन्ध लाहौर में लाला जीवनदास जी पेन्शनर के स्थान में किया गया जिससे वे एक स्थान में रह कर ऋषि की जीवनी का संग्रह कर डालें। और वहां पर वे अपनी धर्म-पत्नी को भी ले आये। परन्तु ९ फरवरी को वे मान्टगुमरी में पहुंच गये, १० को गुजरांवाला में व्याख्यान दे रहे थे। इस प्रकार इस कार्य्य में बड़ी देरी हुई। पर यह कार्य्य उन्होंने अपने जीवन में समाप्त कर दिया। उनका घातक उनकी चारपाई से बैठा हुआ था, वे ऋषि की मृत्यु का दृश्य खींच रहे थे। पर उनको क्या मालूम था कि ऋषि की जीवनी समाप्त होते ही उनकी मृत्यु आ जायगी। यदि धर्मवीर ने अकेली ऋषि की जीवनी ही लिखी होती तब भी उनको आर्य्यसमाज का स्तंभ माना जाता। यह ८७२ बड़े पृष्ठों में है।

पं० जी का गार्हस्थ्य जीवन

२१ वर्ष की अवस्था में माता ने विवाह की तय्यारियां आरम्भ कर दी थीं। पर पं० लेखराम जी में वैराग्य भाव उत्पन्न हो गया था। ऋषि दयानन्द से जब आप मिलने गये थे तो ऋषिवर ने आपसे कहा था कि २५ वर्ष के पूर्व विवाह न करना आपने इस बात को अच्छी तरह निभाया और ३५ वर्ष की आयु में श्रीमती लक्ष्मी देवी से आपका विवाह हुआ। देवी जी की पति में बड़ी श्रद्धा थी। पंडित जी भी देवी जी के साथ प्रेम का व्यवहार करते थे और उनको पढ़ाया करते थे। १८ मई १८९५ ई० को पंडित जी के पुत्र उत्पन्न हुआ। बच्चे का नाम "सुखदेव" रक्खा गया २२ मई को पं० जी फिर अपने काम पर चल दिये। बच्चे की अवस्था सवा वर्ष की हो गई। अम्बाला और मथुरा के उत्सवों में पं० जी देवी जी के साथ सम्मिलित हुये। वहां से लौटने पर उनका पुत्र बीमार पड़ गया। पं० जी को जालन्धर जाना था। अपने प्यारे पुत्र को बीमार छोड़ कर आप चल दिये, जब २६ अगस्त १८९६ ई० को लौटे तो बालक की अवस्था बड़ी खराब हो गई थी। आपकी अनुपस्थिति में लोगों ने पुत्र की बड़ी चिकित्सा करवाई परन्तु कुछ फल न हुआ। अन्त में २८ अगस्त को पुत्र चल बसा, परन्तु वाहरे शेरदिल पं० लेखराम! पुत्र शोक को बड़े धैर्य्य से सहन कर गये और बिना विश्राम

लिये हुये ही हम उनको फिर दहाड़ते पाते हैं।

त्याग और तपस्वी का जीवन

पं० जी ने वैदिक धर्म के प्रचार के लिये सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। फिर नौकरी, भी थी पुलीस की, जिसके लिये आजकल लोग बहुत प्रयत्न करने को तय्यार रहते हैं। आर्य्य प्रतिनिधि सभा की ओर से आपको २५) मासिक सहायता मिलती थी। विवाह के उपरान्त ३०) हो गई थी। स्वामी श्रद्धानन्द को यह पता लगा कि उन्होंने "सन् लाइफ इंश्योरेन्स कम्पनी" में अपनी जिन्दगी का बीमा कराया है तो ५) वेतन में वृद्धि करा दी थी। परन्तु पं० जी ने कभी भी अपना वेतन बढ़ाने के लिये नहीं कहा।

त्यागी लक्ष्मीदेवी जी

पण्डित जी ने २०००) का बीमा कराया था परन्तु त्याग की देवी ने यह रुपये अपने काम में नहीं लगाये। उन्होंने यह बहुत बड़ी रकम गुरुकुल को दे दी जिससे एक ग़रीब ब्रह्मचारी ऋषि-ग्रन्थों का अध्ययन कर सके।





प्रचार के सात साधन

पं० जी का एक लेख मिला है, जिसमें लिखा है:—

"समग्र भारतवर्ष को आर्य्य-धर्म में लाने के निम्न साधन हैं। यदि इनमें हम ईश्वर की कृपा से कृत-कार्य्य हों तो अवश्य सब लोग सद्धर्म में आजावें:—

प्रथम—विधवा विवाह या और साधन जिससे भविष्य में स्त्रियां मुसलमान व ईसाई न हो सकें।

द्वितीय—शुद्धि फण्ड जिससे सब मतों के अनुयायी वैदिक धर्म में आ सकें।

तृतीय—वेद प्रचारनिधि स्थापित करना अर्थात् उपदेशक तय्यार करना।

चतुर्थ—बचपन का विवाह रोकना।

पंचम—पुस्तक प्रचार प्रत्येक भाषा में और साइंस की वह बातें जो वैदिक धर्म के विरुद्ध हों, उन पर विचार करना।

पृष्ठ—साधु कम हों और उपदेशक बन कर वर्तमान साधु धर्म का कार्य करें।

सप्तम—दान की व्यवस्था ठीक करना।

यदि इन पर कार्य्य किया जाय तो आर्य्यसमाज का कल्याण हो सकता है।

—क्रमशः

शतपथ ब्राह्मण [सभाष्य]

श्रावणांक से आगे

[श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

काण्ड १—अध्याय १—ब्राह्मण २

१—अथ शूर्पं चाग्निहोत्रहवणीं चादत्ते। कर्मणे वां वेषाय वामिति यज्ञो वै कर्म यज्ञाय हि तस्मादाह कर्मणे वामिति वेषाय वामिति वेवेष्टीव हि यज्ञम्।

१—अब सूप को और अग्निहोत्र के चमसे को लेता है। इस मन्त्र को पढ़कर :—

कर्मणे वां वेषाय वाम्। (यजुर्वेद १।६।)

"कर्म के लिये तुम दोनों को (लेता हूं)। व्याप्ति के लिये तुम दोनों को लेता हूं।" यज्ञ ही कर्म है। इसलिये "कर्म के लिये तुम दोनों को" का अर्थ है 'यज्ञ के लिये'। 'व्याप्ति के लिये तुम दोनों को' इसलिये कहा कि यज्ञ करने वाला यज्ञ में व्यापक सा होता है (अर्थात् उसमें संलग्न हो जाता है।

२—अथ वाचं यच्छति। वाग्वै यज्ञोऽविक्षुब्धो यज्ञं तनवाऽइत्यथ प्रतपति प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टा अरातयो निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ता अरातय इति वा।

२—अब वाणी को वश में करता है। वाणी ही क्षोभरहित यज्ञ है। (वाणी को वश में करने से वह समझता है कि मैंने) यज्ञ किया। अब नीचे के मन्त्रों को पढ़कर (सूप और चमसे को) गर्म करता है।

'प्रत्युष्टꣳरक्षः प्रत्युष्टा अरातयः।'

"राक्षस जल गया, शत्रु जल गये"

या

निष्टप्तꣳरक्षो निष्टप्ता अरातयः।

"राक्षस जला दिया गया। शत्रु जला दिये गये।"

३—देवा ह वै यज्ञं तन्वानाः। तेऽसुररक्षसेभ्य आसङ्गाद्बिभयांचक्रुस्तद्यज्ञमुखादेवैतन्नाष्ट्रा रक्षाꣳस्यतोऽपहन्ति।

३—देवों ने यज्ञ रचा। असुर और राक्षसों ने उसमें विघ्न डाला। इसलिये वह यज्ञ के आरम्भ से ही राक्षस और शत्रुओं को दूर कर देता है।

४—अथ प्रैति। उर्वन्तरिक्षमन्वेमीत्यन्तरिक्षं वाऽअनु रक्षश्चरत्यमूलमुभयतः परिच्छिन्नं यथायं पुरुषोऽमूल उभयतः परिच्छिन्नोऽन्तरिक्षमनुचरति तद्ब्रह्मणैवैतदन्तरिक्षमभयमनाष्ट्रं कुरुते।

४—अब वह (इस मन्त्र को पढ़कर गाड़ी की ओर) चलता है :—

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि। यजुर्वेद। १।७

"विस्तृत अन्तरिक्ष में चलता हूं।"

राक्षस विना जड़ के दोनों ओर स्वतन्त्रता पूर्वक अन्तरिक्ष में विचरता है। चूंकि यह पुरुष (अध्वर्यु,) अन्तरिक्ष में स्वतन्त्रता पूर्वक विचरना चाहता है

इसलिये इस मन्त्र का जप करके वह अन्तरिक्ष को भयरहित कर देता है। ('अमूल' का अर्थ है मूलरहित अर्थात् कहीं गड़ा न हो। अर्थात् स्वतन्त्र)।

५—स वाऽअनस एव गृहणीयात्। अनो ह वाऽअग्रे पश्चेव वाऽइदं यच्छालꣳ स यदेवाग्रे तत्करवाणीति तस्मादनस एव गृहणीयात्।

५—गाड़ी से ही हवन के (चावल) लेने चाहिये। क्योंकि चांवल पहले गाड़ी में होते हैं फिर शाला में आते हैं। और चूंकि वह सोचता है कि जिसमें पहले था उसीको करूं। इसलिये चांवल को गाड़ी में से ही लेना चाहिये।

६—भूमा वाऽअनः। भूमा हि वाऽअनस्त-स्माद्यदाबहु भवत्यनो वाह्यमभूदित्याहुस्तद् भूमानमेवैतदुपैति तस्मादनस एव गृहणीयात्।

६—गाड़ी आधिक्य (की सूचक) है। गाड़ी ही आधिक्य है। इसीलिये जब कोई चीज़ बहुत होती है तो लोग कहते हैं कि गाड़ी भरकर है। इसलिये वह (गाड़ी की ओर चल कर मानो) आधिक्य की ओर चलता है इसलिये उसे गाड़ी में से ही (चांवल) लेने चाहिये।

७—यज्ञो वाऽअनः। यज्ञो हि वाऽअनस्त स्मादनस एव यजूꣳषि सन्ति न कौष्ठस्य न कुम्भ्यै भस्त्रायै ह स्मर्षयो गृहणन्ति तद्वृषीन्प्रति भस्त्रायै यजूꣳष्यासुस्तान्येतर्हि प्राकृतानि यज्ञा-वद्यं निर्मिमाऽइति तस्मादनस एव गृहणीयात्।

७—यज्ञ का नाम भी "अनस्" है। यज्ञ ही अनस् है। इसलिये यजुर्वेद के मन्त्रों में 'अनस्' अर्थात् गाड़ी (... ही चांवल लेने) का विधान है। ... या घड़े का नहीं। ऋषि चमड़े के ... से लेते हैं। इसलिये ऋषियों के ... यजुर्वेद के मन्त्रों का थैलों से ... समझना चाहिये। परन्तु यहां ... (स्वाभाविक) अर्थ लेना चाहिये। ... वह यज्ञ से यज्ञ करना चाहता है ... अनस् अर्थात् गाड़ी से ही चांवल ... चाहिये। (तात्पर्य यह है कि अनस् ... गाड़ी का भी नाम है और यज्ञ का ... इसलिये यदि गाड़ी में से चाँवल ... जायगा तो मानो यज्ञ से ही यज्ञ ... गया)।

८—उतो पात्र्यै गृहणन्ति। ... तर्हि यजूꣳषि जपेत्स्फ्यं ... गृहणीयाद्यतो युनजाम ततो विमुञ्चामेति ... ह्येव युञ्जन्ति ततो विमुञ्चन्ति।

८—कुछ लोग पात्र से भी लेते हैं ... तब भी यजु के मन्त्रों का निरन्तर ... करे। और स्फ्या (लकड़ी के फल) ... घड़े में डाल कर चांवल निकाले। ... सोचकर कि "जहां जोड़ता हूँ वहीं ... करता हूँ।" क्योंकि जिस जगह ... होता है उसी जगह अलग ... जाता है।

९—तस्य वाऽएतस्यानसः। ... धूरग्निर्हि वै धूरथ य एनद्वहन्त्यग्निदग्धं ... वहं भवत्यथ यज्जघनेन कस्तम्भीं प्रऽगं ... वास्य साऽनीड एव हविर्धानम्।

९—इस गाड़ी का जुआ ही अग्नि के समान है। जुआ अग्नि है इसलिये जो (बैल) गाड़ी के जुए को खींचते हैं उनकी गर्दन अग्नि से दग्ध सी हो जाती है। गाड़ी की कस्तम्भी (डण्डी ?) वेदि के समान है। और गाड़ी की नीड़ (वह भाग जहाँ चाँवल रक्खा रहता है) हविर्धान् मंडप के समान है।

१०—स धुरमभि मृशति। धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान्धूर्वतित धूर्व यं वयं धूर्वाम इत्यग्निर्वाऽएष धुर स्तमेतदत्येष्यन्भवति हविर्ग्रहीष्यं स्यतस्माऽएवै तान्निह्नुते तथो हैतमेषोऽतियन्तमग्निर्धुर्यो न हिनस्ति।

१०—अब वह यह मंत्र पढ़कर गाड़ी के धुरे को छूता है :—

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्वतं मोऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वाम। (यजुर्वेद १।८) "तू धुरा है। हिंसा करने वाले का नाश कर। उसका नाश कर जो हम को सताता है। उसका नाश कर जिसको हम सताते हैं।"

धुरे में अग्नि है। जब वह हवि लेने जाता है तो धुरे को पार करता है। इस लिये वह (इस मंत्र द्वारा) इसको शान्त करता है। इस लिये जब वह धुरे की अग्नि को पार करता है तो वह अग्नि उसको नहीं सताता।

११—तद्धा स्मैत दारुणिराह। अर्ध मासशो वाऽअहं सपत्नान्धूर्वामीत्येतद्ध स्म स तदभ्याह।

११—इस सम्बन्ध में आरुणि ने कहा "मैं हर अमावस्या को शत्रुओं का नाश करता हूं।" यह उसने इसी सम्बन्ध में कहा था।

१२—अथ जघनेन कस्तम्भीमीषामभिमृश्य जपति। देवानामसि वह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहुतमम्। अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वारित्यन एवै तदुपस्तौत्युप स्तुतादरातमनसो हविर्गृह्णानीति मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीदिति यजमानो वै यज्ञपतिस्तद्यजमानायै वै तदह्वलामाशास्ते।

१२—गाड़ी की कस्तम्भी को पिछले भाग से छूता हुआ इस मंत्र को जपता है:—

देवा नामसि वह्नितम ꣳ सस्नितमं प्रप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्। (यजुर्वेद १।८) "तू देवों का सब से उत्तम भाग ढोने वाला, सब से उत्तम शुद्ध करने वाला सब से उत्तम पालन करने वाला, सब से उत्तम प्रेम करने वाला, सब से उत्तम बुलाने वाला है"।

फिर नीचे के मंत्र को पढ़कर

अह्रुतमसि हविर्धानं द ꣳ हस्व मा ह्वा·

(यजु० १।९)

"तू दृढ़ मंडप है। दृढ़ हो। टूटे मत" गाड़ी की स्तुति करता है कि इस स्तुति की गई और संतुष्ट गाड़ी से मैं हवि को ग्रहण करूं।

फिर वह इस मंत्रांश को जपता है:—

मा ते यज्ञपति ह्वीर्षीत् । (यजु० १ । ९) "तेरा यज्ञपति कमज़ोर न हो" । यजमान ही यज्ञपति है । यह यजमान ही है जिसकी दृढ़ता के लिये स्तुति की जाती है ।

१३—अथाक्रमते । विष्णुस्त्वा क्रमतामिति यज्ञो वै विष्णुः स देवेभ्य इमां विक्रान्तिं विचक्रमे यैषामियं विक्रान्तिरिदमेव प्रथमेन पदेन पस्पाराथेदमन्तरिक्षं द्वितीयेन दिवमुत्तमेनैतामु एवैष एतस्मै विष्णुर्यज्ञो विक्रान्तिं विक्रमते ।

१३—अब वह (गाड़ी पर दक्षिण पहिये की ओर) चढ़ता है । और इस मंत्रांश को जपता है:—

विष्णुस्त्वा क्रमताम् (यजु० १ । ९)

"विष्णु तुझ पर चढ़े या तेरा अधिष्ठाता हो, यज्ञ ही विष्णु है । विष्णु ने देवों के लिये इस विक्रान्ति (शक्ति) को प्राप्त किया जो इन देवों में पाई जाती है । पहले पद से उसने इस (पृथ्वी) को प्राप्त किया, दूसरे से अन्तरिक्ष को, तीसरे से द्यौलोक को । यजमान के लिये भी विष्णु इसी विक्रान्ति या शक्ति का प्राप्त कराने वाला होता है ।

१४—अथ प्रेक्षते । उरु वातायेति प्राणो वै वातस्तद्यज्ञस्यैवैतत्प्राणाय वातायोरुगायं कुरुते

१४—जब वह (चांवलों की ओर) देखता है और इस मंत्रांश को जपता है—

उरु वाताय । (यजु० १ । ९)

"महान वायु के लिये ।"

प्राण ही वायु है । इसलिये इस स्तुति से वह (यजमान के) प्राणों की स्वतंत्रता का सम्पादन करता है ।

१५—अथापास्यति । अपहतं रक्ष इति यद्यत्र किञ्चिदापन्नं भवति यद्यु नाभ्येव मृशेन्नाष्ट्रा एवैतद्रक्षांस्यतोऽपहन्ति ॥ १५ ।

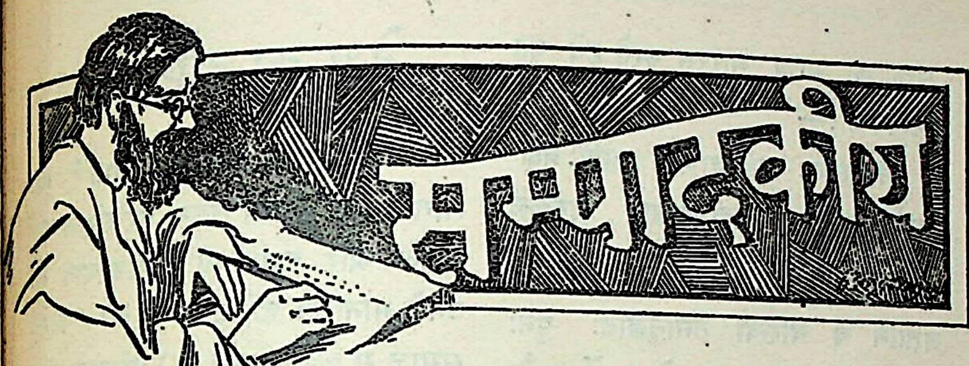
अपहतं रक्षः । (यजु० १।९)

"राक्षस मर गया"

इस मन्त्रांश को जप कर वह जो कुछ उस पर गिर गया हो (घास आदि) उसको दूर करता है । यदि उस पर कुछ न गिरा हो तो उसे केवल छूता है । इस प्रकार करने से वह राक्षस को दूर करता है ।

(क्रमशः)





क्या गुरुकुल शूद्रों के लिये हैं ?



र्य्यसमाज ने गुरुकुलों की स्थापना की। सनातन-धर्म सभा ने इनकी देखा देखी ऋषिकुल खोले। उन्होंने भी अपने ऋषिकुलों को खोलते समय प्रायः उन्हीं उद्देश्यों की घोषणा की जिनकी घोषणा आर्य्यसमाज ने की थी। परन्तु सनातन-धर्म सभा ने एक बात विलक्षण कही वह यह कि 'गुरुकुल' शूद्रों के लिये होते हैं। द्विजों के लिये ऋषिकुल चाहिये। ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के तीसरे समुल्लास में दो पर्य्याय शब्दों का उल्लेख किया है एक गुरुकुल और दूसरा आचार्य्य-कुल। यह पर्य्याय ही हैं और किसी प्रकार का भेद-भाव अभीष्ट नहीं है। परन्तु सबसे पहले पं० अखिलानन्द ने इस प्रश्न को उठाया। उनकी मानसिक प्रवृत्ति आर्य्यसमाज के भीतर भी वही थी जो आजकल सनातन-धर्म सभा के अन्तर्गत है। भेद-भाव, छूत, छात, नीच ऊंच उनकी प्रकृति में था। जिस समय उन्होंने आर्य्यसमाज को छोड़ा नहीं था उस समय भी उनको गुरुकुल के संस्थापकों से जो प्रायः जन्म के ब्राह्मण न थे कुछ द्वेष था। उन्होंने कहना आरम्भ किया कि गुरुकुल शूद्रों के लिये होते हैं। उनकी देखा देखी कई अन्य पंडितों की भी ऐसी ही धारणा हो गई। वह अखिलानन्द के अनुयायी तो न हुये न उन्होंने किसी को बुरा भला ही कहा। गुरुकुलों का प्रचार होने पर वह भी गुरुकुल की प्रशंसा करते रहे। परन्तु कुछ लोगों के मन में गुरुकुल शब्द के ऊपर यह शंका बनी ही रही। और अब भी है।

मैं इस शंका के निवारणार्थ सायण आचार्य्य जी के ऋग्वेद भाष्य से एक उद्धरण देता हूँ। पहले मण्डल के १२५वें

सूक्त का भाष्य आरम्भ करते हुये वह लिखते है :—

दैर्घतमसः कक्षीवान्नाम ऋषिः ब्रह्मचर्य्यं चरिष्यन् वेदाभ्यासाय गुरुकुले चिरकालमुषित्वा वेदान् सम्यगधीत्य व्रतानि च चरित्वा तेनानुज्ञातः पुनः स्वगृहं प्रति प्रयास्यन् मध्ये मार्गे रात्रौ-विश्रान्तः इत्यादि।

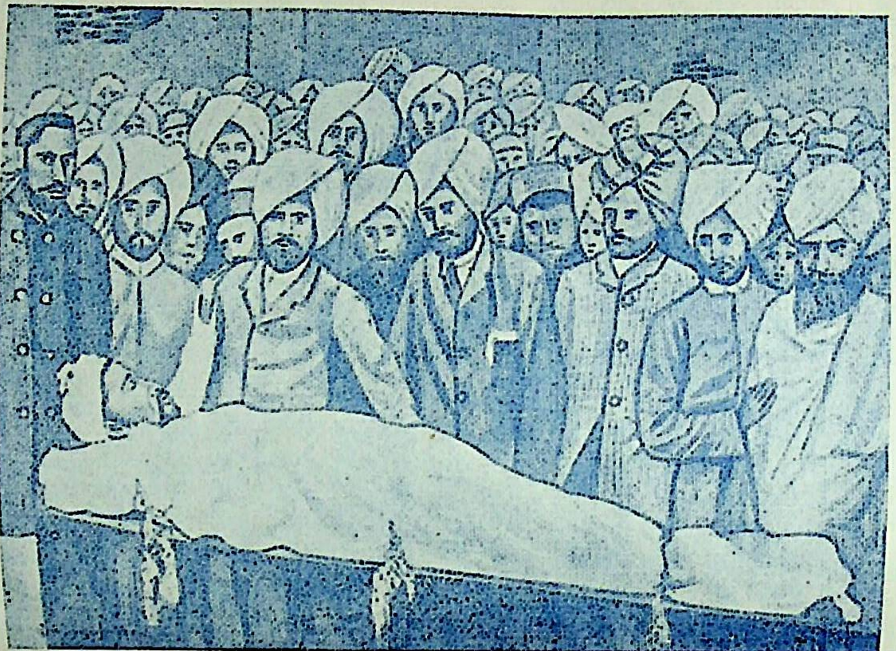
"दीर्घतमा का पुत्र कक्षीवान नामी ऋषि ब्रह्मचर्य्य-व्रत धारण करके वेद पढ़ने के लिये बहुत दिन गुरुकुल में रह कर अच्छी तरह वेदों को पढ़के, व्रतों का पालन करके, गुरु की आज्ञा से अपने घर को आता हुआ इत्यादि! इत्यादि।"

यहां स्पष्ट है कि कक्षीवान ऋषि ने गुरुकुल में वेदों को पढ़ा। पहले समय में गुरुकुल शब्द का प्रयोग होता था। सायण के समय में गुरुकुल होंगे या गुरुकुल शब्द प्रचलित होगा। अथवा सायण ने जिन वैदिक पुस्तकों का अध्ययन किया उनमें गुरुकुल शब्द मिला होगा। दीर्घतमा के पुत्र कक्षीवान का गुरुकुल में पढ़ना बताता है कि 'गुरुकुल' शूद्रों के लिये नहीं होते और स्वामी दयानन्द ने 'आचार्य्यकुल' और 'गुरुकुल' शब्द एक ही अर्थ में प्रयुक्त किये हैं।

देश का दृष्टिकोण

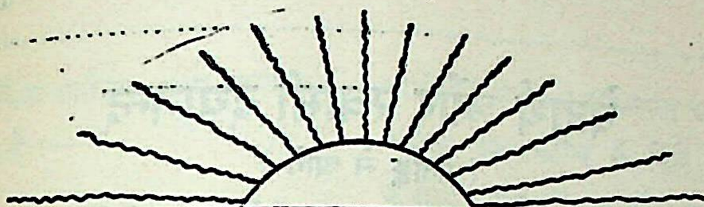
अभी कितने दिन की बात है कि लोग उंगली उठाते, सड़क पर संभल कर चलते और इससे भी अधिक बात ... उनके मानसिक दृष्टिकोण की थी। हिन्दू समाज में कुछ नीच (?) पेशेवाले ... कहे जाते थे। लोगों की यह धारणा ... कि वे अस्पृश्य है। नीच हैं। लोगों को चाहिये कि उनको मारें, गालियां दें। परन्तु इस समय उनका यह दृष्टिकोण परिवर्त्तित हो गया है। यदि ऐसा न होता तो श्री भीखन मेहतर, चौधरी राम... चमार यू० पी० कौंसिल के, श्री ... मोची बम्बई कौंसिल के, तथा ... चन्दीमल चमार बड़े लाट की सभा ... मेम्बर नियुक्त न होते। हिन्दू ... ने उनको अपना प्रतिनिधि बनाकर ... है, इससे अधिक हर्ष की कौन सी ... हो सकती है।

पर इस दृष्टिकोण का परिवर्तन करनेवाला कौन था?—ऋषि दयानन्द ... उन्होंने सबसे पहले हिन्दू-समाज ... चेतावनी दे दी थी कि यदि तुम ... हो कि हिन्दू-जाति की रक्षा हो तो ... इस कलंक को दूर कर दो। ऋषि ... प्रयत्न इस समय फलफूल रहा है।



धर्मवीर पण्डित लेखरामजी के अन्तिम दर्शन
बलिदान-दिवस ६ मार्च १८९७ ई०

ओ३म्



वेदोदय

पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३।४।१।१]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती हैं।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग २ | अगहन संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०६; दिसम्बर १९३० । आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ | सं० ३ पूर्ण सं० ९

व्रत-साधना

[श्री पं० सूर्य्यदेव शर्मा साहित्यालंकार एम० ए०]

ओं अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्।

इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि ॥ यजु० १-५ ॥

(शार्दूल विक्रीडित)

हे अग्ने! श्रुतिज्ञानदा व्रतपते! सम्पूज्य संसार में।
लेता हूं व्रत आज एक यह मैं, तेरे दया द्वार में॥
ऐसी दे दृढ़ शक्ति भक्ति भगवान्! हो सिद्धि आचार में।
मिथ्या भाषण भाव कर्म तज दूं, सत्यव्रताधार मैं॥

वेदार्थ और स्वामी दयानन्द

(गताङ्क से आगे)

[श्रीयुत बा० श्यामसुन्दरलाल एडवोकेट, मैनपुरी]



एक समय था जब कि वेद का भाष्य करना एक साधारण बात समझी जाती थी और कारण यह था कि उस समय यह मान लिया गया था कि वेदों में न तो कोई महत्व वा उच्च कक्षा के ज्ञान विज्ञान की बात है और न कोई ऐसी बात है जिसके वेद द्वारा जानने से हमारी शारीरिक, मानसिक और आत्मिक अवस्थाओं में किसी शुभ परिवर्त्तन के उत्पन्न करने के लिये कोई नवीन बात ज्ञात हो सकती हो। किन्तु यह मान लिया गया था कि वेद में सिवाय प्राचीनतम अपरिपक्क मस्तिष्क रखने वाली एक जंगली मानव जाति की रोजमर्रा की साधारण बातों वा प्राकृतिक तत्वों को देवता [अदृश्य चेतन शक्ति] मान कर उनके पूजा विधान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। अथवा उनमें उन लड़ाइयों का वर्णन है जो उनकी दृष्टि में आर्य्य-जाति और इस देश के सबसे प्राचीन निवासियों के मध्य में बहुत काल तक होती रही है और इस कल्पना का आधार सायणादि के किये हुये वेदों के भाष्य थे। जिनमें हमारे आर्य्यावर्त्तीय परिडत और अर्वाचीन संस्कृतज्ञ सर्वथा रंग चुके थे और जिनके आधार पर हमारे यूरोपियन संस्कृतज्ञों ने भी अपनी उक्त धारणा स्थिर की थी। किन्तु क्रिश्चियन धर्म के रंग में रंगे और उक्त भाष्यों के अध्ययन में आसक्त इन पाश्चात्य संस्कृतज्ञों को उक्त धारणा के प्रस्तुत करने में आसानी और ... दोनों थे।

परन्तु महर्षि दयानन्द रचित ... वेदादि भाष्य-भूमिका तथा वेद-भाष्य से इस धारणा में क्या अन्तर उत्पन्न हुआ इसके स्पष्टीकरण के लिये हम ... कुछ उद्धरण देते हैं जिनसे ज्ञात होगा कि वे लोग कितनी भूल करते हैं ... वेदों के समझने के लिये किसी ... तय्यारी की आवश्यकता नहीं समझते किन्तु उन्हीं उक्त सायणादि के भाष्य के आधार पर सहसा वह अर्थ पेश कर देते हैं जो वेदों के यथार्थ भाष्य करने के नियमों से सर्वथा विरुद्ध हैं।

सुप्रख्यात जर्मनी के प्रकाण्ड पण्डित महामना श्री मैक्समूलर महोदय ... ग्रन्थ (Sacred Books of the East

"पूर्वीय धार्मिक साहित्य ग्रन्थ-माला" में प्रकट करते हैं :—

"कोई पुरुष जो कुछ भी वेदों के विषय में जानता है वेदों के भाष्य करने का कदापि साहस न करेगा। साम्प्रति ऋग्वेद के भाष्य करने का काम आगामी शताब्दी का है। यदि ऋग्वेद के भाष्य से से हमारा तात्पर्य्य पूर्ण सन्तोष-जनक, और अन्तिम [स्थिर, अटल] भाष्य से है तो मुझे श्री मि० राथ (Mr. Roth) से भी आगे बढ़ने की आवश्यकता प्रतीत होती है और मैं कहूँगा कि ऐसे दुर्गम और दुर्गेय कार्य्य के लिये न हमको केवल दूसरी शताब्दी की प्रतीक्षा करनी पड़ी किन्तु मुझे सन्देह है कि हम कभी भी इस कार्य्य को पूर्ण कर सकेंगे। [श्री मैक्समूलर महोदय की यह निराशता केवल कार्य्य की महत्ता की सूचक है] मुझे विश्वास है कि शताब्दियों तक तो विद्वानों को संसार के मानवीय [मनुष्य मात्र के] पुस्तकालय में वेदों के प्राचीनतम ग्रन्थ होने की स्थिति को ही स्थिर रखने में व्यतीत करने पड़ेंगे। मेरा भाष्य वेदों को सुगृतर समझने के लिये केवल एक [क्षुद्र] पुरस्कार है सब प्रौढ़ विद्वान जानते हैं कि वेदों में मन्त्रों के मन्त्र हैं जिनसे कोई अर्थ निकलता प्रतीत नहीं होता। उनमें से ऐसे शब्द है जिनके अर्थों की केवल हम कल्पना कर लेते हैं, वस्तुतः इस कार्य्य के लिये शताब्दियों के ऐसे कठोर परिश्रम और निरन्तर सावधानी की आवश्यकता है जिसमें आदर-सूचक मनुष्यता की ध्वनि और सम्पूर्ण कठिनाइयों को उत्तीर्ण करने की दृढ़ता मिश्रित हो प्रथम इसके कि कोई पूर्ण और सम्यक् बुद्धि में आ सकने वाला वेदों का भाष्य समुपस्थित हो सके और ये प्राचीन धर्मग्रन्थ अपने भीतर से निहित कोषों, सुन्दरता और सच्चाइयों का एक अंश बाहर निकाल सकें।"

पुनः वही महामना अपने (Biographical Essays) "जीवन चरित्र निबन्धों" में [पृष्ठ १७ पर] लिखते हैं कि "यदि कोई इतिहासिक वा भौगोलिक शब्द वेदों में मिलते हैं तो उन सब का समाधान कर दिया जाता है। क्योंकि यदि उनको अभ्यस्त वा प्रचलित रूढ़ि अर्थ में लिया जावे तो उससे वेदों में ऐतिहासिक और दूषित रंग की झलक उपस्थित होती है। स्वामी दयानन्द की दृष्टि में वेदों में पूर्ण सचाई का ही समावेश नहीं है किन्तु वह एक पग आगे जाते हैं और कहते हैं किन्तु अन्यों को वैसा ही मनवाने में कृत कार्य्य होते हैं कि प्रत्येक जानने योग्य विद्या यहाँ तक कि वर्त्तमान पदार्थ विद्या के नवीन से नवीन आविष्कार यथा स्टीम ऐन्जिन [वाष्प

गति यन्त्र], विद्युत, तडित यन्त्र वेतार का तार-यन्त्र [मारकोनी ग्राम] वेदों के ऋषियों को कम से कम बीज रूप में मालूम थे और उनका वेदों में संकेत है।"

प्रोफ़ेसर थीव् साहब (Thelve of Laydon University) लेडिन् यूनीवर्सिटी लिखते हैं —:

"यूरोपियन विद्वान् वैदिक साहित्य की केवल ऊपरी सतह पर हैं और इस हेतु से कि उनको उसमें अपने पहले से कल्पित मानव व्याख्यान और समाज शास्त्र के विचार नहीं मिलते उन्हें निष्प्रयोजन कहकर उसका निरदार नहीं करना चाहिये।"

प्रोफेसर ग्रिफथ [Griffith] अपने वेद भाष्य में लिखते हैं :—

"वेदों की व्याख्या में यदि पूर्णकृतकृत्यता प्राप्त हो सकती है तो तब ही हो सकती है जब कि तदर्थ विद्वानों की अनेक पीढ़ियों का परिश्रम व्यय हो जावे।"

महामना जैकालियट [Jacoliat] साहब अपने पुस्तक [The Bible in India] "भारतवर्ष में बाइबिल" नामी में पहले तो यह प्रकट करते हैं कि वह वेदों के स्वाध्याय तक किस प्रकार पहुँचे। वह कहते हैं कि मैंने संस्कृत के प्रत्येक प्रकार के साहित्य को पढ़ा और अन्वेषण किया वह धर्म शास्त्र हों चाहे दर्शन शास्त्र चाहे अन्य हों मुझको प्रत्येक स्थान से यही ध्वनि उठती मिली कि जीवन का उद्देश्य आत्म तत्व को जानने—उसके अन्वेषण करने, न्यायपथ पर चलने और परोपकार करने में है और यह कि इन सब का आदि स्रोत वेद है जो कि सर्व सिद्धान्तों का मूल सिद्धान्त है और जो सबसे पूर्व हमारे पूर्वजों की अन्तरात्मा में प्रकट हुआ है और उस समय इण्डिया [भारतवर्ष] अपने जागृत भूत काल की मूल प्रकृति में मेरे हृदय पर आविर्भूत हुआ। मैंने प्रत्यक्ष किया कि किस प्रकार इस प्राचीन भारतवर्ष ने अपना कानून, धर्म, और कर्म मिश्र, पारस यूनान और रोम को दिया। पुनः मैंने उनके अवनत समय को भी देखा कि किस प्रकार ब्राह्मणों ने अपने [illegible] पवित्र प्रभाव को राजा महाराजाओं के अन्याय युक्त प्रभुत्व के साथ संयुक्त कर दिया और भारतवर्ष को पतित धार्मिक आधिपत्य से आच्छादित कर उक्त [illegible] समय की स्वतन्त्रता को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। परन्तु इस भारतवर्ष की [illegible] अब तक संसार के साहित्य पर [illegible] हुई है और इतनी दृढ़ है कि [illegible] वैबिल, निनोवा, यूनान और रोम [illegible] पृथ्वी के भीतर दफ़न कर दिया [illegible] उक्त मुहर अब तक नहीं मिट पाई [illegible]
पुनः वह लिखते हैं:—

"वेदों को प्राचीनतम प्राचीनता [illegible]

से हम रुक नहीं सकते हैं......प्राचीन भारतवर्ष की थाह लेने के लिये हमारा सम्पूर्ण ज्ञान जो हमने यूरोप में उपलब्ध किया है कुछ काम नहीं देता। हमको उसका अध्ययन उसी प्रकार करना पड़ता है जैसे कि एक बच्चा पढ़ना सीखना आरम्भ करता है और मंदगति के साथ अध्ययन के लिये फिर भी कामयावी की कृषि बहुत दूर स्थित दृष्टि पड़ती है।"

श्री अरविंद घोष अपने मासिक पत्र (The Arya) "आर्य्य नामी" में लिखते हैं:—

"प्राचीन सभ्यता निस्सन्देह विज्ञान की गूढ़ बातों के रहस्य से युक्त थी जिनमें से केवल कुछ को आजकल के विज्ञान [Science] ने जान पाया और उनमें वृद्धि कर पाई हैं परन्तु अन्य बातों को अब तक ज्ञात नहीं कर पाया है। स्वामी दयानन्द के इस विचार में कि वेद में पदार्थ विद्या और धर्म दोनों की सच्चाइयाँ उपस्थित हैं कोई अनहोनी बात नहीं है। मैं अपने विश्वास को इसमें और मिलाता हूँ और कहता हूं कि वेदों में साइन्स [विज्ञान] की अन्य सच्चाइयां हैं जिनको आजकल के संसार ने अब तक नहीं खोज पाया है।

"वेदों के भाष्य के विषय में मेरा विश्वास है कि उनका अन्तिम पूर्ण भाष्य चाहे कुछ निर्धारित हो परन्तु दयानन्द की भविष्य में वह प्रतिष्ठा होगी जो एक सच्चे सुरागों के आविष्कर्त्ता की होनी चाहिये। दीर्घ कालीन अविद्या और लम्बे युगों के अज्ञान के अन्धकार और दुर्व्यवस्था में वह दयानन्द ही की आंख और उनका साक्षात् दर्शन था जो उपस्थित रुकावटों के भीतर प्रवेश करती हुई सचाई तक पहुंची और उस स्थल पर रुकी जो सच्चाई का सार था। महर्षि ने उन दर्वाज़ों की कुंजी को प्राप्त किया जिनको समय ने बन्द कर दिया था और उनके भीतर निहित कोष की मुहरों को तोड़ दिया। सारांश यह है कि उन्होंने ठीक प्रकार से उन वेदों पर आश्रय लिया जो कि युगों की भारतीय चट्टान हैं और उस पर अपनी विवेक पूर्ण दृष्टि से युवकों की शिक्षा [ब्रह्मचर्य्य] और राष्ट्रीयता और सम्पूर्ण सामुदायिक दीर्घवयस्क जीवन का भवन निर्माण किया। राममोहन राय उपनिषदों तक ही रह गये परन्तु दयानन्द उनसे आगे निकला और अनुभव किया कि हमारा सच्चा मूल स्रोत वेद है। उनके भीतर राष्ट्रीयता स्वाभाविक प्रेरणा थी परन्तु उसने उसको उस आन्तरिक प्रेरणा के स्थान में अपनी विद्या से द्योतित किया और उनके ग्रन्थ लोक प्रचलित रूढ़ियों से विरुद्ध जाते हैं और फलतः राष्ट्रीयता के रंग में पगे हैं। यदि दयानन्द का मुख्य विवाद अंगीकृत कर लिया जावे और उस

कैरेक्टर [द्योतक चिह्न] को स्वीकार कर लिया जावे [अभिप्राय शब्दों के यौगिक अर्थ लेने की परिपाटी से है] जो वैदिक ऋषियों ने वैदिक साहित्य को दिया है तो हमको बलात् मानने पड़ेगा कि जहां कहीं वेदों के मन्त्र अग्नि वा अन्य देवता का वर्णन करते हैं वहां उस नाम के पीछे ऋषियों की मानसिक दृष्टि में एक सर्वोपरि देव वा उसकी शक्ति की अपनी साथी गुण सहित विद्यमानता है। वेदों का यह [यौगिक] कैरेक्टर यदि दयानन्द के दिये रूप में स्थिर हो जाता है तो सायणाचार्य्य का किस्सा कहानी और बहु देववाद केवल रीति रिवाज पर आश्रित वेद भाष्य का भवन स्वयं गिर जाता है और उसके साथ २ पाश्चात्य विद्वानों का केवल प्रकृति और प्राकृतिक तत्व पूजा-वाद रूपी वेदों का भाष्य भी अपने आप च्युत हो जाता है। और उसके स्थान में हमको एक ऐसा वस्तुतः पवित्र धार्मिक पुस्तक प्राप्त होता है जो संसार के पवित्र पुस्तकों में से एक है और जिसमें उच्च और स्वच्छ धर्म को लिये हुये ईश्वरीय ज्ञान विद्यमान है।

[Mrs Wheeler Weleox] मिसेज व्हीलर वेली आक्स एक अमरीकन देवी कहती है :—

"विद्युत, रैडीयम् इलेक्ट्रोन और हवाई जहाज सबके सब उन ऋषियों को ज्ञात प्रतीत होते हैं जिनको कि वे प्राप्त हुए थे। वेदों के सुन्दर अलङ्कारिक नीति के उपदेशों को उन बलशाली ब्राह्मणों ने अन्यथा प्रसिद्ध कर दिया है जो कि वेदों की व्याख्या और अध्यापन का दावा करते हैं। परन्तु जो मन्दिरों में उन मूर्त्तियों और जानवरों को पूजनीय बतला कर प्रस्तुत करते हैं, जिनके प्रतिकूल वेद स्पष्ट अपनी आवाज उठाते हैं।

(W. D. Brown) ब्रौन साहब अपने ग्रन्थ (Superiority of Vedic Religion) "वैदिक धर्म की उच्चता" नामक में कहते हैः—

"हिन्दू लिटरेचर [वैदिक साहित्य] केवल एक ईश्वर को मानता है। वह पूर्ण वैज्ञानिक धर्म है जहां कि धर्म और साइन्स एक दूसरे से प्रेम का हाथ मिला रहे हैं। यहां का धर्म साइन्स और फ़िलास्फ़ी दोनों पर आश्रित है।"

शैगेल (Schlegal) जर्मन दार्शनिक कहता है कि "ऊंचे से ऊंचा यूरप का दर्शन शास्त्र पूर्वीय दर्शन की तुलना में एक मन्द चिनगारी के सदृश है जो आकाश गंगा की पूर्ण प्रकाश धारा में चमकती हो।"

परन्तु सब जानते हैं कि सब दर्शन अपने सिद्धान्तों की पुष्टि में वेदों की साक्षी देते हैं।

स्वर्गीय लार्ड मार्ले (Secretary of State for India) कहते हैं:—

"अशान्ति में आत्मिक गहराई है जिनको आप समझने का यत्न नहीं करते। वेदों में जो कुछ हमको मिलता है उसका अस्तित्व हमको अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता।"

(Morris Philipsay) मोरिस् फिलिप्से अपने पुस्तक (Teaching of the Vedas) "वेदों के उपदेश" में लिखते हैं:—

"अतएव यह निष्कर्ष अनिवार्य्य है कि भारतवर्ष में धार्मिक विचारों की गति नीचे की ओर हुई है न कि ऊपर की ओर अर्थात् विचारों की अवनति हुई है न विकास और इसलिये हम इस प्रतिफल के निकालने में नीतियुक्त हैं कि वैदिक आर्य्यों के उच्च और पवित्र भाव ईश्वरीय ज्ञान के फल थे।"

(Professor Shroeder) प्रोफ़ैसर स्रोदर कील् यूनीवर्सिटी के अपने पुस्तक (The Prehistoric Antiquity os the Aryans) "इतिहास से पूर्व आर्य्यों की प्राचीनता" नामी पुस्तक में लिखते हैं.— "वेद सब विद्याओं की आदि और अन्त है।"

अतएव उपरोक्त उद्धरणों से स्पष्ट है महर्षि दयानन्द के वेद भाष्य ने उच्च श्रेणी के विद्वानों में वेदार्थ के विषय में एक प्रकार की क्रान्ति उत्पन्न कर दी है और वह अब वेदों को बड़ी मान की दृष्टि से देखने लगे हैं। हां प्रायः पुराने लकीर के फ़क़ीर पण्डितवर्ग अभी तक श्री सायणादि भाष्य के गीत गाये चले जाते हैं—जिनका कारण यह है कि उसको न तो विविध विद्याओं का ही अध्ययन कराया जाता है और न आवश्यक साधारण ज्ञान और अन्वेषण शक्ति का ही विकास उनमें उत्पन्न किया जाता है और जिस प्रणाली से वह संस्कृत अध्ययन करने के अभ्यासी है यह एक प्रकार से उनको वैदिक साहित्य के मर्म के समझने के अयोग्य बना देती है। तथा पाण्डित्य अभिमान और स्वार्थ [जो जीवित रूप में अनेक प्रकार का है] उनको निरंतर सत्य की ओर आने से वञ्चित करता रहता है। परन्तु मेरा अनुमान है कि एक समय अवश्य आवेगा और शीघ्र आवेगा जब कि संस्कृत के प्रख्यात् गढ़ काशी में ही ऐसे पण्डित प्रचुर संख्या में निकलें जो महर्षि कृत वैदिक प्रणाली का आश्रय लें। श्री सायणाचार्य्यादि के प्रतिकूल अपनी आवाज़ बुलन्द करें और वेदों के निहित कोषों के आविष्कृत करने में बद्ध परिकर हों। नहीं ज्ञात कि हमारी इस आशा-पूर्त्ति में भीतर भीतर कहां तक मङ्गल कामनाएं कार्य्य कर रही हैं परन्तु इतिहास बतलाता है कि सम्भव नहीं है कि महर्षि दयानन्द की उत्पन्न की हुई बृहत् लहर के प्रभाव से अन्ततोगत्वा यह

पण्डित मण्डली भी न चेते अर्थात् अवश्य चेतेगी और इस महान् कार्य्य का सम्पादन करना अपना कर्त्तव्य समझेगी।

आगे मैं लेख के आरम्भिक भाग में दी हुई उलझनों पर क्रमशः प्रकाश डालने का प्रयत्न करूंगा।

❁ ❁ ❁ ❁

वेदों की संसार के लिये आवश्यकता

[श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

(गताङ्क से आगे)



इस समय भी यूरोप में वेदाध्ययन के विषय में कुछ न कुछ परिश्रम होता ही रहता है। यूरोप की अन्वेषण शक्ति बहुत बढ़ी चढ़ी है। उनके पास खाने को है, उनके पास शक्ति है उनके पास यश है इन सबसे अधिक उनकी जनता उनका धन धान्य से सम्मान करती है। इसलिये यूरोप के विद्वान विदेशीय भाषाओं विदेशीय धर्म और विदेशीय प्रथाओं के अध्ययन में निरन्तर श्रम करते रहते हैं भारतीय धर्मों के अध्ययन करने वाले भी कुछ कम नहीं हैं। एक जैन धर्म का विशेषज्ञ है तो दूसरा बौद्ध धर्म का। तीसरा किसी अन्य का। फिर इसके अतिरिक्त एक एक शाखा के बहुत से विशेषज्ञ हैं। यह एक एक पुस्तक की कई कई प्रतियां इकट्ठी करते उनका मिलान करते उनके पदों और अक्षरों को गिनते और अन्त में इतनी सामग्री इकट्ठी कर देते हैं कि उस धर्म के मानने वाले भी चकित हो जाते हैं और उनको अपना धर्म गुरू मान बैठते हैं। वेदों की बड़ाई के विषय में आजकल भारतीय प्लेटफार्मों से जो व्याख्यान दिये जाते हैं या भारतीय पुस्तकों और पत्रों में जो लेख लिखे जाते हैं उनमें अधिकतर यूरोपीय गुरुओं की ही महिमा गाई जाती है। जिस समय एक जर्मन या फ्रेंच वेदज्ञ का नाम लेकर व्याख्यान-दाता गर्जता है तो जनता में एक विशेष उत्साह आ जाता है। "ओहो! जब जर्मन प्रोफ़ेसर ने वेद के विषय में एक दो मंगल सूचक शब्द कह दिये तो वेद अवश्य ही आदरणीय होंगे।" यह दृष्टि-कोण एक बात को अवगत करता है अर्थात् यूरोपियन लोगों ने हमारी पुस्तकों

के अध्ययन और उनकी थोड़ी बहुत प्रशंसा से हमारे मस्तिष्कों पर अधिकार जमा लिया। और हम अब सर्वथा उनकी उंगली पर नाचते हैं। यह सबसे अधिक पुरस्कार था जो यूरोप के लोगों को वेदाध्ययन के लिये मिल सकता था परंतु इसका हमारे ऊपर क्या प्रभाव पड़ा ? हममें वेदाध्ययन के लिये उत्साह नहीं बढ़ा। हम वेदों की प्रशंसा करने के स्थान में वेदों की प्रशंसा करने वाले के प्रशंसक बन गये। जो लोग बाह्य विद्वानों के वेद विषयक वचन सुन जाते हैं वह घर को केवल इतना ही ले जाते हैं कि वेद बड़ी अच्छी पुस्तक हैं। परन्तु वह घर जाकर उनको पढ़ते नहीं। प्रशंसा होगई। हमारा धर्म उच्च सिद्ध होगया। हम बड़े कहलाये गये बस। और क्या चाहिये।

बड़े बड़े पण्डितों को देखिये। क्या वह वेद पढ़ते हैं ? उनके व्याख्यान सुनिये क्या वह वेद वाक्य सुनाते हैं ? कुछ गीता कुछ पुराण कुछ महाभारत। बस। उनके मस्तिष्क में ही नहीं आता कि वेदाध्ययन की संसार को आवश्यकता है। एक मुसल्मान का यह विश्वास है कि संसार के लिये कुरान की सब से अधिक आवश्यकता है। इस लिये वह अपने बच्चों को सब से पहले कुरान पढ़ाता है। भारतीय मुसल्मानों ने इसके लिये सुगम से सुगम मार्ग निकाले हैं। बाजार में एक "क़ायदा" नामी छोटी सी पुस्तिका बिकती है जिसमें उर्दू की वर्णमाला रहती हैं कि एक बच्चा इस क़ायदे को पढ़ कर ही पंद्रह दिन में कुरान आरम्भ कर सकता है। तात्पर्य यह है कि एक मुसलमान बच्चे के लिये क़ुरान का पढ़ना चिट्ठी पढ़ने की अपेक्षा अधिक आवश्यक है। ईसाइयों में भी अपनी धर्म पुस्तक पहले पढ़ाई जाती है। ईसाई मन्दिरों में बाइबिल के वचन सुनाये जाते हैं। बहुधा देवियां अपने बच्चों को लेकर वहां जाती हैं और उन वचनों को बच्चों को याद कराती हैं। क्या हिन्दुओं में इस प्रकार की कोई प्रथा है ? मुझे इस विषय में एक कहानी याद है। कई वर्ष हुये वेदों की कुछ प्रशंसा पत्रों में की गई। एक भारतीय कालिज के प्रोफ़ेसर को यह सूझा कि वेदों का गुटका अपने प्रेस में निकालें। वह मेरे पास दौड़ आये। और लगे हिसाब करने। उन विचारे को न मालूम था कि वेद किस प्रकार के और कितने बड़े हैं। उन्होंने वेदों का केवल नाम पढ़ा था। जब मैंने चारों वेद उनके सामने रक्खे तो उनके छक्के छूट गये। उस दिन से मैंने उन्हें कभी वेदों के विषय में बातचीत करते नहीं सुना। यह वह प्रोफ़ेसर हैं जिनमें भारतीयता का अंश बहुत अधिक है और स्वदेशी के बड़े प्रेमी हैं। अन्य क्या होंगे इसका कहना ही कठिन है।

(क्रमशः)

वेदों की झांकी

प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति तं चिकित्वान् प्रतिगृह्या नि धत्ते।
तेन प्रजां वर्धयमान आयू रायस्पोषेण सचते सुवीरः॥

ऋग्वेद मण्डल १।१२५।१

(चिकित्वान्) बुद्धिमान् पुरुष (प्रातः) सवेरे (इत्वा) उठकर (प्रातः) सबसे पहले (रत्नं) सम्पति को (दधाति) धारण करता है। और (तं) उसको (प्रति गृह्य) लेकर (निधत्ते) सुरक्षित रखता है। (तेन) उस (रायस्पोषेण) धन वृद्धि के द्वारा (सुवीरः) वह वीर पुरुष (प्रजां) सन्तान को बढ़ाता हुआ (आयुः) आयु को (सचते) बढ़ाता है।

इस वेद मंत्र में प्रातः उठनेके लाभ दिखाये गये हैं। मनुष्य दिन भर काम करते २ थक जाता है तो उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। इसी शक्ति की पुनः-प्राप्ति के लिये विश्राम की आवश्यकता होती है। परिश्रम और विश्राम एक दूसरे के विरोधी नहीं किन्तु पूरक हैं। यद्यपि संसार की प्रत्येक वस्तु काम के लिये बनाई गई है तथापि नि न्तर काम करने से उसमें बहुत कुछ क्षति हो जाती है। क्षति विश्राम से पूरी होती है। परंतु विश्राम की एक सीमा अवश्य होनी चाहिये। ईश्वर ने दिन काम करने के लिये बनाया है और रात विश्राम के लिये। परन्तु कुछ लोग रातों काम करते और दिनों सोते हैं। 'संस्कृत में ऐसी वृत्ति को निशाचरी वृत्ति कहा है। यह उलटी चाल है या वाममार्ग है। ठीक मार्ग यह कि दिन में इतना कार्य्य करना चाहिये कि शरीर थक जाय और रात में इतना विश्राम करना चाहिये कि दिन में जो क्षति हुई है वह पूर्ण हो जाय।

परिश्रम और विश्राम के लिये मनमाना समय नहीं होना चाहिये। हमारे शरीर का सम्बन्ध प्रकृति की अन्य वस्तुओं से हैं। दिन में सौर्य

प्रधान होती है। और रात में चान्द्र शक्ति, यह दोनों शक्तियां वेदों में कहीं २ 'मित्र' और 'वरुण' के नाम से भी वर्णन की गई हैं। सौर्य्य शक्ति का परिश्रम से और चान्द्र शक्ति का विश्राम से सम्बन्ध है। सूर्य्य की किरणें शरीर में उत्साह और गर्मी उत्पन्न करती हैं और चांद की किरणें शान्ति तथा शिथिलता। गर्मी से चीजें फैलती हैं, सर्दी से सकुड़ती हैं। गर्मी उबाल पैदा करती है और शीतलता वस्तु को जमाती है। दिन भर काम करते करते मनुष्य के शरीर के परमाणु उबलते रहे। अब रात में शान्त होकर शक्ति को सुरक्षित करने की आवश्यकता पड़ी।

जो रात को विश्राम करते रहे उनमें इतनी शक्ति आ गई कि उसका पहला प्रकाश उनको काम आरम्भ करने के लिये आह्वान करता है। उषा में काम आरम्भ करने के प्राकृतिक साधन उपस्थित हैं। काम करने के लिये जो कुछ तैय्यरियां आवश्यक हैं वह सब उषा काल में पाई जाती हैं। उस समय शीत और ताप का मेल होता है। सौर्य्य और चान्द्र शक्तियों की सन्धि का यह समुचित अवसर है। इसलिये प्रातःकाल के उठने पर वेदों ने बड़ा बल दिया है।

वेद ने प्रातःकाल उठने के चार लाभ बताये हैं :—

"प्रातः इत्वा" अर्थात् सवेरे उठने वाले को सब से पहला फल तो यह मिलता है कि "प्रातः रत्नं दधाति" अर्थात् उसको वह सब सामग्री प्राप्त हो जाती है जो काम करने के लिये चाहिये। 'रत्न' के अन्तर्गत सभी उपयोगी और आवश्यक वस्तुयें आ जाती है।

दूसरा फल यह है कि "प्रति गृह्य आ नि धत्ते" अर्थात् सवेरे उठने वाला पुरुष आवश्यक सामग्री को न केवल प्राप्त ही कर लेता है किन्तु उसको सुरक्षित रखता है। किसी वस्तु को प्राप्त करना एक बात है और उसको सुरक्षित रखना दूसरी बात है। कभी कभी वस्तुयें अनायास प्राप्त हो जाती हैं और तुरन्त ही छिन जाती हैं। इसका कारण यह है कि उनमें स्थायीपन का अभाव होता है। इसके लिये सबसे अच्छा उदाहरण यह है। दो प्रकार का उत्साह होता है। एक तो मादक वस्तुओं के पीने से उत्पन्न होता है, दूसरा उचित स्वास्थ्य की वृद्धि से। पहला उत्साह क्षणिक होता और शीघ्र ही निरुत्साह और दौर्बल्य में परिणित हो जाता है। दूसरा उत्साह स्थायी होता है चाहे उसमें तीव्र गति न हो। लाभदायक यही दूसरे प्रकार का उत्साह है।

वेद मंत्र कहता है कि प्रातःकाल उठने वाले पुरुष की शक्ति स्थायी होती है। क्षणिक नहीं होती। उस शक्ति में

दूसरी शक्ति उत्पन्न करने का बीज होता है। वह शक्ति उत्पन्न होते ही क्षीण नहीं हो जाती।

प्रातःकाल उठने से तीसरा लाभ यह बताया है कि आयु बढ़ती है। आयु की वृद्धि के लिये दो बातें चाहियें। एक आन्तरिक शक्ति और दूसरी बाह्य सामग्री। प्रातःकाल उठने से दोनों बातें प्राप्त होती हैं। एक तो आन्तरिक प्रफुल्लता के कारण शरीर में पुष्टि ग्रहण करने की सम्भावना अधिक आ जाती है। दूसरे काम के लिये समय अधिक मिलने से आयु-वर्धक पदार्थ (अन्न, फल, वस्त्र आदि,) उपार्जन करने में सुगमता होती है। जो मनुष्य अधिक समय तक काम करेगा उसे धन अधिक मिलेगा। धन के अधिक मिलने से शरीर की पुष्टि अधिक होगी। शरीर की पुष्टि अधिक होने से आयु भी बढ़ेगी।

चौथी बात "प्रजां वर्धयमान" अर्थात् सन्तान-वृद्धि सम्बन्धी है। माता पिता के स्वास्थ्य पर ही सन्तान के स्वा... का भार है। उन्हीं के शरीरों से सन्... का शरीर बनता है, उन्हीं के संस्कारों ... सन्तान के संस्कार बनते हैं। उन्हीं ... स्वभाव सन्तान के स्वभाव पर प्र... डालता है। जो स्त्री पुरुष नियमित ... से प्रातःकाल उठते हैं उनकी सन्तान ... भी वह शुभ गुण आते हैं जो माँ बाप ... भर थियेटर देखते और दोपहर तक ... हैं उनकी सन्तान भी वैसी ही हो जाती है। ... लोग समझते हैं कि उनकी बुरी आदतें ... उन्हीं तक रहती हैं। यह बात नहीं है। ... हमारी बुरी आदतें हमारी सन्तान ... अनायास ही चली जाती हैं और ... हानि हमने अपनी उन आदतों के ... उठाई, हमारी सन्तान भी उसी हानि ... उठाने के लिये मजबूर हो जाती है।

इसलिये वेद कहता है कि प्रातःकाल ... उठने की आदत डालनी चाहिये। इसमें ... अनेक लाभ हैं।



जीवन-धारा

[१]



धूप आंगन की दीवाल पर आ गई थी। सूर्य्यदेव रश्मियों का जाल पृथ्वी पर फैला रहे थे। एक वृद्धा स्त्री आंगन में पीढ़े पर बैठी थी, शीशा उसके हाथ में था। ललाट पर रक्तवर्ण का टीका और मांग की ललाई शीशे में दृष्टिगोचर होती। वह थोड़ी देर तक देखती रही, फिर मुस्कराहट उसके मुख पर आई। शीशा उसने रख दिया।

फिर हाथ से शीशा उठाया और देखने लगी। पर इस वार हंसी उसके मुख पर नहीं आई। झुर्रियां माथे पर पड़ रही थीं। सिर उठा कर देखा तो धूप आधे आंगन तक आ गई थी। एक दम झल्ला कर उठी। कड़क कर बोली "ओरी मझली बहू! देख तो कितनी धूप निकल आई है और अभी चूल्हा तक नहीं जला।"

सहमती हुई एक स्त्री आई—बोली —"चौका बरतन हो गया है, अब चूल्हा जलाने जाती हूं—"

पूरी बातें न कह पाई थी कि एक दूसरी वृद्धा आ गई। आंगन में आते ही बोली "अरे मां जी कहाँ है।"

"अरे! यहां बैठी हूं। आज बहुत दिन बाद आई भगतिन मैं कई वार सोच चुकी थी कि बुलाऊं पर हत्यारी नाउन आई नहीं। अभी कोई काम पड़े तो दस बार दौड़ी आवे, पर विना काम आने का नाम भी नहीं लेतीं। कहो अच्छी तो रही।"

यह वृद्धा भगतिन गांव भर की संवाद-दाता थी। घर में कुछ काम न था, पतिदेव स्वर्ग लोक की यात्रा कर चुके थे। अकेले पेट की क्या चिन्ता—जहां चाहा पड़ रही। जिसने दो रोटी दे दी उसके घर पड़ी रही। नमक मिर्च मिलाने में बड़ी तेज़ थी। सभी वृद्धाओं में यह गुण होते हैं पर इस स्त्री को ईश्वर ने विशेष रूप से इस गुण का भंडार बना दिया था। इधर की बात उधर कहती, उधर की इधर। जिसके सामने बैठती उसकी सी बातें करती। सिर हिला हिला कर उसकी तारीफ़ करती, दुआ मनाती, बाल-बच्चों की दीर्घायु के लिये सिर झुकाती।

बातें करने में बड़ी चतुर थी। उसके दूत बड़ी २ दूर से संदेशे लाया करते और उसका काम था कि गांव भर में फ़ैला दे। पास के गांव का हाल सुनाती—कहती ठाकुर साहब की स्त्री भाग गई है। कैसी कुल-कंलकिनी है। कभी कहती—तीर्थराज महाराज ने गाय कसाई के हाथ बेंच दी है। चुनुआ धोवी ने एक औरत रखली है। कैसा अधर्मी है। गांव और आस पास के गांवों का हाल सुनाती। बात करने में बड़ी प्रवीण थी। ऐसा अच्छा वर्णन करती कि घंटों सुनते सुनते जी न उकताता था।

गांव की स्त्रियां शहर की बड़ी परवाह रखती हैं। इसलिये शहर की बातें उस वृद्धा से खोद २ कर पूछी जाती। जब ख़ूब ख़ुशामद करा लेती तो बड़े मिजाज़ से कहती—बड़ा शहर बड़ी बात। सुधुआ नाइ कल शहर से लौटकर आया था। उसके जजमान के यहां विवाह था। "अरे राम" क्या कहूं ऐसी बरात आई कि शहर के लोग भी दांतों के नीचे अंगुली दबाते। ऐसी बरात तो ५० बरस में नहीं आई। दस हाथी, बीस ऊंट, और पचास घोड़े, टमटम और फिटिन। फुलवारी ऐसी बनी थी कि लाखों रुपयों की होगी। रुपया पानी की तरह बहाया। अरे भूल गई दस मोटर भी थी, दस! सुधुआ भी मालामाल होकर आया है। कहता था कि ऐसा विवाह इस जन्म में नहीं देखा।

अच्छा माँ जी अब छुट्टी दे तो, रामलाल की स्त्री ने बुलाया है। चुप उनका मन वहला आऊं, विचारी बहुत मानती हैं। (कुछ देर बाद) मां जी; मुझे तो सब लोग खूब मानते है। अगर तुम न पूछो तो मेरी रोज़ी कैसे चले।

[२]

पं० वेनीमाधो की अपने ग्राम में बड़ी श्रद्धा थी। आधे गांव से ज्यादा उनका जजमान था। जो उनके जजमान भी न थे वे भी कभी २ उनको सीधे दे जाया करते। पंडित जी कथा कहने में बड़े चतुर थे। जब कोई बुलाता तो जाते और ऐसे जोश में आकर कथा कहते कि लोग मुग्ध हो जाते। लोग कहते कि अगर दो-चार गांव में कोई पंडित है तो पं० वेनीमाधो। संस्कृत का ज्ञान उनको अधिक न था। वे उन पंडितों से घृणा भी करते जो बैठे २ व्याकरण रटा करते। बातचीत उनसे होती तो कहते "महाराज जी! इस घोखने से कहीं काम चल सकता है। जितना रटोगे उतनी ही बुद्धि भ्रष्ट होगी। देखो मैं कौन सा पढ़ा हूं, पर कितना कमाता हूं, लोग कितनी श्रद्धा करते हैं। तुम यह समझते हो कि संस्कृत ज्यादा

पढ़ लेंगे तो पंडित जी से अधिक तुम्हारा मान हो जावेगा। पर याद रखना, बात उलटी ही होगी।"

पं० जी बड़े बातून थे और चालाक भी। अन्य पंडितों को इसलिये भड़काया करते कि कहीं वे बढ़ न जांय। गांव में दो चार ब्राह्मण के लड़कों को संस्कृत पढ़ने की रुचि होगयी थी। ज़मींदार साहब के यहां से चार २ रुपये भी मिलते थे। यह बात पं० जी को बहुत बुरी लगती। वह चाहते थे कि किसी तरह यह वजीफ़ा बन्द हो जाय। ज़मींदार साहब के मुनीम को सुनाया करते कि रुपया क्यों बरबाद हो रहा है। यही अगर ठाकुर जी की पूजा में लगाया जावे तो न जाने क्या कल्याण हो जाय। पर ज़मींदार साहब से कहने की उनकी हिम्मत नहीं पड़ती थी। वे जानते थे कि ज़मींदार साहब ने अपनी .ख़ुशी से यह प्रबन्ध किया है। और अगर वे नाराज़ होगये तो पं० जी को गांव भर में कोई भी न पूछेगा। इसलिये पं० जी ने सोचा कि यदि इन लड़कों को ही बहकाया जाय तो सारा काम बन जाय। पर इसमें उनको अधिक सफलता नहीं मिली थी।

पं० जी ज़मींदार के पास जाते तो दरवाज़े से ही "महाराज की बढ़ती हो" चिल्लाते! ज़मींदार साहब ज़रा सिर हिला देते। पं० जी ज़मींदार साहब के पास बैठ कर बड़ी ख़ुशामद करते।

ज़मींदार—कहिये पंडित जी! कुशल तो है।

पं० जी—आपकी बढ़ती चाहिये।

ज़मींदार—आज कल धर्म कर्म का क्या हाल है?

पं० जी—धर्मावतार! क्या कहूं? कलियुग है। पुराणों में लिखा है कि कलियुग में धर्म कर्म न रहेगा। फिर भला कैसे लोग धर्म की ओर झुकें जिसको देखो वही चाहता है कि पूजा पाठ उठ जाय। दो चार पैसे दक्षिणा या दो चार सीधे जो ब्राह्मणों को देने पड़ते हैं वह न देने पड़े। पर इसमें हमारा क्या है? दें तो वाह वाह, न दें तो वाह वाह! कुछ हमें थोड़े ही मिला जाता है।

ज़मीदार—हां पंडित जी, यह तो बात ठीक है।

पं० जी—देंगे तो अपना बनेगा, पुण्य न करेंगे तो सुख कैसे मिलैगा। धर्मावतार, एक बात पर मुझे बड़ा संशय होता है। पुराण में लिखा है कि धर्म कर्म सब उठ जावेगा, पर न जाने आपसे थोड़े लोग क्यों धर्म के पीछे पड़े हैं। मैंने आपका सा देवता कोई नहीं देखा।

ज़मीदार—यह सब कहने की बाते हैं।

पं० जी—सो बात नहीं—महाराज मुझे बात बनाना नहीं आता। खरी खरी

बात सुना देता हूं। चाहें लोग प्रसन्न हों चाहें जो करें। पर महाराज! एक बात मुझे खटकती है। आज कल लोग बूढ़ों का कहना नहीं मानते। हमारे ज़माने में तो यह था कि बाप ने जो कह दिया वही होता, घर की बुढ़ियों ने डांट लगाई लोग शान्त हो जाते। पर आज कल की गति देखते हृदय में आग लग जाती है। मुझे इनसे बड़ा डर है। चार लड़के मिले और पं० जी का मज़ाक उड़ाने लगे। रास्ता काट कर निकल जाता हूं। धर्मावतार, आपके बाल श्वेत हो चुके हैं। कुछ काम कर जाइये जिससे नाम रहे। जीवन का क्या ठीक। दस बीस आपका नाम है, पर इसको कर देते तो क्या ही अच्छा होता। गांव का कच्चा मन्दिर गिर रहा है। में हाथ लगता—

ज़मीदार—हाँ, पं० जी मैं भी रहा हूँ। आप फिर मिलें।

पं० जी—बढ़ती हो, धर्मावतार

(क्रमशः)

श्रीयुत 'कर्ण' कवि महोदय लिखते हैं:—

"**वेदोदय** अच्छे समय निकला है। आर्य्य समाज को एक ऐसे उपयोगी पत्र की आवश्यकता भी थी। आर्य्य समाज को इसे आदर-पूर्वक आश्रय देना चाहिए! इसका सम्पादन आपके हाथों अच्छा हो रहा है। इसकी आप कलेवर वृद्धि शीघ्र करें, यह इतना क्षीणकाय न रहना चाहिए। आर्य्य समाज के लिए इसे 'सुधा' और "माधुरी" बना देना चाहिए। मैं तो इसकी हृदय से उन्नति चाहता हूँ। बस यही दो शब्द '**वेदोदय**' के सम्बन्ध में आपको लिखने थे।

मुक्ति की युक्ति

(गतांक से आगे)

[श्रीयुत कृष्णानन्द]



मुक्ति का सिद्धान्त ऐसा होना चाहिए जो मानव-प्रकृति के अनुकूल हो अर्थात् मानव-शक्तियों की उन्नति में बाधा न डाले। यह तभी हो सकता है जब मुक्ति के साधन और लोकव्यवहार में सामंजस्य (अविरोध) हो। परन्तु रामनाम जपने,* राधास्वामी नामोच्चारण अनहद नादश्रवण गंगास्नान, देवदर्शन, प्रतिमापूजन तीर्थाटन, ईसा या मुहम्मद पर ईमान लाने आदि से न मानव-शक्तियों का विकास होता है और न लोकव्यवहार भलीभाँति सिद्ध होता है। इसलिए यह सब साधन त्रुटियुक्त और दोषपूर्ण हैं। मुक्ति पाने का जो साधन वैदिक धर्म बतलाता है वही निर्दोष और त्रुटिरहित है। क्योंकि ज्ञान और कर्म की उन्नति में तथा लोक-व्यवहार में कोई विरोध नहीं है। यजुर्वेद का एक मन्त्र है जिस में ज्ञान तथा ज्ञान पूर्वक कर्म करने को मुक्ति का साधन बतलाया गया है—

विद्यांच विद्यांच यस्तद्वेदोभयंसह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते†

जो कोई विद्या (ज्ञान) और अविद्या (कर्म) को साथ साथ जानता है (जिसे

---

*महात्मा तुलसीदास ने जो लिखा है—

उलटा नाम जपत जग जाना।
बाल्मीकि भये ब्रह्म समाना॥

यह बिलकुल मिथ्या है। उलटा तो दर-किनार सीधा राम नाम जपने से भी कोई मनुष्य ब्रह्मज्ञानी नहीं हो सकता। विद्याभ्यास और सत्संग से ही कोई मनुष्य योगी या ब्रह्मज्ञानी हो सकता है। प्रमाण यह है कि किसी अपढ़ को एकान्त में इस प्रकार रक्खा जाय कि उसे भोजन मिलता रहे परन्तु वह किसी से भेंट न कर सके तथा वह दिन रात राम नाम जपता रहे तो ५० वर्ष बीत जाने पर भी वह मूर्ख ही रहेगा न योगी होगा न विद्वान्। असल बात यह है कि बाल्मीकि जी विद्याभ्यास व विद्वान-योगियों के संगसे ब्रह्मज्ञानी बन गये। राम नाम जपने मात्र से उन्हें ब्रह्मज्ञानी मान लेना नितान्त भ्रम में है।

† इसी मंत्र के आधार पर श्रीकृष्णने गीता में कहा है कि "ज्ञानयोग और कर्मयोग को मूर्ख लोग पृथक् समझते हैं पंडितवृन्द नहीं। दोनों को जो कोई एक देखता है वही ठीक देखता है।" दोनों को एक यात्री अविरुद्ध तभी समझ सकते हैं जब दोनों समान रूपसे आवश्यक समझे जायं।

सम्यग ज्ञान भी हो और कर्तव्य कर्मों को भी करे) वह कर्म से मृत्यु (दुःख रोग भय शोक आदि) को पार करके ज्ञान से अमृत (जीवन्मुक्ति या ब्रह्मानन्द) को प्राप्त होता है। ऋग्वेद में लिखा है—

यस्तन्नवेद किमृचा करिष्यति

ऋग्वेद पढ़कर भी जिसने परब्रह्म को नहीं जाना उसे ऋग्वेद पढ़ने से कोई लाभ नहीं। इस मंत्रांश में बतलाया गया है कि ब्रह्मज्ञान का होना बड़ा ज़रूरी है।

तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय। यजुर्वेद।

उस ईश्वर परमात्मा को जानकर ही मृत्यु (दुःख रोग भय शोक आदि) को पार कर सकता है। ब्रह्मज्ञान के अतिरिक्त मुक्ति का अन्य कोई उपाय नहीं है।

यहां इस बात को जानते रहना चाहिए कि जो ब्रह्मज्ञानी होगा वह अपने कर्त्तव्य कर्मों को अवश्य करेगा। यह कभी नहीं होसकता कि ब्रह्मज्ञान होने पर कर्त्तव्यों को न करे। यदि यह कहा जाय कि अनेक व्यक्ति ऐसे हैं जो ईश्वर की चर्चा खूब चलाते हैं पर सत्कर्म नहीं करते तो उत्तर यही है कि उन्हें ब्रह्मज्ञानी कहना भूल है। ब्रह्मज्ञान की पहचान है यथार्थ ज्ञान और कर्त्तव्यपालन। ब्रह्मज्ञानी का हृदय विशाल और अति उदार हो जाता है। उसके मन में संकीर्ण भावों का लेश भी नहीं रहता। उसका हृदय शुद्ध सात्विक प्रेम से परिपूर्ण रहता है। वह अपने कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ कर्मठ या कर्म-योगी बन जाता है। दारुण दुःख पड़ने पर भी उसका मन मलिन नहीं होता। वह ब्रह्मानन्द में मग्न रहता है। उसके हृदय में ज्ञान और आनन्द की लहरें सदा लहराती रहती हैं। उसमें ईश्वर-प्रेम और विश्व-प्रेम दोनों भाव भरा रहता है। विश्व-प्रेम का ही नाम समदर्शिता है। ब्रह्मज्ञानी या विश्व-प्रेमी ही समदर्शी कहला सकता है।

ईश्वर के स्वरूप और गुण कर्म को तोते की तरह रट लेना और बात है और परब्रह्म का साक्षात्कार या अनुभव करना और बात है "मधु मधुरं" कहने में और शुद्ध मधु खाने में बड़ा अन्तर है। इसी तरह वाचकज्ञानी और ब्रह्मज्ञानी में बड़ा अन्तर है। कर्त्तव्य भ्रष्ट मनुष्य यदि ब्रह्मज्ञान कथन करे (जैसे आजकल लाखों वेदान्ती हैं) तो वैदिक धर्म में उसे ब्रह्मज्ञानी (मुक्ति का अधिकारी) मानना तो दूर रहा, उसे धर्मात्मा भी नहीं माना जाता, क्योंकि वैदिक धर्म ब्रह्मज्ञान और कर्त्तव्यकर्म दोनों को समान रूप से आवश्यक मानता है। (उपासना को कर्म के अन्तर्गत समझिए) यजुर्वेद में स्पष्ट लिखा है—

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः॥

जो अविद्या (कर्म) की उपासना

करते हैं वे अन्धकार में प्रवेश करते हैं और उनसे भी अधिक अन्धकार में वे प्रविष्ट होते हैं जो केवल विद्या (ज्ञान) में ही रत रहते हैं कर्त्तव्यकर्म कुछ भी नहीं करते ।

तात्पर्य यह कि जो लोग कर्म में दिन रात लगे रहते हैं अपना ज्ञान कुछ नहीं बढ़ाते (जैसे जंगली मनुष्य खाने पीने, सोने, सन्तानोत्पत्ति के सिवा विद्या या ज्ञान कुछ नहीं बढ़ाते) वे अन्धकार (भय, भ्रम, संशय, दासता, रोग, दुःख, शोक,) में प्रवेश करते हैं। उनसे भी बढ़कर अधिक अन्धकार (चिन्ता, हानि, दुःख, यातना आदि) में वे डूबते हैं जो केवल ज्ञान (ज्ञान कथन) में ही रत रहते हैं, ज्ञानानुसार कर्म नहीं करते। इस मन्त्र से स्पष्ट है कि जो तोते की भांति* ज्ञान या ब्रह्मज्ञान कथन करेगा और कर्त्तव्य कुछ न करेगा उसकी बड़ी दुर्गति होगी।

हिन्दू समाज की अधोगति और दुर्दशा का क्या कारण है? यही कि हिन्दू समुदाय में ऐसे ही मनुष्यों की संख्या अधिक है जो ज्ञान खूब छाँटते हैं और कर्त्तव्य कर्म कुछ नहीं करते। मुझे खेद से लिखना पड़ता है कि काशी में अनेक विद्वान् इसी श्रेणी के हैं जो व्याकरण या किसी शास्त्र के पूर्ण ज्ञाता हैं परन्तु उन्हें देशदशा या संसार की गति का कुछ भी ज्ञान नहीं। हितोपदेश नामक नीतिग्रन्थ में लिखा है—

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा
यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्

शास्त्रों को पढ़ करके भी बहुत से लोग मूर्ख ही बने रहते हैं, जो कर्त्तव्य परायण हैं वही विद्वान् हैं। देखिये नीतिकार ने भी केवल शास्त्र-पठन मात्र को विद्वत्ता का लक्षण नहीं माना है।†

"विद्या धर्मेण शोभते" का भी यही तात्पर्य है कि ज्ञान की शोभा सत्कर्म से है। (विद्या=ज्ञान। धर्म=सत्कर्म) एक जगह और लिखा है—"ज्ञानं भारः क्रियां विना" बिना क्रिया के ज्ञान भार (व्यर्थ बोझ) है।

ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः

इसका यही मतलब है कि कर्म चाहे कितना ही कीजिये बिना यथार्थ ज्ञान के मुक्ति नहीं मिल सकती। जैसे पति-पत्नी में सब कार्य-व्यवहार करने की विशेष बुद्धि न हो तो केवल विवाह करने मात्र से उन्हें गार्हस्थ्य सुख नहीं मिल सकता। यद्यपि वे दोनों घर का काम

* महात्मा कबीर ने भी खूब कहा है—
करनी बिन कथनी कथे अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँसत फिरे सुनी सुनाई बात॥

† महात्मा कबीर ने भी कहा है—
कथनी मीठी खांड़ सी करनी विष की लोय।
जो कथनी से करनी करे तो विषसे अमृत होय॥

काज करेंगे पर उन्हें पूरा सुख नहीं मिल सकता। पूरा सुख उन्हीं दम्पति को मिलेगा जो सब कार्य बुद्धिमत्ता और दूरदर्शिता से करेंगे। (दूसरा उदाहरण) जैसे एक अल्पज्ञ और एक हकीम है। दोनों ही उत्तम पदार्थ खाते पीते और रोग होने पर दवा करते हैं। परन्तु साधारण बुद्धि का मनुष्य सैकड़ों बार रोग में फँसेगा और हकीम बार बार रोग में नहीं फँस सकता क्योंकि वह ज्ञानवान् है। सब काम करने पर भी जिस तरह बिना ठीक ज्ञान के रोग से छुटकारा नहीं इसी तरह सब कार्य-व्यवहार करने पर भी बिना यथार्थ ज्ञान के मोक्ष-सुख नहीं मिल सकता।

मन एव हि मनुष्याणां कारणंबन्धमोक्षयोः

इसमें मनःशक्ति प्रबल करने की प्रेरणा है, क्योंकि बिना मानसिक उन्नति के ज्ञान नहीं बढ़ सकता और बिना ज्ञान बढ़े सब कार्य ठीक तौर पर नहीं किया जा सकता इसलिए मानसिक दोष ही बन्धन का और मानसिक उन्नति (ज्ञान व मनः शक्ति) ही मुक्ति का मुख्य हेतु है। (उदाहरण) भारत की पराधीनता का कारण यही है कि हम भारतवासियों का मन कमजोर है। यदि हम भारतीयों में प्रतिशत ५० मनुष्य भी मनः शक्ति प्राप्त करलें तो दासता की जंजीर तोड़ दें।

वेदोक्त समस्त बातें ज्ञान, कर्म व ईश्वरोपासना के अन्तर्गत आ जाती हैं। उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान की अधिक और कर्म की कम चर्चा है। मनुस्मृति में ज्ञान कर्म ईश्वरोपासना तीनों विषय हैं। षड्दर्शनों को देखिये तो सांख्य, न्याय और वेदान्त ये तीन दर्शन ज्ञानमूलक हैं और योग, वैशेषिक व मीमांसा ये तीन दर्शन कर्ममूलक हैं। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका और सत्यार्थ प्रकाश में ज्ञान कर्त्तव्य कर्म और ईश्वरोपासना का विधान है। गीता भी ज्ञान, कर्म और भक्ति का आदेश करती है। गीता रहस्य के निर्माता महात्मा तिलक ने स्पष्ट लिखा है—"ज्ञान-भक्ति युक्त कर्म योग ही गीता का सार है।"

मुख्य ११ उपनिषदों में ब्रह्मज्ञान से ही मुक्ति की प्राप्ति लिखी है परन्तु उसमें कहीं भी ऐसा नहीं लिखा कि राम नाम जपने से, गंगा स्नान से या मूर्ति पूजन से मुक्ति मिलती है। दर्शनों में मुक्ति का साधन लिखा है लेकिन किसी भी दर्शन में ऐसा सूत्र नहीं है कि राम नाम जपने से या गंगा स्नान से अथवा प्रतिमापूजन या देवदर्शन से मुक्ति मिलती है। "विचारणीय बात यह है कि सब ऋषि मुनि मुक्ति का साधन लिखते समय

*ब्रह्मज्ञानी कर्त्तव्य कर्मों को त्याग नहीं सकता, जैसे एम॰ ए॰ पास मनुष्य जोड़ बाकी गुणा भाग करने के अवसर पर इन्हें नहीं सकता।

इस साधारण बात को भूल गये ? उन्होंने सुगम उपायों को न लिखकर कठिन साधनों को क्यों बतलाया ? क्या मनु, कपिल, गोतम, कणाद, पतंजलि व्यास आदि महर्षियों को इतना भी ज्ञान नहीं था कि राम नाम जपने से और गंगास्नान से मुक्ति मिलती है ?

क्या श्रीकृष्णजी भी गीता में यह कहना भूल गये कि हे अर्जुन ! गंगा स्नान करने से या मेरा नाम रटने से तुझे मुक्ति मिल जायगी ? साफ़ बात तो यह है कि जैन और पौराणिक मतों के आचार्यों ने ही अपने अपने मत का जाल फैलाने के लिए मुक्ति-प्राप्ति की सस्ती रीति निकाली है, जिसमें भोले भाले मनुष्य हमारे मत-जाल में फँसते जायँ। यह मत चलानेवाले आचार्यों का दोष है, ऋषि मुनियों का दोष नहीं। ऋषि मुनि तो सच्ची बात लिख गये कि "ज्ञानान्मुक्ति." (ज्ञान में ब्रह्मज्ञान शामिल है)।

महात्मा बुद्ध के उपदेशों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि वह ज्ञान और कर्म से निर्वाण पद की प्राप्ति मानते थे परन्तु उन्होंने ज्ञान में ब्रह्मज्ञान को और कर्म में ईश्वरोपासना को शामिल नहीं किया। उनके चलाये धर्म में इस बात की कमी थी। शायद इसी कमी को पूरा करने के लिए उनके अनुयायी उन्हीं को ईश्वर मानकर उनकी मूर्त्ति पूजने लगे। विशेष व्यक्ति पर विश्वास लाने से मुक्ति मिलने की बात तो सिवाय अन्धविश्वास फैलाने के और कुछ नहीं है। वैदिकधर्म में यह बड़ी ख़ूबी है कि किसी विशेष व्यक्ति पर विश्वास लाने को नहीं कहता और इस बात की घोषणा करता है कि "जो लोग जैसा कर्म करेंगे ईश्वर उन्हें वैसा ही फल देगा। यदि नास्तिक भी अच्छा कर्म करेगा तो उसे अच्छा फल मिलेगा, यदि आस्तिक भी कुकर्म करेगा तो उसे उसका कुफल चखना पड़ेगा।" ऐसी न्यायपूर्ण घोषणा किसी भी सेमिटिक (विश्वास प्रधान) मज़हब में नहीं है। सेमिटिक मज़हबों की घोषणा तो यही है कि "अमुक व्यक्ति पर ईमान लाओ नहीं तो नरक में जाओगे।" वैदिक धर्म की दृष्टि से अन्य मतों (सम्प्रदायों) में भी धर्मात्मा* हो सकते हैं परन्तु सेमिटिक मज़हबवाले अपने से भिन्न किसी मतवादी को, चाहे कितना ही सदाचारी और परोपकारी हो, धर्मात्मा नहीं मानते। ध्यान दीजिये, वैदिकधर्म कितना उदार है !

---

* मनु जी ने साफ़ लिखा है "दशकं धर्म लक्षणम्" अर्थात जिनमें ये दस गुण हों वे धर्मात्मा हैं—धैर्य, क्षमा, मनोनिग्रह, न्यायपरता, स्वच्छता, संयम, बुद्धिमत्ता, विद्या, सत्यता और प्रेम।

असल बात यह है कि मुक्ति इतनी सस्ती नहीं है कि विना शम, दम, तप व ज्ञान के झटपट मिल जाय। एक बात और है जो चीज़ बहुत सस्ती होती है उसका आदर भी नहीं होता। आप प्रत्यक्ष देखिये, अपने अपने मतानुसार प्रायः सभी मनुष्य स्वर्ग या मुक्ति के अधिकारी हैं परन्तु वे परस्पर एक दूसरे का विश्वास नहीं करते, एक दूसरे को ठगते या धोखा देते हैं, एक दूसरे को हानि पहुँचाते या अपमानित करते हैं। क्या ऐसा व्यवहार करना मुक्ति का उपहास करना नहीं है? एक अचरज और है अपने अपने मनसे सभी अपने को जीवन्मुक्त (मुक्ति या स्वर्ग का अधिकारी) मान बैठे हैं लेकिन दंभ, द्वेष, लोभ, मोह, रोग, चिन्ता, मूर्खता, दुःख, भय, शोक, आदि में ग्रस्त रहते हैं। जीवन्मुक्त के क्या यही लक्षण हैं? ऐसे दोष तो एक योग्य-धर्मात्मा में भी नहीं होते। कहाँ जीवन्मुक्त और कहाँ यह सब दुर्गुण! कहाँ हीरा और कहाँ काँच! पहले लिख चुका हूँ कि मनुष्य में ज्ञानार्जिनी और कर्मकारिणी दो ही प्रधान शक्तियाँ हैं और यह भी सिद्ध कर चुका हूँ कि प्रत्येक मतावलम्वी (चाहे वह सेमिटिक हो या नान-सेमिटिक) अपने मत के विद्वान् व कर्मनिष्ठ व्यक्ति की विशेष प्रतिष्ठा करता है। अतः ज्ञान व कर्म के महत्व को कोई भी मतवादी अस्वीकार नहीं कर सकता।

निष्कर्ष यह कि मुक्तिका अधिकारी वही है जिसका ज्ञान उच्च और विस्तृत हो, जिसका हृदय प्रेम और उदारता से परिपूर्ण हो, जो त्यागी, तपस्वी और ब्रह्मज्ञानी हो, परोपकार व देशसेवा में रत हो तथा ईश्वरोपासना अथवा योगाभ्यास करता हो, अस्तु, वैदिकधर्म के उद्धारक महर्षि दयानन्द अपने सत्यार्थ-प्रकाश में लिखते हैं—

मुक्ति के साधन—ईश्वरोपासना अर्थात् योगाभ्यास, धर्मानुष्ठान ब्रह्मचर्य से विद्याप्राप्ति, आप्त विद्वानों का संग, सत्यविद्या, सुविचार और पुरुषार्थ आदि हैं।

अब आप स्वयं विचार कीजिये कि वैदिकधर्म का यह सिद्धान्त कितना सत्य और अखंडनीय है तथा सब देशों में फैलने योग्य है।

सूचना

वेदोदय के नवीन ग्राहकों को विदित हो कि वेदोदय का चौथा अंक समाप्त हो गया है। अतः वे चौथे अंक की प्राप्ति की लालसा त्याग दें। अन्य सभी अंक मिल सकते हैं।

प्रबन्धक "वेदोदय"

स्वर्ग

[श्री पं० देवदत्त जी चूहडपुर, ज़िला बुलन्दशहर]

[स्वर्ग के समान जटिल विषय के अध्ययन करने में विद्वान् लेखक को जो शंकायें हुई हैं, वे इसमें दीगई हैं। विद्वानों से प्रार्थना है कि उनका उत्तर भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक]



छ मास हुए—कि मुझे मेरे एक मित्र महोदय ने, श्री नारायण स्वामी जी लिखित "मृत्यु और परलोक" नामक पुस्तक पढ़ने के वास्ते दी। मैंने उस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ा। सचमुच वह पुस्तक प्रत्येक आर्य्यसमाजी व हिन्दू के लिये पठनीय है। उस उत्कृष्ट पुस्तक में मृत्यु के बाद होने वाली तीन अवस्थाओं का वर्णन तीन गतियों के नाम से किया गया है। उस पुस्तक को पढ़ लेने पर मुझे दूसरी व तीसरी गति के विषय में शङ्का हुई। दूसरी गति के विषय में विशेष, व तृतीय गति के विषय में सामान्य शङ्का हुई। मैंने उसके बाद प्रयत्न किये कि मैं उन शङ्काओं का समाधान कराऊं-परन्तु मैं अब तक अकृत कार्य्य रहा। मैं श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय को हार्दिक धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे भरोसा दिलाया कि वे मेरे विचारों को अपने पत्र में स्थान देंगे—तथा मेरी शङ्काओं का उत्तर भी देंगे। इसलिये मैं इस दीर्घ लेख का साहस करता हूं ताकि मेरी ही तरह इस प्रकार की शंकायें यदि और किन्हीं के मन में भी उठी हों तो निवृत्त हो जावें।

स्वर्ग किसे कहते हैं ?

महर्षि दयानन्द जी ने स्वर्ग की निम्न-लिखित व्याख्या की है—स्वर्ग नाम सुख विशेष भोग और उसकी सामग्री की प्राप्ति का है।

श्री नारायण स्वामी जी ने निम्न लिखित व्याख्या की है—

चान्द्रमसि दशा को प्राप्त होने का भाव यह है कि ऐसे लोक (योनि) को प्राप्त होना, जिसमें केवल हर्ष ही हर्ष हो दुःख का लेश न हो। (मृत्यु और परलोक पृष्ठ ६४)।

मुझे इस व्याख्या में यह भेद प्रतीत हुआ है कि महर्षि की व्याख्या में दुख का लेश भी नहीं होना यह बात नहीं पाई जाती।

स्वर्ग किन को प्राप्त होता है ?

जो प्राणी ऐसे कर्म करते हैं—जो पुण्य और पाप मिश्रित होते हैं, मरने पर वे उस गति को प्राप्त होते हैं—जिसकी बात कही जा चुकी है और जिसका नाम

पहली गति रक्खा गया है। परन्तु जो प्राणी केवल ऐसे कर्म करते हैं—जिनमें पाप का समावेश नहीं होता है और जिन्हें पुण्य कर्म ही कहते हैं, वे दो प्रकार के होते हैं एक तो वे जो सकाम कर्म करते हैं और दूसरे वे जो निष्काम कर्म करते हैं। सकाम कर्म वाले मर कर जिस गति को प्राप्त होते हैं—उस गति का नाम दूसरी गति है (मृत्यु और परलोक पृष्ठ ६२९) इस प्रकार चान्द्र-मसि दशा को प्राप्त होकर इस अवस्था में वे अपने शुभ परन्तु सकाम कर्मों का भोग करते हैं। और कर्मों के क्षीण व भोगों के समाप्त होने पर उन्हें फिर कर्त्तव्य योनि में आना पड़ता है। (मृत्यु और परलोक पृष्ठ ६३)।

उपरिलिखित उद्धरण से मैं यह समझ सका हूं—कि स्वर्ग पुण्यात्माओं को प्राप्त होता है—जो कि समस्त पापों को शुभ कर्मों के द्वारा दूर कर चुके हैं। परन्तु अपने चित्त की वासनाओं को नष्ट नहीं कर सके हैं। तथा इसी कारण से उनको ऐसी योनि में जाना होता है। कि जहां दुःख का लेश भी नहीं होता और वह भोगयोनि है कि जहां वे अपने शुभ कर्मों के फल का भोग करके फल समाप्त होने पर कर्त्तव्ययोनि (मनुष्ययोनि) में जन्म लेते हैं। इसी बात की पुष्टि श्रीमद् भगवद्गीता के निम्न लिखित श्लोकों से होती है—

त्रैविद्या मां सोमपाः पूतपा[पा]
यज्ञोरिष्ट्वा स्वर्गतिं प्रार्थयन्ते।
ते पुण्यमासाद्य सुरेन्द्र लो[क]
मश्नन्ति दिव्यान्दिवि देव भोगान्॥[१]
तेतं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशा[लं]
क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।
एवंभयीधर्म मनुप्रप[न्ना]
गतागतं काम कामा लभन्ते॥[२]

(श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय [९]
श्लोक २०,२१)

अर्थ—तीनों वेदों में विधान कि[ये] हुए सकाम कर्मों को करने वाले [और] सोम रस को पीने वाले एवं पापों [से] पवित्र हुए पुरुष मुझे यज्ञों के द्वारा पू[ज] कर स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं वे पु[रुष] अपने पुण्यों के फल रूप, इन्द्रलोक [को] प्राप्त होकर स्वर्ग में दिव्य देवता[ओं] के भोगों को भोगते हैं॥१॥ वे उस वि[शाल] स्वर्गलोक को भोगकर पुण्य क्षीण हो[ने] पर मृत्युलोक को प्राप्त होते हैं। इस प्र[कार] त्रयीधर्म को प्राप्त हुए भोगों की काम[ना] वाले पुरुष बारम्बार जाने आने को प्रा[प्त] होते हैं॥२॥

इन श्लोकों से यह स्पष्ट है—कि स[कामी] दूसरी गति में जाने वालों का ही वर्[णन] है। दूसरी गति का शास्त्रीय नाम स्[वर्ग] है। स्वर्ग भोगयोनि है, कर्मयोनि न[हीं] है। क्योंकि यदि कर्मयोनि मानी जा[य] तो पुण्य क्षीण होने का कुछ अर्थ ही न[हीं]

रहता उन लोगों का पुण्य नित्य वृद्धि को प्राप्त होगा वे नित्य प्रति उन्नति ही करेंगे, उनका अवनति करने का (कुछ कारण प्रतीत नहीं होता जब कि वे अपने सब पापों का नाश कर चुके हैं, केवल चित्त की वासनाओं का दूर करना ही रह गया है)। स्वर्ग में रहते हुए उत्तमोत्तम कर्म के यदि वे निष्काम हो तो मोक्ष और नहीं तो सकाम कर्म के करते रहने पर. सदा ही स्वर्ग में रहेंगे उनके पुण्य क्षीण कदापि नहीं होंगे।

स्वर्ग में स्थूल शरीर भी होता है या नहीं ?

श्री नारायण स्वामी जी "मृत्यु और परलोक" पृष्ठ ७३ में लिखते हैं—

उस अवस्था को (चान्द्रमसि अवस्था को) प्राप्त होने का भाव यह है कि उन्हें स्थूल शरीर मिल गया । यह ठीक है उनमें तथा अन्य मनुष्यों में शरीरों की दृष्टि से कुछ अन्तर नहीं है उन्हें उच्च कोटि का मनुष्य ही समझना चाहिये। प्रथम कोटि के मनुष्य वे होते हैं जो केवल सुखों का उपभोग करते हैं उनका पाप से सम्पर्क न होने से किसी प्रकार का दुःख भी दुखित नहीं कर सकता। इन्हीं का नाम देव है। पृष्ठ ७७ में लिखते हैं और चान्द्रमसि दशा में पहुँचने वाले जीवों के साथ भी यह उत्पन्न वासना उनके सूक्ष्म शरीरों में निहित रहती है। कर्म-फल क्षीण होने पर जीवों को इसी वासना के कारण माता के गर्भ में आना पड़ता है।

मुझे उपरिलिखित उद्धरण में निम्न लिखित विरोध प्रतीत हुए हैं।

१—यदि कर्म फल क्षीण होने पर वासना के कारण माता के गर्भ में आना माना जावे। तो जब तक कि कर्म-फल क्षीण नहीं हुए तब तक तो वे सूक्ष्म शरीर वाले ही माने जावेंगे। फिर यह कहना कि उनको स्वर्ग में स्थूल शरीर प्राप्त होता है। कैसे सम्भव है ?

२—यदि वे देव अर्थात् उच्च कोटि के मनुष्य हैं तब तो वे कर्मयोनि में ही मानने पड़ेगें। फिर उनके पुण्य क्षीण किस प्रकार हो सकते हैं।

३—यदि वे स्थूल शरीरधारी होते हैं, तो दुःख का लेश भी उनको न हो, यह कैसे सम्भव है। सुखी से सुखी मनुष्य को भी किञ्चित मात्र दुःख अवश्य ही रहता है। सम्राट पञ्चमजार्ज भी अभी कुछ दिन हुए। रुग्णा-वस्था को प्राप्त हो गये थे। यदि योगियों को स्वर्ग में माना जावे। तब भी नहीं बनता क्योंकि वे जीवन्युक्त होते हैं। निष्काम होते हैं फिर उनका पुण्य फल क्षीण होना कैसे माना जा सकता है। कोई उदाहरण में भी जगत में ऐसा दिखाई नहीं पड़ता। कि

कोई भी मनुष्य सदा सुखी या प्रसन्न ही रहे। इन युक्तियों से यही परिणाम निकलता है कि स्वर्ग में सूक्ष्म शरीर होता है। और वह पृथ्वीलोक से भिन्न है, क्योंकि यदि वह पृथ्वी पर हो पुण्य क्षीण होने पर वे पृथ्वीलोक में आवेंगे—इस बात का कुछ अर्थ नहीं रहता। अब मैं इस विषय में कुछ प्रमाणों का उल्लेख करूंगा।

अथर्ववेद चतुर्थ काण्ड ३४ वें सूक्त में स्वर्ग विषयक निम्न लिखित वर्णन है।

मन्त्र—अनस्थाः पूताः पवनेन शुद्धा
शुचयः शुचिमपि यन्ति लोकम्।
नैषां शिश्नं प्रदहति जातवेदाः
स्वर्गेलोके बहु स्त्रैणमेषाम् ॥ २ ॥

अर्थ—अस्थि रहित वायु से शुद्ध पवित्र और निर्मल बने हुए शुद्धलोक को प्राप्त होते हैं। अग्नि इनके सुख साधन-रूप इन्द्रि को नहीं जला देता और स्वर्गलोक में इनको बहुत सुख प्राप्त होता है।

मन्त्र—विष्टारिणमोदनं ये पचन्ति
नैनानवर्तिः सचते कदाचन।
आस्ते यम उप याति देवान्त्सं
गन्धर्वैर्मदते सोम्येभिः ॥ ३ ॥

अर्थ—जो इस व्यापक अन्न को पकाते हैं। इनको कभी भी दरिद्रता नहीं प्राप्त होती। जो नियम में रहता है। वह देवों को प्राप्त होता है। और वह सोम्य गन्धर्वों के साथ मिल कर आनन्द प्राप्त करता है।

मन्त्र—विष्टारिणं मोदनं ये पचन्ति,
नैनान्यमः परि मुष्णाति रेतः।
रथी ह भूत्वा रथयान ईयते,
पक्षी ह भूत्वाति दिवः समेति ॥ ४॥

अर्थ—जो इस व्यापक अन्न को पकाते हैं। यम इनके वीर्य को नहीं हरण करता। वह रथी होकर रथ मार्ग से विचरता है, और पक्षी के समान होकर द्युलोक को पार करके ऊपर जाता है।

मन्त्र—एषयज्ञानां विततो वहिष्ठो,
विष्टारिणं पक्त्वा दिवमावि वेश।
आण्डीकं कुमुदं सं तनोति
बिसं शालूकं शफको मुलाली॥
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना।
उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः
समन्ताः ॥ ५ ॥

अर्थ—यह सब यज्ञों में श्रेष्ठ और विस्तृत है। इस विस्तृत यज्ञ का अन्न पका कर यजमान द्युलोक में प्रविष्ट होता है। शान्त चित्त होकर मूल शक्ति की वृद्धि करने वाला, अण्डे के समान बढ़ने वाले आनन्ददायक कमल कन्द के समान बढ़नेवाले ठीक प्रकार फैलाता है। ये सब धाराएं तुझे प्राप्त हों। स्वर्गलोक में मधुर रस को देने वाली सब नदियां तेरे समीप उपस्थित हों।

मन्त्र—घृत रुद्राः मधुकूलः सुरोदकाः
क्षीरेण पूर्णाः उदकेन दध्ना ।
एतास्त्वा धारा उपयन्तु सर्वाः
स्वर्गे लोके मधुमत् पिन्वमाना आदि ॥

अर्थ—घी के प्रवाहवाली मधुररस के तट वाली निर्मल जल से युक्त जल, दही और दूध से परिपूर्ण ये सब धारायें तुझे प्राप्त हों । आदि ।

मन्त्र—इममोदनं निदधे ब्राह्मणेषु
विष्टारिणं लोकजितं स्वर्गम् भ ।
समे माक्षेष्ट स्वधया पिन्वमानो
विश्वरूपा धेनुः कामदुघा ये अस्तु ॥

अर्थ—इस विस्तृत लोकों को जीतने वाले और स्वर्ग देने वाले अन्न को ब्राह्मणों के लिये प्रदान करता हूं । अपनी धारक शक्ति से तृप्त करने वाला वह अन्नदान मेरी हानि न करे। विश्वरूपा कामना पूर्ण करने वाली कामधेनु मेरे लिये होवे ।

ये सब मन्त्र व अर्थ मैंने पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर प्रणीत अथर्व वेद का स्वाध्याय नामक पुस्तक के लिये हैं। मैं नीचे उनकी ही की हुई विस्तृत व्याख्या भी लिखता हूं। जिससे विषय अधिक स्पष्ट हो जावे । आर्य्यसाहित्य मण्डल अजमेर से जो अथर्ववेद का भाष्य श्री पं० जयदेव जी शर्मा कृत (जो गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक हैं) प्रकाशित हो रहा है। उसमें इस सूक्त का तात्पर्य मोक्ष पर बताया गया है। मैं इस लेख में आगे इस बात को सिद्ध करूंगा। कि किन २ कारणों से इस सूक्त में मोक्ष का वर्णन नहीं होकर स्वर्ग का ही वर्णन है। अभी श्री पं० श्रीपाद दामोदर जी सातबलेकर की व्याख्या लिखता हूं—

अन्न का विष्टारी यज्ञ

विष्टारी शब्द का अर्थ है—विस्तार करने वाला अर्थात् जिसका परिणाम बड़ा विस्तृत होता है। यह यज्ञ अन्न का किया जाता है।

उत्तम पक्ष तो पकाये अन्न का दान करना अर्थात् विद्वानों को खिलाना ही है, मध्यम पक्ष विद्वानों को धान्य समर्पण करना है और गौण पक्ष धान्य खरीदने के धन आदि साधन अर्पण करना है। जल--शहद दूध, घी, मक्खन तथा खान पान के अन्यान्य पदार्थ देना भी इस यज्ञ का अंग है। जल-दान करने का अर्थ—कुंआ खुदवा कर अर्पण करना दूध देने का तात्पर्य दूध देने वाली गौवें देना। शहद घी आदि तैय्यार अवस्था में देना इत्यादि बातें स्पष्ट है —

(यहां पर मृत्यु और परलोक से भी कुछ पंक्तियें उद्धृत करना उचित है पृष्ठ ६२ में लिखा है। जो प्राणी इष्ट फल की प्राप्ति के लिये बड़े २ यज्ञ करते हैं) (इन यज्ञादि को इष्ट कहते हैं) या जो अपनी कामनाओं की तृप्ति के लिये

कुंआ बावली, तालाब-धर्मशाला आदि का निर्माण करते हैं ऐसे पुरुष मरने के बाद निम्न दशाओं को प्राप्त होते हैं—१—धूम्र २—रात्रि ३—कृष्ण पक्ष ४—दाक्षिणायण ५—पैतृक ६—आकाशीय ७—चान्द्रमसि। इस प्रकार चान्द्रमसि दशा को प्राप्त होकर इस अवस्था में वे अपने शुभ परन्तु सकाम कर्मों का भोग करते हैं। और कर्मों के क्षीण और भोगों के समाप्त होने पर उन्हें फिर कर्त्तव्ययोनि में आना पड़ता है) (या ने अब तक वे कर्त्तव्ययोनि में नहीं थे भोग-योनि में थे मेरी सम्मति है)।

इस यज्ञ का दान ब्राह्मणों को देना चाहिये (इमं ओदनं विदधे ब्राह्म-णेषु) मं ८।

ब्राह्मणों को दान क्यों दिया जाय ?

इस सूक्त में दान का जो फल लिखा है वह इस प्रसंग में देखिये—

(१) शुद्ध पवित्र, निर्मल और विदेही होकर पवित्र लोक को प्राप्त करता हैं (मं० २)।

(२) स्वर्गलोक प्राप्त करता है। (मं० ४)।

(३) स्वर्गलोक में उसको मधुरस की धाराएं प्राप्त होती है (मं० ५,७) ये फल अलौकिक हैं। अर्थात भूलोक के यहां प्राप्त होने वाले नहीं हैं। स्वर्ग में क्या होता है और क्या नहीं ? इस विषय में साधारण मनुष्य को यहां ज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता। तथापि इस विषय में थोड़ी सी कल्पना आने के लिये स्वर्ग का थोड़ा सा स्वरूप कथन करते हैं।

मृत्युलोक

१—(इस लोक) इसलोक में मनुष्य जीवित अवस्था में रहते हैं। स्थूल शरीर से विचरते हैं, अपने स्थूल इन्द्रियों से सुख दुःख का अनुभव प्राप्त करते हैं। मनुष्य का जीवन इस लोक में होने के कारण यहां के अनुभव प्रत्यक्षानुभव करके कहे जाते हैं। (क्रमशः)

यज्ञं दधे सरस्वती ।

(ऋ० १। ३। ११)

विद्या यज्ञ को धारण करती है।

आर्य समाज के निर्माता

धर्मवीर पं० लेखराम जी

[आर्य्य मुसाफ़िर]

(गतांक से आगे)

[श्री विश्वप्रकाश बी० ए० एल० एल० बी०]

जीवन की कुछ घटनायें

गतांक में धर्मवीर का कुछ जीवन वृत्तान्त दिया जा चुका है। यहां पर हम धर्मवीर की जीवन सम्बन्धी कुछ घटनायें देंगे जिनसे उनकी वीरता का कुछ अनुमान हो सकता है:—

(१) बूंदी में धर्मवीर पं० जी ब्रह्मचारी नित्यानन्द और स्वामी विश्वेश्वरानन्द की सहायता को भेजे गये। धर्मवीर और मुसल्मान सूबेदार में कुछ बातचीत होगई। सूबेदार ने अपना हाथ तलवार पर रक्खा तो लेखराम ने गरज कर कहा "मुझे तलवार की धमकी दिखाता है अगर है पठान तो तलवार निकालकर मज़ा देख।"

(२) शाहाबाद (ज़िला अम्बाला) से सूचना मिली कि कुछ हिन्दू मुसलमान होने वाले हैं। पं० जी के पैर में फोड़ा था मुन्शीराम (स्वा० श्रद्धानन्द) ने कहा "यह लोग बड़े निर्दयी हैं। समझते नहीं कि हर समय मनुष्य का स्वास्थ्य एक सा नहीं रहता। आप इस विषय में कुछ न सोचें, मैं उत्तर दे दूंगा।" आध घंटे के बाद फिर लौट कर पंडित जी आये और बोले "क्यों साहब किसको भेजने का ख्याल है?। महात्मा ने उत्तर दिया पंडित जी! यह लोग बड़े बे परवाह हैं। इनको स्वयं भुगतना चाहिये और क्या हो सकता है। धर्मवीर बोले वे ग़रीब क्या करेंगे। कुछ तो इन्तजाम होना चाहिये।" महात्मा ने पूछा "कहिये तो पंडित लालमणि को भेज दूं"। धर्मवीर मुस्कराकर बोले "ईश्वर जानता है आपने मुझे कायल कर दिया। रात की रेल में ही चला जाऊंगा।"

(३) मालेर कोटला में महात्मा मुंशीराम के साथ पं० जी १३ अप्रेल १८९५ ई० को गये। मुसल्मानी रियासत थी,

इस कारण जब धर्मवीर मुसल्मानों से शास्त्रार्थ करने लगे तो स्थानीय आर्य्य समाजी महात्मा जी को सहायतार्थ लेगये। धर्मवीर उन लोगों से कहने लगे "तुम बड़े बोदे हो। क्या मैं तुमसों के भरोसे पर धर्म का प्रचार कर रहा हूँ? ईश्वर जानता है, तुमसे अविश्वासी नास्तिकों से तो निमाज़ी मुसल्मानी हज़ार दर्जे बेहतर हैं।"

(४) २९ अगस्त १८९५ ई० को धर्मशाला से निमन्त्रण आया। महात्माजी ने पं० जी से जाने को कहा। पं० जी बोले "यह देखिये! लगातार सफ़र में सारे कपड़े मैले होगये, कहीं धुलाने का समय नहीं मिला। फिर शिमले से आते हुये उन मैले कपड़ों में से एक भी सूखा नहीं बचा। मुझे परसों से ज्वर आता है और ज़ुकाम साथ है। बतलाइये मैं जाने क़ी अवस्था में हूँ।" महात्मा जी ने मना कर दिया पर दूसरे दिन प्रातःकाल पहुंचे "लाला जी, २०) मार्ग व्यय के लिये मंगा दीजिये और अपने दो नये कुर्ते भी। ऊपरी सफ़ाई की मुझे परवा नहीं लेकिन शरीर में सटा हुआ तो शुद्ध पवित्र ही होना चाहिये।" महात्मा जी बोले क्या घर से कोई तार आया है "बोले घर की मुझे कम पर्वा है। वहीं धर्मशाला जाता हूँ। क्या किया जाय जाना ही पड़ेगा।'

(५) धर्मवीर अजमेर के उत्सव में सम्मिलित हुये। नगर कीर्त्तन के साथ साथ वह व्याख्यान भी देते जाते थे। ख़्वाजा चिश्ती की दर्गाह पास थी। धर्मवीर से तथा अन्य मुसल्मानों से कुछ बातचीत होगई। सब आर्य्य समाजी भाग खड़े हुये। पं० जी दर्गाह के पास पहुंचे और वहां से तीस क़दम गिनकर दूर एक छोटे पुल पर खड़े होगये और धर्मप्रचार शुरू कर दिया। कब्रपरस्ती और मुर्दापरस्ती पर व्याख्यान देते रहे। कुछ देर बाद आर्य्य समाजी यह देखने गये कि पं० लेखराम जीवित हैं या मर गये। जाकर देखा कि वीर कई हज़ार मुसल्मानों के बीच में व्याख्यान देरहा है और जनता उनके व्याख्यान सुन रही है। यह घटना मार्च १८९६ ई० की है।

(६) एक घटना लाला गणेशदास सियालकोटी से मिली है। धर्मवीर व्याख्यान देने जारहे थे कि एक साहब थानेदार का संदेशा लेकर आये। आर्य्य पथिक ने पूछा "घुसपुस क्या करते हो क्या बात है?" लोगों ने कहा अगर बलवा हुआ तो पुलीस जिम्मेदार न होगी। आर्य्य पथिक की आंखे लाल हो गईं कड़ककर बोले "क्या हम युद्ध करने आये हैं। हमतो धर्मोपदेश के लिये आये हैं जो जब तक चाहेंगे स्वतन्त्रता से करेंगे। जिसका जी चाहे सुने, जिसका जी न चाहे न सुने। अगर यों ही बलवा हो तो हो। हम देखेंगे कौन बलवा करता

है। हम थानेदार साहब व और किसी साहब की रक्षा की परवाह नहीं करते।" पुलीस के सिपाहियों से कहा "ओ पगड़ी वालों। अगर व्याख्यान सुनना है तो अपनी ख़ुशी से ठहरो नहीं तो तुम्हारी रक्षा की हमें परवाह नहीं है अभी चले जाओ देखूंगा कि कौन मुझे काट जाता है।"

बलिदान

धर्मवीर के कार्यों से लोगों को आशंका लगी रहती थी कि लोग उनका वध न कर दें। अनेक बार उनका कुशल क्षेम जानने के लिये तार आया करते थे। उनके विरुद्ध मुसलमानों ने बड़ा आन्दोलन किया और उन पर मुकद्दमे भी चलाये गये पर उसमें कुछ भी सफलता न मिली।

फरवरी १८९७ ई० के मध्य भाग में एक काला, गंठे हुये बदन का भयानक नाटा युवक दयानन्द कालिज में धर्मवीर का पता पूछते गया। वहाँ से उनके स्थान पर पहुंचा। इसने अपने को बंगाली बताया और शुद्ध होने की प्रार्थना की। धर्मवीर सदा इसके लिये तैयार रहते थे। उस समय से अनेकों बार लोगों ने उस दुष्ट को धर्मवीर के साथ देखा। लोगों ने कहा "पंडित जी इस दुष्ट से बचे रहियेगा क्योंकि लोग आपके पीछे लगे हुये हैं" पर पंडित जी उनकी बातों की ओर ध्यान तक न देते। ४ मार्च को ईद का दिन था। उस दिन पंडित जी की खोज में वह हत्यारा स्टेशन, घर तथा सभा के दफ़्तर में चक्कर लगाता रहा पर पं० जी नहीं मिले। ६ मार्च को पं० जी के घर प्रातःकाल पहुंचा फिर सभा के दफ्तर गया पर वहां भी पं० जी न, न मिले। २ बजे दोपहर को सभा के दफ़्तर में पंडित जी से भेट हुई। उस समय वह बहुत थूकता था। उसके साथ पं० जी घर को आये। वह कम्बल ओढ़े हुये था और उसके अन्दर कटार छिपी थी। ज्वर का बहाना था।

पं० जी उसको डाक्टर के यहां लेगये। उसने छाती में दर्द भी बताया था। डाक्टर ने प्लिस्टर लगाने को कहा। उसने कहा, 'केवल पीने की दवा दे दो।' यदि कम्बल खुलता तो सब भेद मालूम हो हो जाता। पण्डित जी ने सिफ़ारिश की कि केवल पीने की दवा दे दो।

दवा दिलवा कर पण्डित जी खाट पर बैठ कर ऋषि की जीवनी लिखने में लग गये। धर्मवीर महर्षि की मृत्यु का वर्णन लिख रहे थे कि माता ने कहा कि आज तेल नहीं आया। कौन जानता था ऋषि की जीवनी समाप्त होते ही उनका भी अन्त हो जायगा। वे उठे और कहा "अच्छा लाता हूं।" खाट से उठ खड़े हुये, अंगड़ाई ली, दुष्ट घात लगाये कुरसी

पर बैठा था। उसने समय पाकर छुरी धर्मवीर की छाती में घुसादी। अतड़ियां बाहर निकल आईं। धर्मवीर ने एक हाथ से अड़तियां अन्दर की ओर दूसरे हाथ से दुष्ट को पकड़ा। इस प्रकार लड़ते झगड़ते सीढ़ी तक पहुँचे। धर्मपत्नी स्थल पर पहुंच गईं वे पण्डित जी को घसीट कर चौके की ओर ले आईं। दुष्ट भी घबड़ा गया था। माता ने आकर उसके हाथ पकड़ लिये। दुष्ट ने एक बेलना जो पड़ा हुआ उठाकर मारा, वे बेहोश होकर गिर पड़ीं।

थोड़ी देर में लाला जीवनदास जी ने यह दशा देखी तो घबरा गये। पण्डित जी अस्पताल पहुंचाये गये। इसी बीच में महात्मा मुन्शीराम जी भी पहुंच गये। उनको देख कर धर्मवीर ने हाथ उठाये "नमस्ते लाला जी! बे अदबियां माफ़ करना"। उत्तर दिया "पंडित जी! आप तो ईश्वर पर पक्का विश्वास रखने वाले हैं। प्रत्येक संकट में उसी का आश्रय ढूँढ़ा करते हैं। उसका ध्यान कीजिये" धर्मवीर ने कहा "अच्छा तो शायद मैं मर जाऊंगा परन्तु लाला जी मेरे अपराध क्षमा करना।"

यह कह कर वेद मंत्र का पाठ करने लगे। डाक्टर पेरी हैरान थे कि किस प्रकार यह पुरुष इतने आघात के बाद भी जीवित है। पूरे दो घंटे तक बराबर डाक्टर अतड़ियां सींया किये।

१॥ बजे रात तक धर्मवीर सचेत रहे। न उनकी माता की चिन्ता थी, न पत्नी की, उनको एक मात्र चिन्ता थी आर्य्य-समाज की। अन्तिम आदेश उनका था :—

"आर्य्यसमाज से लेख का काम बन्द नहीं होना चाहिये।"

दो वजे के लगभग धर्मवीर की दशा विगड़ गई। आर्य्यसमाज का शेर चल बसा।

पण्डित लेखराम की मृत्यु ने जो काम किया वह शायद वह जीवित रहते हुए भी न करते। बहुत से लोग जिन्होंने आर्य्यसमाज में पैर तक न रक्खा था आज उनके अर्थी के साथ जाने को तय्यार थे। २० सहस्र मनुष्य धर्मवीर को पहुँचाने गये।

हा धर्मवीर! तुम्हारी कड़कती हुई आवाज़ अब भी सुनाई दे रही है। आर्य्यसमाज के लिये प्रेम तथा भक्ति जितनी तुममें थी उतनी हमें कहां मिलेगी। तुमने आर्य्यसमाज के लिये अपना रुधिर बहाया है उस रक्त के एक एक बूंद से एक एक वीर उत्पन्न होगा। क्या ईश्वर हमारे बीच में दूसरा लेखराम न पैदा करेंगे?

(सम्पूर्ण)

शतपथ ब्राह्मण [सभाष्य]

गतांक से आगे

[श्रीयुत पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०]

काण्ड १—अध्याय १—ब्राह्मण २

१६ अथाभिपद्यते । यच्छन्तां पञ्चेति पञ्च वाऽइमा अङ्गुलयः पाङ्क्तो वै यज्ञस्तद्यज्ञमेवैतदत्र दधाति ।

१६—यच्छन्तां पञ्च (यजु० १।९)

"पांचों इसको लें'"

इस मन्त्रांश को पढ़कर (चांवलों को) छूता है। पांच ही उंगलियां हैं। और यज्ञ भी पांच अंगों वाला है। इसलिये (पांच उंगलियों को रखकर मानो) वह यज्ञ को गाड़ी पर रखता है।

१७ अथ गृह्णाति । देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं गृह्णामीति सविता वै देवानां प्रसविता तत्सवितृप्रसूत एवैतद्गृह्णात्यश्विनोर्बाहुभ्यामित्यश्विनावध्वर्यू पूष्णो हस्ताभ्यामिति पूषा भागदुघोऽशनं पाणिभ्यामुपनिधाता सत्यं देवा अनृतं मनुष्यास्तत्सत्येनैवैतद्गृह्णाति ।

१७—अब वह नीचे के मन्त्रांश को जप कर (चांवल को) लेता है :—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्यामग्नये जुष्टं गृह्णामि। (यजु० १।१०)

"सविता देव की प्रेरणा से, दोनों अश्विनों की भुजाओं से पूषा के दोनों हाथों से अग्नि के लिये प्रिय तुझको ग्रहण करता हूँ"

सविता ही देवों का प्रसविता (प्रेरक) है। इसलिये सविता से प्रेरित होकर ही इसको ग्रहण करता है। वह कहता है "अश्विनों की भुजाओं से।" क्योंकि अश्विन ही अध्वर्यु हैं।

वह कहता है 'पूषा के हाथों से' क्योंकि पूषा ही भाग का बांटने वाला है। वह हाथों से खाने को सामने रखता है।

देव सत्य हैं। मनुष्य झूठे हैं। इसलिये वह इस कर्म के द्वारा सत्य से ही (चांवलों को) लेता है।

१८ अथ देवतायाऽआदिशति। सर्वा ह वै देवता अध्वर्युँ हविर्ग्रहीष्यन्तमुपतिष्ठन्ते मम नाम ग्रहीष्यति मम नाम ग्रहीष्यतीति ताभ्य एवैतत्सह सतीभ्योऽसमदं करोति ।

१८—अब वह देवता का निर्देश करता है। क्योंकि जब अध्वर्यु, हवि को लेता है तो सभी देवते उसके निकट आ जाते हैं यह सोचकर कि "मेरा नाम लेगा" "मेरा नाम लेगा।" इस प्रकार वह आये हुये देवताओं से मेल उत्पन्न करता है। (निर्देश करने से देवताओं में झगड़ा नहीं होने पाता)।

१६—यद्वेव देवताया ऽआदिशति। यावतीभ्यो ह वै देवताभ्यो हवींꣳषि गृह्णन्तऽऋणमु हैव तास्तेन मन्यन्ते यदस्मै तं कामꣳसमर्धयेयुर्यत्काम्या गृह्णाति तस्माद्वै देवताया ऽआदिशत्येवमेव यथापूर्वꣳ हवींꣳषि गृहीत्वा।

१९—देवता का निर्देश इसलिये भी करता है। जिन जिन देवताओं के लिये हवि ली जाती है वह समझते हैं कि हमारे ऊपर ऋण है अर्थात् जिस जिस कामना के लिये हवि दी गई उस उस कामना को पूरा करना चाहिये। इसलिये भी वह देवता का निर्देश करता है। इसी प्रकार पहली भांति हवि को लेकर।

२०—अथाभिमृशति भूताय त्वा नारातयऽइति तद्यत एव गृह्णाति तदेवैतत्पुनराप्याययति।

२०—नीचे के मन्त्रांश से चांवल छूता है :—

भूताय त्वा नारातये। (यजु० १।११)

"तुझे प्राणियों के हित के लिये न कि शत्रु के लिये।" इस प्रकार वह उसका फिर आधिक्य करता है।

२१—अथ प्राङ् प्रेक्षते। स्वरभिविख्येषमिति परिवृतमिव वाऽएतदनो भवति तदस्यैतच्चक्षुः पाप्म गृहीतमिव भवति यज्ञो वै स्वरहर्देवाः सूर्यः स्तत्स्वरेवै तदतोऽभिविपश्यति।

२१—अब यह मन्त्रांश पढ़कर पूर्व की ओर देखता है :—

स्वरभिविख्येषम् (यजु० १।११)

"मैं तेज को देखूं।"

यह गाड़ी ढकी हुई सी होती है। इसलिये इस (गाड़ी) की आंख पाप-युक्त सी होत है। "स्वः" ही यज्ञ है। दिन, देव और सूर्य्य भी 'स्वः' (प्रकाश) हैं। इसलिये इस कर्म से वह इन सब को देखता है।

२२—अथात्र रोहति। दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामिति गृहा वै दुर्यास्ते हेत ईश्वरो गृहा यजमानस्य योऽस्यैषोऽध्वर्युर्यज्ञेन चरति तं प्रयन्तमनु प्रच्योतोस्तस्येश्वरः कुलं विक्षोब्धोस्तानेवै तदस्यां पृथिव्यां दृꣳहति तथा नानुप्रच्यवन्ते तथा न विक्षोभन्ते तस्मादाह दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्यामित्यथ प्रैत्युर्वन्तरिक्षमन्वेमीति सोऽसावेव बन्धु।

२२—अब वह इस मंत्रांश को पढ़कर (गाड़ी से) उतरता है:—

दृꣳहन्तां दुर्याः पृथिव्याम्॥ (यजु० १।११)

"द्वार युक्त (घर) पृथ्वी पर दृढ़ हों।"

"दुर्याः" कहते हैं घरों को। जब अध्वर्यु हवि को लिये हुये आता है तो संभव है कि उसके पीछे यजमान के घर टूट पड़े और उसका कुल नष्ट हो जाय। इसलिये वह इन (घरों) को पृथ्वी पर दृढ़ करता है जिससे वह न टूटें न गिरें। इसीलिये कहा कि "द्वार युक्त (घर) पृथ्वी पर दृढ़ हों।" अब वह इस मन्त्रांश को पढ़कर (गार्हपत्य अग्नि के उत्तर की ओर) चलता है:—

उर्वन्तरिक्षमन्वेमि (यजु० १।११)

"मैं विशाल अन्तरिक्ष में जाऊं।"

इसका भी वैसा ही प्रयोग है (जैसा चौथे सूक्त में कहा)।

२३—स यस्य गार्हपत्ये हवींꣳषि श्रपयन्ति । गार्हपत्ये तस्य पात्राणि सꣳसादयन्ति जघनेनो तर्हि गार्हपत्यꣳ सादयेद्यस्याहवनीये हवींꣳषि श्रपयन्त्याहवनीये तस्य पात्राणि सꣳसादयन्ति जघनेनो तर्ह्याहवनीयꣳ सादयेत्पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामीति मध्यं वै नाभिर्मध्यमभयं तस्मादाह पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामीत्यदित्याऽउपस्थऽइत्युपस्थऽइव वै नदभा - पुरिति वाऽआहुर्यद् सुगुप्तं गोपायन्ति तस्मादाहादित्याऽउपस्थइत्यग्ने हव्यꣳ रक्षेति तदग्नये चैवैतद्धविः परिददाति गुप्त्याऽअस्यै च पृथिव्यै तस्मादाहाग्ने हव्यꣳरक्षेति ।

२३—पुरोहित लोग जिस यजमान की गार्हपत्य अग्नि में हवियों को पकाते हैं उसकी गार्हपत्य अग्नि के घर में पात्र रखते हैं । ऐसी दशा में (चांवल की टोकरी को) गार्हपत्य के पीछे रक्खे। और जिस यजमान की आहवनीय अग्नि में हवियों को पकाते हैं उसकी आहवनीय अग्नि के घर में पात्र रखते हैं। ऐसी दशा में (चांवल की टोकरी को) आहवनीय के पीछे रक्खे। और इस मन्त्रांश को पढ़े :—

पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामि ।

(यजु० १ । ११)

'तुझे पृथ्वी की नाभि में रखता हूं।'

'नाभि' कहते हैं 'बीच' को । बीच में भय नहीं होता। इसलिये कहा 'पृथ्वी की नाभि में तुझको रखता हूं।' और फिर कहता है:—

अदित्या उपस्थे (यजु० १ । ११

"अदिति की गोद में।"

जब लोग किसी चीज़ की अच्छी रक्षा करते हैं तो कहते हैं "गोद में रख लिया।" इसीलिये कहा, "अदिति की गोद में।' फिर कहता है :—

अग्ने हव्यꣳरक्ष (यजु० १ । ११)

"हे अग्नि हवि की रक्षा कर।'

ऐसा करने से वह इस हवि को रक्षार्थ अग्नि और पृथ्वी के सुपुर्द कर देता है। इसीलिये कहा "हे अग्नि हवियों की रक्षा करो।"

---

[२]

यज्ञ संबन्धी सारांश

(१) शूर्प और आहवनीय को लेकर गर्म करना।

(२) गाड़ी से चांवल लेना और यज्ञशाला में रखना।

इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न कृतियां यजुर्वेद के पहले अध्याय के ६ ठे मन्त्र से लेकर ११ वें मन्त्र तक के भिन्न भिन्न टुकड़ों को पढ़कर की जाती हैं।

उपदेश तथा भाषा सम्बन्धी टिप्पणियां

(३)

(१) यज्ञो वै कर्म—(१।२।१) यज्ञ नाम है कर्म का।

(२) वाग् वै यज्ञः—(१।२।२)—वाणी को भी यज्ञ कहते हैं।

(३) भूमा वा ऽ अनः (१।२।६)—'अनस्' शब्दका अर्थ है बहुतायत।

(४) यज्ञो वा ऽ अनः (१।२।७)—अनस् नाम यज्ञ का भी है।

(५) यतो ह्येव युञ्जन्ति ततो विमुञ्चन्ति (१।२।८)—जहाँ जोड़ होता है वहीं अलग भी किया जाता है।

(६) अग्निर्हि वै धूः (१।२।९) अग्नि ही (गाड़ी का) जुआ है।

(८) यजमानो वै यज्ञपतिः (१।२।१२) यजमान ही यज्ञपति है।

(८) यज्ञो वै विष्णुः (१।२।१३) यज्ञ ही विष्णु है।

(९) यावतीभ्यो ह वै देवताभ्यो हवींषि गृह्यन्त ऽ ऋणमु हवै तास्ता मन्यन्ते। (१।२।१९)

जिन देवताओं को हवि दीजाती है वह समझते हैं कि यजमान का हमारे ऊपर क़र्ज़ है।

(१०) यज्ञो वै स्वः (१।२।२१) यज्ञ ही प्रकाश है।

(११) मध्यं वै नाभिः (१।२।२३) नाभि का अर्थ है मध्य (बीच)।

ऋषि

[श्री पं० राजाराम पाण्डेय 'मधुप']

स्वामी यदि आते नहीं भारत के मध्य आप
घूम २ सोती हिन्दू जाति को जगाता कौन ?
तर्क औ वितर्क को दिखाते यदि आप नहीं
आह विधवाओं औ अछूतों की मिटाता कौन ?
शुद्ध चित्त हो के यदि शुद्धि को सिखाते नहीं
नष्ट भ्रष्ट होती आर्य्य-सत्ता को बचाता कौन ?
'मधुप' कहीं जों काव्य-रस में लुभाते आप
वेदों की सुरीली राग जगमें सुनाता कौन ?

विचार तरंग

मतवाला साथी

ए मेरे साथी ! तू मतवाला मत बन। यह विशाल भवन जिसको तू देख रहा है—क्या यों ही बन गया ? तुझको पता क्या है कि न जाने कितने नन्हें नन्हें से करों ने इसमें हाथ लगाया होगा ? न जाने कितनी कोमल अंगुलियां इसमें कलुषित हुई होंगी ? न जाने कितने सहृदयों को आघात पहुंचा होगा ? यही नहीं न जाने कितने वीरों के रक्त विन्दु इसमें काम आये होंगे।

यह मैं मानता हूं कि यह तेरा है। तेरा इस पर अधिपत्य है। नहीं नहीं तुझको इसके स्वामी बनने पर गर्व है। तू गर्व में चूर रह, पर क्या तू चाहता है कि इस सम्पत्ति को धूल में मिला दूं ? यह सम्पत्ति तेरे पूर्वजों ने तुझे सौंपा है। क्या वे यह जानते थे कि तू नई तरंग में आकर इसको बर्बाद कर देगा ? यदि ऐसा होता तो किसी अच्छे करों में यह धरोहर रक्खी जाती।

तू समुद्र में घूम रहा है ? समुद्र की लहरें देखता है तो हृदय में आता है कि उन पर झूलूं। तू उन पर अवश्य झूल, पर जिस नाव पर बैठा हुआ है उसको डुबा मत।

तू मुझसे कहता है कि इस समय देश को मेरी ज़रूरत है। जा—अवश्य जा। फिर कहता है कि सब चीज़ों को नष्ट कर दूंगा तभी जाऊंगा। तू नहीं जानता कि संसार में सभी चीजे अपना महत्व रखती हैं। देश को तेरी आवश्यकता है पर क्या धर्म को तेरी जरूरत नहीं ? उसके प्रति तेरा कुछ भी कर्त्तव्य नहीं है। धर्म धर्म रहेगा, और देश तो देश ही है।

देख ! लापरवाही न कर, नहीं तो आर्य्यसमाज का पौधा मुर्झा जायगा एक वार मुर्झाया तो फिर जड़ न लगेगी।

—कुसुम

आर्य्य-समाज और खंडन

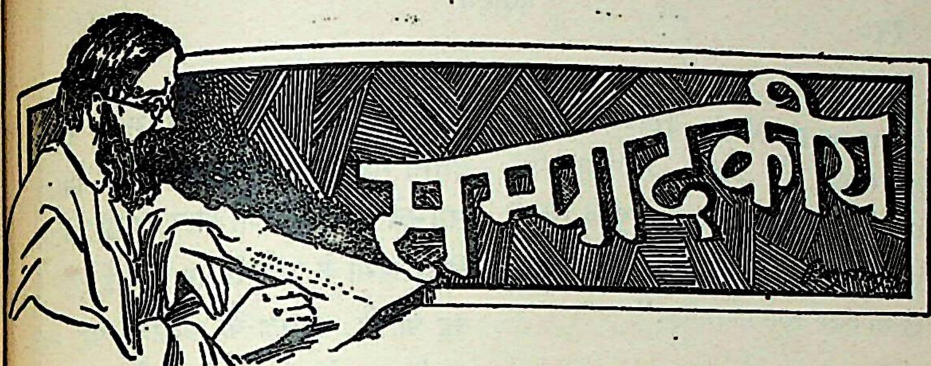
बहुत से सज्जनों के विचार हैं कि आर्य्यसमाज को खंडन खूब जोरों से करना चाहिए तभी आर्य्यसमाज का

प्रचार होगा । खंडन से समाज का प्रचार होगा यह विचार लाख कोशिश करने पर भी मेरे गले उतरता ही नहीं। जो यह कहते हैं कि स्वामी दयानन्द की विजय खंडन से हुई है वे भी बड़े भूल में हैं। स्वामी जी की विजय ब्रह्मचर्य तथा तपोवल से हुई है। भला जिस पुरुष ने ब्रह्मचर्य्य का पालन नहीं किया है उसे इस विषय पर व्याख्यान देने का क्या अधिकार है। और प्रभाव भी उसका क्या पड़ेगा ? जो उपदेशक अपने परिवार के लोगों की मूर्ति का हमेशा ध्यान करता है, उन्हीं के लिये जेसे तैसे पैसा पैदा करने के धुन में दिन रात लगा रहता है; जो भजनीक दिन रात तवले और हारमोनियम ही की पूजा किया करता है, सन्ध्यादि नित्य कर्म भी नहीं करता भला उसे क्या अधिकार है कि किसी की मूर्त्ति वा धर्म का खंडन करे। सबसे पहले तो उसे अपनी नीच वासनाओं के खंडन में दिन रात लगा रहना चाहिये।

भारत की राजनैतिक अवस्था ऐसी घृणित है कि हर जगह झगड़ों का अपराध आर्य्यसमाज पर लाद दिया जाता है। पीछे भले ही वह अपनी सफाई दे डाले मगर पहिले तो हर जगह लोग उसे बदमान कर ही देते हैं। उसका मूल कारण यह है कि अनाधिकारी पुरुष खंडन का बीड़ा उठाए हैं। जिन्हें खंडन का अधिकार है वे तो खंडन करते नहीं, वे तो अपने सिद्धान्तों को सुमनोहर भाषा में लोगों के सामने रखते हैं, उनके निष्कपट हृदय से निकली हुई आवाज़ जनता के हृदय में पहुंच भी जाती है। परन्तु उन अनधिकारियों की गाली गलौज तो ताली और हंसी में ही उड़ जाती है। साथ ही आर्य्यसमाज भी व्यर्थ बदनाम हो जाता है।

प्रकृति भी सृष्टि को सौन्दर्य से विभूषित करने से पहिले आंधी तूफान पतझड़ लाती है। बाद में तो वह सृष्टि को शान्ति से सजाना आरम्भ कर देती है। हमेशा वह तूफान और पतझड़ ही रक्खे तो सृष्टि की शोभा वह क्या खाक बढ़ाएगी। उसी प्रकार आर्य्य समाज के आँधी तूफान के भी दिन गये, अब तो इसे रचनात्मक कार्य्य खास कर अपनी कमजोरी दूर करने की चेष्टा समाज को करनी चाहिए। माना कि उसके पास सत्य सिद्धान्त हैं। मगर उसे आचरण में लाकर लोगों को अनुयायी बनाना चाहिए। सिद्धान्त पीठ पर लादकर संख्या बढ़ाने की चेष्टा को पागलपन कहा जा सकता है।

—सूर्य्यनारायण गुप्त
काशी।



परदे के पीछे

हिन्दू समाज में परदे के पीछे क्या हो रहा है ? एक नई लहर आ रही है जो चाहती है कि हिन्दू समाज को छिन्न भिन्न कर दे। देश में एक नई लहर की ओट में ये सभायें काम कर रही हैं। हिन्दू सभा अब तक थी पर अब "आदि हिन्दू सभा" बड़ी जोर पकड़ रही है। इस के भारतवर्षीय बड़े २ अधिवेशन प्रति वर्ष मनायें जाते हैं। प्रान्तीय तथा नागरिक सभायें भी बन गई हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक "आदि हिन्दू" अपने को आदि हिन्दू समझता है। जिस प्रकार एक मुसलमान समझता है कि वह मुसलमान है और हिन्दू समाज से पृथक् है, ठीक इसी तरह एक "आदि हिन्दू" अपने को हिन्दू समाज से पृथक् करनें की चेष्टा में है। मुसलमानों को भारतवर्ष में आये एक हजार वर्ष हुये हैं और यदि उनसे हमारी कोई शत्रुता है तो केवल एक हजार वर्ष पुरानी। पर "आदि हिन्दू समाज" की हिन्दू-समाज के प्रति शिकायत ५००० वर्ष की है। उनका कहना है कि ५० शताब्दियों से लगातार आर्य्य लोग उनके साथ दुर्व्यवहार करते रहे। आदि हिन्दुओं ने आर्य्यों को अपना मेहमान बनाया, उनको देश में रहने के लिये स्थान दिया, पर इस व्यवहार का फल उनको उलटा मिला। आर्य्यों को उचित था कि आदि हिन्दुओं के साथ प्रेम का व्यवहार करते।

प्रयाग में भारतवर्षीय आदि हिन्दू सभा का एक अधिवेशन गत मास में हुआ। सभापति महोदय आर्य्यों द्वारा किये गये अत्याचारों को बतलाते हुये कहते हैं:—

"Our present degraded condition was thus brought abouts by the greed and racial arrogance of these honoured guest in our own land. They went so for as to assign to us the status of untouchables, a tyranny to which the world's history

bears no parallel. Having thus suffered at their hands for nearly 5000 years, there is rank illiteracy, ignorance and poverty in our community."

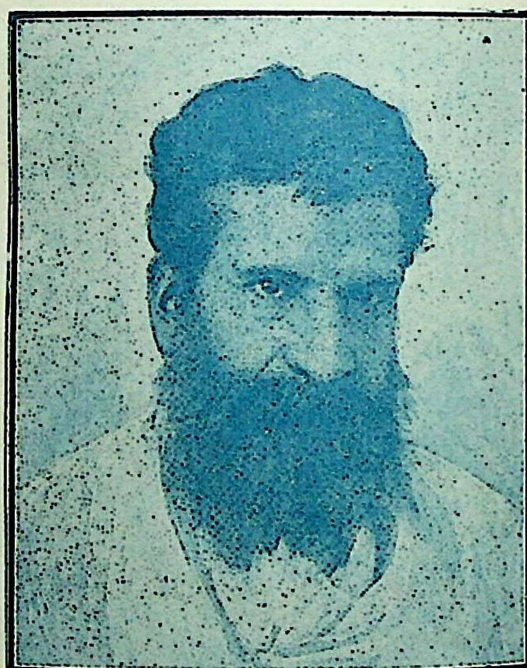
"हमारी यह दुर्दशा लालच तथा जाति द्वेष से युक्त आर्य्यों ने जो हमारे महमान थे, हमारे ही देश में की है । वे यहां तक बढ़ गये कि हमको अछूत कहने लगे और हमारे ऊपर इतने अत्याचार किये जिसका उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं मिलता । ५००० वर्षों से इस प्रकार दलित हो जाने के कारण हमारी जाति अनपढ़ मूर्ख और ग़रीव है ।"

हमको स्वयं लज्जा आती है कि हिन्दू समाज अपने ही भाइयों के साथ इस प्रकार का व्यवहार करता है । हिन्दू समाज ने इन दलित भाइयों के साथ जो अत्याचार किये हैं अक्षम्य है । पर यदि दलित भाई सब मिलकर उच्च समाज को गाली देते तो हमको आपत्ति न होती । हमको यह बात खटकती है तो केवल इस कारण कि ५००० वर्षों से इस प्रकार दलित तथा अनपढ़ जाति में यह विचार किस प्रकार जादू की तरह आ गये । बड़ा आश्चर्य होता है कि हिन्दू समाज में ही इस प्रकार की द्वेषाग्नि क्यों भभक उठी। प्रधान महोदय अपनी जाति को निर्धन समझते हैं परन्तु जो शान हमको "आदि हिन्दू सभा के उत्सवों पर दिखाई देती है वह आर्य्य समाज के उत्सवों पर नहीं रहती । उनके जलूसों में निर्धन होते हुये भी इतनी मोटरें कहां से आजाती हैं।

यह बातें एक समझदार आदमी के हृदय में शंका उत्पन्न कर देती हैं। ये भाव कि दलित भाई उन पुरुषों की सन्तान हैं जो आर्य्यों के आने के पूर्व इस देश में बसते थे एक नीतिज्ञ मस्तिष्क की खोज हैं । हिन्दू समाज इस समय भी अनेकों दलों में विभक्त है और अब इस बात की चेष्टा होरही है कि हिन्दुओं में दो और प्रबल दल खड़े कर दिये जाँय। आदि हिन्दुओं की संख्या देश में कम नहीं है और अगर यह संख्या हिन्दू समाज से अलग होगई तो हमारी बड़ी हानि होगी।

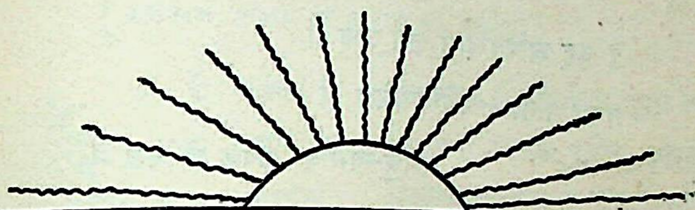
प्रत्येक हिन्दू का यह कर्त्तव्य है कि वह इन आदि सभाओं द्वारा फैलाये हुये भावों को दूर करे तभी हमारा कल्याण हो सकता है । अगर यह लहर रोकी न जायगी तो हिन्दू-मुसलिम समस्या से भी अधिक भयंकर हिन्दू—आदि हिन्दू समस्या हो जायगी ।

वेदोदय



महात्मा मुन्शीराम जी

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३।४।१।१]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित हो जाती हैं।

From west to east are lit up all, when he rises & shines.

भाग २ | पौष संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०६; जनवरी १९३१ आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ | सं० ४ पूर्ण सं० १०

बोध विलास

[श्रीयुत 'कर्ण' कवि महोदय]

[१]

जिसे तू ढूँढ़ रहा नादान ?

है वह यहीं, कहीं भी उसके लिये हो न हैरान ॥

जिसे तू ढूँढ़ रहा नादान ?

[२]

है वह स्नपित दीन दृग जल में,
प्रवल पतित—परितापानल में।
साधु-स्वभाव कृषक के हल में;
पति-प्राणा रमणी के बल में॥
संशय रहित भिक्षु का उर है, उसका वास स्थान॥
जिसे तू ढूँढ़ रहा नादान?

[३]

है वह सुकृती के सुकर्म्म में;
धर्म्मात्मा के सत्य धर्म्म में।
योगी के सुविचार मर्म में;
महारथी के सुदृढ़ वर्म में॥
किन्तु भेषधारी ढोंग के, पास न उसको जान॥
जिसे तू ढूँढ़ रहा नादान?

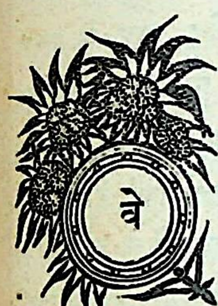
[४]

उषा काल के भक्ति-भजन में;
सायं संध्या के चिन्तन में।
श्रुति-प्रकाश-युत मनो भवन में,
यज्ञ-हवन, सत्सङ्ग, मनन में॥
'कर्ण' उसे सर्वत्र एक रस, रहे मुनीन्द्र बखान॥
जिसे तू ढूँढ़ रहा नादान?

———

वेदों का स्वाध्याय

[राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी, बड़ौदा]



वेदों के संबंध में भारी चर्चा इस समय युरुपखंड के अनेक संस्कृत के विद्वानों में चल रही है । जर्मनी में अनेक विद्वानों ने इस प्रकार की तालिकाएं वैदिक शब्दों संबंधी भी बनाई हैं जिनके पढ़ने से एक मनुष्य को ज्ञात हो सकता है कि अमुक शब्द अमुक वेदमें कितनी बार आया है। यही नहीं परंच आये दिन वेदों के स्वरूप, जन्म तथा उसके विषय संबंधी भी बडे भारी लेख लिखे जा रहे हैं । हम भारतीय आर्य्य युरोप के इन पुरुषार्थी आर्य सज्जनों की स्तुति किये विना नहीं रह सकते । प्रश्न केवल यह है कि उक्त युरोपीय पंडितों के श्रम से क्या हमें वेदों के स्वाध्याय करने में पूरी सहायता मिल सकती है वा नहीं ? इसका उत्तर मैं तो यही दूंगा कि नहीं । श्रीयुत पंडित नरदेव शास्त्री जी सेवक तथा संचालक महाविद्यालय ज्वालापुर (हरिद्वार) ने एक उपयोगी तथा उत्तम पुस्तक ऋग्वेद संबंधी लिखी है । उसके पाठ से हमारे उक्त विचारों की पुष्टि पाठक को एक प्रकार से मिल सकेगी । श्री पूज्य लोकमान्य तिलकजी वा पूज्य श्री सत्यव्रत सामश्रमी आदि अनेक भारतीय नामी संस्कृतज्ञ पंडितों के विचार उस पुस्तक में श्री नरदेवजी ने बड़ी उत्तमता से दर्शा दिये हैं। उनको ज्ञात कर हम कह सकते हैं कि यद्यपि अनेक वर्ग वेदार्थ करने वालों के युरोप तथा भारत में इस समय हो चुके हैं, जैसा कि उक्त उपयोगी पुस्तक जता रही है पर यदि उक्त वर्गीकरण को छोड कर हम इस विषयपर अधिक विचार करें तो हम सब प्रकार के भाष्य वा अर्थ-कर्त्ताओं को दो वर्गों के अन्दर समावेश कर सकते हैं। पहिले अर्थ-कर्त्ता वर्ग का नाम आर्ष रखा जा सकता है और दूसरे का अनार्ष हम रख सकते हैं । आर्ष वर्ग में यास्क, मनु, जेमिनी तथा दयानन्द आदि आते हैं और अनार्ष वर्ग के अर्थ-कर्त्ताओं की श्रेणी में युरोप के सब पंडित, सायणाचार्य्य, तिलक, सत्यव्रत सामाश्रमी आदि आते हैं । प्रश्न हो सकता है कि आपने निरुक्त-कार यास्काचार्य्य को जो उक्त श्रेणी में रखा तो क्या निरुक्त काल में भारत की आर्य जाति में अनेक नास्तिक पंडित वा इतिहासपक्ष वादी पंडित वा यज्ञपक्ष-वादी पंडित देश में नहीं थे यदि थे तो फिर

तीन मार्ग वेदार्थ करने वालों के निरुक्त के समय क्यों न माने जावें और वेदार्थ का एक ही मार्ग आर्ष कैसे माना जावे ? इस प्रश्न के उत्तर में हम बल पूर्वक कहेंगे कि हमारे संस्कृत के कानन वा धर्म शास्त्र वा अन्य किसी स्मृति—ग्रन्थ में लिखा हुआ मिले कि गुरु-पत्नी-गमन का दंड अमुक प्रकार होगा वा होना चाहिये वा है तो इस प्रयोग शैली से यदि कोई यह कहे कि ऋषिकाल में वा मनुकाल में भारत के ब्रह्मचारी गुरु-पत्नी-गामी होते थे तो इस भयंकर संभावना को मानकर भी यही कहा जावेगा कि प्रजा में यदि एक करोड मनुष्य पीछे यदि कोई एक व्यक्ति गुरु-पत्नी-गमन का महापाप करने वाली मान भी ली जावे तो भी उस काल को जिसमें अश्वपति के कथनानुसार देश भरमें एक भी पर-स्त्री-गामी नहीं था केवल कानून के उत्तम बात से ऋषिकाल का नाम दिये बिना नहीं रह सकते। इसी प्रकार नास्तिक वा इतिहास पक्ष का खंडन निरुक्त में होने से मानलो कि यह रोग दो प्रकार की अनार्ष शैली के अर्थ करने का देश में जन्मा ही हो तब ही तो निरुक्त की जरुरत प्राचीन एक आर्ष प्रकार की शैली के अर्थ के प्रचार की हुई। अच्छा अब हमें देखना होगा कि श्री सत्यव्रत सामाश्रमी जी जो वेद के सब शब्दों को यौगिक वा योग रूढी नहीं मानते उनकी बात कहां तक चल सकती है। हम उनके मत के खंडन में निम्न हेतु प्रस्तुत करेंगे।

मैक्समूलर ने माना है कि मानवी पुस्तकालय में ऋग्वेद सब से पुरानी पुस्तक है। इसके अतिरिक्त जहां तक भारत का संस्कृत साहित्य हमें सहायता देता है उस से हम कह सकते हैं कि चारों वेद आदि सृष्टि के मनुष्यों के काल में थे चाहे वह श्रुति रूप ही में क्यों न हों। मनुस्मृति का यह कथन कि सृष्टि के आदि काल में ईश्वर ने वेद के शब्दों द्वारा ज्ञान का उपदेश दिया। इस महर्षिमनु के वाक्य का खंडन जब तक श्रीसामाश्रमी जी वा उनके मतपोषक नहीं करलें तब तक वेद मानवी सृष्टि के आदि काल में होने से कभी इतिहास बोधक वा रूढ़ी शब्द मिश्रित ग्रन्थ नहीं हो सकते। देखिये Settlement Officer पंजाबने बंजर ज़मीन को आबाद करने के लिये एक नगर बसाना चाहा था जिसका नाम Lyalpore (लायलपुर) है। लायलपुर हमारी आँखों के सामने बसा है। हमारे उन मित्रों से जाकर पूछो जिन्होंने लायलपुर को जाकर पहिले बसाया कि तुम बताओ इस लायलपुर में तुम्हारे बसने से पहिले कौन रहते थे उनका हमें इतिहास चाहियें ? सब यही उत्तर देंगे कि हम से पहिले जब वह था ही नहीं तो इतिहास कहाँ से

लावें ? लायलपुर का नाम पंजाब के प्रान्ताधीश (Governor) साहिब के नाम की यादगार में लायलपुर पड़ा है। वहाँ जितने भी मुहल्ले वा बाजार हैं। उन सब के नाम हम बलपूर्वक कह सकते है यौगिक वा योगरूढ़ी हैं। केवल रूढ़ी शब्द वाला एक भी नहीं। जिसको रूढ़ी शब्द हम कहते हैं वह भी आदि काल में यौगिक ही होता है। दृष्टान्त के लिये हमारे बाजार के कूप का नाम "पिपला वाला कूप" है। आजकल इस कूप पर एक भी पींपल का वृक्ष नहीं अंग्रेजों ने हमारे सामने सब काट दिये हैं। पर कूप का पता वा नाम है। इसको रूढ़ी नाम कहते हैं पर इस रूढ़ी शब्द का इतिहास बतला रहा है कि रूढ़ी नाम से पहिले वही यौगिक था। इसलिये डारविन के चेले भले ही लोगों को भ्रम में डालें कि मनुष्य के पित्र बंदर हैं और इसलिये आदिकाल में ऋषि श्रेणि के मनुष्य नहीं थे। केवल इस दशा में वेद में इतिहास और रूढ़ी शब्द माने जा सकते हैं। पर अब तो युरोप के विज्ञान ने बतला दिया कि किसी बन्दर के कपाल वा मग़ज़ Speech centre (वाणि का बीज) नहीं है। इसलिये सामाश्रमी मतवादी सज्जनों को भी मानना पड़ेगा कि आदि काल के मनुष्य भी हमारे समान बुद्धिमान् थे और सच्चा वैदिक तत्व यही है। वेद को हम तो स्वतः प्रमाण वा परतः प्रमाण वा परम धर्म पुस्तक जब मानते हैं तो उसमें असत्य बात का वर्णन नहीं हो सकता। सामाश्रमी जी आदि महानुभावों को चाहिये कि वह यदि ऋग्वेद को सच्चा इतिहास ही मानते हैं तो भी उनको मानना पड़ेगा कि उक्त ऋग्वेद के दूसरे मन्त्र में जो कहा गया है कि ऋषि नूतन वा पूर्व दो प्रकार के होते हैं अर्थात् तीनों कालों में ऋषि होते हैं तो इस सत्य ने निर्णय कर दिया कि वेद का तीनों काल में एक ही प्रकार का अर्थ होगा जिसकी शैली आर्ष कहलावेगी और जिसमें इतिहास वा रूढ़ीवाद नहीं हो सकता। एक अन्तिम महान् हेतु यह भी है कि वेद शब्द का अर्थ विद्या का है। MaxMuller तक ने भी यही माना है कि वेद का अर्थ Knowledge (विद्या) है। इसलिये शास्त्र वा विद्या ग्रन्थ वा विज्ञान में मानवी इतिहास नहीं हो सकता।

(शेष फिर)।

वेदों की मणि

[१०]

स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाडिन्द्र तव्यम्।
रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः॥

[ऋग्वेद १ । ५४ । ११]

(स इन्द्र) हे परम शक्तिवाले (जनाषाट्) और मनुष्यों का सहन करने वाले राजन् (अस्मे) हम लोगों के लिये (शेवृधम्) शान्ति बढ़ाने वाले (द्युम्नम्) यश को (अधि धा) धारण कराइये। और (महि,) बड़े (क्षत्रं) दुख से बचाने वाले (तव्यम्) बल को धारण कराइये। (च) और (नो=नः) हमारे (मघोनः) धनवालों को (रक्षा=रक्ष) सुरक्षित रखिये। (सूरीन्) विद्वानों को (पाहि) सुरक्षित रखिये। (च) और (राये) धन के लिये तथा (स्वपत्या) अच्छी सन्तान युक्त (इषे) अन्न के लिये (नः) हमको (धा) धारण कराइये।

इस मन्त्र में राजा के प्रति प्रार्थना की गई है। राजा के लिये दो विशेषण दिये हैं एक, 'इन्द्र' और दूसरा 'जनाषाट्'। 'इन्द्र' का अर्थ है बहुत शक्ति वाला। और 'जनाषाट्' का अर्थ है मनुष्यों को सहन करने वाला। 'इन्द्र' शब्द 'इदि परमैश्वर्य्ये' धातु से निकलता है। राजा को इन्द्र इसलिये कहते हैं कि वह भिन्न २ प्रकार की शक्तियों का पुंज होता है। कमज़ोर मनुष्य राजा नहीं हो सकता। उसमें आत्मिक तथा शारीरिक तथा मानसिक तीनों प्रकार की शक्ति चाहिये। उसका शरीर रोग रहित और बलवान् हो। उसका आत्मा ऐसा बलिष्ठ हो कि अनेक आपत्तियों के आने पर भी घबराये नहीं। उसका मस्तिष्क इतना प्रबल हो कि गंभीर से गंभीर बात को सोच सके। परन्तु राजा के लिये केवल

'इन्द्र' अर्थात् शक्तिशाली होना पर्याप्त नहीं है। संसार के इतिहास में सैकड़ों बड़े चतुर, बड़े धैर्य्यवान और बड़े वीर राजे हुये जिन्होंने संसार को लाभ तो कम पहुँचाया परन्तु कष्ट अधिक दिये। इसलिये वेद मन्त्र कहता है कि राजा को 'जनाषाट्' अर्थात् मनुष्यों का सहन करने वाला होना चाहिये। "योजनान् सहते सः जनाषाट्"। जो मनुष्यों के साथ सहिष्णुता का वर्ताव करे उसको जनाषाट् कहेंगे। राजा के लिये "जनाषाट्" होना परम आवश्यक है क्योंकि राजा स्वयं अपने भोग के लिये राज्य नहीं करता किन्तु अपनी प्रजा के मतानुसार चलकर उनके हित के लिये। जो पुरुष अपने लोगों के मत की अवहेलना करता है और मनमाने नियम बनाता है वह राजा होने के योग्य नहीं। ऐसे राजा से किस २ बात की याचना करनी चाहिये? पहले 'द्युम्नम्' अर्थात् यश की। परन्तु बहुत से लोग दूसरों पर विजय करके ही यश लेना चाहते हैं। वेद कहता है कि ऐसे यश से कोई लाभ नहीं जो केवल एक व्यक्ति की कीर्ति को बढ़ाये। सच्चा यश वह है जो "शेवृधम्" अर्थात् शान्ति का बढ़ाने वाला हो। जिस यश से दूसरों को दुख पहुंचा वह 'यश' क्या? वह तो यश से उलटा "कुयश" है। दूसरी चीज़ है "तव्यम्" अर्थात् बल। परन्तु इसके लिये भी एक विशेषण है अर्थात् 'त्तत्रम्'। 'त्तत्रम्' का अर्थात् है पीड़ाओं से रक्षा करने वाला। बल दूसरों को दुख देने के लिये नहीं है किन्तु संसार को आपत्तियों से बचाने के लिये। जिस प्रकार बलवान पिता अपने बल से अपनी सन्तान को कुचलता नहीं किन्तु उसकी रक्षा का कारण होता है, उसी प्रकार राजा को चाहिये कि अपने प्रजाओं को ऐसा बल दे जिससे उनपर कोई आपत्ति न आने पावे। सन्तान अपने पिता के बल पर अभिमान करती है, उस बल से उसे डर नहीं लगता, इसी प्रकार यदि राजा अपने बल को प्रजा के हित के लिये खर्च करे तो प्रजा उस बल से भयभीत होने की अपेक्षा उस पर प्रसन्नता और अभिमान प्रकट करने लगे। तीसरी बात है "नो मघोनः रक्ष" हमारे धनवालों की रक्षा कीजिये। राजा से धनिकों को यह डर न होना चाहिये कि वह उनके धन पर डाह करेगा अथवा उसका छीन लेगा। चौथी बात है 'सूरीन् पाहि' अर्थात् विद्वानों की रक्षा कीजिये। देश और जाति के लिये धन और विद्या दोनों की ज़रूरत है धनवान् परन्तु विद्याहीन जाति बहुत दिनों जीवित नहीं रह सकती। इसलिये धनवान् और विद्वान् दोनों सुरक्षित रहने चाहियें। पांचवीं बात है "स्वपत्या इषे राये" 'सु+अपत्या' अर्थात् उत्तम सन्तान युक्त धन और भोजन से हमको सम्पन्न कीजिये।

अर्थात् प्रत्येक मनुष्य के लिये तीन बातें दीजिये।

(१) अपत्य-सन्तान।

(२) सु अपत्य अर्थात् वह सन्तान अच्छी, विद्या और गुण युक्त हो।

(३) इषे अर्थात् उसको खाने की कमी न हो।

जिस जाति में सन्तान ही न धनिक या सन्तान वाले भूखे हों उसकी संवृद्धि हो ही नहीं सकती। बच्चे हैं तो खाने को नहीं। खाने को है तो घर का उजाला लाल नहीं। इस प्रकार के दोनों परिवार दुखी हैं। वेद कहता है कि राजा को ऐसा सुप्रबन्ध करना चाहिये कि जन-वृद्धि; विद्यावृद्धि और धन वृद्धि तीनों व हों।

———

श्री गणेशदत्त जी, मंत्री आर्य्य समाज जाम्पुर, डेरा ाजीखान लिखते हैं:—

"जब से "वेदोदय" निकला है तभी से मैं उसे ध्यान पूर्वक पढ़ रहा हूँ, सच जानिए "वेदों की झांकी" वाला निबन्ध तो ऐसा आनन्द देता है कि बस कुछ कहा नहीं जा सकता बुद्धि प्रसन्न हो उठती है आपके प्रति श्रद्धा का भाव उमड़ने लगता है। दर्शनों की गुथी सुलझाने वाले लेख भी इतने हृदयग्राह्य थे कि वाह २। सम्पादकीय टिप्पणियों का स्वाद निराला सार, यह कि जिस दृष्टि से देखा जाय पत्र वह अजीब काम करता है। जिसकी देशभर को अत्यन्त आवश्यक है आर्य्य-समाजियों के लिये तो सचमुच अमृत है। उच्च-विचार और सरल भाषा का नमूना है। प्रभू आपको पूरी सफलता प्रदान करें, यही मनोनीत कामना है।"

पुराणों पर एक दृष्टि

[श्री पं० सत्यव्रत उपाध्याय बी० ए०, एल० टी०]



श्चात्य हो यापौर-रत्य वैदिक धर्मी हो या अन्य धर्माव-लम्बी, यह तो सभी मानते हैं कि वेदों से प्राचीन न तो कोई पुस्तक है और न वैदिक धर्म से प्राचीनतम कोई और धर्म ही है। किन्तु जगत् परिवर्त्तन शील है और इसमें अनेक बार परिवर्त्तन हुये हैं इसलिये हमें यह मानने में कोई संकोच नहीं है कि धार्मिक जगत् में भी परिवर्त्तन होता रहा है। फलतः वेदों के स्थान में अन्यान्य पुस्तकों का प्रचार तथा वैदिक धर्म के स्थान में अन्य अनेक मत यथावसर बल पकड़ते रहे हैं।

वैदिक धर्म के ह्रास के सम्बन्ध में जब हम विचार करते हैं तो हमको यह मानना पड़ता है कि एक समय ऐसा आया जब कि दार्शनिक भूल-भुलइयों में पड़ कर आर्य्य जाति कुछ समय के लिये उन्हीं उलझनों को सुलझाने में लगी रही और वेदों का पठन पाठन न सही तो कम से कम मनन तो कुछ स्थगित सा हो गया। लोग केवल योग द्वारा आत्म बुद्धि या दार्शनिक ग्रन्थियों के ही फेर में पड़े रहे। फल यह हुआ कि हमारा साहित्य उत्तरोत्तर बढ़ता गया। एक एक विषय पर अनेकानेक ग्रन्थ लिखे जाने लगे और अवस्था इतनी परिवर्त्तित हो गई कि लोग मूल को भूल गये और शाखाओं और पल्लवों के दर्शन पर ही सन्तुष्ट होने लगे।

जब दशा अधिक बिगड़ने लगी तब कुछ विद्वानों ने करवट बदली और अपनी स्मृति के आधार पर वेदों की भाषा से कुछ भिन्न साधारण संस्कृत भाषा में उपदेश देकर लोगों को फिर अपने कर्त्तव्य पथ पर लाने का प्रयत्न किया। और वह युग उपनिषद् तथा स्मृतियों का कहना चाहिये। अब क्या था स्मृतियों की भरमार होने लगीं। जिसके मन में आया उसीने उपनिषद् और स्मृतियां लिखनी आरम्भ कर दीं और अब केवल कुछ थोड़े से इने गिने विद्वानों को छोड़कर लोग वेदों का पठन पाठन भूल ही गये। हां इतना फिर भी रहा कि जो कुछ लोग कहते थे वेदों के ही नाम पर कहते थे। मांस का उपदेश है तो वेदों के नाम पर (वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति) मदिरा का पान है तो वेदों के नाम पर। कुछ भी कहो, वेदों के नाम पर सब कुछ सिद्ध ही माने जाने लगा। लोगों में आलस्य

का प्रभाव जम चुका था। अविद्या अपना प्रभुत्व जमाने लगी। कहीं कहीं प्रकाश की चिनगारियां दिखलाई पड़ती थीं पर अधिकांश संसार निविडतम अन्धकार में गोते खा रहा था। इसी काल में वाम-मार्गियों ने बल पकड़ा और इसी युग में पुराणादि ग्रन्थों का प्रादुर्भाव हुआ और अनेकानेक मतमतान्तर फैल गये। प्रत्येक अपने अपने मत की शक्ति का परिचय देने के लिये मन गढ़न्त गाथायें गढ़ने लगा और एक से एक बढ़कर चमत्कार हमारे सामने लाये गये। इतनी बात अवश्य रही कि इसमें वेदों का सहारा लेने की चेष्टा की गई। लोग तो वेदों को भूल ही गये थे। दर्शन भी दुष्प्राप्य थे। बस कुछ भी कहो 'इति श्रुतिः' कह दो, फिर तो सभी वेद वाक्य समझा जाने लगा और पुराण भी वेदों के ही अङ्ग माने जाने लगे।

इस प्रकार पुराणों का महत्व बढ़ गया और अब दर्शनों और उपनिषद्, स्मृति आदि के स्थान में पुराण ही सर्वोपरि गिने जाने लगे। पुराणों की संख्या बढ़ते २ अठारह हो गई और फिर उपपुराणों की बारी आई और इस समय नहीं कहा जा सकता कि वास्तविक पुराण कितने हैं। मैंने एक दिन पब्लिक लाइब्रेरी, प्रयाग के सूची पत्र को उठा कर देखा तो मुझे ३१ पुराण मिले और यदि आधुनिक चम्बर-पुराण (हिन्दी) को भी मिला दिया जाय तो संख्या ३२ इस प्रकार हो जाती है।

१—देवी भागवत २—भागवत ३—शिव-पुराण ४—गणेश-पुराण ५—मार्कण्डेय-पुराण ६—ब्रह्मवैवर्त्त-पुराण ७—वामन-पुरण ८—भविष्य-पुराण ९—अग्नि-पुराण १०—कल्किपुराण ११—बृहद्धर्म-पुराण १२—सौर पुराण १३—ब्रह्म-पुराण १४—कालिका-पुराण १५—गरुड-पुराण १६—पद्म-पुराण १७—वायु पुराण १८—वाराह-पुराण १९—कूर्म पुराण २०—विष्णु-पुराण २१—बृहन्नारदीय-पुराण २२—स्कन्द-पुराण २३—नरसिंह-पुराण २४—मत्स्य महापुराण २५—विष्णुमहा-पुराण २६—ब्रह्माण्ड महा-पुराण २७—नारदीयमहा-पुराण २८—आदि-पुराण २९—साम्ब-पुराण ३०—मत्स्य-पुराण ३१—नीलमत-पुराण ३२—चम्बर-पुराण (हिन्दी)।

मेरा तो विचार है कि यदि अधिक खोज की जाय, जो कि व्यर्थ ही है। तो संख्या और भी अधिक निकलेगी। अस्तु, विचार इस बात का करना है कि इन सब इस प्रकार के ग्रन्थों का नाम पुराण क्यों रक्खा गया।

मेरी तुच्छ बुद्धि में तो यह आता है कि 'पुराण' शब्द 'प्राचीन' के लिये आता है। उपनिषदों में पुराण परमात्मा तथा आत्मा का ही वाचक है, 'ऐतिह्य' पुराण आदि वाक्यों में 'पुराण' शब्द वेद

तथा ब्राह्मणादि प्राचीन ग्रन्थों के लिये प्रयुक्त हुआ है इसलिये इन पुराण-कर्ताओं ने इन नवीन ग्रन्थों के भी नाम 'पुराण' ही रक्खे जिससे कि लोगों पर इनका महत्व जम जाय, और साथ ही इस बात का भी ध्यान रक्खा कि किसी बड़े महात्मा के नाम का ही आश्रय लिया जाय जिससे कि इनकी सत्यता के मानने में किसी को संकोच न हो। यही कारण है कि महर्षि व्यास के गले इन पुराणों की कृति मढ़ी गई, और जिस प्रकार महाभारत में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई इन पुराणों में भी जब जिसके मन में आया नई २ गाथाओं का समावेश होने लगा। यह राय मेरी ही नहीं है अपितु प्रत्येक विचार शील व्यक्ति इस बात को मानता है। श्री माननीय पण्डित मदनमोहन मालवीय जी ने भी इसी प्रकार की कुछ सम्मति अपने किसी व्याख्यान में एक बार प्रगट की थी जिसका हवाला कई वर्ष हुये आर्य्य मित्र में मेरे दृष्टिगोचर हुआ था। मिलावट केवल श्लोकों या विषय की ही नहीं, अपितु संख्या में भी जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है वृद्धि होती गई। राजा भोज की बनाई 'संजीविनी' में लिखा है कि 'मार्कण्डेय' और 'शिव पुराण' को व्यास के नाम से जिन पंडितों ने बनाया उनको हस्त-छेदन का दण्ड मिला। (सत्यार्थ प्रकाश पृ० ३०५ एकादश समुल्लास) इससे यह पता चलता है कि महर्षि व्यास का तो केवल नाम ही है वस्तुतः इनके बनाने वाले कोई और ही हैं।

ऐसी दशा में पुराणों को वह मान नहीं दिया जा सकता, जो कि वेदों को है और न पौराणिक धर्म प्राचीन धर्म ही कहा जा सकता है। यदि व्यास के भी बनाये होते तो भी अर्वाचीन ही माने जाते क्योंकि फिर तो ये लगभग ५००० वर्ष ही के पुराने होते। अस्तु।

'धर्म जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः'

यह तो पौराणिक भी मानते हैं कि वेद स्मृति और पुराणों में यदि किसी विषय पर विरोध पाया जाय, तो मुख्य वेद माननीय हैं। यदि स्मृति और पुराणों में भेद-भाव है तो प्रथम स्मृति, तत्पश्चात् अन्तिम श्रेणी पुराणों की। जब यही बात है तो पुराणों को भला वेदों का मान कहां दिया जा सकता है।

इतिहास

कुछ लोग कहते हैं कि पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं। यदि यह मान भी लिया जाय तो क्या ऐतिहासिक ग्रन्थों की धार्मिक ग्रन्थों में गणना की जा सकती है? कभी नहीं। इतिहास का कार्य्य तो वे दे सकते हैं। पर उसको धार्मिक महत्व कभी नहीं दिया जा सकता।

पहिले तो इसमें भी अधिक सन्देह है कि ऐतिहासिक सम्बन्धी सत्यता भी इनमें कितनी मात्रा में है।

क्यों त्याज्य हैं

हम बता चुके हैं कि पुराणों की वेदों से तुलना नहीं की जा सकती। स्मृतियां भी इसकी साक्षी हैं। "स्मृतिनां समुच्चय" अत्रिसंहिता पृ० ३५ अन्त से १० या १२ श्लोक ऊपर में लिखा है कि—

> वेदैर्विहीनाश्च पठन्तिशास्त्रम्
> शास्त्रेण हीनाश्च पुराणपाठाः;
> पुराणहीनाः कृषिणो भवन्ति
> भ्रष्टास्ततो भागवता भवन्ति ॥
> ज्योतिर्विदोह्यथर्वाणः कीराः
> पौराण पाठकाः। श्राद्धे यज्ञे
> महादाने वरणीयाः कदाचन ॥
> श्राद्धश्च पितरं घोरं दानं चैव
> तुनिष्फलम् । यज्ञे च फल-
> हानिः स्यात्तस्मात् तान् परि-
> वर्जयेत् ॥

इनसे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि--

(१) जो वेदों से विमुख हैं वे ही पुराणों का आश्रय लेते हैं।

(२) पुराण पाठियों की गणना कीर (शुक) पक्षियों में हैं। पाठ कर लो समझने से कोई तात्पर्य नहीं।

(३) यज्ञादि कार्यों में इनको न बुलावे क्योंकि इनके आने से फल की प्राप्ति नहीं होती और ऐसों को दान देना भी निष्फल ही है।

यह स्मृतियाँ आजकल आर्य समाजिकों की तो बनाई हैं नहीं कि यह कह दिया जाय इन लोगोंने पौराणिकों के प्रति अश्रद्धा प्रगट करने के लिये ऐसे श्लोकों का समावेश कर दिया हो। अपितु इससे यह सिद्ध होता है। कि उस समय भी पुराणों के प्रति कैसा विश्वास था।

उस समय को जाने दीजिये, देखिये अभी हाल ही में 'कल्याण' के रामायणाङ्क [अगस्त १९३०] के पृ० २० पर 'श्री रामायण रहस्य' लेख में; श्री काञ्ची प्रतिवादि भयङ्कर मठाधीश्वर जगद् गुरु श्री भगवद् रामानुज सम्प्रदाचार्य श्री १९०८ श्री अनन्ताचार्य स्वामी जी महाराज क्या लिखते हैं :—

"इतिहास" और पुराण इन दोनों में से इतिहास प्रबल है। क्योंकि पुराणों के समान देवता पक्षपात इतिहासों में नहीं है। सात्त्विक; राजस; तामस भेद से भिन्न भिन्न षट्क त्रय-विभक्त पुराण भिन्न देवता-महत्त्व--प्रतिपादक मानें जाते हैं। यथा—

> 'अग्नेः शिवस्य माहात्म्यं
> तामसेषु प्रकीर्त्यते।
> राजसेषु तु कल्पेषु महात्म्यम-
> धिकं हरेः ॥
> यस्मिन् कल्पे तु यत्प्रोक्तं पुराणं ब्रह्मणा पुरा।
> तस्य तस्य तु माहात्म्यं तत् स्वरूपेण वर्ण्यते ॥
> (मत्स्य पुराण)

पुराण पेक्षया इतिहास का महत्त्व 'इतिहास पुराणं पञ्चमम्' 'इतिहास पुराणाभ्याम्' इस प्रकार के नाम निर्देशों से ही मालुम हो जाता है।.........इसी विधि के अनुसार 'इतिहास पुराणम्' निर्देश हुआ है। इससे सिद्ध है कि पुराण की अपेक्षा इतिहास श्रेष्ठ है।"

इन उपर्युक्त शब्दों से स्पष्ट है कि :—

१—पुराण और इतिहास में इतिहास श्रेष्ठ है।

२—पुराणों में देवता पक्षपात है।

३—पुराणों की रचना भिन्न २ कल्पों में हुई (मत्स्य पुराण)।

४—ब्रह्मा ने पुराणों का उपदेश दिया।

५—तामस कल्पों में शिव का माहात्म्य और राजस में हरि का माहात्म्य बताया गया है।

जब हम इस पर विचार करते हैं तो हम इस उलझन में पड़ जाते हैं कि

(१) पुराण धार्मिक ग्रन्थ तो दूर रहे इतिहास में सम्मिलित नहीं किये जा सकते।

(२) पुराण एक समय में बने या समयान्तर में।

(३) उनको ब्रह्मा ने बनाया या व्यास जी ने।

(४) तामस और राजस कल्पों का तो पता चल गया पर सात्विक कल्प क्या है ही नहीं? यदि है तो उसमें किसका माहात्म्य है?

अस्तु, हमारा उद्देश्य केवल यही था कि पुराणों के प्रति अनेक विद्वानों की अब भी कैसी धारणा है। और आप पायेंगे कि जगद् गुरु श्री अनन्ताचार्य जी के उपरोक्त लेख से हमारे कथन की कितनी पुष्टि होती है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने तो पुराण तथा इनके गपोड़ों का वर्णन सत्यार्थ प्रकाश के ११ वें समुल्लास में सविस्तर कर ही दिया है।

यदि कहीं २ कुछ सत्य की चिनगारियां दिखलाई भी पड़ती हैं तो उनकी गणना भी विष मिले अन्न के ही समान है इसलिये भी त्याज्य ही हैं।

पुराणों में परस्पर विरोध बहुत मिलता है। यह पुराणों का ही विरोध था जिसने वैष्णवों को शैवों का और शैवों को शाक्त का वैरी बना दिया और जिस भारतवर्ष में पहिले एक वैदिक मत था उसके स्थान में अनेक मत उत्पन्न हो गये।

तीसरे इन पुराणों में देवता पक्षपात तथा देवों (बड़ों) की निन्दा की भी भरमार ही है। यथा :—ब्रह्मा, मन्मथ व सरस्वती की कथा (भागवत स्कन्ध ३। अ० १२) शिव का ब्रह्मा को डाटना। (शिव पुराण)।

श्रीकृष्ण की रासलीला आदि का वर्णन सब को विदित ही है। उन मन गढ़न्त कहानियों को लिखना हम उचित नहीं समझते। विचारवान् के लिये इतना ही पर्याप्त है।

देव निन्दा के अतिरिक्त इनके भीतर असङ्गत तथा असम्बद्ध कथायें मिलती हैं जिनकी गणना केवल गपोड़ों में ही की जा सकती है। शिवलोक, शिव के गण, शिव की सेना, शिव जी की बरात का वर्णन किससे छिपा है। शिव की कैलाश यात्रा में शिव, मय अपने गणों के तथा विष्णु, ब्रह्मा ३३ करोड़ देवता, दश प्रकार के देवता, दिशापति अपने गणों के सहित, सर्पादि पहाड़, सातों समुद्र, ८८ हजार मुनियों का समूह, सब सेनापति—करण के साथ १ करोड़, भैरव के साथ १० करोड़, विकृत के साथ ८ करोड़ और परयात्रिक के साथ ९ करोड़ इत्यादि क्या यह सब गपोड़ा नहीं है? क्या यह असम्बद्ध नहीं हैं।

सस्ती मुक्ति तथा आलस्य और पापों की वृद्धि

पुराणों ने मुक्ति तो इतनी सस्ती कर दी है कि जिसका कुछ अन्त नहीं। यही कारण प्रतीत होता है कि आलसी तथा अनेक व्यसनों में रत मनुष्यों को ये अच्छे लगें और उनकी देखा देखी और लोग भी इस सस्ती मुक्ति के लिये लालायित होने लगे। फिर किसको पड़ी कि यम नियमादि कठोर व्रतों का पालन करे। 'गंगे गंगेति यो ब्रूयात् योजानानां शतैरपि। मुच्यते सर्व पापेभ्यो'—इत्यादि से प्रतीत होता है कि इन पुराणों ने धर्म की क्या दशा करदी, लोगों को विश्वास दिलाया गया कि जो चाहो सो करो एक बार 'गङ्गा' कहने मात्र से ही तुम निष्पाप हो सकते हो।

शिव पुराण वर्णित शिवरात्रि विधि और गुण निधि की कथा को पढ़िये और विचारिये कि आप किस परिणाम पर पहुँचते हैं। लिखा है कि गुणनिधि जो कि महा अत्याचारी, पापी और दुराचारी था कुछ न मिलने के कारण भूखा रहा। उस दिन शिवरात्रि व्रत का दिन था। मन्दिर में वह यह अवसर ढूंढ़ने लगा कि कैसे चोरी कर सकूं। शिव मूर्त्ति पर चढ़े हुए नैवेद्य की चोरी की।

लोगों ने जब पीछा किया वह भागा और गिर कर मर गया। यम के दूत व शिव के गण उसको लेने आये। दोनों में झगड़ा होने लगा। शिव के गणों ने कहा कि 'यह निष्पापी है क्योंकि इसने दो धर्म किये (१) तो अपना कपड़ा फाड़ कर शिव जी के नैवेद्य की चोरी के लिये रोशनी की। दूसरे रात भर जागता रहा और भूखा और शिव का नाम सुना

रहा'। बस यम के दूत देखते ही रहे और शिव के गण उसको शिव लोक में ले गये। कहिये जब यही दशा है तो यम किस प्रकार प्रबन्ध कर सकते हैं।

और लीजिये पूतना की मुक्ति का हाल पढ़िये भागवत स्कन्ध में १० पूर्वार्द्ध अ० ६ में क्या लिखा है।

पूतना लोक बालघ्नी राक्षसी रुधिराशना।
जिघांसयापि हरये स्तनं दत्त्वाप सद्गतिम्।
यातुधान्यपि सा स्वर्गमवाप जननीगतिम्॥

जब राक्षसी वृत्ति वाले व्यक्ति भी सरलता से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं तब सांसारिक विषयों से मुख मोड़ कर; यम नियमादि कठोर व्रतों का पालन करके कष्ट-प्राप्य मुक्ति की किसको इच्छा होगी? क्या यह मनुष्यों को आलसी और पापी बनाने के लिये पर्याप्त नहीं है? यह यही विश्वास है कि हम केवल नाम लेकर या केवल एक दो शब्द सुन करही; चाहे कितने ही पापी क्यों न हों पाप से तर सकते हैं, कि हम पाप करने से नहीं डरते।

मुक्ति एक ही को नहीं; अपितु अनेक गोकर्ण आदि की कहानियां तो ऐसी मिलेंगी कि जहां केवल एक के कारण सारे नगर को भी स्वर्ग में स्थान दिया गया है। कहिये इस पौराणिक धर्म को छोड़कर और भी कहीं आपको इतनी उच्छृङ्खलता मिलेगी।

'समरथ को नहिं दोष गोंसाई' कह कर अनेकानेक पाप करते हुये भी अपने को निर्दोषी प्रमाणित करने का भी पाठ इन पुराणों ने पढ़ाया है। भागवत में आता है कि:—राजा—संस्थापनाय धर्मस्य प्रशमायेतरस्य च।

अवतीर्णो हि भगवानंशेन जगदीश्वरः॥२७
स्कन्ध १०। म० २२।

कथ धर्मसेतूनां वक्ताऽभिरक्षिता।
प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् परदाराभिमर्शनम्।
आप्तकामोहियदुपतिःकृतवान्वै जुगुप्सितम्

शुकः—धर्मव्यतिक्रमो दृष्ट ईश्वराणांच साहसम्।

तेजीयसां न दोषाय वह्नेः सर्वभुजो यथा॥ ३०॥

ईश्वराणां वचं सत्यं तथैवाचरितं क्वचित्।

राजा परीक्षित ने शुकदेव जी से पूछा:—

अंशावतार लेकर धर्म की रक्षा के हेतु जगदीश्वर संसार में आये। उन्होंने दूसरों की स्त्रियों के साथ अनुचित तथा निन्दित कर्म क्यों किया? शुकदेव जी उत्तर देते हैं कि जो समर्थ हैं उनको साहस है उनको कोई दोष नहीं है। समर्थवान् के शब्द तथा उनके आचरण सत्य हैं।

यह भागवत द्वारा शुकदेव जी का उपर्युक्त शब्दों में उपदेश का ही फल है

कि आजकल प्रत्येक गंजेड़ी, दुराचारी, मद्यपी तथा मांसाहारी भी गेरुये वस्त्र धारण करके अपने आप को समर्थ बताता है और मनमाना आचरण करते हुये भी भोले भाले लोगों से अपने आप को पुजवाता है। लोग भी हां में हां मिलाकर कह देते हैं 'हां भाई इनका क्या कहना। यह तो समर्थ हैं। इनको सब सिद्ध है' !

अवतार

इसमें सन्देह नहीं कि अवतार वाद की पुष्टि पुराण बड़े बल से करते हैं पर जब हम इस वाद को कसौटी पर रखते हैं तो इसकी संख्या में ही बड़ा विरोध पाते हैं और साथ ही और भी मतभेद मिलता है और मनुष्य इस उलझन में पड़ जाता है कि क्या माने और क्या न माने। कहीं अवतारों की संख्या कुछ है, कहीं कुछ, और कहीं असंख्य अवतार बताये जाते हैं। कहा जाता है कि कृष्ण पूर्णावतार थे पर कहीं मिलता है कि अंशावतार थे। कहीं राक्षसों के मारने के लिये अवतार हैं तो तो कहीं केवल कौतूहल हेतु ही अवतार होगया है। यथा विष्णु का दुबारा योषित् रूप (भागवत स्कन्ध ८। अ० १ २।)

तिथियों की महिमा के वर्णन का तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। पद्म-पुराण को उठाइये और एकादशी आदि तिथियों के महिमासागर में गोते लगाइये। पर किस परिणाम पर पहुंचिये यह नहीं कहा जा सकता। यदि भाषा पर विचार किया जाय तो भाषा अवश्य सरल है। कविता कामिनी को सजाने के लिये शब्दों के लालित्य का अच्छा समावेश है। कहीं अच्छे विचार भी प्रगट किये गये हैं।

पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि थोड़ी सी अच्छाई के लिये मनुष्य जीवन का बहुमूल्य समय व्यर्थ नष्ट किया जाय। जिस प्रकार भूसी के ढेर से कुछ अन्न के दानों के लिये परिश्रम करना व्यर्थ है उसी प्रकार पुराणों का पठन पाठन भी भी व्यर्थ सा ही है। आपने देखा कि इनमें परस्पर विरोध है। बड़ों की निन्दा है। सस्ती मुक्ति दिलाकर लोगों को आलसी तथा पाप कर्म रत रहने का संकेत है, और असम्बद्ध तथा असंबद्ध गपोड़ों का समावेश है, इसलिये ये न ऐतिहासिक ही, न धार्मिक ही हैं और यह इसी पौराणिक शिक्षा का फल है कि जिसने भारतवासियों को एक ईश्वर तथा उसके ज्ञान वेदों से विमुख कराया और उनको दुःख सागर में गिराया। और इसी लिये अन्त में कहना पड़ता है कि 'विषसंपृक्तान्नवत् त्याज्या:'।

जीवन-धारा

गतांक से आगे

[३]



ज़मींदार साहब कमरे में बैठे अपनी स्त्री से बातें कर रहे थे। दिन भर काम करते २ कुछ थकावट आगई थी। बोले—"ज़रा, मेरे पैरों को दबा देतीं। कुछ थकावट आ गई है।" बुढ़िया स्त्री हाथों से पैर दबाने बैठ गई। वृद्धावस्था थी, शरीर कृशित था। अतः बहुत यत्न करने पर भी वह बहुत धीरे दबाती।

ज़मींदार साहब बोले—जब से लाल्लू चल बसा। मेरे पैरों में इसी तरह की पीड़ा होती रहती है। क्या करूं इस बुढ़ापे में यह आपत्ति आ गई। मैं अपने को बड़ा भाग्यवान् समझता था और पूरी आशा थी कि यह जीवन अब अच्छी तरह कटेगा परन्तु अब तो बड़ी निराशा मालूम होती है। (ज़रा ज़ोर से दबातीं तो अच्छा होता)।

बुढ़िया स्त्री ने माथा ठोंका। बोली—"क्या कहूं। यह वहू जब से इस घर में आई कुछ न कुछ अनर्थ ही हुआ। जिस दिन इसने पैर रक्खा दस सेर दूध में बिल्ली मुँह दे गई। उसी दिन से बराबर यही देख रही हूँ कि कुछ न कुछ होता ही आया है। तुम बीमार पड़े, छः महीने खटिया पर पड़े रहे। हज़ारों रुपया फुंक गया तब कहीं चेते। लाल्लू भी तुम्हारी सेवा में बीमार पड़ा। अरे यह भंडारे में में क्या खटका हुआ।"

पति को छोड़कर बुढ़िया भंडारे में गई। अरी बिल्ली खटर खटर कर रही है—निकल, नहीं मारती हूँ।

"मां जी! मैं हूँ। कल के लिये धोने को दाल भूल गई थी। अब याद आई तो दौड़ी आई।"

"और चाबी तो तू मुझे दे गई थी।"

"हां! अंधेरे में समझा था कि ताला बन्द हो गया पर वह खुला ही पड़ा था। अभी दाल की याद आई तो उसे खुला ही पाया।"

"अब तो घर का सत्यानाश हुआ ही चाहता है। मैं सब बातें समझती हूं। ले ताली, अबकी बार ताला खुला मत छोड़ना नहीं तो अनर्थ ही हो जायगा।"

ताली देकर बुढ़िया अपने पति के पास आ बैठी। और पैर दबाने लगी। बोली "मैं क्या कह रही थी? हां याद आ

गई। आजकल की बहुयें बड़ी आफ़त की परकाला हुआ करती हैं।"

ज़मींदार साहब "बिचारी तो अपने ही दुःख भोग रही है। उसको क्यों ताने देती हो। ऐसा सोने सा शरीर-विधवा का। न मालूम बिचारी का जीवन कैसे कटेगा।"

"कटेगा कैसे! दिन भर काम करती रहे, रात को ईश्वर भजन, वह है ही ऐसी? क्यों अपने पति को मरने दिया। जो भाग्य में होगा उसी तरह जीवन बिताना होगा।"

ज़मींदार बोले "ऐसी जली कटी सुनाने से काम नहीं चलेगा। बड़े प्यार के साथ उससे बोलो। जहाँ तक हो सके उसके दुःखों को दूर करो। अगर ऐसा न करोगी तो कितने दिन वह ज़िन्दा रहेगी।"

अच्छा अब नींद लगी है सोता हूं। तुम भी जाकर सो जाओ।

दोनों सो गये क्योंकि प्रातःकाल जल्दी उठना था। कल का दिन पूर्णमासी का था और हर पूर्णमासी को ज़मींदार साहब अपनी स्त्री के साथ कथा सुना करते थे। कभी सत्यनारायण की कथा सुनते, कभी भागवत की, कभी पुराण की। कथा कहने के लिये पं० बेनीमाधव बुलाये जाते। कई दिन पहले से पं० जी इस दिन की चिन्ता लगाये रहते कि वह दिन आ रहा है। पंडितानी तो कई दिन पहले से ही कह देती कि घर में आटा नहीं है, नमक चुक गया है।

प्रातःकाल हुआ ज़मींदार साहब उठे। जाड़े के दिन थे; कड़ी सर्दी पड़ रही थी। हाथ ओला हो रहा था। ज़मींदार साहब सात बजे बड़ी हिम्मत करके उठे। नौकर से कहा—जाकर पंडित जी को बुला ला। पं० जी को बुलाने नौकर गया।

पण्डित जी को पहले से ही आशा थी और स्नान करके तैयार बैठे थे। नौकर को देखते ही मुस्कराये। पूछा—"कहो, क्या बात है।"

नौकर ने कहा, "मालिक ने बुलाया है—कथा कहनी होगी।"

पण्डित जी ने मुख पर आई उत्कण्ठा को दूर किया और बोले "अच्छा चलो, अभी मैं आता हूं।" नौकर चला गया और उसने ज़मींदार साहब से सब बात कह दी। थोड़ी देर में पण्डित जी भी जा विराजे।

कथा का कोई प्रबन्ध न था, क्योंकि पं० जी आते तभी वह जो २ उचित समझते मंगाते। दूसरा आदमी क्या जाने कि कथा में किस चीज़ की ज़रूरत होगी। मालूम भी हो तो किसको फ़िक्र पड़ी है। पंडित जी आसन पर जा विराजे और एक एक चीज़ करके मंगाते

लगे। चार चीज़ें मांगते तो नौकर मुश्किल से दो चीज़ें निकाल कर देते।

दस बज चुके थे, ज़मींदार साहब आंगन में आये। पंडित जी अपने काम में लगे थे और उनका मुंह नीचे को था। पता भी न चला कि ज़मींदार साहब आ गये हैं। नहीं तो वे पहले ही से कहते "बढ़ती हो जजमान की।' ज़मींदार साहब थोड़ी देर खड़े रहे तो शर्माते हुये बोले "पालागन महाराज" !

पंडित जी ने मुंह उठा कर देखा कि ज़मींदार साहब खड़े हैं। बोले "जय होय जजमान की, आनन्द रहो। आइये ज़मींदार साहब विराजिये।" अभी तक पूजा का सामान नहीं हुआ था। ज़मींदार साहब कुछ देर तक बैठे रहे। बाहर से नौकर ने आकर एक मित्र के आने की सूचना दी। ज़मींदार साहब उठकर चले गये।

बारह बजे के समय कथा आरम्भ हुई। स्त्रियां तथा पुरुष जिनका ज़मींदार साहब से व्यवहार था आकर आंगन में जमा होगये। लोग बड़ी श्रद्धा से कथा दो घंटे तक सुनते रहे। पंडित जी को दक्षिणा मिली और चलते समय सब स्त्रियों ने उनके पैर छुये। आशीर्वाद देकर पंडित जी विदा हुये।

पं०जी के जानेपर जिसको देखो वही पंडित जी की कार्य्य कुशलता की प्रशंसा कर रहा है। वाह रे पंडित जी ! आपने लोगों पर कैसा जादू कर दिया है।

[४]

ज़मींदार साहब बाहर के दालान में बैठे थे कि एक किसान आकर खड़ा होगया। हुज़ूर एक साधु आया है। कल रात को मेरे दर्वाज़े पर आकर ठिठक गया। मैंने उसे ठहरा लिया। जाड़े के दिन थे साधु महात्मा को बड़ा कष्ट होता। अगर कह देता कि आगे जाओ। हम गृहस्थियों के लिये इससे बढ़ कर क्या पुण्य है कि साधु सन्तों की सेवा करें।"

ज़मींदार साहब—हाँ बात तो ठीक ही है।

किसान—हुज़ूर, मैं भूल गया था, वे कल से ही कह रहे हैं कि ज़मींदार साहब के पास ले चलो। अगर हुज़ूर हुक्म दें तो मैं उन्हें आपकी सेवा में लाकर हाज़िर करूं।

ज़मींदार—हां ले आओ। उनको वहां तकलीफ़ होती होगी। यहां पर सुख मिलेगा।

ज़मींदार साहब भक्त सन्तों का बड़ा आदर करते थे। उन्होंने कह रक्खा था कि गांव में कोई धर्मात्मा साधु आ पहुंचे तो किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे। यही कारण था कि बिचारे किसान का इतना साहस हुआ कि वह ज़मींदार साहब के पास पहुंच सका।

ज़मींदार साहब प्रतीक्षा में बैठे थे, इतने में वह किसान साधु महाराज को लेकर वहां पर आ पहुँचा। साधु को आते देखकर ज़मीदार साहब उठे, प्रणाम दण्डवत की और फिर उनको अपने आसन पर बैठाया।

कुछ देर तक ज़मींदार साहब महात्मा के मुख की ओर देखते रहे। उन्होंने अब तक किसी भी महात्मा की ऐसी आकृति न देखी थी। उस गांव में न जाने कितने साधु आये, न जाने कितने राम भक्तों ने आश्रय पाया। पर पहले आने वाले साधुओं में एक समानता थी। परन्तु यह साधु उन लोगों से बिल्कुल ही भिन्न मालूम होते थे। उनके मुखपर तेज था, मनोहारिणी छवि में ऐसा आकर्षण था कि जो देखता वही स्तब्ध हो जाता।

ज़मीदार साहब बड़ी देर तक उन महात्मा के मुख की ओर देखते रहे। उनकी आंखें देखने से तृप्त न होती थीं। बड़ा साहस करके बोले, "महाराज, आपको बड़ा कष्ट हुआ। कल रात मुझे मालूम नहीं हुआ नहीं तो आपको यहां बुला लाता। मुझे इसका बड़ा खेद है"।

"नहीं, ज़मींदार साहब। इसमें खेद की क्या बात है। मैं उन साधुओं से भिन्न हूं जो अपने कष्ट का बड़ा ध्यान रखते हैं। मेरा शरीर इतना बलिष्ट है कि मुझको किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता।"

ज़मींदार साहब इस उत्तर को पाकर सन्न होगये। और कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ। यह बातें हो रही थी कि नौकर हुक्का भर कर ले आया। ज़मींदार साहब के सामने रख दिया। अन्य साधु आते तो वे भी धूम्रपान का आनन्द लूटते। ज़मींदार सोच रहे थे कि इनसे पूछना चाहिये या नहीं। पर उनकी बातें सुनकर उनका साहस न पड़ा। पर नौकर को क्या समझ, बोला "बाबा जी, कुछ सुल्फ़ा हो तो निकालो, अभी भर लाता हूं। हम भी पीलेंगे।"

यह बात सुनकर साधु मुस्कराये। उनको किसी प्रकार का क्रोध न आया। साधुओं के लिये यह साधारण बात थी, देश के ९५ प्रतिशतक साधु इसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते थे। ज़मींदारों के नौकर भी उनका सुल्फ़ा से स्वागत करते। स्वामी जी ने हँसकर कहा, "नहीं, भाई, मैं रोटी खाता और पानी पीता हूँ, धुआं खाने की मनुष्य को क्या ज़रूरत ?"

नौकर को उनकी बातों पर विश्वास नहीं हुआ। समझा कि इनके पास है नहीं इसलिये बात बना दी है। उसने अब तक एक भी सन्यासी, साधु बाबा नहीं देखा था जो इस लत से बचा हो। फिर साहस करके बोला "तो तम्बाकू ही सही, अगर सुल्फा नहीं है।" यह कह

कर ज़मीदार साहब के सामने से हुक्का उठा कर उनके आगे रख दिया।

स्वामी जी को अब भी क्रोध न आया, बोले "भाई; मैं झूठ नहीं बोलता। जो बात होती है साफ़ २ कह देता हूँ।"

अच्छा अब मैं संध्या अग्नि-होत्र करूंगा तुम लोग चले जाओ।

ज़मीदार साहब आज्ञा लेकर चले गये।

[५]

"अम्मा जी कहां हैं? अरे अम्मा कहां है?" कहते २ भगतिन ने आंगन में पैर रक्खा। इस समय उसकी दशा बड़ी विचित्र थी। बच्चा, जब किसी नई वस्तु को देख लेता है तो वह इस बात के लिये बड़ा उत्सुक हो जाता है कि सब लोग उसकी बातों को सुने। बच्चे और बुढ्ढे एक समान होते हैं। भगतिन ने भी आज एक नई चीज़ देखी और हर सहेली को विना सुनाये उसे शान्ति ही नहीं मिलती।

वृद्धा बोली "अरे भगतिन, मैं इधर बैठी हूं। इधर आजा बात क्या है जो तू ऐसी दिखाई देती है?"

"अरे मांजी, कुछ पूछो न। एक बड़ा अजीब साधू आया है। ऐसा तो मैंने अभो तक देखा नहीं। क्या कहूं—"

"अरे कह तो कैसा साधु।'

"तुम्हारे द्वार पर ही तो ठहरा है, कल शाम को भ्रमण करते २ आया था, रात तिनकू के यहां कटी। सुबह ज़मीदार साहब के पास आगया—"

"तू तो इधर उधर की बातें कर रही है—कुछ बताती तो है नहीं—कैसा साधु?'

"क्या कहूं—कहते नहीं बनता—"

"जल्दी से कह।"

"अच्छा माजी, नाराज़ न हो। हमारे गांव में ऐसा साधु आज तक नहीं आया देखने में बड़ा लम्बा तगड़ा दिखाई पड़ता है। कई घन्टे से आँखे बन्द किये पूजा कर रहा है। आग जला कर न जाने क्या गुपचुप करता रहा।"

"मंतर जानता है, मंतर।"

"जो कोई आता है उसे धर्म की बातें समझाता है। आजकल साधू आते थे तो ले लिया हुक्का और रामराम जपते रहे। पर इसके मुंह से मैंने एक बार भी राम का नाम नहीं सुना।"

"राम का नाम नहीं लेता!! बना है साधू। कहीं धर्म तो भ्रष्ट नहीं करने आया? आजकल जितने हिन्दू हैं वे राम का ही नाम जपते हैं अगर न जपें तो जपेंगे पत्थर। कोई ईसाई तो नहीं आगया?"

"हां एक बात और है। उसने कह रक्खा है कि आज शाम को कथा कहेंगे। सब लोगों को बुलाया है। कहता

था कि औरतें भी आकर कथा सुनें। नई बात कहने को कहा है।"

"तू चलेगी सुनने या नहीं।"

"मांजी, तुम चलो तो तुम्हारे साथ चली चलूं। वैसे तो जाती नहीं। पर मालिक जाने देंगे या नहीं। शाम को बाग में ही कथा होगी। गांव के सभी लोग सुनने आवेंगे। अच्छा मांजी अब चलती हूं। और सहेलियों को भी खबर दे आऊं। मांजी एक बात की बड़ी कमी है। हमारे पंडित जी—पंडित बेनीमाधव आज गांव में नहीं हैं। उनका होना ऐसे समय में बड़ा ज़रूरी है। अगर यह सन्यासी अधर्म की बातें कहेगा तो हमको पं० जी बता तो देंगे। अच्छा जाती हूं।"

भगतिन चली गई—उसको बड़ी चिन्ता है कि कहीं धर्म का लोप न हो जाय।

जमींदार साहब के मकान से बाहर निकल कर आई थी कि सड़क पर सुधुआ ने टोका "कहो बुआ, कहां से आ रही हो? क्या हालचाल है।"

"अरे बेटा क्या कहूं? हाल तो तुम लोगों का होता है बूढ़ों का तो दुनियाँ में कौन है?"

"ऐसा जी छोटा करती हो!"

"तो क्या करूं?"

"तुम्हारे तो बड़े २ कदर करने वाले हैं। बताओ सच २ अभी जमींदार साहब के यहां से आ रही हों न?"

"हां, वहीं गई थी।"

"कैसा ताड़ा, न कहना। कुछ कुछ ज्योतिष सीख ली है।"

"अरे बेटा, यही तो बात है सब ज्योतिषी बन बैठे, तभी तो यह हाल हुआ। कलियुग ही ठहरा।"

"क्या बात हो गई?"

"एक ईसाई संन्यासी गांव में आये हैं। जमींदार के यहां ठहरे हैं। आज कथा कहेंगे—वही बगिया में। देखें क्या सुनाते हैं। तू सुनने जावेगा? वह बड़े अजीब हैं? ऐसे तगड़े हैं जैसे काबुली पठान।"

"जाऊंगा कैसे नहीं। तू आवेगी या नहीं?"

"मेरी तो श्रद्धा नहीं जमती, न राम नाम, न भांग छान, न हुक्का, अच्छा चलती हूँ।"

चल दी कि एक युवक ने कहा "राम राम दादी, कहो कहां चलीं।"

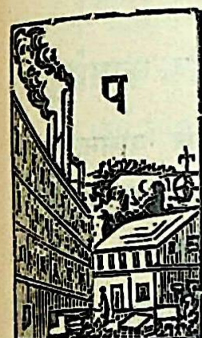
"बेटा खु.श रहो, एक नये बाबा आये थे। उन्हीं को देख कर आ रही हूं।"

स्वर्ग

गतांक से आगे

[श्री पं० देवदत्त जी चूहडपुर, ज़िला बुलन्दशहर]

परलोक



परलोक—दूसरा लोक इसमें यह देह छोड़ने के पश्चात् प्राप्त होने वाले लोकों का समावेश होता है। इस स्थूल देह से इस जगत में जिस प्रकार व्यवहार होते हैं—उसी प्रकार सूक्ष्म देहों से अन्य लोकों में व्यवहार होते हैं। परन्तु इसमें थोड़ा सा भेद है। स्थूल-सूक्ष्म, कारण, महा कारण ये चार प्रकार के देह मनुष्य को प्राप्त होते हैं। और ये एक दूसरे के अन्दर रहते हैं। जिस प्रकार स्थूल देह का कार्य्य चेत्र इस दृश्य जगत में है उसी प्रकार सूक्ष्म देहों का कार्य्य चेत्र सूक्ष्म जगत में होता है स्थूल देह से सूक्ष्म जगत में कार्य्य नहीं हो सकता परन्तु सूक्ष्म देहों से स्थूल जगत में अंशरूप प्रेरणा का कार्य हो सकता है। यह सत्य है तथा केवल सूक्ष्म देहों से अर्थात् मरण के पश्चात् अवशिष्ट रहें हुये सूक्ष्म देह से इस स्थूल जगत में कार्य्य नहीं कर सकते। इन लोगों का विचार करने के लिये इस व्यवस्था की ठीक कल्पना होनी चाहिये।

वासना देह

स्थूलदेह कार्य्य सब जानते ही हैं, इसके अन्दर पहला सूक्ष्म देह "वासना देह" है, भद्र और अभद्र वासना मनुष्य करता है। वह इसी देह से करता है। जो मनुष्य घात-पात और हिंसा आदि की अभद्र वासनाओं से अपने आपको अपवित्र करते हैं, और इसी प्रकार के दुष्ट कार्यों में अपनी आयु व्यतीत करते हैं उनका यह वासना देह बड़ा मलिन होता है। और जो लोग पवित्र वासनाएं करते हैं शुद्ध और निष्पाप कामनाओं का धारण करते हैं, उनका वासना-देह शुद्ध और पवित्र बनता है। मृत्यु आने से मनुष्य का स्थूल देह नष्ट हुआ, तो भी स्थूल-देह के नाश से यह "वासना-देह" नष्ट नहीं होता, अर्थात् मृत्यु के अनन्तर भी और स्थूल देह नष्ट हो जाने पर भी यह जीव अपने वासना-देह से अपनी वासनाएं करता रहता है। आमरणान्त हिंसक वृत्ति से रहे हुए मनुष्य की वासनाएं—हिंसामय क्रूर होती हैं, और शान्त तथा सम वृत्ति से रहे हुए मनुष्यों की शान्ति

से पूर्ण-निर्भय वृत्ति की वासनाएं होती हैं। हिंसापूर्ण वासनाओं से अशान्ति, और निर्भयता की वासनाओं से शान्ति होती है। वासना-देह के कार्य-क्षेत्र में मनुष्य को इस प्रकार सुख दुख केवल अपनी वासनाओं से ही प्राप्त होता है। बुरी वासनाओं के प्राबल्य से जो अशांति होती है। उसी का नाम नरक है। और शुभ वासनाओं की प्रवलता से मनुष्य स्वर्ग सोपान के मार्ग से ऊपर चढ़ता है। अर्थात् शान्ति सुख का अनुभव मरणोत्तर काल में भी करता है। मनुष्य अपना स्वर्ग-नरक स्वयं बनाता है। ऐसा जो कहते हैं उसका हेतु यही है। जो मनुष्य अपने अन्दर शुभ वासनाओं को स्थिर करता है और आत्म शुद्धि का साधन करता है, वह अपने लिये स्वर्ग रचता है और जो मनुष्य अपने अन्दर हीन-वासनाएं बढ़ाता है, वह अपने लिये नरक की अग्नि प्रज्वलित करता है। अच्छे या बुरे भोगों को अपनी शुभ या अशुभ वासनाओं से भोगता हुआ मनुष्य जब वासनाओं का उत्पन्न करना छोड़ देता है। याने वासनाएं उत्पन्न होनी बन्द हो जाती हैं तब इसका यह भोग समाप्त होता है। मानों इस समय इसका वासना देह भी घट जाता है—अर्थात् इसकी वासना-देह की मृत्यु हो जाती है। इस वासना-देह से मनुष्य स्वप्न देखता है। शुभ और अशुभ स्वप्न का अनुभव होना शुभाशुभ वासनाओं से ही होता है। यदि मनुष्य अपने स्वप्नों का विचार करेगा तो भी उसको अपने मरणोत्तर की स्थिति की कल्पना हो सकती है और अपनी वासनाओं की शुभाशुभ अवस्था का भी पता उसको लग सकता है।

कल्पवृक्ष और कामधेनु

जब पूर्वोक्त प्रकार वासना-देह की मृत्यु हो जाती है तब मृतात्मा का कारण देह कार्य करने लगता है। यहाँ यदि उसके शुभ और सत्य प्रियता के विचार हुए तो उसको अपने संकल्पों से ही सुख और आनन्द मिलता है। जो कल्पना होगी वह मूर्त्ति रूप में इस समय उपस्थित होगी। यही कल्प वृक्ष का स्थान है, या स्वर्गीय कामधेनु भी यही है। जो कल्पना उठेगी वह मूर्त्ति रूप धारण करके इसके सन्मुख आ जावेगी। शुभ मंगल कल्पनाओं से सुख और अन्य कल्पनाओं से दुःख होगा। कल्प वृक्ष के नीचे बैठा हुआ मनुष्य यदि फल-भोज की कल्पना करे तो सुमधुर फलों के आस्वाद को ग्रहण करेगा। स्वर्गलोक में घी, दूध, शहद, दही की मीठी नदियां प्राप्त होंगी और अन्यान्य सुख मिलैगा। ऐसा जो इस सूक्त में कहा है, वह सुख इस प्रकार उसके शुभ विचारों के कारण ही उसको प्राप्त होगा। शहद की कल्पना होते ही वह उसको प्राप्त होगा इसी प्रकार अन्य

सुख भी इसको मिलेगें । मन्त्र ५ से ८ तक जो स्वर्ग सुख का वर्णन किया है उसका तात्पर्य तह है । अष्टम मन्त्र में

विश्वरूपा धेनु,: कामदुधा मे अस्तु ।

(मं० ८)

विश्वरूपी कामना पूर्ण करने वाली कामधेनु मुझे स्वर्ग में मिला—ऐसा कहा है ।

इस स्वर्ग लोक के संकल्प का प्रभाव देखिये कैसा वर्णन किया है—

संकल्प-सिद्धि

अथ यदन्नपान लोक कामो भवति ॥७॥

अथ यदि जीत वादित लोक कामो भवति ॥८॥

अथ यदि स्त्री लोक कामो भवति ॥६॥

यं यं-कामयते-सोऽस्य संकल्पा देव समुत्तिष्ठति-तेन संपन्नो महीपतो ॥२०॥

छान्दोग्य ८।२।७—१०।

अन्न पान-गाना बजाना-स्त्री सुख आदि जिसकी कामनावहु इस समय करता है उसके संकल्प से ही उसको उन सब सुखों की प्राप्ति हो जाती है ।—यह छान्दोग्य उपनिषद् का वर्णन—इस सूक्त के वर्णन से बिल्कुल-मिलता है । इस सूक्त में "स्वर्ग लोक में बहुत स्त्री सुख (बहु स्त्रैणं) मं० २; मीठे रसकी धाराएं (मधुमत् पिन्वमाना, धाराएं मं०—५—७); (घृत ह्रदाः) घी के तालाब, (मधुकूला,) शहद की नदियां (क्षीरेण दध्ना पूर्णाः) दूध और दही से भरे हौज । इत्यादि जो वर्णन है—वह पूर्वोक्त रीति से अनुभव में आने वाला है; यह पाठक स्मरण में रक्खें । 'कारण' शरीर की यह अवस्था है जहां सङ्कल्प की सिद्धि होती है ?

स्वर्ग धाम के अनुभव 'कारण शरीर' में पूर्वोक्त प्रकार होता है । इसको 'मनो देह' अथवा 'मनोरथ' अर्थात् मन. रूपीरथ भी कह सकते हैं—

रथी ह भूत्वा रथयान ईयते (मं० ४)

"यह रथ में बैठता है और महारथी बन कर चलता है ।" यह उसका मनोरथ ही है । शुभ विचार उसके मन में स्थिर रहने के कारण मरने के पश्चात् सीधा स्वर्ग में जाकर कल्प वृक्षों के बन में काम धेनुओं का दूध पीता हुआ—और अमृत रसधाराओं का-मधुर आस्वाद लेता हुआ—पूर्वोक्त प्रकार आनन्द में रमता और विचरता हैं । यहां तक श्री पं० श्रीपाद दामोदर जी सातवलेकर लिखित व्याख्या मैंने लिखी है—परन्तु उसमें से स्वर्ग विषयक भाग लिखा है नरकादि का वर्णन छोड़ दिया है । पृथक् लेख में उन विषयों पर विचार करने का इरादा है ।

यह पं० जी की बड़ी युक्ति युक्त प्रौढ़ व्याख्या है । इससे विपरीत इस सूक्त की मोण पर का व्याख्या—क्यों युक्तियुक्त नहीं है यह दिखला कर इस

लेख को समाप्त करूंगा—अन्त में इसका सारांश भी दे देने का विचार है। यदि इस सूक्त को मोक्ष परक माना जावे तो निम्न लिखित विरोध उत्पन्न होते हैं—

१—इस सूक्त में सकाम कर्मों का वर्णन है—सकाम कर्मों का फल मोक्ष नहीं हो सकता।

२—मोक्ष में—स्त्री सुख आदि का कोई प्रयोजन ही नहीं माना जा सकता—ब्रह्मानन्द के सन्मुख यह सुख अत्यन्त तुच्छ है—इनका वर्णन मोक्ष में समझना ब्रह्मानन्द का अत्यधिक अपमान है।

३—मोक्ष्य में कोई भी शरीर नहीं रहता—इस लिये वहां संकल्प विकल्प असंभव हैं।

४—कठ उपनिषद में नचिकेता ने मृत्यु से तीन प्रश्न किये हैं—

पहला प्रश्न प्रथम गति के विषय में
दूसरा प्रश्न दूसरी गति के विषय में
तीसरा प्रश्न तीसरी गति के विषय में

यदि दूसरा प्रश्न मोक्ष अर्थात् तीसरी गति विषयक माना जावे तो तीसरे प्रश्न की कुछ आवश्यक्ता नहीं रहती क्यों कि मोक्ष ही मंजिले मकसूद है—ब्रह्म का ज्ञान होने पर ब्रह्मानन्द में मग्न होना मोक्ष माना गया है—तब फिर और तीसरा प्रश्न और क्या हो सकता है। अतएव मानना पड़ेगा—कि दूसरा प्रश्न स्वर्ग विषयक याने दूसरी गति के विषय में हैं—

वह निम्न लिखित है—

स्वर्गं लोके न भयं किञ्चिनास्ति-न तत्र त्वं न जरया विभेति। उभेतीर्त्वाऽशनया पिपासे—शोकातिगो मोदते स्वर्गं लोके ॥ कठ उपनिषद् प्रथमावल्ली ।१२। स त्वमग्निं ँ स्वर्ग्यमध्येषि मृत्यो ! प्रब्रूहि तं ँ श्रद्दधानाय मह्यम्। स्वर्गलोका अमृतत्वं भजन्त एतद् द्वितीयेन वरेण ॥१३॥

स्वर्ग लोक में कुछ भी भय नहीं है—न वहां मौत है—न कोई बुढ़ापे से डरता है—भूख और प्यास दोनों को तर कर शोक से वर्जित पुरुष स्वर्ग लोक में आनन्द करता है।१२।

हे मृत्यु ! ना तू स्वर्ग के साधन उस अग्नि को जानता है—उसको श्रद्धा रखते हुए—मेरे लिये तू वर्णन कर। जिस साधन से स्वर्ग के अधिकारीगण अमरत्व का सेवन करते हैं—यह दूसरे वर से मांगता हूँ। १३।

इसका उत्तर भी मृत्यु ने—जो दिया है—उसमें सकाम कर्म करने का ही उपदेश है—"स्वर्ग कामोजु हुयात्" अग्नि होमादि करने का उपदेश किया है।

एक और विलक्षण बात यह है :—

दूसरे प्रश्न व पहले प्रश्न का उत्तर देने में मृत्यु ने तिलमात्र भी विलम्ब नहीं किया क्योंकि इनका उत्तर सकाम कर्मों से सम्बन्धित था—परन्तु तीसरे

प्रश्न में—बहुत कुछ परीक्षा नचिकेता की लेकर जब कि यह निश्चय होगया कि वह निष्काम है अर्थात् श्रेय मार्गानुगामी है तभी ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है। और यह स्पष्ट कह दिया है कि इस मार्ग के अधिकारी विरले ही होते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि श्रेयमार्ग पर चलने वाले याने सकाम कर्मी मनुष्य शुभ कर्मों से पापों का समूल नाश करके स्वर्गलोक में जाते हैं। यह कठ उपनिषद् का वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् के वर्णन व अथर्ववेद ४ काण्ड के ३४ वें सूक्त से मिला कर पढ़ने से स्वर्ग की ठीक धारणा मन में बन जाती है अब मैं इस लेख का सारांश संक्षिप्त रूप में नीच देता हूं।

१—स्वर्ग का स्वरूप—ऐसे सुख की प्राप्ति जिसमें दुःख का लेश भी न हो। मृत्यु—बुढ़ापा—भूख-प्यास शोक न हो। जहाँ संकल्प मात्र से उत्तमोत्तम भोग प्राप्त हों और वह भोगयोनि हो, भोगों की समाप्ति पर कर्त्तव्ययोनि में फिर आना पड़े और जब तक निष्काम न हो जावे इसी चक्र में पड़ा रहे।

२—स्वर्ग के अधिकारी जिन्होंने अपने पापों को शुभ कर्मों से समूल नाश कर दिया हो। तथा परोपकार के लिये दान दिये हों—कुंए बनवाए हों धर्मशाला बावड़ी वग़ैरा का निर्माण किया हो। वे स्वर्ग के अधिकारी है।

३—स्वर्ग में ·ल शरीर होता है या नहीं—नहीं, क्योंकि स्वर्ग भोगयोनि है तथा दुःख का लेश भी वहां नहीं है और स्थूल शरीर में दुःख का एकान्त अभाव सर्वथा असम्भव है तथा भूख-प्यास-बुढ़ापा-मृत्यु स्थूल शरीर के साथ अवश्य रहेंगे। जोकि स्वर्ग में नहीं है।

४—स्वर्ग पृथ्वी-लोक. मृत्यु-लोक स्थूल लोक में नहीं है। बल्कि सूक्ष्मलोक परलोक में है क्योंकि सूक्ष्म इन्द्रियों से इस स्थूल लोक में कार्य नहीं हो सकता। सूक्ष्म लोक में ही होता है।

[स्वर्ग के समान जटिल विषय के अध्ययन करने में विद्वान् लेखक को जो शंकाये हुई हैं, वे इसमें दीगई हैं। विद्वानों से प्रार्थना है कि इनका उत्तर भेजने की कृपा करें।

—सम्पादक]

शतपथ ब्राह्मण [सभाष्य]

गतांक से आगे

काण्ड १—अध्याय १—ब्राह्मण ३

(१)

अनुवाद

१—पवित्रे करोति। पवित्रे स्थो वैष्णव्याविति यज्ञो वै विष्णुर्य ज्ञिये स्थ इत्येवैतदाह।

१—दो (कुश के)* पवित्रों को बनाता है इस मंत्रांश को जपकरः—

पवित्रेस्थो वैष्णव्यौ (यजु १।१२)

"तुम विष्णु सम्बन्धी दो पवित्रे हो।"

यज्ञ ही विष्णु है। इस लिये 'विष्णु सम्बन्धी' कहने से उसका तात्पर्य है "यज्ञ सम्बन्धी"।

२—ते वै द्वे भवतः। अयं वै पवित्रं योऽयं पवते सोऽयमेक—इवैव पवते सोऽयं पुरुषेऽन्तः प्रविष्टःप्राङ् च प्रत्यङ् चताविमौ प्राणोदानौ तदेतस्यैवानुमात्रां तस्माद् द्वे भवतः।

२—ये पवित्रे संख्या में दो होते हैं। "पवित्र" उसको कहते है जो "पव" करे अर्थात् चले (पवन)। जो (वायु) चलता है वह एक होता है। और जब यह (वायु) मनुष्य के भीतर प्रवेश करता है तो "आगे चलने वाला" और "पीछे चलने वाला" दो हो जाते हैं अर्थात् प्राण और उदान। चूंकि (पवित्र करने का कार्य्य) प्राण और अपान के समान होता है इसलिये वह पवित्रे संख्या में दो होते हैं।

३—अथोऽअपि त्रीणि स्युः। व्यानो हि तृतीयो द्वे न्वेव भवतस्ताभ्यामेताः प्रोक्षणीरुत्पूयताभिः प्रोक्षति तद्यदेताभ्यामुत्पुनाति।

३—यह तीन भी हो सकते हैं। क्योंकि व्यान तीसरा वायु है। वास्तव में दो ही हैं। उन दोनों से प्रोक्षणी पात्र से जल लेकर छींटे देता है। इन दोनों से छींटे देने का कारण यह है।

४—वृत्रो ह वाऽइदꣳ सर्वं वृत्वा शिश्ये। यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिदꣳ सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद्वृत्रो नाम।

४—निश्चय करके यह सब 'वृत्र से ढका हुआ है। यह जो कुछ पृथ्वी और अन्तरिक्ष के बीच में है वह सब इस से ढका हुआ है। इस लिये इसको वृत्र (ढाकने वाला) कहते हैं।

५—तमिन्द्रो जघान। स हतः पूतिः सर्वत एवापोऽभिप्र सुस्राव सर्वत इवह्ययꣳ समुद्रस्तस्मादु हैका आपो बीभत्साञ्चक्रिरे ता उपर्युपर्यति पुपुविरेऽत इमे दर्भास्ता

*पवित्र दर्भ या कुश के बनाये जाते हैं।

हैता अनापूयिता आपोऽस्ति वाऽइतरासु स ठं समुद्रमिव यदेना वृत्रः पूतिरभिप्रास्रवत्तदेवासामेता भ्यां पवित्राभ्यामपहन्त्यथ मेध्याभिरेवाद्भिः प्रोक्षति तस्माद्वाऽएताभ्यामुत्पुनाति ।

५—उसको इन्द्र ने मार डाला। वह मारा हुआ (वृत्र) बदबू करता हुआ सब ओर से जलों की ओर बहा। सब ओर ही तो समुद्र हैं। इसलिये कुछ जल भय भीत होगये और ऊपर ऊपर बह निकले। इसलिये ये जो दर्भ (कुश) हैं वह यह वही जल हैं जिन में बदबू नहीं मिल पाई। दूसरे जलों में वृत्र की बदबू बहकर मिल गई। इस लिये इन दोनों पवित्रों से (बदबू को) दूर करता है। और पवित्र जल उन पर छिड़कता है। या यों कहना चाहिये कि इन पवित्रों के द्वारा पवित्र करता है।

६—स उत्पुनाति। सवितुर्वः प्रसवऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिरिति सविता वै देवानां प्रसविता तत्सवितृप्रसूत एवं तदुत्पुनात्यच्छिद्रेण पवित्रेणेति यो वाऽअयं पवतऽएषोऽच्छिद्रं पवित्रमेतेनैतदाह सूर्य्यस्य रश्मिभिरित्येते वाऽउत्पवितारो यत् सूर्य्यस्य रश्मयस्तस्मादाह सूर्य्यस्य रश्मिभिरिति।

६—वह इस मंत्रांश को पढ़कर शुद्ध करता है :—

सवितुर्वः प्रसवऽ उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः।

(यजुर्वेद १।१२)

"सविता की प्रेरणा से छिद्र रहित (निर्दोष) पवित्रों के द्वारा सूर्य्य की किरणों की सहायता से शुद्ध करता हूँ।"

सविता ही देवों का प्रेरक है। इस लिये सविता से प्रेरित होकर ही शुद्ध करता है। "इस निर्दोष पवित्रे के द्वारा।" ऐसा कहकर क्योंकि यह जो बहता है वह दोष रहित पवित्र करने वाला है। इसलिये ऐसा कहा। "सूर्य्य की किरणों की सहायता से" ऐसा क्यों कहा? क्योंकि सूर्य्य की किरणें शुद्ध करने वाली हैं। इस लिये वह कहता है "सूर्य्य की किरणों की सहायता से।"

७—ताः सव्ये पाणौ कृत्वा। दक्षिणेनोदिङ्गयत्युपस्तौत्येवैना एतन्महयत्येव देवीरापोऽग्रेगुवोऽग्रेपुव इति देव्यो ह्यापस्तस्मादाह देवीराप इत्यग्रेगुव इति ता यत् समुद्रं गच्छन्ति तेनाग्रेगुवोऽग्रेपुव इति ता यत्प्रथमाः सोमस्य राज्ञो भक्षयन्ति तेनाग्रेपुवोऽग्रऽइममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिं ठं सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवमिति साधु यज्ञं ठं साधु यजमानमित्येवैतदाह।

७—(जलों को) बायें हाथ में लेकर सीधे हाथ से मार्जन करता है। और इस मत्रांश को पढ़कर स्तुति तथा बड़ाई करता है :—

"देवीरापोऽग्रेगुवोऽ अग्ने पुव।"

(यजु० १।१२)

"हे प्रकाश युक्त जल! तुम आगे चलने वाले और आगे पान करने वाले हो।"

जल प्रकाशयुक्त हैं, इसलिये कहता है "प्रकाश युक्त जल"। वह कहता है "आगे चलने वाले।" क्योंकि वह समुद्र की ओर जाते हैं और आगे चलते हैं। आगे पान करने वाले इसलिये कहा कि वह सोम राजा (सोम रस) को पहले पान करते हैं। इसलिये कहा "आगे पान करने वाले।"

अब नीचे के मन्त्रांश को पढ़ता है :-

अग्र इममद्य यज्ञं नयताग्रे यज्ञपति ꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्।

(यजु १।१२)

"आज इस यज्ञ को आगे बढ़ाओ। दानी यज्ञपति को, दिव्य गुण युक्त यज्ञ पति को।"

ऐसा कहने से उसका तात्पर्य यह है कि "साधु यज्ञ," "साधु यजमान।"

८—युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य इति। एता उ हीन्द्रोऽवृणीत वृत्रेण स्पर्धमान एता भिर्ह्येनमहंस्तस्मादाह युष्मा इन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य ऽइति।

८—अब वह जपता है :—

"युष्मा इन्द्रो वृणीत वृत्रतूर्ये"

(यजु १।१३)

"तुमको इन्द्र ने वृत्र-संग्राम में वरण किया।"

वृत्र से लड़ाई करते हुये इन्द्र ने जलों का वरण किया और उनकी सहायता से उसको मारा। इसलिये कहा "तुमको इन्द्र ने वृत्र-संग्राम में वरण किया।"

९—यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य इति। एता उ हीन्द्रमवृणत वृत्रेण स्पर्धमानमेताभिर्ह्येनमहंस्तस्मादाह यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य ऽइति।

९—अब वह जपता है :—

"यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये"

(यजु० १।१३)

"तुमने इन्द्र को वृत्र-संग्राम में वरण किया।"

इन (जलों) ने वृत्र से लड़ते हुये इन्द्र का वरण किया। इन की सहायता से उसको मारा। इसलिये कहा, "तुमने इन्द्र को वृत्र-संग्राम में वरण किया।"

१०—प्रोक्षिता स्थेति। तदेताभ्यो निह्नुतेऽथ हविः प्रोक्षत्येको वै प्रोक्षणस्य बन्धुर्मेध्यमेवैतत्करोति।

१०—अब वह कहता है।

"प्रोक्षिता स्थ" (यजु १।१३)

"तुम मार्जन किये गये हो।"

इन शब्दों से प्रतीकार करता है। अब हवि का मार्जन करता है। मार्जन का एक ही अर्थ है। अर्थात् इस प्रकार पवित्र करता है।

११—स प्रोक्षति। अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामीति तद्यस्यै देवतायै हविर्भवति तस्यै मेध्यं करोत्येवमेव यथापूर्वं ꣳ हवीꣳषि प्रोक्षय।

११—यह मंत्रांश पढ़कर मार्जन करता है :—

"अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि"

(यजु० १। १)

"तुझ सम्पन्न को अग्नि के लिये अभिषिक्त करता हूँ।"

जिस देवता के लिये हवि होती है उसी के लिये पवित्र करता है। अब पूर्वोक्त विधि से हवियों का अधिसेचन करके।

१२—अथ यज्ञपात्राणि प्रोक्षति। दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायाऽइति दैव्याय हि कर्मणे शुन्धति देवयज्यायैयद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नु रिदं वस्तच्छुन्धामीति तद्यदेवैषामत्राशुद्धस्तक्षा वान्यो वामेध्यः कश्चित्पराहन्ति तदेवैषामेतदद्भिर्मेध्यं करोति तस्मादाह यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नु रिदं वस्तच्छुन्धामीति।

१२—यज्ञ के पात्रों का अभिसेचन करता है इस मंत्रांश को जप कर :—

"दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देव यज्यायै।" (यजु १। १ ३)

"दिव्य कर्म और देव यज्ञ के लिये शुद्ध हूजिये।"

क्योंकि वह दिव्य कर्म और देव यज्ञ के लिये उनको शुद्ध करता है।

अब वह इस मंत्रांश को जपता है :-

"यद् वोऽशुद्धाः पराजघ्नु रिदं वस्तच्छुन्धामि।" (यजु १। १ २)

"तुम्हारे जिस भाग को अपवित्र (लोगों) ने अशुद्ध कर दिया उस को मैं शुद्ध करता हूँ।"

इनमें से जिस भाग को बढ़ई ने या किसी अन्य अपवित्र पुरुष ने अशुद्ध कर दिया उसको इन जलों के द्वारा पवित्र करता है। इसीलिये कहता है :—

"तुम्हारे जिस भाग को अपवित्र (लोगों) ने अशुद्ध कर दिया उसको शुद्ध करता हूं।"

---

(२)

यज्ञ सम्बन्धी सारांश

इस ब्राह्मण ने दर्भ या कुश के दो पवित्रे बनाकर उनसे हवि तथा यज्ञ पात्रों के मार्जन या अभिषेचन करने का विधान है। और यजुर्वेद अध्याय १ के १२ वें तथा १३ वें मन्त्रों के भिन्न २ टुकड़ों का भिन्न २ स्थानों पर जाप है।

---

(३)

उपदेश तथा भाषा सम्बन्धी टिप्पणियां

(१) अयं वै पवित्रं योऽयं पवते (१। ३। २)

जो बहे या शुद्ध करे वह 'पवित्र'।

(२) यदिदमन्तरेण द्यावापृथिवी स यदिद ँ सर्वं वृत्वा शिश्ये तस्माद् वृत्रो नाम। (१। ३। ४)

जो कुछ पृथ्वी और द्यौलोक के बीच में है उस सबको जो ढक लेता है। इस लिये इसको वृत्र कहते हैं।

(३) पवितारो यत् सूर्य्यस्य रश्मयः (१। ३। ६)—सूर्य्य की किरणें पवित्र करने वाली हैं।

इस ब्राह्मण में इन्द्र द्वारा वृत्र के मारे जाने की ओर संकेत है।

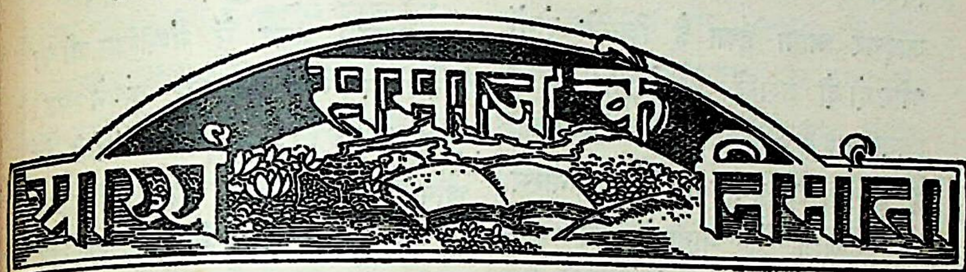
समालोचना

मेरी ईरान यात्रा

ले० श्री महेशप्रसाद मौलवी आलिम फ़ाज़िल, प्रकाशक आलिम फ़ाज़िल बुक डिपो, लक्खा, बनारस सिटी, पृष्ठ सं० २८०, ६ रंग विरंगे चित्र, मूल्य अजिल्द १।।॥), सजिल्द २।॥) विदेशों के लिये अजिल्द २।। शिलिङ्ग सजिल्द ३।। शिलिङ्ग।

अभाग्यवश हमारे देशवासियों में पर्य्यटन करने की आदत नहीं। यदि अत्यन्त साहस किया तो प्रान्त के दो चार नगर देखकर तृप्ति कर ली। परन्तु बड़ा हर्ष का विषय है कि हिन्दू विश्व-विद्यालय काशी के अरबी, फ़ारसी के अध्यक्ष श्री महेशप्रसाद जी मौलवी आलिम फ़ाज़िल ने ईरान देश की यात्रा की। उसी यात्रा में विद्वान् लेखक ने जिन २ बातों को अपनी आँखों से देखा या सुना उसका बड़ा मनोहर वर्णन किया है। ईरान का भौगोलिक वृत्तान्त, पासपोर्ट क्या है और मिलने में क्या २ दिक्क़तें होती है, सामुद्रिक दृश्य, समुद्री बीमारी, मकरान में, बन्दर अब्बास के हिन्दुओं का हाल, उनके रीतिरिवाज तथा मन्दिर, मुसल्मानों और हिन्दुओं का व्यवहार, करमान के स्कूल, दुजदाब, चमन, कन्धार, कोइटा, शिकारपुर का मनोरंजक वर्णन पुस्तक में मिलेगा। यात्रा में अनेकों घटनायें बड़ी मनोरंजक है। नौ दिन तक यात्री को स्नान के लिये पानी न मिलना, इसके अतिरिक्त अनेकों घटनायें हुई जिसमें प्राणों का बड़ा भय था। पुस्तक के अन्त में ११ परिशिष्ट लगे हुये हैं। ये सब पुस्तक की जान ही समझिये। इसमें ईरान के प्राचीन पारसियों का हाल, करमान में पारसियों के स्कूलों का वर्णन, ईरान के हिन्दुओं का हाल, स्त्रियाँ, फ़ारसी भाषा, वर्करीद और मुहर्रम मुख्य हैं। ईरान की यात्रा करने वाले को क्या २ प्रवन्ध करना चाहिये यह भी अन्त में दे दिया गया है। पुस्तक में ९ भिन्न भिन्न चित्र तथा ईरान का नकशा लगा है।

श्री महेशप्रसाद जी की भाषा बड़ी सरल तथा हृदय-ग्राही है। वर्णन इतना अच्छा करते हैं कि दृश्य आंखों के सामने नाचने लगता है। हिन्दी में यह अपने तरह की प्रथम पुस्तक है। हिन्दी प्रेमियों को चाहिये कि इसको अवश्य अपनावें।



स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

आरम्भ

अभी थोड़े दिन हुये भारत की राजधानी दिल्ली में एक वीर सन्यासी गोलियों से शहीद होगया । उसी वीर सन्यासी ने कुछ काल पूर्व दिल्ली की सड़कों पर अपनी छाती पुलीस के संगीनों के आगे खोल दी थी। गुरुकुल कांगड़ी के खंडहर अब भी उसकी याद दिला रहे है। वह वीर धर्म पर शहीद होने वाला स्वामी श्रद्धानन्द ही था।

❀ ❀ ❀

बचपन

आपके पिता श्रीनानकचन्द नैपाल की तराई में मेलाधाम की लड़ाई में गये थे । वहीं पर उनको सूचना मिली कि उनके छठा पुत्र उत्पन्न हुआ है। यही श्रद्धानन्द थे। (सन्यास लेने के पूर्व उनका नाम मुन्शीराम था इसलिये उसी नाम से हम उनको सम्बोधन करेंगे।) आपका जन्म फाल्गुन कृष्ण त्रयोदशी संवत १९१३ वि० को हुआ था। पिता पुलीस विभाग में नौकर थे इसलिये जब उनका तबादिला बरेली को होगया तो मुंशीराम बरेली चले आये। इस समय यह तीन वर्ष के थे। यहां पर एक मौलवी आपको पढ़ाने के लिये रख दिया गया। पढ़ने लिखने में अपने भाइयों से यह अधिक तेज़ थे। बरेली से बदायूं और बदायूं से बनारस मुन्शीराम के पिता आये। बनारस में आकर छुआछूत मुन्शीराम ने अपनी आंखों से देखी और इस पर इनको घृणा होगई।

श्री नानकचंद जी बड़े भक्त थे और शिव की पूजा किया करते थे। मुंशीराम भी एक टूटे मन्दिर से एक बटिया उठा लाये और उसकी पूजा करने लगे। बनारस के मंदिरों में भी आप दर्शन करने जाया करते थे। इन्हीं दिनों स्वामी दयानन्द जी बनारस आये थे और उनके

विषय में यही प्रसिद्ध था कि एक जादूगर आया हुआ है जिसके दोनों ओर दो दो मशालें जलती हैं। उसमें इतना जादू है कि जो उसके पास जाता है उसका भक्त बन जाता है। बनारस की गलियों में माताओं को इस जादूगर से इतना भय होगया था कि अपने पुत्रों को बाहर नहीं निकलने देती थीं। सवंत् १९२३ वि० में मुन्शीराम के यज्ञोपवीत का खेल हुआ। इनसे कहलाया गया कि मैं विद्या पढ़ने काश्मीर जाता हूँ। इस समय कोई बहिन न थी इसलिये एक लड़की से रोकने की प्रथा कराई गई। इन हिन्दू आडम्बरों का प्रभाव मुन्शीराम पर बहुत पड़ा।

मुन्शीराम को बांदा में रामायण तथा हनुमान चालीसा से बड़ा प्रेम होगया था। एक पैर पर खड़े होकर सौ २ बार आप हनुमान चालीसा का पाठ कर जाते थे।

बांदा से मिर्जापुर में मुन्शीराम गये। यहां पर विंध्याचल की देवी पर होने वाले अत्याचार मुंशीराम ने अपने आंखों से देखे। श्री नानकचंद जी के कार्य्यों से प्रसन्न होकर सरकार ने उनको बनारस का कोतवाल बनाया। बनारस लौटने पर उनका बड़ा सम्मान हुआ। यहीं पर मुंशीराम के पढ़ने का प्रबन्ध होगया। आप बनारस के किंस कालेज में शिक्षा पाने लगे।

बनारस में दूषित जीवन

बनारस नगर में मुंशीराम जी का जीवन अधोगति की ओर झुकने लगा। संवत् १९३० वि० की वसंत पंचमी को आप नाच देखने गये। पिता उनको जाने की कभी भी आज्ञा न देते। इसलिये रात के समय जब सब सोरहे थे आप वहां पर पहुंच गये। इंट्रेंस की परीक्षा में पहले वर्ष अपने विवाह की लग्न के कारण असफल रहे। बनारस की मित्र मडंली में उपन्यास पढ़ना, शराब पीना, भांग सब की लत आपको लग चुकी थी। पढ़ना भी आपने बन्द कर दिया था। आपके भाई की भी यही दशा थी। धर्म से विश्वास आपका उठ चुका था। इतना ही नहीं एक बार आप पादरी के पास बपतिस्मा को तिथि नियत करने पहुंच गये थे। पर उस पादरी की कोठरी में जो बातें उन्होंने देखी उसको देखकर ही लौट आये, इस समय आपके पिता बलिया में थे। बलिया से वे मथुरा गये और जब मुंशीराम ने यहां पर पंडों की लीलायें देखी तो रहा सहा विश्वास भी उठ गया। इस समय तक आपका विवाह हो चुका था। मथुरा के बाद आपके पिता का तबादिला बरेली को होगया। पिता कोतवाल ठहरे और यहां भी मुंशीराम को बड़ी बुरी सुहबत में रहना पड़ा।

आपके पिता को बड़ी चिन्ता थी कि किस प्रकार इस घृणित जीवन से मुंशीराम

❋ ❋ ❋

को अलग किया जाय। बी. ए. की परीक्षा के लिये आप प्रयाग में आकर पढ़ने लगे। यहांपर आपने बड़े परिश्रमसे पढ़ना आरम्भ किया परन्तु परीक्षा के बीच में बीमार पड़ गये। जिन विषयों में आपने परीक्षा दी थी उनमें बड़े अच्छे नम्बर मिले थे। इसके बाद आपने अलीगढ़ में पढ़ना शुरू किया पर वहां हैज़ा फैल गया और आपको लौट आना पड़ा।

❁ ❁ ❁

बरेली में ऋषि दयानन्द का आगमन

१४ श्रावण संवत् १९३६ वि० को ऋषि दयानन्द बरेली नगर में पधारे। श्री नानकचन्द जी शहर कोतवाल थे, इसी लिये उन्हें आज्ञा हुई कि विशेष प्रबन्ध रक्खें क्योंकि झगड़ा होने की सम्भावना थी। यह भी कहा गया कि ऋषि को बोलने से रोक दो। पर ऋषि के व्याख्यान को सुनकर कोतवाल के हृदय पर इतना प्रभाव पड़ा कि दूसरे दिन बोले "बेटा मुंशीराम एक दंडी सन्यासी आए हैं, बड़े विद्वान् योगीराज हैं। उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे संशय दूर हो जायेंगे।" महात्मा मुंशीराम को यह विश्वास न था कि ऋषि के दर्शन से उनके जीवन में एक नई जागृति आ जावेगी। पर वे धुन के पक्के थे। बराबर व्याख्यान सुनने जाते और जब तक व्याख्यान समाप्त नहीं होजाता वे बैठे सुना करते। एक दिन केवल इस लालसा से कि ऋषि दयानन्द प्रातःकाल उठ कर क्या करते हैं वे तीन बजे उठे और ऋषि दयानन्द के पीछे लग लिये। ऋषि दयानन्द नगर के बाहर जाकर योग द्वारा समाधि लगाते थे। मुंशीराम जी ने अपने नेत्रों से सब हाल देखा। इन सब का उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा।

ऋषि से वे अपनी शंकायें निवारण किया करते थे। एक दिन ऋषि दयानन्द से उन्होंने कहा कि सब शंकाये तो दूर होगई पर दिल में यह विश्वास नहीं जमता कि ईश्वर है भी। ऋषि ने कह दिया था कि जब उस परमेश्वर की ही कृपा होगी तभी वे आस्तिक बनेंगे। ऋषि के दर्शन से जो प्रभाव उन पर हुआ उसका प्रकाश कुछ दिनों बाद उनके जीवन में दिखाई दिया।

पादरियों को जब ऋषि की बात असह्य हुई तो उन्होंने ऋषिदयानन्द से कहलाया। ऋषि ने कड़कती हुई आवाज में कहा "लोग कहते हैं कि सत्य को प्रगट न करो, कल्क्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा। अरे, चक्रवर्ती राजा भी क्यों न अप्रसन्न हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।' ऋषि की इस निर्भय प्रकृति का स्वरूप महात्मा मुंशीराम ने अपने नेत्रों से देखा और

इसी ने उनको भी ऐसा निर्भीक बना दिया।

❀ ❀ ❀

नायब तहसीलदार

पिता ने यह समझ कर कि मुंशीराम का पढ़ना न होगा उनको कोशिश करके नायब तहसीलदार बनवा दिया। कुछ दिन तक आप तहसीलदार भी रहे। परन्तु मुन्शीराम न्याय प्रिय तथा स्वतन्त्र विचार के थे, इसलिये उन्हें शीघ्र ही नौकरी छोड़नी पड़ी। एक गोरों की सेना को रसद पहुंचाने का प्रबन्ध इनको दिया गया। गोरों ने अंडे बेचने वालों से अंडे लूट लिये और दाम न दिये। मुन्शीराम को जब यह बात मालूम हुई तो उन्होंने कहा कि यदि अंडे वालों को रुपये नहीं दे दिये जायंगे तो वे और दूकानदारों को लौटा देंगे और रसद मिलना मुश्किल हो जायगा। अंग्रेज अफ़सरों को यह बात बहुत बुरी लगी और उन्होंने मुंशीराम की शिकायत की पर कलक्टर के कुछ कहने पर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया। नौकरी छोड़कर वे अपने पिता के पास बुलन्दशहर में आकर रहने लगे। यहां पर कारमाइकल की कृपा से उनको नौकरी मिल गई।

❀ ❀ ❀

वकालत की तय्यारी

मेरठ में श्री नानकचन्द्र जी जालन्धर के वकील डूंगरमल से मिले। उन्होंने कहा कि मुन्शीराम को वकालत की ओर लगाया जाय। श्री नानकचन्द को यह बात जच गई। लाला मुंशीराम ने भी यही अच्छा समझा और तलवन में लौट आये। ला स्कूल खुलते ही लाहौर गये पर थोड़े दिन तो पढ़ते रहे फिर वही दशा आरम्भ होगई। इस समय के उश्रृंखल जीवन का वर्णन करना व्यर्थ ही है। किसी तरह मुख्तारी पास की, फिल्लौर स्थान पर मुख्तारी भी की अच्छी चली, फिर वकालत पास करने की लत लगी पर वे पास न हो पाये। नाविल पढ़ना, शराब पीना मांस खाना ही उनकी जीवनचर्य्या बन चुकी थी। परन्तु सं० १९४१ वि० को एक पैशाचिक दृश्य को देखकर उन्होंने निश्चय कर लिया कि शराब न पियेंगे।

❀ ❀ ❀

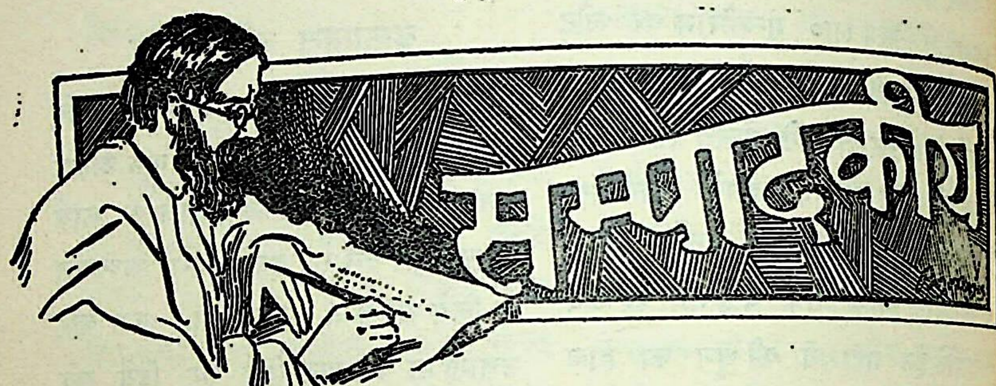
आर्य्य समाज से संसर्ग

लाला मुन्शीराम जी थे धुन के बड़े पक्के। ब्रह्मसमाज में जाया करते। और आर्य्य समाज में कभी २ जाते। शंकाओं का समाधान करते। एक दिन धुन में आगया कि सत्यार्थप्रकाश पढ़ना चाहिये। आर्य्य समाज वच्छोवाली पहुंचे, पता चला कि लाला केशवराम से यह पुस्तक मिलेगी। उनका घर पूछते २ गये, पर वे तार घर चले गये थे। निदान तार घर पहुंचे पर खाने की छुट्टी होगई थी

और लाला केशवराम जी घर को चले आये थे। अब ला० मुन्शीराम घर लौट आये तो ला० केशवराम तार घर जा चुके थे। फिर दो घंटे फिरते रहे। तार घर की छुट्टी होते ही आये और ला० केशवराम से प्रार्थना की। उन्होंने कहा कि ज़रा खालूं तब चलूंगा, पर जब उन्होंने इन महाशय की धुन का हाल सुना तो उनके साथ समाज चल दिये। पुस्तक मिलते ही लाला मुंशीराम को बड़ी प्रसन्नता हुई। घर आते ही सत्यार्थ प्रकाश पढ़ना आरम्भ कर दिया। दो ही दिन इस पुस्तक को पढ़ पाये थे कि सारी शंकायें दूर हो गई और उन्होंने निश्चय कर लिया कि आर्य्य समाज का सभासद बन जाऊं। प्रथम रविवार को आर्य्य समाज में घोषणा कर दी गई कि ला० मुन्शीराम समाज के सभासद बन गये हैं। रायज़ादा भक्तराम जी ने यह समाचार अपने भाई लाला देवराज जी को जालन्धर भेजा। उन्होंने उत्तर दिया कि प्रधान पद लाला मुंशीराम जी के लिये उन्होंने रिक्त कर दिया है। और वे मन्त्री बन गये हैं। लाला जी ने बहुत सकुचाते हुये इस उत्तरदायित्व को ग्रहण किया।

वकालत की परीक्षा

ला० मुंशीराम की परीक्षा का यदि पूर्ण विवरण लिखे तो शायद एक अलग पुस्तक बन जाये। आर्य्य समाज के कार्य में सहयोग देने से इनके पास अध्ययन के लिये सयय न बचता था। एक बार उत्तीर्ण हो के अनुत्तीर्ण कर दिये गये क्योंकि इन्होंने रजिष्ट्रार को घूस देना स्वीकार नहीं किया था। अंत में संवत् १९४४ ई० में सफ़ल हुये। सफ़ल होने के पूर्व श्री नानकचन्द जी का देहान्त हो चुका था। पिता की लाला मुंशीराम में बड़ी श्रद्धा होगई थी। एक समय था जब कि पूजा पाठ न करने के कारण श्री नानकचन्द महात्मा मुन्शीराम से बड़े रुष्ट होगये थे, पर सत्यार्थप्रकाश, पंचमहा यज्ञविधि के अध्ययन से ऋषि दयानन्द में उनकी श्रद्धा बढ़ गई थी। उनका विचार था कि लाला मुंशीराम वास्तव में सच्चे ज्ञान की खोज करने वाले है। उनकी अन्त्येष्टि क्रिया वैदिक रीति से की गई और सम्पत्ति का ऐसा बटवारा कर दिया कि भाइयों को किसी प्रकार की शिकायत नहीं रही।



परदा के प्रेमी

महाराज वर्दवान परदा प्रथा के प्रेमी ही नहीं, अपितु प्रचारक हैं। आपका विचार है कि कुछ दिनों के बाद पाश्चात्य देश के रहने वाले भी परदा प्रथा की उत्तमता को स्वीकार करने लगेंगे और यूरप तथा अमरीका की मेमें परदे के अन्दर घुस जावेंगी। आपका विचार है "The West has shown us the out come of a world, where women are free to go where they please, do as they please. A world of divorce courts, broken marriages and general domestic unhappiness. A world where there are not enough jobs for men because women have usurped their work. A world where women are fulfilling less and less the functions for which nature intended them—that of wife and mother—and seeking more and more to establish themselves as man's equals and superiors which obviously, they are not." "पाश्चात्य देशों ने उस दुनिया का दिग्दर्शन करा दिया है जहां स्त्रियां जहां चाहें जा सकती हैं और जो चाहें कर सकती हैं। वहां तलाक की अदालत, विवाह विच्छेद और पारिवारिक असन्तुष्टता मिलेंगी। उस दुनिया में पुरुषों के लिये व्यवसाय नहीं हैं क्योंकि स्त्रियों ने उनके व्यवसाय छीन लिये हैं। ऐसी दुनिया जहाँ स्त्रियां उन कार्य्यों में जिसके लिये प्रकृति ने उत्पन्न किया है—स्त्री तथा माता का—बहुत कम सहयोग लेती हैं और इस बात की धुन में लगी हुई है कि परुषों की बराबरी करें या उनसे बढ़ जावें, जो कि वे नहीं हैं।"

महाराज वर्द्धमान ने बड़े अनुभव के बाद यह विचार लिखें हैं। वास्तव में यदि कोई भला आदमी यूरोपीय देशों में जावे तो उसकी वहां के अधार्मिक व्यभिचारिक जीवन से घृणा उत्पन्न हो जावेगी। संभवतः महाराज के विचार भी इसी के कारण दृढ़ हुये हैं। परन्तु प्रश्न यह है कि क्या परदे की प्रथा के उठ जाने के कारण व्यभिचार की वृद्धि हो जावेगी और क्या पाश्चात्य देश के इस प्रकार के जीवन का मुख्य कारण परदे की प्रथा का न होना है ?

यदि हृदय पर हाथ रख कर विचार किया जाय तो व्यभिचार का सम्बन्ध परदे से लेश मात्र भी नहीं है। भारतवर्ष में सहस्रों घर ऐसे मिलेंगे जहां परदे में ही व्यभिचार हुआ करता है। हमारे हिन्दुओं के घरों में परदे के अन्दर अनेकों अधार्मिक कृत्य होते हुये मिलेंगे। विधवायें जितनी भ्रष्ट की जाती हैं या भगाई जाती है वे सब परदे के अन्दर ही से। यह दूसरी वात रही कि परदा होने से हमारी व्यभिचारिक लीलाओं पर भी परदा पड़ा रहे।

व्यभिचार केवल इस कारण होता है कि हमारी आत्मिक शक्ति वलिष्ठ नहीं है। हम लोगों का कर्त्तव्य है कि उसको वलिष्ठ बनाया जावे। परदे में रहने के कारण भारतवर्ष की स्त्रियों का स्वास्थ्य कितना नष्ट हो चुका है। तपैदिक की बीमारी इस समय इतने जोर से बढ़ रही है जिसका मुख्य कारण परदे की प्रथा ही है। ईश्वर ने प्रकाश और वायु पुरुष और स्त्री दोनों ही के लिये दिये हैं। जो इनसे वंचित रहता है वह अप्राकृतिक जीवन व्यतीत कर रहा है। जिन देशों में परदे की प्रथा नहीं है वहां की स्त्रियां घर से निकल कर घूसती है और बड़ी स्वस्थ रहती है।

परदे का प्रभाव स्वास्थ्य पर तो पड़ता ही है, उसके अतिरिक्त यह मानसिक विचारों को भी संकुचित कर देता है। हिन्दू घरों की स्त्रियां अपनी चहारदीवारी के भीतर की बातों का ही ज्ञान रखती हैं। बाहर के संसार से वे अनभिज्ञ रहती हैं। परदा स्वतन्त्रता पर एक प्रकार का बन्धन है। अरब और टर्की जहां पर परदे का बड़ा प्रचार था वहां की स्त्रियां भी अब कार्य्यक्षेत्र में उतर पड़ी हैं। वर्त्तमान आन्दोलन में सहस्रों भारतीय नारियों ने परदे के बन्धन को उतार कर फेंक दिया है। ऐसे समय में महाराज के विचारों से हम कितना सहमत हो सकते हैं ?

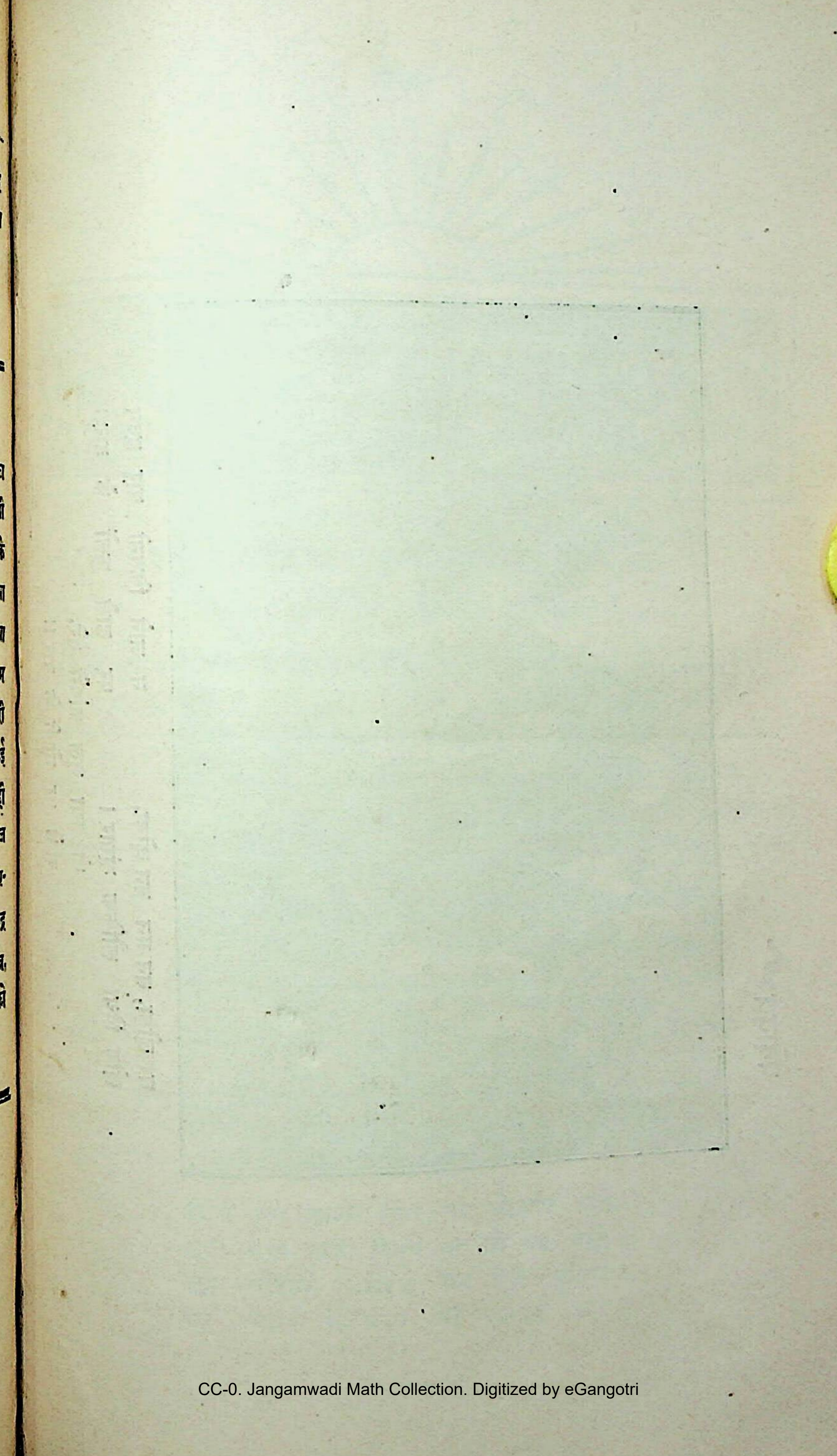
इससे भी अधिक हंसी की बात यह लगती है जो महाराज कहते हैं। "Thousands go over to England yearly and yet, when they return to their own homes,

willingly go back again into purdah.'' "सहस्रों प्रति-वर्ष इङ्गलैंड को जाती हैं परन्तु जब वे अपने घर को लौट कर आती है वे 'प्रसन्नता' से पर्दे में घुस जाती है"। हमको 'प्रसन्नता' का शब्द बहुत खटकता है।

शोक महाशोक

काशीपुर जिला नैनीताल निवासी स्वनाम धन्य श्रीमान् मुन्शी वृद्धावन जी का ८० वर्ष की अवस्था में काशी नगर में स्वर्गवास हो गया। आप ऋषि दयानन्द जी महाराज से मिले थे और बहुत दिन तक अपनी शंकाओं का समाधान करते रहे। उसके पश्चात् अपने प्राचीन कुल धर्म शैवमत को छोड़ पूर्ण आर्य बने। आप फ़ारसी भाषा के अद्वितीय विद्वान् थे। जिस समय देवनागरी का प्रचार बिल्कुल नहीं था और भाषा की उत्तम पुस्तकें भी नहीं थी उस समय आपने भाषा प्रचार के लिए कई उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखी। उनको पंजाब सरकार ने स्वीकृत भी किया था आप ४० वर्ष तक हेडमास्टरी के पद पर प्रतिष्ठा पूर्वक कार्य करते रहे। आप आर्य्य-समाज के संस्थापक थे, कई स्थानों में आर्य्य-समाज की संस्थापना की थी। काशीपुर आर्य्य-समाज के जन्मदाता ही नहीं अपितु वर्षों प्रधान रहे। आपकी अन्त्येष्टि पूर्ण वैदिक-रीति से आर्य्य-समाज बनारस द्वारा कराई गई। आपकी एक मात्र पुत्री का विवाह बड़ोदा-निवासी राज-रत्न पं० आत्माराम जी अमृतसरी से हुआ है। आपके प्रपौत्र श्री पं० देवेन्द्रचन्द्र विद्याभास्कर से वेदोदय के पाठक परिचित होंगे। आपकी मृत्यु के समय पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र सब ही वहां मौजूद थे। हमारी ईश्वर से प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति दे तथा उनके सम्बन्धियों को इस वियोग में धैर्य प्रधान करें।



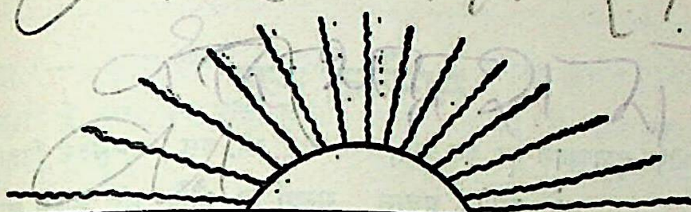




घर छोड़ा, तन मन धन छोड़ा,
छोड़ दिया लौकिक शृंगार।
न जाने कितनी बार हृदय
पर डाले फूलों के हार।
तो क्या भूल जायंगे तेरे,
सीने पर गोली के वार॥

—विश्वप्रकाश

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति ।

[अथर्ववेद १३ । ४ । १ । १]

जब वह उदय होता और चमकता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीज़ें प्रकाशित होजाती हैं ।

From west to east are lit up all, when it rises & shines

भाग २ | माघ संवत् १९८७; दयानन्दाब्द १०६; फरवरी १९३१ आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ | सं ५ पूर्ण सं० ११

मेधा-याचना

[श्री पं० सूर्य्यदेव शर्मा साहित्यालंकार एम० ए०]

ओं यो मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते । तया मामद्य
मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु ॥ यजु० ३२ । १४ ॥

(शिखरिणी)

जिसे पाते ज्ञानी, पितर जन जो प्राप्त करते ।
सुधी मेधा नामी, विबुध वर जो देव वरते ॥
वही सर्वज्ञाग्ने ! सदय अब दीजै श्रुतिपते ।
बनूँ मेधावी मैं, हृदय महँ सद्भाव भरते ॥

सामवेदी स्वर

[श्रीयुत सत्यप्रकाश एम. एस.-सी., एफ. आई. सी. एस., सम्पादक विज्ञान]



मवेद संगीत प्रधान है, इसमें कोई सन्देह नहीं। सामगान के ज्ञाता भी दुष्प्राप्य हैं। स्वर-विचार की महिमा भी बहुत गाई गई है। छन्द-बद्ध ऋग्, साम और अथर्व के मंत्रों के स्वर ही नहीं, प्रत्युत् यजुः के गद्य भाग के मंत्रों के भी स्वर निर्धारित कर दिये गये हैं। शतपथ और तैत्तिरीय ब्राह्मण एवं उनके आरण्यक भी जो कदाचित् ही कभी गाये जाते होंगे, और जो मुख्यतः गद्य ग्रन्थ ही हैं, स्वर-बद्ध कर दिये गये हैं।

ये स्वर तीन प्रकार के हैं—उदात्त, अनुदात्त और स्वरित्। साधारण जनता में एक विचित्र भ्रम फैल गया है कि सामवेद के स्वर जो अक्षरों के ऊपर १, २ और ३ संकेतों से सूचित किये जाते हैं, ऋग्वेद अथवा अन्य वेदों के स्वरों से भिन्न हैं, और इस भ्रम के कारण ही सामवेद के मन्त्रों को बहुधा लोग एक विचित्र बनावटी स्वर से पढ़ने लगते हैं। लेखकका यह अनुभव है कि यज्ञों में शान्ति प्रकरण, या स्वस्तिवाचन के मन्त्रों में जैसे ही 'अग्न आयाहि०' या 'त्वमग्ने यज्ञानां०' आदि सामवेदी मन्त्र आ जाते हैं, त्योंही मन्त्र-पाठी ध्वनि में एक अनोखा परिवर्तन करके अपनी साम-गान-विद्वत्ता का परिचय देने लगते हैं। यह वस्तुतः भ्रम ही है।

एक ही स्वर को भाषा में चित्रित करने के लिये भिन्न भिन्न आचार्यों की भिन्न भिन्न पद्धतियां हैं। पिंगलशास्त्र में ह्रस्व और दीर्घ (लघु और गुरु) मात्राओं को भी लोग भिन्न भिन्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं। कोई तो लघु और गुरु का क्रमशः (।, ऽ) इन संकेतों से सूचित करता है तो कोई (‿, —) इन संकेतों से। यह तो सूचित करने की अपनी २ पद्धति है। यही अवस्था वेदों के स्वरों की भी है।

वैदिक साहित्य में स्वरों को प्रदर्शित करने की चार पद्धतियाँ विद्यमान हैं—

(१) ऋग्वेदी पद्धति—इस पद्धति में उदात्त स्वर के लिये कोई चिह्न नहीं लगाते हैं, अर्थात् यदि ऋग्वेद के किसी मन्त्र के किसी अक्षर के ऊपर या नीचे किसी प्रकार का चिह्न नहीं लगा हुआ है तो उस अक्षर का उच्चारण उदात्त स्वर में होगा। इस पद्धति में अनुदात्त स्वर को प्रदर्शित करने के लिये अक्षर के नीचे

एक पड़ी रेखा (—) लगा देते हैं। स्वरित स्वर वाले अक्षरों के ऊपर एक खड़ी डंडी (।) लगा दी जाती है।

(२) मैत्रायणी या काठक पद्धति—इस पद्धति में उदात्त अक्षर के ऊपर खड़ी डंडी लगाते हैं। शेष स्वरों (अनुदात्त और स्वरित्) के लिये इस पद्धति में कोई चिह्न नहीं है।

(३) शतपथ पद्धति—इस पद्धति में उदात्त को अक्षरों के नीचे पड़ी रेखा (-) खींचकर सूचित करते हैं। स्वरित् और अनुदात्त को सूचित करने के लिये शतपथ ब्राह्मण में कोई चिह्न नहीं हैं। सम्पूर्ण शतपथ ब्राह्मण में एकमात्र उदात्त स्वर ही सूचित किया जाता है।

(४) सामवेदी पद्धति—इस पद्धति में उदात्त को १, अनुदात्त को ३ और स्वरित् को २ संख्याओं से सूचित किया जाता है।

इन पद्धतियों को समझने के लिये निम्न मंत्र लीजिये :—

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥

३ २ ३१ २ ३ १ २ ३ १२
अग्नि दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्।
३ २ ३१२ ३ १२
अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥ ३॥

अग्निं दूतं वृणीमहे होतारं विश्ववेदसम्। अस्य यज्ञस्य सुक्रतुम्॥

यह मंत्र सामवेद के पूर्वार्चिक (१, १, ३) में और ऋग्वेद (सं० १, १२, १) में है। ऋग्वेद में अनुदात्त स्वर निम्न अक्षरों पर (–) चिह्नद्वारा सूचित किये गये हैं।

अ, दू, हे, वि, अ, य, सु,

और सामवेद में ये स्वर इन्हीं अक्षरों पर ३ की संख्या लिख कर सूचित किये गये हैं

ऋग्वेद के इस मंत्र में निम्न अक्षरों पर स्वरित चिह्न (।) हैं :—

वृ, ता, वे, स्य, तु

सामवेद में इन अक्षरों के ऊपर (२) लिखा हुआ है। (सामवेदमें ग्नि के ऊपर भी २ का चिह्न है, कदाचित् भूल से वैदिक यन्त्रालय के ऋग्वेद में यह चिह्न छूट गया है)।

शेष अक्षरों पर ऋग्वेद में उदात्त-सूचक कोई चिह्न नहीं है, पर सामवेद में इन पर (१) संख्या लिखी हुई है।

इससे स्पष्ट है कि मंत्रों पर केवल १, २, ३, की संख्या देख कर ही यह न समझ लेना चाहिये कि यह मंत्र ऋग् अथवा अन्य वेदों के मंत्रों से कोई विलक्षण स्वर वाला है।

जिन मंत्रों की आवृत्ति ऋग्वेद और सामवेद में पायी जाती है, उनसे बहुधा यह स्पष्ट है कि दोनों स्थलों में अधिकांशतः स्वर एक ही हैं। कहीं कहीं भेद भी होगया है, पर मुख्यतः यह भेद भेद नहीं माना जा सकता है। स्वरों के लगाने में प्रेस की भूलें कहीं कहीं भेद डाल

देती हैं, पर स्वरों में साधारणतः कुछ भी अधिक भेद नहीं है।

निम्न मंत्र को कुछ भेद देखिये:—

त्वमग्ने यज्ञानां होताꣳविश्वेषा हितः। देवेभिर्मानुषेजने।

(ऋग्वेद मं० ६, १६, १ और साम पू० १, २, १)

ऋग्वेद और सामवेद दोनों में ही निम्न अक्षरों पर अनुदात्त स्वर विद्यमान है—

य, नां, ता, हि, दे, भि, षे

ऋग्वेद में स्वरित् स्वर म, श्वे, नु, ने इन चार अक्षरों पर ही है, पर सामवेद में स्वरित स्वर म, ज्ञा, हो, श्वे, तः, वे, नु, और ने, इतने अक्षरों पर है।

अग्न आयाहि वीतये गृणानो हव्य दातये। निहोता सत्सि बर्हिषि।

(ऋग्० ६। १६। १०, साम, पू० १। १। ८)

इस मंत्र में ऋग्वेद में अनुदात्त स्वर, ग्न, वी, णा, ह, और ब अक्षरों पर है और सामवेद में भी ऐसा ही है। स्वरित स्वर ऋग्वेद में या, ये, दा, ता और षि अक्षरों पर है। सामवेद में यह स्वर अ, या, ये, नो, दा, ता, और षि पर है, इस प्रकार कुछ अन्तर हो जाता है। पर इस प्रकार का कुछ न कुछ भेद तो एक ही वेद में दो स्थलों में आये हुए एक ही मंत्र में भी हो सकता है। निम्न मंत्र लीजिये—

अग्न आयूंषि पवस आसुवोर्जं मिषञ्च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम्।

यह मंत्र सामवेद में तीन स्थलों पर आया है। इनमें अनुदात्त और स्वरित निम्न प्रकार हैं—

अनुदात्त—ग्न, स, सु, र्जं, आ, स्व

(पूर्वा० ६,३,१४,१)

ग्न, से, सु, र्जं, आ, दु

(उत्त० ६,३,१२)

ग्न, से, सु, र्जं, आ, दु

(उत्त० ७,१,१२)

स्वरित—अ, यूं, आ, वो, षं, बा, ना

(पूर्वा० ६,३,१४,१)

अ, यूं, आ, वो, षं, बा

(उत्त० ६,३,१२)

अ, यूं, आ, वी, षं, बा, ना

(उत्त० ७,१,१२)

बहुत सम्भव है कि इस प्रकार का स्वरान्तर असावधानी के कारण हो गया हो अथवा यह पाठान्तर ही हो। कुछ पाठान्तर तो मूल वाक्यों में भी पाये जाते हैं।

सामान्य प्रकरणम् में 'अग्न आयूंषि०' अथवा 'अग्ने पवस्व स्वपा०' आदि मंत्र पढ़ते समय कोई यह नहीं विचार करता है कि ये मंत्र भी सामवेद के हैं, और इन्हें भी उसी बनावटी ध्वनि से पढ़ा जाय जैसे कि 'अग्न आयाहि०' आदि को।

सामवेद में उदात्त, अनुदात्त और स्वरित् स्वरों के अतिरिक्त दो स्वरों* का और व्यवहार किया जाता है, जिन्हें अक्षरों के ऊपर 'र' या 'उ' द्वारा सूचित किया जाता है। र या उ के पहले उदात्त और स्वरित सूचक '१' या '२' संख्यायें भी लिखी रहती हैं। इन स्वरों को कदाचित् प्रचित और निघात कहते हैं। अग्न आयाहि वीतये० मंत्र के 'होता' शब्द में ऋग्वेद में 'हो' उदात्त है और 'ता' स्वरित। इस शब्द के स्वर को साम-वेद में 'र २ र' से सूचित किया गया है, वस्तुतः प्रचित कोई नया स्वर नहीं है, यह उदात्त और स्वरित् के मिश्रण का ही परिवर्तित रूप है। ऋग्वेदी पद्धति वाले इतना सूक्ष्म भेद चित्रित करने की आवश्यकंता नहीं समझते हैं, पर इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि ऋग्वेदी मंत्रों में प्रचित या निघात हैं हीं नहीं। ऋग्वेदी आचार्य्यों के मतानुसार इनके चित्रह करने की आवश्यकता नहीं है, ये स्वभावतः आ जाते हैं। निघात स्वर भी उदात्त में कुछ थोड़ा न्यूनाधिक्य कर देने से उत्पन्न हो जाता है। 'अग्नो देवी०' मन्त्र में ऋग्वेद में 'शंयोः' के दोनों अक्षर उदात्त है, पर सामवेद में इन्हें '२ ड' से सूचित करके निघाती कर दिया गया है।

स्वरों के इस प्रकार के भेद तो ऋग्वेद और सामवेद दोनों में ही किये जा सकते हैं, पर इसका तात्पर्य्य यह नहीं है कि दोनों के मन्त्र अलग २ ध्वनियों में गाये जायं। वस्तुतः दोनों वेदों में मन्त्रों के स्वर भी एक ही हैं, जैसे 'त्वमग्ने यज्ञा नां०' मन्त्र का स्वर ऋग्वेद और सामवेद दोनों में दी षड्ज है। 'शन्नो-देवी०' भी दोनों ही स्थलों में षड्ज है। 'उदुत्यं जात-वेद सं०' भी ऋग् और साम दोनों में ही षड्ज है। 'अग्न आयहि बीतये०' भी षढ्ज है।

इन स्वरों से निर्धारित करने में एक और भी अधिक मनोरंजक बात है। ये स्वर बहुधा छन्दों के ऊपर निर्भर हैं। सामवेद ही नहीं ऋग्वेद में भी अधिकां-शतः ऐसा देखा जाता है, कि छन्दों और स्वरों में ये सम्बन्ध विद्यमान है जो पृष्ठ १६६ पर अङ्कित है।

इसको देखने से पता चल जावेगा कि जिस क्रम से छन्दों के नाम उनके अक्षरों की संख्या के अनुसार हैं, उसी क्रम में आधुनिक सरगम के स्वर भी हैं। वेदों में इन सात छन्दों (गायत्री आदि)

* कुछ स्थलों पर 'क' चिह्न द्वारा भी स्वर सूचित किया गया है जो कदाचित् अनुदात्त का परिवर्तित रूप है। 'भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम०' मंत्र (ऋग्वेद १। ८९। ८, सामवेद उत्तरा० ९। ३। ९, में 'मि सत्तनूभिर्व्य' के भि के ऊपर इ क लगा हुआ है जो ऋग्वेद में अनुदात्त स्वर है।

के अतिरिक्त अन्य छन्द भी आये हैं, जिनके लिये भी इन ७ स्वरों (सरगम पधनि) में से कोई एक निर्धारित कर लिया गया है।

छन्द	एक चरण में अक्षरों की संख्या	स्वर	सरगम
गायत्री	६	षड्ष	स
उष्णिक्	७	ऋषभ	र
अनुष्टुप	८	गांधार	ग
बृहती	९	मध्यम	म
पंक्ति	१०	पञ्चम	प
त्रिष्टुप	११	धैवत	ध
जगती	१२	निषाद	नि

हमारे उपर्युक्त नियम को दृष्टि में रख कर मंत्रों के स्वर बताने में अधिक कठिनता न होगी। पिंगल के नियम के अनुसार अक्षरों की संख्या गिन कर मंत्र का छन्द आसानी से पता चल सकता है और जब छन्द पता चल गया तो स्वर भी पता चल गया। छन्दों के उपभेदों का स्वर पर सामान्यतः प्रभाव नहीं पड़ता है, अर्थात् भूरिक्, निचृत्, विराड् आदि कोई भी भेद क्यों न हो, स्वर मुख्य छन्द के अनुसार होगा, निचृज्जगती, निचृदति जगती, जगती, विराड् जगती, सभी का स्वर निषाद होगा। स्वरों की संख्या केवल ७ है, पर छन्दों की संख्या बहुत ही अधिक है, अतः ऊपर दिये हुये मोटे नियम में कभी कभी सावधानी रखने की अवश्य आवश्यकता पड़ेगी। यह विषय फिर कभी विस्तार-पूर्वक लिखा जावेगा।

किसी भी मन्त्र का छन्द चाहें वह ऋग्वेद में हो या सामवेद में एक ही होगा, अतः उसका षड्ज, आदि स्वर भी जो ऋग्वेद में होगा वही सामवेद में भी। इससे स्पष्ट है कि मंत्रों के अक्षरों पर लगे हुए उदात्तादि स्वरों की दृष्टि से और प्रत्येक मन्त्रों के षड्जादि स्वर की दृष्टि दोनों से ही जिस ध्वनि से ऋग्वेद का मन्त्र पढ़ा जाना चाहिये उसी ध्वनि से सामवेद का मन्त्र भी। कम से कम संहिताओं के मन्त्रों में कोई ऐसा आदेश नहीं है जिसके अनुसार मन्त्र केवल सामवेदी हो जाने के कारण किसी दूसरी ध्वनि में गाया जावे। यह भ्रम अवश्य दूर हो जाना चाहिये।

गवैये एक गाने को ही कई प्रकार से गा सकते हैं। शब्दों के अक्षरों को तोड़ मरोड़ सकते हैं, स्वर को जितना ऊँचा नीचा चाहें खींच सकते हैं। अतः गाने वाले की रुचि के अनुसार एक ही मंत्र कई प्रकार से गाया जा सकता है। गोतम ऋषि के पर्क्क साम में "अग्न आयाहि वीतये०" मंत्र को 'ओग्ना ३। आयाही ३ वोई-तोया २ इ। तोया २ इ। गृणानो ह०'

इत्यादि और काश्यप के बर्हिष्य में आया हो तो। तयाइ। गृणानो हव्य' इत्यादि रूप में गाते हैं। पर यह नियम सामवेदी मन्त्रों के लिये ही क्या, सभी के लिये हो सकता है, और गाते समय हो ही जाता है। यही बात स्तोम ऊहगान और ऊह्यगानों के लिये भी कही जा सकती हैं।

सामवेदी स्वरों के सम्बन्ध में भ्रम होने के कारण एक मज़ेदार बात प्रचलित हो गई है। स्वामी जी ने सामान्य प्रकरण के अन्त में एक वामदेव्य गान दिया है जो सामवेद के उत्तरार्चिक (१।१।१२) के ३ मन्त्र है, जिनका ऋषि वामदेव है महा व्याहृतियों को निकाल कर मन्त्र इस प्रकार हैं—

कया नश्चित्र आभुवदूती सदावृधः सखा। कया शचिष्ठया वृता॥ १॥ कस्त्वा सत्योमदाना महिष्ठो मत्सदन्धसः। दृढा चिदारुजे वसु॥ २॥ अभीषुणः सखी नाम विता जरितृणाम्। शतम्भ-वास्यूतये॥ ३॥

इन तीन मंत्रों को पहले तो स्वामी जी ने सामवेद की स्वर पद्धति के अनुसार लिखा है, और फिर महा वामदेव्यम् करके इन्हीं तीन मन्त्रों को फिर पक्र्क-सास या वर्हिष्य साम पद्धति के समान गाने के लिये दुहरा दिया है। पर हमारे यज्ञ-पाठी इस बात को समझते ही नहीं हैं। वे 'ओंभूर्भुवस्वः कयानश्चित्र०' से लेकर 'का5५ या नश्चा ३ इत्रा०' पढ़ते पढ़ते हुए 'ता5 २ यो ३5५ हायि' तक पढ़ जाते हैं। चाहिये तो यह कि या तो 'भूर्भुवस्व। कया० से लेकर शतम्भ-वास्यूतये तक की चार पंक्तियाँ ही पढ़ें, और शेष भाग को छोड़ दें, अथवा इन पंक्तियों को छोड़ करके 'का5५ या नश्चा ३०' से आरम्भ करके 'ता5 २ यो ३5५ हायि' तक पढ़ें, पर दोनों को मिला कर पढ़ जाना तो हास्यास्पद और अज्ञानता सूचक ही है।

यह वामदेव्य गान ऋग्वेद (मं० ४। ३१। १-३) में भी आया है जिसमें भी वही वामदेव ऋषि, वही षड्ज स्वर और वही गायत्री छन्द है। अनुदात्तादि स्वर भी मुख्यतः वही हैं।

इस लेख द्वारा हमने दिखाने का प्रयत्न किया है कि सामवेद के मन्त्रों के अक्षरों पर लिखी हुई १, २, ३, आदि संख्या को देख कर इन्हीं ऋग्वेदी स्वरों से भिन्न समझना सर्वथा भूल है। जो तात्पर्य ऋग्वेद में खड़ी पड़ी रेखाओं से है, बिल्कुल वही तात्पर्य सामवेदी संख्याओं से निकाला गया है। पक्र्क-साम या बर्हिष्य-साम ऊहगा+न आदि का प्रयोग ऋग्वेद के अन्य मंत्रों में भी उसी प्रकार किया जा सकता है जिस प्रकार सामवेद के मंत्रों में। अतः सामवेद के मंत्र को देख कर विशेष प्रकार की बनावटी ध्वनि बना लेना सर्वथा अनौचित्य है।



[११]

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनाँउपमिद् ययन्थ॥

(ऋग्वेद १ । ५६ । १)

(अग्ने) हे पूजनीय तथा सब गतियों के प्रेरक ईश्वर (अन्ये अग्नयः) और सब अग्नियां अर्थात् गति वाली चीज़ें (ते) आप की (वया इद्) शाखों के समान हैं। (त्वे) आप में (विश्वे) सब (अमृता) अमर सत्तायें (मादयन्ते) आनन्दित होती हैं। (वैश्वानर) हे सब के नेता ईश्वर ! आप (क्षितीनाँ) मनुष्यों की (नाभि) ढुंडी अर्थात् केन्द्र हैं। आप (जनाँ) मनुष्यों को (उपमित्) सहारा देते हुये (स्थूणा-इव) खम्भे के समान (ययन्थ) धारण करते है।

इस वेद मंत्र में ईश्वर को 'अग्नि' कहा है। 'अग्नि' शब्द संस्कृत के "अन्चुगतिपूजनयोः" धातु से निकला है। 'अन्चु' धातु के दो अर्थ हैं एक गति और दूसरा पूजन। 'गति' अग्नि का स्वयं गुण हैं। पूजन दूसरों का अग्नि के प्रति है। सांसारिक 'अग्नि' भी दो गुणों के लिये प्रसिद्ध है एक गर्मी और दूसरा प्रकाश ! 'गर्मी' सब गतियों की प्रेरक है। जहाँ गर्मी है वहाँ गति हैं। जहाँ ठण्ड है वहाँ शिथिलता है। जहां गति है वहाँ जीवन है। जहाँ शिथिलता है वहाँ मौत है। गर्मी का प्रकाश के साथ सम्बन्ध है इसलिये प्रकाश को लोग पूजते हैं।

जो बातें भौतिक अग्नि में पाई जाती हैं वही अनन्त मात्रा में ईश्वर में पाई जाती हैं। यही नहीं। वेद कहता है कि "अन्ये अग्नयः" अर्थात् अन्य सब अग्नियाँ "ते वया" तेरी शाखायें हैं। यह नहीं कि ईश्वर अग्नि के समान गतिवान और पूजनीय है किन्तु यों कहना अधिक

ठीक होगा कि अग्नि ईश्वर के समान गतिवान और पूजनीय है। क्योंकि अग्नि ईश्वर की शाखा के समान है। जिस प्रकार वृक्ष से शाखायें निकल कर उसी के समान गुण रखती हैं इसी प्रकार सब अग्नियाँ ईश्वर से निकल कर ईश्वर के से गुण रखती हैं। जिस प्रकार भौतिक अग्नि सब अन्य पदार्थों को गति देती है इसी प्रकार ईश्वर सबको गति देता है। इससे भी बढ़कर बात यह है कि अग्नि की यह गति भी ईश्वर की गति से निकली हुई है। 'अग्नि' क्या है ? प्रकृति का एक अंश। जड़ और अन्धकारमय। न तो उसमें गति ही है न वह पूजनीय है। परन्तु जब प्रकृति के इसी अन्धकार मय अंश को ईश्वर की गति मिल जाती है उस समय उसमें प्रकाश और गर्मी दोनों आजाती हैं। "त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते" अर्थात् सब अमर सत्तायें तुझी में आनन्दित होती हैं। ये अमृत कौन हैं ? जीव जो कभी मरते नहीं। जो अनादि और अनन्त हैं। यह अमृत जीव केवल ईश्वर में ही आनन्द पाते हैं। विना ईश्वर के आनन्द कहाँ ? जो संसार की वस्तुयें हमको सुख देती हैं उनमें भी आनन्द ईश्वर से ही आता है।

ईश्वर को वैश्वानर इसलिये कहते हैं कि यह "विश्व" का "नर" अर्थात् नेता है। यह मनुष्यों की 'नाभि' अर्थात् केन्द्र है। जिस प्रकार मकान खंभे पर ठहरा रहता है उसी प्रकार मनुष्य भी ईश्वर के सहारे ही स्थित रहते हैं। ईश्वर सब का सहारा है। ईश्वर के विना हमारा कोई काम नहीं चल सकता। ईश्वर को मनुष्यों का नाभि कहने का कारण यह भी है कि जिस प्रकार पहिये के घेरे का प्रत्येक भाग अपने केन्द्र की ओर खिंचा रहता है उसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य को ईश्वर की ओर खिंचा रहना चाहिये। जिस की वृत्तियां ईश्वर से विमुख हो जाती हैं वह उसी प्रकार नष्ट भ्रष्ट हो जाता है जैसे पहिये को परिधि केन्द्र से अलग होने पर पहिये को नष्ट कर देती है।

इस मंत्र में चार मोटी मोटी बातें बताई गई हैं। (१) संसार की सब शक्तियों का निकास ईश्वर से है। (२) जीवों को ईश्वर से ही आनन्द मिलता है। (३) ईश्वर मनुष्यों का केन्द्र है अर्थात् मनुष्यों को उसी ओर झुका रहना चाहिये। (४) ईश्वर सब मनुष्यों का सहारा है।

पुनर्दर्शन

[श्रीयुत चिन्तामणि "मणि"]



अरे, अभी निद्रा नहीं टूटी। बाप रे, बाप। इस चाण्डालिनी ने तो मेरी नाकों दम कर दिया। हत्यारी की मौत भी नहीं आ जाती। मेरा कंचन सा सुन्दर पुत्र इस दुष्टा के कारण ही बेहाथ हुआ। फिर भी चुड़ैल के हृदय अभी तक ठंडे नहीं हुये। दोपहरी तक सो २ कर इसने निशाचरी वृत्ति फैला डाली।

यह कहते २ लखिया की सास आंगन में आ गई। देखा तो लखिया शौच से निवृत्त होकर आ रही है। सास का भुन-भुनाना उसको कर्ण-गोचर हुआ।

वैसे तो लखिया बहुत शान्ति धारण किये रहती थी। पर आज उसकी भी कोपाग्नि भभक उठी।

"नित्य पागल की तरह बड़-बड़ाना तुम्हारा बढ़ता ही जाता है। तुम्हारे पुत्र को खाया। मैं डाइन हूं। मैं कुलटा हूं। पर अब देखो तुम बची रहना, इस बार तुम्हें ही खाऊँगी।"

अब क्या था, मानों अग्नि में घृत की आहुति हो गई। भीषण गर्जना करते हुए लखिया की सास ने उसके केश को जा धरा, उसकी इस धृष्टता को देख कर लखिया के क्रोध का वारापार न रहा। शौच वाले लोटे से उसकी यथाशक्ति मरम्मत कर दी। तदुपरान्त केश छुड़ा कर अलग खड़ी हुई। बुढ़िया आंगन में चीत्कार करती हुई गिर पड़ी।

❀　　❀　　❀

अभी सूर्योदय नहीं हुआ था। सेठ छंगामल खटाखट खड़ाऊँ पहने गंगा स्नान को जा रहे थे। राह में एक काले कुत्ते को देख कर बोले—"आज रोटी मुहाल है।"

मतलब समझ में न आया। सेठ जी ने 'मुहाल' शब्द के क्या अर्थ लगाये उनका तात्पर्य्य किन बातों से है यह जानना ज़रूरी है।

लगभग दस बजे सेठ जी गंगा-स्नान करके लौटे। जाड़े का दिन था। द्वार पर गंगा-जली रख दी। ज़रा धूप लेने को खड़े हो गये। कुछ देर बाद सेठ जी ने घर में पग रक्खा। अन्दर पहुंचते ही सुशीला के कराहने की आवाज़ पाई। दौड़े २ सुशीला के कमरे में गये। पर वहां सुशीला न थी। अब तो सेठ जी आंगन तक जा पहुंचे। देखा तो सुशीला पृथ्वी पर पड़ी कराह रही है। यह दृश्य देख कर सेठ जी के दुःख का वारापार

न रहा। उन्होंने अपने हाथों से जाकर सुशीला को उठाया। वृद्धा सुशीला पति को अनेकों नखरे दिखाती हुई उठी। सेठ जी बैठ कर बोले—"क्यों क्या हो गया, अभी जब मैं स्नान करने गया था तुम पलंग पर पड़ी आनन्द की उसासें ले रहीं थीं?"

इतने में वहू अपने कमरे में से निकल आई। बोली—"आपके पुत्र को खानेवाली, डाइन, चाण्डालिनी, हत्यारिणी ने इनकी यह दशा की है।"

सेठ जी इसका ठीक २ तात्पर्य न समझ सके। बोले—"वह कौन है, वहू?"

"वह मैं ही हूं।"

"अरे, क्या तुमने सुशीला को मारा है?"

"और क्या पूजा करती। जब मैंने देखा कि मेरे ही प्राणों की गाहक है। तो मैंने भी ऐसा करने का निश्चय कर लिया।"

अब तक सुशीला में पुनः साहस का संचार हो चुका था। वह उठी और बकते हुये सेठ जी के सामने ही लखिया को आंगन तक खींच लाई। हाथा-पाई होने लगी। सेठ जी "हां! हां!" करते ही रहे।

❀ ❀ ❀

रुस्तमगंज में मेरे पिता का निज का मकान था। मैं छुंगामल की कन्या हूं। मेरे पिता आढ़त का काम करते थे। मैं अपने पिता की एक मात्र पुत्री थी। विवाह के दो वर्ष बाद माता पिता मर गये। उनकी सारी सम्पत्ति रिस्तेदारों ने ले ली। अब मेरा वहां कोई सहारा नहीं। पति का पता ही नहीं है। रही-सही सास ससुर की आशा भी आज जाती रही। इतना कह कर सहसा वह रुकी, नेत्रों ने अंचल को सराबोर कर दिया।

मास्टर मंगलराम ने परम रूपवती युवा स्त्री को इस तरह भीषण रोदन करते देख कर धैर्य छोड़ दिया। चित्त व्याकुल हो उठा। तरह २ के विचारों की झड़ी सी लग गई।

उस दिन लखिया दिन भर मास्टर साहब के यहाँ ही रही। कोई उचित प्रवन्ध होते न देख कर वह वहाँ से भी चल दी। अब पता नहीं लखिया कहां है? किधर गई, क्या करती होगी?

मास्टर मंगलराम जाति के गुंसाई हैं। वे स्थानीय क्रिश्चियन कालेज में सेकंड मास्टर हैं, आपकी समुचित आमदनी है। आप जिसमें रहते हैं, वह मकान सेठ छुंगामल का है। यही कारण है कि लखिया ने उनको अपना सारा इजहार सुनाया था। मास्टर मंगलराम ने सेठ जी को बहुत समझाया पर सेठ जी ने उनका भी कहना न माना और लखिया को घर से निकाल कर ही शान्ति प्राप्त की।

आज सेठ जी को रोटी के लाले पड़ गये। सचमुच सेठ जी ने उस समय जो कहा था कि 'रोटी मुहाल है' अब समझ में आया। 'मुहाल' से तात्पर्य उनका यह था कि आज रोटी के दर्शन न होंगे। हुआ भी वैसा ही। क्योंकि वृद्ध सेठ जी बड़ी विपत्ति में थे ?

सायंकाल होने को आ गई। मुंह में बेचारे सेठ जी के पानी तक नहीं पड़ा। इधर मंगलराम खरी खोटी सुना गये। उधर सुशीला का कराहना भयंकर वज्र-पात था।

उपर्युक्त आपत्तियों से ग्रसित सेठ जी की आंखें डबडबा आईं। दो बूंद पृथ्वी पर टपक पड़े। कुछ बोला न गया।

❀ ❀ ❀

आज शहर में एक बड़ा भारी पंडित आया है। नोटिसबाज़ी खूब हो रही है। आज रात को स्थानीय समाज मन्दिर में कथा कहेगा। कथा सुनने योग्य तथा जीवन के सुधार में लाभप्रद होगी। नर-नारियां सभी जावेंगी। खूब आनन्द आवेगा।

सेठ जी ने सुना। तैयार हो गये। सुशीला भी साथ चली। स्थानीय आर्य्य समाज में पहुंच कर सुशीला ने देखा एक सर्वाङ्ग सुन्दर पुरुष एक ऊंची सी चौकी पर बैठा है। लोग उसके मुख की तरफ़ एकटक देख रहे हैं। वास्तव में ऐसा सुन्दर युवा पुरुष आज तक देखने को नहीं मिला। उसके चेहरे से जो तेज चमकता है उसकी प्रशंसा ही नहीं की जा सकती। मानों स्यार की मंडली में सिंह बैठा हो। उसकी वाणी कैसी है इसका अनुभव करना ज़रूरी है ?

चौकी के पास से एक व्यक्ति उठा और कुछ कह कर बैठ गया। तत् पश्चात् सिंह के समान गर्जना करते हुए वह नवयुवक पंडित बोला—मुझे हर्ष है कि ऐसी भीषण शीत के होते हुये आज जिस प्रकार की उपस्थिति श्रोता-गणों की मैं यहां देख रहा हूँ, अन्य जगह देखने में नहीं आई। इसलिये मैं उपस्थित माताओं, बहिनों व भ्राताओं को धन्यवाद देता हुआ यज्ञ सम्बन्धी विस्तृत व्याख्या आप लोगों के सामने रखता हूँ। आशा है आप लोग ध्यान पूर्वक सुनेंगे।

लगभग नौ बजे कथा समाप्त हुई। कथा क्या थी अमृतोपदेश था। यज्ञ के तात्पर्य्य पंडित जी ने बतलाये कि संसार यज्ञ है, मनुष्य का शरीर यज्ञ है। अर्थात् अच्छे और उत्तम फल देने वाले कार्य्य सभी यज्ञ हैं। और यज्ञ पर सभी का बराबर अधिकार है। यदि किसी ने कहा नहीं मैं श्रेष्ठ, बस, गड़बड़ हो जायगा और शीघ्र ही आपत्ति आ उपस्थित होगी।

सुशीला और सेठ जी ने बड़े ध्यान से पंडित जी के व्याख्यानों को सुना था। अब तो उनके विचार में परिवर्तन होने लगा। लखिया के साथ जो कुछ दुष्कृत्य किया था याद आने लगा। पुत्र की याद अब भी उनके हृदय में हरी बनी थी; परन्तु उसके यकायक ग़ायब हो जाने को बहुत दिन हो गये थे। उनका अनुमान था कि वह इस लोक में न होगा। लखिया की खोज करने में उन्होंने बहुत रुपया व्यय किया पर कुछ भी फल न निकला। इस आपत्ति में त्याग का जीवन हो गया और सेठ जी अब आर्य्यसमाज के सभासद बन गये। प्रत्येक साप्ताहिक अधिवेशन में जाते, हवन, संध्या, इत्यादि सभी धार्मिक कृत्य करते।

एक दिन की बात है कि साप्ताहिक अधिवेशन के दिन एक स्त्री और पुरुष शुद्ध होने को आये। इतने में सुशीला सहित सेठ जी भी पहुंच गये। सेठ जी उस मनुष्य को देख कर अचम्भे में आ गये। धीरे २ उसके समीप पहुंचे। अब तो सेठ जी पहिचान गये। बोले—"पुत्र तुम कहाँ थे?" समाज मन्दिर भर में तहलका मच गया। सभी लोग आश्चर्य की दृष्टि से देखने लगे। युवक लज्जित सा प्रतीत होता था। बोला—"बदायूं में था"—"क्यों?" इस प्रश्न ने उसको और भी लज्जित बना दिया।

अब तो उसने सारा किस्सा बताया। मलका वेश्या से उसका संसर्ग था। दशहरे वाले दिन वह उसको लेकर भागा था। मलका मर गई, पैसा पास न रह गया। इसलिये वह वहाँ से चला, कानपुर में आ कर इस स्त्री से उसका सम्बन्ध हो गया। वहाँ कुछ दिन रहने के बाद यहां आया हूँ। वेश्या मुसलमानी थी इसलिये शुद्ध होना जरूरी है। इतने में सुशीला भी उस स्त्री के पास तक पहुँच गई। उसको घूर कर देखा। हँस कर बोली—"लखिया।"

लखिया ने मारे लज्जा और संकोच के मारे बोलना न चाहा, परन्तु अब वह अपने को कहां छिपा सकती थी। सास ने पहचान लिया। समीप आ गई। नेत्र से नेत्र मिल गये। आनन्द की वंशी बज उठी। आज पुत्र और पुत्रवधू का पुनर्दर्शन मिला।

गोस्वामी तुलसीदास कौन थे ?

(आलोचनाओं की आलोचना)

[श्री विद्यानिधि पं० रजनीकान्त जी शास्त्री बी. ए. बी. एल.)



ने जुलाई १९२९ के "चाँद" में "गोस्वामी तुलसीदास कौन थे ?" शीर्षक एक लेख प्रकाशित कराया था जिसमें गोसाईं जी की जाति-पांति तथा विवाहादि विषयक जनता में प्रचलित भ्रान्ति-पूर्ण मत का पूर्णतः खण्डन करते हुए उन्हीं के ग्रन्थों के आधार पर यह दिखलाया था कि वे एक अथीथ जाति के बालक थे तथा उनका विवाहादि कुछ भी न हुआ था। जनता की चिरबद्धमूल धारणा के विरुद्ध लेखनी उठाने तथा मुँह खोलने पर जो अवस्था लोक में उत्पन्न हुआ करती है; ठीक वही हुई। मेरे उक्त लेख ने तुलसीदासी जनता में एक प्रचण्ड खलबली मँचा दी और उसके खण्डनार्थ चारों ओर से उचित किम्वा अनुचित सभी प्रकार के आक्षेपों का एक तूफ़ान सा उठ गया। कितने लेखकों ने तो मेरे उक्त लेख का युक्ति युक्त तथा शास्त्र संगत उत्तर देने में अपनी असमर्थता के कारण केवल दुर्वचनों के ही द्वारा अपनी विद्वता तथा सभ्यता का परिचय देते हुए अपने कलेजे की आग ठंढी की और कुछ इने-गिने लेखकों ने अपनी सारहीन एवं लचर दलीलों के वल पर ही मेरे लेख का सामना किया। मुझे देखने में आया कि ये सब दलीलें प्रायः एक ही ढर्रे की थीं; अतः मैंने इन सबों का एक ही उत्तर एप्रिल १९३० के "चाँद" में छपवा दिया। मैंने समझा था कि अब तूफ़ान शान्त हुआ; पर देखते हैं कि इसकी सिसकारियां अब भी रह रह कर कुछ अप्रसिद्ध पत्रों में उठ जाया करती हैं जिससे भोली भाली जनता की आँखों में धूल पड़ जाने की आशङ्का है। यही कारण है कि मुझे इस विषय पर अपनी लेखनी फिर उठानी पड़ी।

प्रयाग के "भारतवासी" तथा "अरुणोदय" एवं बंबई के "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" में मेरे मूल लेख (जुलाई १९२९) के विरुद्ध फिर भी कतिपय लेखकों ने अपना सिर उठाया है। "भारतवासी" के लेखक ने अपना नाम नहीं दिया है; पर तर्कशैली को देखने से जान पड़ता है कि "भारतवासी" तथा

"अरुणोदय" के लेखक दोनों एक ही व्यक्ति हैं, पर "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" के लेखक अन्य व्यक्ति हैं। याद रहे कि "भारतवासी" में छपा यह दूसरा लेख है। उसमें छपे पहले लेख का खण्डन, जिसे किसी दास महोदय ने लिखा था, एप्रिल १९३० के "चाँद" में कर चुका हूं। इस लेख में उन तीनों महाशयों के तर्क पर इकट्ठा विचार किया जायगा। इन लेखकों ने भी वही पुरानी गीत गाई है; इनकी भी "वही लहँगा वही सारी" है। पाठकों की जानकारी के लिए अपने "चाँद" वाले उत्तर का यथावसर संक्षिप्त दिग्दर्शन कराते हुए इस लेखक-त्रयी के दो एक नवीन पर वैसी ही लचर दलीलों की निःसारता दिखलाई जायगी—

(१) जायो कुल मङ्गन।

ब्राह्मणों की जाति मङ्गनों की जाति नहीं है। भीख मांगने वाला ब्राह्मण शास्त्रों में शूद्र तथा चाण्डाल तुल्य माना गया है। गोसाईं जी अपनी दीनता, हीनता आदि दिखलाने के लिए अपनी व्यक्तिता को लक्ष्य कर चाहे किसी भी शब्द का प्रयोग करें, पर वे इस अभिप्राय से किसी ऐसे शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते जो उनकी व्यक्तिता के साथ सारी ब्राह्मण जाति पर भी लागू हो जाए, क्योंकि ऐसे शब्द का प्रयोग उनकी असीम तथा अटल ब्राह्मण-भक्ति के विरुद्ध है। "श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" के लेखक ने "ग्राम याचकः" की जगह "ग्राम याजकः" पाठ बदल कर यह दलील की है कि ग्राम याचक नहीं बल्कि ग्राम याजक ब्राह्मण चाण्डाल हैं। पर पाठक गण स्वयं विचार कर सकते हैं कि याजन (यज्ञ करवाना) ब्राह्मण का शास्त्रविहित कर्म्म है, इस कर्म्म के करने से वह चाण्डाल नहीं कहा जा सकता चाहे, वह ग्राम में यज्ञ करवावे वा तपस्वियों के आश्रम पर जाकर। "ग्रामयाचक" शब्द का अर्थ गांव २ भीख माँगने वाला है। यहां ग्राम शब्द मुहावरानुसार प्रयुक्त हुआ है जैसे हम लोग प्रायः बोला करते हैं, यथा--गांव २ भीख मांगना, घर २ भीख मांगना द्वार २ भीख मांगना इत्यादि। अङ्गरेजी का भी मुहावरा है "Begging from door to door." अन्य ग्रन्थों में "ग्राम याचक" ही शब्द आया है। लेखक महाशय कहां २ पाठ बदलते चलेंगे। देखिए पद्म पुराण उत्तर० पाषण्डाचार ४२ अ०—

रजस्तमोमया जीवा हिंसका जीव भक्षका।
असत्प्रति ग्रहरता देवला ग्राम याचकाः॥

इस श्लोक में "असत्प्रतिग्रहरता" शब्द भी ध्यान देने योग्य है जिसका सीधा सादा अर्थ है कुदान लेने के प्रेमी। यदि भीख को दान का कुत्सित रूप भी

माना जाय तो वह कुदान हुआ और उक्त शास्त्रीय व्यवस्थानुसार कुदान लेने वाला ब्राह्मण भी पाखण्डी और चाण्डाल है। इस अवस्था में मालवीय जी की भी दलील निःसार जान पड़ती है। इन मालवीय जी ने भी मेरे मूल लेख के उत्तर में अपना एक लेख फर्वरी १९३० के 'चाँद' में छपवाया था।

शायद इन महाशयों की समझ-मुबारक में अब तक यह बात नहीं आई थी कि दान (Present or Gift), भीख (Alms) और दक्षिणा (Fee or Remuneration) ये तीनों तीन भिन्न भिन्न वस्तु हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य ब्रह्मचारियों का भीख माँगना उनके आश्रम विशेष से न कि उनकी जाति से सम्बन्ध रखता है अन्यथा केवल ब्राह्मण ही क्यों क्षत्रिय और वैश्य भी भिखमंगों की जाति कहे जाएंगे। इस आक्षेप का सविस्तर खंडन एप्रिल १९३० के "चाँद" में कर आया हूं। देखने का कष्ट उठाइए।

(२) बधावो न बजायो सुनि।

"अरुणोदय" तथा "भारतवासी" के लेखक महाशयो! पुत्र-पुत्री की खबर माता पिता दूसरों से ही सुनते हैं। पिता तो सूतिका-गृह के बाहर रहता है और माता मारे प्रसववेदना के वदहवास रहती है। उसको कहां इतना चैन कि टकटकी बांधे देखने का प्रयास करे कि पुत्र जन्मा कि पुत्री। वहां पर उसकी सहायता के लिये जो स्त्री वा स्त्रियाँ रहती हैं उन्हीं को पहले पहल इस बात का पता चलता है, उसके बाद माता पिता तथा अन्य लोगों को खबर मिलती है। अतः आप लोगों की यह दलील कि "सुनि" का अर्थ है पुरोहित वा किसी ज्योतिषी के मुंह से गोसाईं जी का अभुक्त मूल में जन्मा हुआ सुनना बे सिर पैर की है। इसका सीधा अर्थ केवल लड़के का जन्म सुनना है जिससे जननी-जनकों अपने पाप का परिताप हुआ।

(३) मातु पिता जग जाय तज्यो।

यदि किसी का आत्मीय मर जाता है तो लोक में प्रायः उसका यह कहना सुनने में आता है कि क्या करूँ भाई, वे तो गृहस्थी का सारा भार मुझ पर ही छोड़ गए, वे मुझे छोड़ कर भाग गए इत्यादि। इसी प्रकार मैंने तज्यो शब्द का अक्षरार्थ की जगह भावार्थ (मरना) लेकर अपने मूल लेख (चाँद, जुलाई १९२९) में यह लिखा था कि गोसाईं जी के माता पिता ने उनके बचपन में ही स्वर्ग की राह ली; क्योंकि बिना इस कल्पना के गोसाईं जी को अपनी जाति का ज्ञान हुआ मानना तर्क और युक्ति के विरुद्ध है और बिना जाति का ज्ञान हुए उनका "जायो कुल मंगन", "दियो सुकुल जन्म" आदि का लिखना समझ में नहीं आ सकता। यदि प्रतिवादियों के हठ वश गोसाईं जी का पैदा होते ही मां बाप द्वारा तजा जाना मान लूं तो ऐसे सद्यो शिशु को स्वयं अपनी जाति का पता नहीं रहा होगा

और न दूसरों को ही उसकी जाति-पांति की जानकारी रही होगी। इस दशा में प्रतिवादियों का गोसाईं जी को ब्राह्मण मान लेना केवल कपोल कल्पना है। हां, केवल यही कहा जा सकता है कि उनकी जाति-पांति का कोई ठिकाना न था। बहुत से सद्योजात अनाथ बच्चे अब भी फेंके हुए मिलते हैं जिनके विषय में कोई भी निश्चयात्मक रूप से नहीं बता सकता कि ये किस जाति के हैं। प्रायः ऐसे बच्चे अपने पालने वाले की ही जाति से सयाने होने पर अपना परिचय देते हैं।

(४) स्वारथ के साथिन तज्यो तिजरा कैसो टोटक औचट उलटि न हेरो।

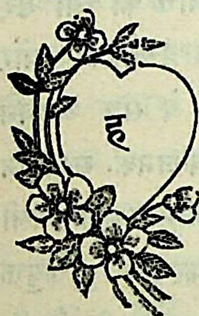
प्रतिवादियों का कथन है कि अभुक्त मूल में गोसाईं जी का जन्म होने के कारण उनके माता पिता ने उनका त्याग कर दिया। अभुक्त-मूल वाली कल्पना का पोपलापन मैं अपने मूल लेख में दिखा चुका हूं। देखिए जुलाई १९२९ का "चाँद।" इसके अतिरिक्त और भी कितनी अड़चनें इस कल्पना के विरुद्ध हैं। यदि अभुक्त-मूल की कल्पना ठीक है तो प्रश्न यह उठता है कि सद्यो-जात शिशु राम-बोला को किसने ले जा कर फेंका। यदि माँ वा बाप ने फेंका तो क्या उन लोगों ने अपनी आँखें मूंद ली थीं ? अथवा अपनी आँखों पर पट्टी बाँध ली थी ? अथवा अपना सिर पीछे की ओर घुमा लिया था जिससे उनकी दृष्टि बालक के मुख पर न पड़े ? यदि किसी दूसरे ने फेंका तो "औचट उलटि न हेरो" का क्या मतलब ? उस दूसरे व्यक्ति को क्या डर था कि उसने उलट कर बच्चे की ओर फिर ताका तक नहीं ? ये सब अड़चनें ऐसी हैं जिनका सन्तोष-जनक समाधान नहीं दीख पड़ता। अभुक्त-मूल वाली कल्पना से तो यही कल्पना युक्तियुक्त और तर्कानुकूल मालूम पड़ती है कि गोसाईं जी के माँ बाप ने लोकापवाद से बचने तथा किसी पाप-कर्म के छिपाने के लिए उन्हें पैदा होते ही फेंक दिया और यह काम इतनी जल्दी बाज़ी और बेदरदी के साथ किया गया कि न तो बच्चे को उलट कर देखने का समय ही था, न कुछ गरज़ ही थी। इस कल्पना की संगति "भयो परिताप पाप जननी जनक को" तथा "तनु जनेहु कुटिल कीट ज्यों तज्यो मात पिताहू" के साथ अच्छी तरह लग जाती है। अवैध बच्चे ही अपने शरीर से उपजे ढील, जूं, चीलर आदि स्वेदजों की तरह बिना मोह-माया के फेंक दिए जाते हैं और उनकी ओर फिर कोई देखता तक नहीं।

(क्रमशः)

वेदों की संसार के लिये आवश्यकता

[श्री पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय एम० ए०]

(अङ्क अगहन से आगे)



हमने गत लेख में यह दिखाया है कि मनु आदि के समय में वेद पढ़ना जीवन का मुख्य उद्देश्य समझा जाता था। इस समय न वह लोग वेद पढ़ते हैं ज अपने को वेदानुयायी कहते हैं और न वह जो वेदानुयायी नहीं हैं।

अब प्रश्न यह है कि क्या वेदों की संसार के लिये कुछ आवश्यकता भी है ?

कणाद मुनि ने धर्म का लक्षण इस प्रकार किया है :—

येताऽभ्युदयनिश्रेयससिद्धिः स धर्मः

(वैशेषिक दर्शन १ । १ । २)

"जिससे सांसारिक उन्नति के साथ साथ परलोक भी सुधरता हो वह धर्म है।"

अब वह आगे के सूत्र में कहते हैं।

तद् वचनाद् आम्नायस्य प्रामाण्यम्।

(वै० १ । १ । ३)

"धर्म के विषय में वेद का प्रमाण माना जाता है क्योंकि वेद ईश्वर का वचन है।"

इसका अर्थ यह हुआ कि जो पुरुष चाहता है कि इस जीवन में पूर्ण उन्नति करे और मरने के पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति हो उसे वेद पढ़ना चाहिये क्योंकि वेद की ही सहायता से वह इस संसार में सुख भोग सकता और मरने के पीछे मोक्ष प्राप्त कर सकता है। वेद ईश्वर वचन है। जिस प्रकार ईश्वर ने सृष्टि इसी लिये रची है कि इसकी सहायता से लोग अपने जीवन में सुख और उन्नति को प्राप्त करें और मरने के पीछे मोक्ष पावें उसी प्रकार ईश्वर ने वेद में वह विधान दया है जिस से संसार की वस्तुओं का उत्तम प्रयोग करके जीवन में सुख और मृत्यु के पीछे मोक्ष मिल सके।

मनुष्य क्या चाहता है ? दो ही बातें— सांसारिक सुख और मोक्ष। साधारण लोग केवल सांसारिक सुख चाहते हैं। परन्तु उनको भी अनिश्चित इच्छा होती है कि मरने के पश्चात् उनकी गति अच्छी हो। दुनिया के विषयों में अति आसक्त मनुष्य भी कभी न कभी अपने मनमें

यह विचार कर उठता है कि अच्छा होता अगर मेरा भविष्य भी अच्छा हो सकता। बुद्धिमान पुरुष तो केवल भविष्य को ही सोचता है और उस की दृष्टि मरने के पीछे मोक्ष पद की प्राप्ति पर ही होती है। परन्तु उसको भी वर्त्तमान का ध्यान करना ही पड़ता है। सांसारिक उन्नति को कोई भी आंख ओझल नहीं कर सकता।

यहां देखना है कि सांसारिक और पारमार्थिक उन्नति का वेदाध्ययन से क्या सम्बन्ध है।

सांसारिक उन्नति के तीन मुख्य अङ्ग हैं :—

(१) शरीर पुष्ट हो !

(२) खाने के लिये धन धान्य हो।

(३) परिवार, सम्बन्धियों और जाति तथा देश वालों के साथ अच्छा व्यवहार हो।

इनको दूसरे शब्दों में कह सकते हैं स्वास्थ्य, अन्न और यश। यदि यह तीन वस्तुयें प्राप्त हों तो कोई यह नहीं कह सकता कि मेरे अभ्युदय अर्थात् सांसारिक सुख में कोई कमी है। देश देशान्तरों में इस समय जो प्रगतियां दिखाई पड़ती हैं उनका आधार यही तीन चीजें है। व्यापार, कला कौशल, तथा अस्त्र शस्त्र सभी इन तीन के साधन हैं।

प्रश्न यह है कि तीनों में क्या हानि होगी अगर वेद न पढ़े जायें। साधारण तया इस समय वही लोग बलिष्ट और धन सम्पन्न हैं जो वेद नहीं पढ़ते। जो वेद पढ़ते हैं उनके पास आज इन तीनों में से एक भी पदार्थ नहीं। परन्तु इसका कारण भी वेदों के पढ़ने से ही अधिक ज्ञात हो सकता है।

स्वास्थ्य के लिये वेदों में सबसे अधिक बल ब्रह्मचर्य पर दिया गया है। जिस प्रकार वृक्ष के बढ़ने के लिये बीज मुख्य और अन्य सब वस्तुयें गौण है उसी प्रकार शरीर को पुष्टि के लिये भी वीर्य रक्षा मुख्य और सब बातें गौण हैं। समस्त वृक्ष बीज का ही विकसित रूप है। समस्त शरीर वीर्य्य का संवृद्ध रूप है। यदि बीज न हो तो खाद, पानी, प्रकाश, गर्मी कोई कारगर नहीं होती। दूषित और सड़ा गला बीज कोई वृक्ष उत्पन्न ही नहीं कर सकता। इसी प्रकार शुद्ध और बलिष्ट वीर्य ही बलिष्ट शरीर को उत्पन्न कर सकता है। वेदों में वीर्य्य-रक्षा और ब्रह्मचर्य पर जितना बल दिया गया है उतना किसी अन्य धार्मिक या लोक व्यवहार की पुस्तक में नहीं है। अथर्ववेद के ग्यारहवें काण्ड का पांचवां सूक्त संपूर्ण ब्रह्मचर्य की महिमा का गान करता है। नीचे कुछ मंत्र दिये जाते हैं :—

(१) ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे। तस्मिन् देवाः संमनसो भवन्ति।
(अथ० ११-५-१)

ब्रह्मचारी माता और पिता दोनों का अनुकरण करता हुआ विचरता है। उसमें सब विद्वान एक मत होते हैं।

(२) सर्वान्त्सदेवांस्तपसा पिपर्ति ॥

(अथर्व ११-५-२)

वह अपनी तपस्या के बल से सब विद्वानों के कार्य्यों की पूर्ति करता है।

(३) ब्रह्मचारी समिधा मेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्त्ति ॥

(अथर्व ११-५-४)

ब्रह्मचारी यज्ञ, ब्रह्मचर्य और परिश्रम रूपी तपोबल से संसार भर को पूर्ण कर देता है।

(४) इन्द्रोह भूत्वासुरांस्ततर्ह।

(अ० ११-५-७)

बलवान होकर दुष्टों का हनन करता है।

(५) ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी।

(अ० ११-५-८)

ब्रह्मचारी दोनों लोकों की रक्षा करता है।

(६) ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।

(अ० ११-५-१७)

राजा ब्रह्मचर्य और तपोबल से ही राज की रक्षा कर सकता है।

(७) आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।

(अ० ११-५-१७)

आचार्य ब्रह्मचर्य की सहायता से ही इस योग्य होता है कि विद्यार्थियों को शिक्षा दे सकें।

(८) ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।

(अथ० ११-५-१८)

स्त्री ब्रह्मचर्य से ही विवाह करने के योग्य होती है।

(९) अनड्वान ब्रह्मचर्येणश्वो घासं जिगीर्षति।

(अ० ११-५-१८)

ब्रह्मचर्य से ही बैल और घोड़े अपने अन्न को पचा सकते हैं।

(१०) ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।

(अ० ११-५-१९)

ब्रह्मचर्य से ही विद्वान् मौत के दुख का सामना कर सकते हैं।

जितना महत्व ब्रह्मचर्य का इस सूक्त में वर्णन है उतना किसी अन्य स्थान पर नहीं। काम का जीवन और आराम की मृत्यु (Useful life and peaceful death) यही सब मनुष्यों का उद्देश होना चाहिये और इन दोनों का वेदों ने ब्रह्मचर्य ही साधन बताया है। जब वेदों का पठन पाठन होता था उस समय लोग ब्रह्मचर्य की महिमा को समझते थे। उसी समय भारतवासी उन सब वस्तुओं से सम्पन्न थे जो जीवन यात्रा के

लिये आवश्यक हैं। जब से वेदों का पठन पाठन छूटा उसी समय से ब्रह्मचर्य भी लुप्तप्राय हो गया और तभी से भारतवासियों का जीवन दुखमय होगया। आज भारतवासी केवल नाम के वेदानुयायी हैं और ब्रह्मचर्य शव्द भी नाम मात्र ही रह गया है! इस लिये इनको वेदानुयायी होने से कोई लाभ नहीं रहा। यह कभी कभी वेदों का नाम तो ले लेते हैं परन्तु उनकी शिक्षा को सर्वथा भूले हुये हैं। इसलिये उनको अनेक कष्ट पहुंच रहे हैं। दूसरे देश के लोग वेदों को न मानते हुये भी कुछ कुछ ब्रह्मचर्य पालन करते हैं इसलिये उनके देश हरे भरे हैं। परन्तु वेदों के न मानने से उनमें एक कमी है। वह ब्रह्मचर्य के अधूरे और कुछ कुछ भौतिक अंश का ही पालन करते हैं इसलिये उनका जीवन कुछ कुछ कामकर (Useful) अवश्य होता है परन्तु मृत्यु आराम की (Peaceful death) नहीं होती। दुःख रहित मृत्यु के लिये ब्रह्मचर्य का आध्यात्मिक अंश चाहिये। जिस प्रकार से घोड़ा और बैल ब्रह्मचर्य के वल से अन्न कमा सकते और पचा सकते हैं उसी प्रकार ये देश भी ब्रह्मचर्य के वल से अन्न आदिक भौतिक सुखों की सामग्री का सम्पादन कर सकते हैं। परन्तु उनको ब्रह्मचर्य की आध्यात्मिक महिमा का पता नहीं। इसलिये वह देवों के समान मृत्यु का सामना नहीं कर सकते। यदि इन देशों में वेद का प्रचार हो जाय तो यह देश इस त्रुटि को भी पूर्ण कर लेंगे और यदि हमारे देश में वेद के नाम लेने के बजाय वेद की शिक्षा पर पूर्ण रीति से व्यवहार होने लगे तो हम लोग अपने लौकिक उत्थान में सफल हो सकेंगे।

(क्रमशः)

अग्ने त्वं रक्षास्विनः

[ऋ० १ । १२ । ५]

हे ईश्वर ! आप हमारी रक्षा करें।

ऋषि की मानसिक तरंगें

[श्री पं० देवेन्द्रचन्द्र जी, विद्याभास्कर काशी]



कल की पवित्र रात्रि शिव-रात्रि के नाम से विख्यात है! इस पवित्र रात्रि की आशा बड़ी उत्सुकता पूर्वक देखने को पिता से आज्ञा ले चुका हूँ! पिता ने अपने उपदेशों में बताया था कि आज की रात्रि में भगवान् परमेश्वर महादेव के रूप में दर्शन देते हैं! उनके मुख से महादेव की अपार शक्तियों का वर्णन सुन कर मैं चकित हो गया था। वे कहते थे कि महादेव ने ही इस संसार की रचना की है और वह इच्छा करते ही संसार का लय कर सकते हैं! हमारा विशाल गृह इतने परिश्रम से सैकड़ों आदमियों ने मिलकर बनाया है परन्तु महादेव जी की इच्छा मात्र ही से सारा मकान हवा में मिल जा सकता है! महादेव की इतनी अतुलनीय शक्तियों का हाल जब मैं सुना करता था तो मेरे हृदय में बड़ी तरंग उठती थी कि मैं भी महादेव के दर्शन करूं! किन्तु जब २ मैं पिता से शिव-रात्रि के दिन व्रत करने और भगवान् के दर्शन करने की प्रार्थना करता था तब २ मुझे इन्कार कर देते थे कि अभी तुम बच्चे हो तुम जागरण नहीं कर सकोगे। भगवान् आयेंगे और भक्तों को दर्शन दे कर चले जायेंगे! अस्तु येन केन प्रकारेण इस वर्ष पिता की आज्ञा मिल गई थी मैं बड़ा प्रसन्न था कि आज साक्षात् भगवान् के दर्शन करूंगा मैं सोचता था कि वह जब आयेंगे तो मैं क्या कह कर मिलूंगा! इसी तरह की नाना भांति की प्रबल तरंगें उठ रही थीं किन्तु जब मैं अपने पिता की ओर देखता था तो मुझे बड़ी हैरानी होती थी कि आज वह इतनी महान् शक्ति से मिलने जा रहे हैं फिर भी इनके मुंह पर किसी असाधारण भाव की झलक दिखाई नहीं देती!

मैं अभी बालक ही हूं तो क्या हुआ! क्या बालकों को अपने पिता से मिलने का अधिकार नहीं होता? मैंने अपनी माता की भी बड़ी ख़ुशामद करके व्रत धारण किया था। सारा दिन बड़ी उत्कण्ठा और उत्साह से शिव के नाम का जाप करता रहा, जब रात हुई तो महादेव के दर्शनों की कामना से मन्दिर में प्रविष्ट हुआ। हज़ारों भक्त दर्शनों की लालसा से एकत्रित हुए थे मन्दिर खचाखच भर गया! मैं भी भगवान् की स्तुति करता हुआ एक जगह बैठ गया। रात के बारह बजे १ बजा। सब भक्त दर्शनार्थी खर्राटे ले २ कर मन्दिर द्वार में ही सो गये मुझे

भी बड़े जोर की नींद आ रही थी परन्तु मैं भगवान् के दर्शनार्थ पानी के छींटे मुँह पर दे देकर जागता ही रहा ! एक तरफ मेरे पिता भी नींद ले रहे थे। मैं सोचने लगा कि क्या ये लोग मुझे इसी हिम्मत पर व्रत और जागरण के अयोग्य समझते थे ? रात्रि की नीरवता मनुष्यों की निद्रा से मन्दिर में घोर शान्ति विराज रही थी ! मैं सोच रहा था कि भगवान् के कब दर्शन होंगे किन्तु इतनी मेहनत से उपवास व जागरण का नतीजा क्या निकला ? महादेव नहीं आए आया उनका वाहन "चूहा" !

क्या सचमुच यह छोटा सा निकृष्ट पत्थर ही महादेव है ? यह चेतना-रहित जड़ पत्थर कैसे ईश्वर मान लिया गया आश्चर्य है ! हजारों नर नारी इसी जड़ पत्थर को ही सर्व-शक्तिमान् मानते हैं। मेरी माता भी इसी की पूजा करके भोजन करती है ! क्या सब कहीं धोखे में तो नहीं पड़े हुए हैं कि यह पत्थर की मूर्ति हिमाचल वासी महादेव की प्रतिनिधि है ! अस्तु वह जो चाहे मानें मेरा हृदय तो इस पत्थर को महादेव नहीं मानता यह तो चूहों की अपेक्षा भी कमजोर हैं। मैं असली महादेव को खोज करूंगा, मुझे मालूम नहीं वह कहां हैं ? पर मैं अवश्य ही खोज निकालूंगा यदि वह हम सब का पिता है तो क्या वह अपने भक्त पुत्र को दर्शन न देगा ? मेरा हृदय कहता है वह अवश्य दर्शन देगा। महादेव मुझे अवश्य मिलेंगे !

बारह बजे की निस्तब्ध रजनी में घर से निकल पड़ा, निकल तो पड़ा किन्तु हृदय बार २ व्यथित होने लगा भूख तंग करने लगी। ओह इस उल्लू की आवाज से सारी रात भय लगता रहा। यदि मैं अपने को पेड़ के तने से न बांध लिए होता तो गिरने में सन्देह नहीं था। इस तरह छिप कर भागने से मेरा क्या बनेगा ? मेरे ढूँढने के लिए पिता जी ने आदमी भेजें होंगे। मेरी प्रेममयी माता दुःख से नहीं सोई होगी उसकी प्रेममयी स्मृति रह २ कर मुझ कठोर की आंखों से भी अश्रुप्रवाह करने लगी ! ओह मुझे क्या स्मरण आ गया अरे यह तो वही पगडंडी है जिस पर से मेरी सहोदरा प्यारी बहिन की हड्डियां नदी में फेंकने गये थे। वह प्यारी बहिन मेरे देखते २ सदा के लिए छोड़ कर चली गई, उफ़ वह दिन कितना भयंकर था मुझे भली प्रकार याद है। उस दिन किसी जरा सी बात पर मैं और मेरी बहिन बड़े जोर से हंसे थे इसके बाद बहिन ने कहा था मूल ! मेरे पेट में दर्द हो रहा है मैं अपने पिता को इसकी सूचना देकर एक मित्र के साथ बाहर चला गया। एक घंटे के बाद लौटा तो क्या देखा कि बहिन बार २ वमन कर रही है ! मैं घबरा कर चिल्ला उठा लक्ष्मी—? प्यारी लक्ष्मी ? ओह उसने बड़ी दर्द भरी वाणी

से मेरी ओर आखें फेर कर पुकारा मूल ? बस थोड़ी ही देर में सब समाप्त हो गया !

मृत्यु क्या है यह मैं नहीं समझ पाया ! कितना भयंकर अधः पतन है। यही आर्य-जाति कभी संसार की शिरोमणि थी ! पाखण्ड, मूर्खता, निर्लज्जता और पशुता का यह महान् निदर्शन मेरे लिए कल्पना से परे की चीज़ थी। मैं कुम्भ के मेले में किन आशाओं से गया था। सोचा था कि साधुओं के इस बड़े जमघट में मैं कोई सच्चा योगी प्राप्त कर सकूंगा। मेरे हृदय में जो जिज्ञासा की तीव्र ज्वाला जल रही है उसे शायद इस मेले में कोई पूर्ण योगी शान्त कर सके ! परन्तु हाय ! यहां तो अपने देश की दुरावस्था का नंगा चित्र दिखाई दे रहा है। मैं अपने वैयक्तिक घर की आग बुझाने की फ़रमाइश लेकर आया था परन्तु यहां देखा कि सारा ही नगर जला जा रहा है। क्या यही वे सर्व त्यागी सन्यासी साधु हैं। किस हिम्मत पर ये लोग अपने निर्लज्जता रूप पाखण्ड का प्रदर्शन कर रहे हैं ! धर्म के नाम पर संसार के सब पाप खुले आम किए जा रहे हैं ! यही ब्रह्मचारियों की सन्तानें हैं नागां के वस्त्र हैं; वैरागियों के महल हैं और उदासियों के झूलेदार हाथी हैं। यही लोग भारत वर्ष के गुरु हैं ! मुझे बड़ा आश्चर्य है यह जाति अब तक कैसे बची है। ये लोग अपने जलूस किस बेशर्मी से निक-लते हैं मानो कोई दिग्विजय करके आ रहे है। नरक का यह जीता जागता कल्पनातीत दृश्य अपनी आंखों से देख लेने के बाद मैं इन पर्वतों की निर्जन झाड़ियों और परमात्मा की दी हुई चन्द्रमा की शीतल चांदनी में बेचैन हुआ घूम रहा हूं ! यत्र तत्र मोर बोल रहे हैं। इतस्ततः झरने बह रहे हैं। नदी की यह नीली धारा कैसा हृदय-ग्राही शब्द कर रही है। इच्छा होती है सब कुछ भुला कर इन वनों में ही विचरण करता रहूं ! अहा देव स्वरूप भारत का यह भौतिक शरीर आज भी पवित्र और हृदय-ग्राही है। पर इस देश पर वसने वाली जाति अब वह नहीं है !

यह क्या ? मेरी आंखों में आंसू आ रहे हैं। चल कर इन्हें नदी के शीतल जल में धो डालूँ। इस प्रकार आंसू बहाने से क्या बनेगा ?

संसार की मूर्खता देखो; वह मूर्ख मुझे रियासत का प्रलोभन देता था, मैं यदि मूर्ति पूजा का विरोध बन्द कर दूं तो यह लाखों की सालाना आमदनी वाले मन्दिर का महन्त बना देगा। मूर्ख अपनी छोटी सी रियासत को ही संसार की सब से अधिक क़ीमती वस्तु समझता है ! यह नहीं समझता कि एकही दौड़ में इसकी रियासत को पार किया जा सकता है। ना समझ लोग मौत की धमकियां देकर डरा रहे हैं कोई २ मूर्खराज पांच २ हज़ार रुपये का

इनाम निकाल रहा, केवल मेरे सिर काट लेने का पारितोषिक देना चाहता है। मैं हर वार प्रत्येक से कहता हूं कि भाई मेरा सिर काट लो इससे पांच हज़ार रुपया तुम्हें मिल जायगा। परन्तु इन नासमझों को यह पता नहीं कि यदि मैं मृत्यु से डरता होता तो घर से न निकलता। मृत्यु को धमकी देने वाले लोग कितने कायर हैं? मैं अकेला हूं यह पांच सात मिल कर भी मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकते। संसार की कोई शक्ति दयानन्द को पीछे नहीं हटा सकती।

यही वह भारत वर्ष है जहाँ की नारियों ने भी वीर भोग्या वसुन्धरा के गीत गाए हैं, वही वाप्पा रावल की सन्तानें पद्मिनी सी देवियों की कोख से उत्पन्न राणाओं की सन्तति आज कितनी वेशर्मी से लाखों रुपया फूंक कर अपनी कायरता का निदर्शन करा रहे हैं। छत्रपति शिवा और राणा प्रताप की सन्तानों का यह भारी अधः पतन भारतवर्ष के अभाग्य का सव से प्रवल प्रमाण है!

भुलादो भेद भाव को

[श्री पं० सोमदेव शास्त्री, काशी]

मनहरण छन्द

मुख बाहु उदर औ, पाद अङ्ग मुख्य देह
तुलना विधान किया गहि इस भाव को।

मुख को कहत ब्रह्म, भुजा है क्षत्रिय सम
वैश्य पेट और शूद्र पाद सम भाव को॥

पाद कट जाँय यदि पावै दुख तन और
होय लुञ्ज रोऔ "सोम" पाद के अभाव को।

आर्य जाति पाद शूद्र यवन ईसाई छीने
दुःख पाओ नहीं तो "भुलादो भेद भाव को"॥



स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज

[गतांक से आगे]

आर्य्य समाज की लगन

आर्य्य समाज के सभासद बनते ही बड़े से बड़े कार्य्य महात्मा मुंशीराम जी को सौंप दिये गये। जो काम आपको दिया जाता इतनी योग्यता से करते कि लोगों पर आपकी धाक जम जाती। जनता में वैदिक सिद्धान्तों का प्रचार करना ही उनका काम था। जब मूर्ति पूजा का आपने खंडन किया तो पंडित आपसे भिड़ गये। पर उनकी दाल न गली। अब वे सोचने लगे कि किसी तरह महात्मा जी की प्रतिष्ठा गिराई जाय। उन दिनों जाति से च्युत कर देना बड़ा भारी औजार था। पंडितों ने जाति के लोगों को इसके लिये तय्यार किया परन्तु महात्मा जी के सामने आते ही सब बातें भूल गईं।

लाला जी की वक्तृता शक्ति बड़ी तीव्र थी, इस कारण आपकी वकालत खूब चल निकली। आर्य होने के कारण उनको जाल बनानाप्रिय। नहीं था। जब लोगों को यहमालूम हुआ कि जालरचनाउन्हें प्रिय नहीं है तो उनके मुवक्किल उनके पास सेजाने लगे।

❋ ❋ ❋

कन्या महाविद्यालय की स्थापना

इस समय तक स्त्रियों की शिक्षा की ओर लोगों का ध्यान न गया था। आर्य्य समाज द्वारा की गई जागृति के कारण लड़कियां को शिक्षा दी जाने लगी। लाला जी की कन्या वेदकुमारी ईसाई स्कूल में पढ़ने जाती थी। एक दिन वह दौड़ी आई और गाने लगी "एक बार ईसा ईसा बोल, तेरा क्या लगेगा मोल। ईसा मेरा राम रसिया। ईसा मेरा कृष्ण कन्हैया।" भोली भाली बालिका नहीं समझती थी कि वह क्या गा रही है? पर लाला मुन्शीराम के हृदय पर यह बात बहुत प्रभाव डाल गई। उन्होंने आर्य समाज के अधिवेशन में यह बात राय-बहादुर बख़्शी सोहन लाल से तथा अन्य

मित्रों से की। चन्दा इकट्ठा होता रहा और संवत् १९४७ ई० में यह पाठशाला खुल गई। आज तक यह पाठशाला कार्य्य कर रही है और कन्या महा विद्यालय जालन्धर के समान इस समय उत्तर भारतवर्ष भर में कोई भी संस्था नहीं है।

"सद्धर्म प्रचारक" पत्र

कन्या पाठशाला के लिये चन्दा इकट्ठा करने या प्रचार के लिये एक समाचार पत्र की आवश्यकता थी। जिस दिन लाला मुंशीराम जी के हृदय में यह भाव उठा उसके दूसरे ही दिन २५) रुपये के १६ हिस्सेदार मिल गये। पत्र निकलने लगा, जो घाटा हुआ वह महात्मा मुंशीराम ने अपने पास से दिया। यह पत्र उर्दू में निकला था क्योंकि पंजाब में इसी का रिवाज़ था। लिपि उर्दू थी पर शब्द हिन्दी के ही थे। इस प्रकार उर्दू लिपि में नागरी के शब्द पढ़ते २ पंजाब में हिन्दी के प्रति प्रेम उत्पन्न होगया। वर्त्तमान पंजाब में हिन्दी के विषय में जो जागृति इस समय है उसका मुख्य श्रेय लाला मुंशीराम जी को है।

भागलपुर में होने वाले हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रधान आपको सं० १९६८ वि० में बनाया गया।

धर्मपत्नी से वियोग

श्रीमती शिव देवी बड़ी पति भक्त थी। ३१ अगस्त १८९१ ई० के प्रातःकाल वे इस लोक से चल बसीं। मरते समय उन्होंने लिख रक्खा था "बाबू जी अब मैं चली। मेरे अपराध क्षमा करना। आप को तो मुझ से अधिक रूपवती और बुद्धिमती सेविका मिल जायगी पर इन बच्चों को कभी मत भूलना। मेरा अन्तिम प्रणाम स्वीकार करो।" ऐसी पतिव्रता स्त्री की मृत्यु के उपरान्त महात्मा मुंशीराम जी ने निश्चय कर लिया कि अब वे वैदिक सिद्धान्तों की आज्ञा पालन करते हुये दूसरा विवाह न करेंगें। जीवन भर उन्होंने यह प्रतिज्ञा निभाई और बच्चों का प्रबन्ध बड़े भाई आत्मराम जी ने कर दिया।

आर्य-समाज में दो दल

महात्मा मुंशीराम जी के त्याग और तपस्वी जीवन के कारण इनके बहुत से अनुयायी हो गये थे। अब दो दल आर्य्य समाज में आ उपस्थित हुये। यह बात निश्चय रूप से नहीं कही जा सकती कि ये दो दल क्यों उपस्थित हुये। इनके होने के वैयक्तिक तथा सिद्धान्त सम्बन्धी कारण थे। अब आर्य्यसमाज का प्रवाह दो दल में बहने लगा। एक के अध्यक्ष महात्मा मुंशीराम थे और दूसरे के महात्मा हंसराज जी। महात्मा हंसराज का दल कौलिज पार्टी तथा तथा महात्मा मुंशीराम

का गुरुकुल पार्टी के नाम से प्रसिद्ध है। ईश्वर जाने कि यह बहुत बड़ा कलंक कब हमारे ऊपर से दूर होगा।

आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का अब सारा भार महात्मा मुंशीराम पर आ पड़ा। उन्होंने योग्य विद्वानों को सहायता देकर प्रचार का कार्य्य बड़े उत्साह से आरम्भ कर दिया। धर्मवीर पं० लेखराम तथा पं० पूर्णानन्द जी के समान धुरन्धर कार्य्य कर्त्ता बड़ी लगन से कार्य्य करने लगे।

गुरुकुल की स्थापना

वैदिक प्रचार के लिये यह आवश्यक था कि शास्त्रों के पढ़ाने का प्रबन्ध किया जाय। महात्मा मुंशीराम के हृदय में एक तरंग उठी कि ऋषि दयानन्द द्वारा बताई हुई प्रणाली पर एक आश्रम खोल दिया जाय जहां बच्चे रह कर ब्रह्मचर्य्य आश्रम को बितावें। यह स्कीम आर्य प्रतिनिधि सभा के सामने रक्खी गई और संवत् १९५४ वि० में स्वीकृत हो गई। पर स्वीकार करने मात्र से कार्य्य कैसे चल सकता था। सब से बड़ी कठिनाई धन की थी। महात्मा मुंशीराम जी ने प्रतिज्ञा की कि जब तक तीस हज़ार रुपये जमा न कर लूंगा तब तक घर लौट कर न आऊंगा। महात्मा जी रुपये इकट्ठा करने के लिये घर से निकल पड़े और उस समय तक आराम न लिया जब तक कि यह रुपया इकट्ठा नहीं हो गया।

वानप्रस्थी जीवन

रुपया जमा हो गया। अब प्रश्न हुआ कि कौन घर बार को छोड़ कर ब्रह्मचारियों के साथ जीवन बितायेगा। इस में भी महात्मा मुन्शीराम जी पीछे न रहे, उन्होंने कह दिया कि मैं इस समस्या को हल कर दूंगा। धर्मपत्नी का देहान्त हो ही चुका था, वे वानप्रस्थी का जीवन बिता ही रहे थे। जो कुछ घर से सम्बन्ध था उसको छोड़ दिया। लाला शालिग्राम जी भंडारी, तथा पं० गंगादत्त जी तथा महात्मा जी तीन महात्यागियों ने गुरुकुल को जीवन दे दिया।

अब बालकों का प्रश्न आया। कौन माता पिता अपने बालक को इस नई शिक्षा प्रणाली में शिक्षित करने के लिये भेजता। महात्मा मुंशीराम जी ने स्वयं इसका निर्णय किया। अपने पुत्र हरिश्चन्द्र तथा इन्द्रचन्द का नाम गुरुकुल में लिखाया। इसके बाद अनेकों मित्रों ने अपने पुत्र भेजे।

मुंशी अमनसिंह का अपूर्व त्याग

महात्मा मुंशीराम जी का विचार था कि ब्रह्मचारियों को नगर से जितना दूर रक्खा जा सके उतना ही अच्छा हो। इस विचार से प्रेरित होकर वे एक अच्छी भूमि की खोज करते हुये हरिद्वार आये। यहां पर गंगापार मुंशी अमनसिंह की जमींदारी थी। उन्होंने कांगड़ी ग्राम तथा

अपनी कुल ज़मीदारी गुरुकुल को देना स्वीकार किया। इस रमणीक स्थान को पाकर महात्मा मुंशीराम जी बड़े प्रसन्न हुये और उन्होंने गुरुकुल को यहीं पर लाने का निश्चय कर लिया।

मुंशी अमनसिंह की इस महान उदारता की हम कितनी प्रशंसा करें। सर्वस्व त्याग देना एक बहुत बड़ी आत्मा का कर्त्तव्य है। मुंशी अमनसिंह का नाम आर्य्यसमाज के इतिहास में विशेष श्रद्धा से स्मरण किया जायगा।

जिस स्थान पर कांगड़ी ग्राम है वहां घना जंगल बसा हुआ था, शेर इत्यादिक पशुओं से भी डर था। परन्तु धुन के पक्के वीर इस प्रयत्न में लग गये।

गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली

गुरुकुल की शिक्षा प्रणाली ऋषि द्वारा बताये हुये सिद्धान्तों पर ही रक्खी गई। प्राचीन काल में ब्रह्मचारी जिस प्रकार अपना जीवन बिताते थे उसी प्रकार के जीवन की चेष्टा की गई। कुछ लोगों का विचार था कि केवल संस्कृत ही की शिक्षा दी जावे। पर इस से श्री० रामदेव जी सहमत न थे और उन्होंने उद्योग किया कि पाश्चात्य दर्शन तथा अंग्रेजी शिक्षा भी ऊंची श्रेणी में पढ़ाई जा सके। गुरुकुल में मातृ भाषा हिन्दी ही माध्यम बनी हुई है और ब्रह्मचारी उसी प्रकार का जीवन व्यतीत करते हैं जैसी प्राचीन काल में प्रथा थी। सरकार की ओर से यह प्रयत्न हुआ कि गुरुकुल कुछ सहायता ले, परन्तु महात्मा मुंशीराम ने गुरुकुल को बंधनों से जकड़ा जाना उचित न समझा।

कांगड़ी के भवन इस समय गंगा की बाढ़ से खंडहर हो गये हैं परन्तु गुरुकुल के उत्साही कार्य्य कर्त्ताओं ने एक विशाल इमारत दूसरे स्थान पर निर्माण कर ली है। इस संस्था को कार्य्य करते हुये तीस वर्ष के लगभग हो गये हैं और इस काल में जो कुछ इसने आर्य्य समाज की सेवा की है वह स्वर्णाक्षरों में लिखी जायगी।

आर्य्यसमाज पर राजविद्रोह का आक्षेप

देश की अवस्था बड़ी विचित्र थी। वंगविच्छेद के कारण देश में द्वेषाग्नि प्रज्वलित हो गई और लोग ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड़यन्त्र रचने लगे। इस समय आर्य्य समाज में बड़ा ज़ीवन था या यों कहना चाहिये कि हिन्दू समाज में जो कोई उत्साही होता वह आर्य्य समाज की शरण लेता। इस कारण सरकार यह समझने लगी कि आर्य्य समाज एक विद्रोहात्मक संस्था है। मुसलमान तथा ईसाइयों को आर्य्य समाज चैलेंज देता था इससे ये लोग भी चिढ़े हुये थे और इन्होंने भी आर्य्य समाज के विरुद्ध सरकार को भड़काया। आर्य्य समाज के कुछ कार्यकर्त्ताओं ने व्यक्ति रूप से इस आन्दो-

लन में भाग लिया था जैसे पं० श्यामजी कृष्ण वर्म्मा, लाला लाजपतराय तथा भाई परमानन्द। इस कारण सरकार इसको विद्रोहियों की संस्था समझने लगी थी। एक बात और थी। महात्मा मुंशीराम जी ने जंगल में विद्यार्थियों को इकट्ठा किया था। इसके अतिरिक्त लोग बाहर से यहां आया जाया करते थे। इससे सरकार को भ्रम होगया। गुरुकुल में सी० आई० डी० लगा दिये गये क्योंकि सरकार समझती थी कि यहां लोगों को गोला बारूद की शिक्षा दी जाती हैं। ऐसे समय कुछ सरकारी नौकर अपनी नौकरी के डर से अलग होगये। परन्तु अधिकतर आर्य्य समाजियों ने सब आपत्तियों का सामना वीरता से किया।

पटियाले का मुकद्दमा

पटियाला रियासत में जनरल वार बरटन बिगड़े दिल आदमी था। उसने वहां के आर्य्य समाजियों को गिरफ़्तार कर लिया और आर्य्य समाज मन्दिर पर कब्जा कर लिया। अक्टूबर १९०९ ई० के द्वितीय सप्ताह में उन सब पर राज-विद्रोह का मुकद्दमा चला। जनरल वार बरटन ने आर्यों के मार्ग में बड़े २ रोड़े अट-काये। आर्य्य समाज की ओर से लाला रोशनलाल वैरिष्टर ने पैरवी की। महात्मा मुंशीराम ने इस समय आर्य्य समाजिकों की बड़ी सहायता की। पटियाले के वीर आर्य्यों को इस मुकद्दमें में बड़ी आपत्तियाँ सहनी पड़ी पर ईश्वर की दया से वे सब छोड़ दिये गये। जनरल वार वरटन भी रियासत से निकाल दिया गया।

आश्चर्य जनक त्याग

इस मुकद्दमें के बाद महात्मा मुंशी-राम ने गुरुकुल की आर्थिक अवस्था की ओर ध्यान दिया। इस समय १ लाख रुपया वार्षिक गुरुकुल का व्यय था। महात्मा जी ने सोचा कि यदि १५ लाख रुपये की स्थिर निधि रख दी जाय तो गुरुकुल का कार्य्य पूर्ण रूप से चलता रहेगा। उन्होंने कुछ कम्पनी के हिस्से छोड़ कर शेष सारी सम्पत्ति आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के समर्पण कर दी। इस में आपका मकान भी था जो बीस हज़ार रुपये में बाद को बेचा गया था। सद्धर्म प्रचारक पत्र तथा प्रेस तो कुछ काल पहले आप गुरुकुल को दे ही चुके थे। इस समय आर्य्य समाज के कार्य से आपको गुरुकुल से बाहर रहना पड़ता था। अब आप ने निश्चय किया कि कुछ काल के लिये गुरुकुल में ही बितावें जिससे यहां का प्रबन्ध ठीक हो जाय।

सन्यास

संवत् १९७४ वि० में महात्मा मुंशी-राम जी ने गुरुकुल से पृथक होने का निश्चय कर लिया। गुरुकुल इस समय समुचित ख्याति उपलब्ध कर चुका था।

इसके अतिरिक्त महात्मा जी बन्धनों से मुक्त होकर देश तथा धर्म की सेवा करना चाहते थे। उन्होंने सन्यास ले लिया और अब उनका नाम श्रद्धानन्द सन्यासी हो गया।

धौलपुर में सत्याग्रह

सन्यास लेने के कुछ काल बाद धौलपुर रियासत में झगड़ा आरम्भ हुआ। यहां के मुसल्मान दीवान ने आर्य्य समाज का एक भाग गिराकर पाखाना बनवाने का आयोजन किया। वीर सन्यासी ऐसे अवसर पर वहां पहुँच गया। आर्य्य समाजी भी भिन्न २ स्थानों से वहां आने लगे। स्वामी श्रद्धानन्द ने प्रतिज्ञा करली कि जब तक इस झगड़े का फैसला न हो जावेगा वे अन्न जल ग्रहण नहीं करेंगे। इस बात से लोगों में बड़ी सनसनी फैल गई और रियासत वालों को अपनी बात पर सें हटना पड़ा। आर्य्य समाज की विजय हुई।

गढ़वाल में दुर्भिक्ष

गढ़वाल में दुर्भिक्ष पड़ा, जनता की हाहाकार को सुनकर स्वा० श्रद्धानन्द वहां पर पहुंच गये। पूज्य मालवीय जी के साथ उन्होंने पीडित जनता की बड़ी सहायता की।

राष्ट्रीय जीवन

सन्यासी होजाने पर वीर श्रद्धानन्द देश के राष्ट्रीय कार्य्यों में विशेष रूप से भाग लेने लगे थे। आपकी विशाल मूर्त्ति, निर्भीकता तथा त्याग से राष्ट्रीय क्षेत्र में आपकी खूब ख्याति बढ़ गई। रौलट एक्ट के विरुद्ध देश भर में सभायें हुई। दिल्ली नगर में पुलीस ने कुछ रोक थाम की। आपने गोरखों की सेना के सामने छाती खोल दी और कहा "इन लोगों पर वार करने से पहिले मेरी छाती पर संगीन चलाओ।" सत्याग्रह कमेटी के आप सदस्य चुने गये थे जिससे आपने बाद में त्याग पत्र दे दिया था। पंजाब के हत्याकांड के समय आपने बड़ा कार्य्य किया। आप हिन्दू मुस्लिम एकता के पक्षपाती थे। मुसल्मानों का आप पर इतना विश्वास था कि जामा मस्जिद में आपका व्याख्यान कराया।

अमृतसर में होने वाली कांग्रेस की स्वागत कारिणी सभा के आप प्रधान चुने गये थे।

गुरुकुल में

अभी गुरुकुल से सम्बंध तोड़े हुये थोड़े ही दिन हुये थे, कि कार्य्य कर्त्ताओं को उनकी कमी अनुभव होने लगी। गुरुकुल के सामने इतनी कठिनाइयाँ आ गई कि आर्य्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को पुनः आपसे गुरुकुल में आ जाने की प्रार्थना करनी पड़ी। अपने प्यारे गुरुकुल की ऐसी अवस्था देखकर स्वामी श्रद्धानन्द को फिर गुरुकुल की सेवा में आना पड़ा।

स्वामी जी के कारावास

अमृतसर के समीप गुरू का बाग स्थान पर सिक्खों में झगड़ा आरम्भ होगया। बहुत से सिक्खों पर पुलीस ने लाठियाँ बरसाई। इसको देख कर स्वामी जी सिक्ख सत्याग्रहियों की सहायता को गये। सरकार ने १० दिसम्बर १९२२ ई० (भाद्र पद संवत् १९७९) को १ वर्ष का कारावास दे दिया। मिण्ट गुमरी के जेल में आपने "कल्याण मार्ग का पथिक" नाम से अपनी जीवनी लिखी थी।

भारतीय शुद्धि सभा

स्वामी जी का विचार था कि जब तक शुद्धि का कार्य्य आरम्भ न किया जायगा हिन्दुओं में जान न आयगी। आगरा प्रान्त में इस समय बहुत से नौ मुसलिम राजपूत थे जो हिन्दुओं के समान ही अपनी रीति रिवाजों का पालन करते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी यहां पर आ कर डट गये। धन चारों ओर से आने लगा और थोड़े से काल में लाखों नौ मुस्लिम शुद्ध होगये। मुसल्मानों की ओर से इनको रोकने की बड़ी २ चेष्टायें की गई। ख्वाजा हसननिज़ामी ने मुसल्मानों को बहुत भड़काया। उसने चूड़ी बेचने वालों, भिश्तियों, फकीरों और रंडियों तक से लोगों को बहकाने और मुसल्मान बनाने के लिये कहा। स्वामी श्रद्धानन्द ने हिन्दू जनता को इन बातों से आगाह कर दिया।

दलितोद्धार सभा की स्थापना

दलितों का उद्धार करना स्वामी जी ने गुरुकुल खोलने के बहुत दिनों पूर्व आरम्भ कर दिया था। परन्तु जब मौलाना मुहम्मद अली ने कोकेनाड़ा कांग्रेस में कहा कि अछूतों को हिन्दू और मुसलमान आधा २ बांटलें तो यह बात स्वामी श्रद्धानन्द को बहुत बुरी लगी। उन्होंने दलितों को उद्धार करने के लिये दिल्ली में दलितोद्धार सभा की स्थापना की। इसके अध्यक्ष रह कर उन्होंने बहुत दिनों तक कार्य्य किया।

तेज और लिबरेटर

शुद्धि तथा संगठन के कार्य्य को सुदृढ़ करने के लिये स्वामी जी ने दो पत्र निकाले। तेज उर्दू में और लिबरेटर अंग्रेजी में। स्वामी जी की मृत्यु पर लिबरेटर बन्द होगया पर तेज अब भी हिन्दू जाति की बहुत बड़ी सेवा कर रहा है।

असग़री बेगम की शुद्धि

२५ मार्च १९२६ ई० को असगरी बेगम नाम की एक पठान महिला अपने पुत्रों सहित आई और शुद्ध होने की प्रार्थना की। स्वामी जी ने उसकी प्रार्थना स्वीकार करली। इस सम्बन्ध में स्वामी

जी पर अदालत में मुकद्दमा भी चलाया गया। परन्तु स्वामी जी की जींत हुई। इसका नाम शांति देवी रक्खा गया। इस हार से मुसल्मान लोग बेतरह बिगड़े और कई स्थानों पर स्वामी जी के वध की धमकीं दीं गई, पर उस वीर को यह धमकियां क्या डरा सकतीं थीं।

बीमारी

देश तथा समाज का कार्य्य करने में स्वामी जी का स्वास्थ्य ख़राब हो गया। गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में आप कार्य्यवश गये। वहां पर कुछ जुकाम हो गया जिसने निमोनिया का रूप धारण कर लिया। स्वामी जी की दशा शोचनीय हो गई। रोग दूर हो गया पर बेहद कमज़ोरी थी और शय्या छोड़ कर चल फिर नहीं सकते थे। रोग दूर हो गया परन्तु उनको पहले से मृत्यु का अभास हो गया। अपने पुत्र प्रोफ़ेसर इन्द्र, लाला देश बन्धु, स्वा० रामानन्द तथा डक्टर सुखदेव को वसीयत लिखने को बुलवाया। पं० दीनदयाल शास्त्री बलिदान से दो दिन पूर्व कुशल पूछने आये। उनसे भी स्वामी जी ने कहा।

"अब इस शरीर से सेवा नहीं हो सकेगी। इच्छा है कि फिर इसी भारतवर्ष में उत्पन्न होकर देश की सेवा करूं"।

२३ दिसम्बर १९२६ ई० को गोली लगने के कुछ घंटे पूर्व स्वा० चिदानन्द जी राजा सर रामपाल सिंह का तार लेकर आये। स्वा० चिदानन्द ने पूछा क्या उत्तर दे दिया जाय।" वीर सन्यासी ने कहा।

"फिर शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं"।

इन सब से पता चलता है कि उनको पहले से ही आभास हो गया था कि मृत्यु आ रही है।

वीर सन्यासी का बलिदान

चार बजे का समय था, सेवक धर्म सिंह ने कमोड लाकर रख दिया था क्योंकि स्वामी जी उठ बैठ नहीं सकते थे। स्वामी जी शौच से निवृत हुये। इतने में एक मुसल्मान ने आकर आवाज़ दी। नौकर ने रोका, पर स्वामी जी ने कहा आने दो। वह दुष्ट कहने लगा "मैं आप से इस्लाम के मुताल्लिक कुछ गुफ़्गू-करना चाहता हूँ।" स्वामी जी ने कहा "भाई मैं बीमार हूँ। तुम्हारी दुआ से राज़ी हो जाऊंगा तो बात चीत करूंगा"।

उसने फिर पीने को पानी मांगा सेवक धर्मसिंह उसे पानी पिलाने ले गया। यह धर्मसिंह को बाहर ले जाने का बहाना था। पानी पीते ही वह मुस्लमान दौड़ा आया। स्वामी जी तकिये का सहारा लगाये बैठे थे, इस लिये गोलियां सीधी छाती में घुस गई। उसने कई वार किये। बिचारा धर्मसिंह बचाने को आया उसकी जांघ में गोली लगी। गोली की आवाज स्वामी जी

के प्राईवेट सेक्रेटरी श्री० धर्मपाल के कान में पड़ी। उन्होंने बिना अपने प्राणों की चिन्ता किये उस मुसल्मान को पकड़ा लिया और एक घंटे के लगभग दबाये रहे जब कि पुलीस ने उसके हाथ से रिवाल-वर छुड़ाया। सेवक धर्मसिंह लंगड़ाता हुआ ज़ीने से नीचे आया और लोगों को आवाज़ दी।

लोग इकट्ठे हुये। वीर योद्धा सन्यासी जूझ गया। कृशित तन ने जो कार्य्य किया वह स्वामी श्रद्धानन्द का बलिष्ट शरीर भी नहीं कर पाया था। देश के कोने कोने में स्वामी श्रद्धानन्द के वध की सूचना फैल गई।

हा स्वामी

हा स्वामी तुम चल बसे, जैसी वीरता, धैर्य्यता, त्याग तुममें था उतना हमको कहां मिलेगा ? ईश्वर ! क्या इस देश में दूसरे श्रद्धानन्द न आवेंगे।

शंका समाधान

शंका—आपने आर्य्य मित्र (८ अगस्त) में जो मंत्र गठ-बन्धन का दिया है अर्थात् "अभित्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा" इत्यादि यह कहाँ का है ?

समाधान—यह अथर्ववेद काण्ड ७ सूक्त ३७ का पहला मन्त्र है। पूरा मन्त्र इस प्रकार है:—

अभि त्वा मनुजातेन दधामि मम वाससा।
यथासो मम केवलो नान्या सां कीर्तयाश्चन ॥

अर्थ यह है:—

"मैं तुझको मानुषीय (मनुष्य के बनाये हुये) वस्त्र से बांधती हूं। जिससे तू केवल मेरा ही रहे और स्त्रियों का न हो।"

गठ बन्धन हृदय-बन्धन का वाह्यचिह्न है। जिस प्रकार आदमी के बनाये हुये वस्त्रों में गाँठ दीजाती है उसी प्रकार ईश्वर के बनाये हुये दो हृदयों में गांठ लग जाती है।

शतपथ ब्राह्मण [सभाष्य]

गतांक से आगे

काण्ड १—अध्याय १—ब्राह्मण ४

(१)

अनुवाद

१—अथ कृष्णाजिनमादत्ते । यज्ञस्यैव सर्वत्वाय यज्ञो ह देवेभ्योऽपचक्राम स कृष्णो भूत्वा चचार तस्य देवा अनुविद्य त्वचमेवामच्छा वजह्नुः ।

१—अब वह काले मृगचर्म को लेता है। यज्ञ की पूर्त्ति के लिये । यज्ञ-देवताओं से भाग गया । वह काला मृग होकर विचरने लगा । देवते उसको पाकर और उसका चमड़ा उतार कर ले आये ।

२—तस्य यानि शुक्लानि च कृष्णानि च लोमानि । तान्यृचां च साम्नां च रूपं यानि शुक्लानि तानि साम्नांꣳ रूपं यानि कृष्णानि तान्यृचां यदि वेतरथा यान्येव कृष्णानि तानि साम्नांꣳ रूपं यानि शुक्लानि तान्यृचां यान्येव बभ्रूणीव हरीणि तानि यजुषांꣳ रूपम् ।

२—इसके जो सफ़ेद और काले लोम हैं । वह ऋचों और सामों के रूप हैं जो सफ़ेद हैं वह सामों के रूप हैं । जो काले हैं । वह ऋचों के । या इसके विपरीत जो काले हैं वह सामों के रूप हैं और जो सफ़ेद हैं वह ऋचों के । और जो भूरे या पीले हैं वह यजुओं के रूप हैं ।

३—सैषा त्रयी विद्या यज्ञः । तस्य एतच्छिल्पमेष वर्णस्तत्कृष्णाजिनं भवति यज्ञस्यैव सर्वत्वाय तस्मात्कृष्णाजिनमधि दीक्षन्ते यज्ञस्यैव सर्वत्वाय तस्मादध्यवहननम-धिपेषणं भवत्यस्कन्नꣳ हविरसदिति तद्यदेवात्र तण्डुलो वा पिष्टं वा स्कन्दात्तद्यज्ञे यज्ञः प्रतितिष्ठादिति तस्मादध्यवहननमधिपेषणं भवति ।

३—वह यही त्रयी विद्या यज्ञ है । उसका यह जो शिल्प है और जो वर्ण है वह काला मृगचर्म है । यज्ञ की ही पूर्त्ति के लिये । इसीलिये काले मृगचर्म पर दीक्षा दी जाती है । यज्ञ की ही पूर्त्ति के लिये । इसीलिये उसको चांवलों के पछोरने और पीसने में इस्तेमाल करते हैं । जिससे हवि थोड़ी सी न फैले । और यदि कोई चाँवल या आटा फैले तो यज्ञ यज्ञ में ही रहे । इसीलिये इसको (मृग-छाला को) पछोरने और पीसने में काम में लाते हैं ।

४—अथ कृष्णाजिनमादत्ते । शर्मासीति चर्म वाऽएतत्कृष्णस्य तदस्य तन्मानुषꣳ शर्म

देवत्रा तस्मादाह शर्मासीति तदवधूनोत्यवधूतंऽ रक्षोऽवधूता अरातय इति तन्नाष्ट्रा एवैतद्रक्षाꣳसि स्यतोऽपहन्त्यतिनत्येव पात्राण्यवधूनोति यद्द्व्य-स्यामेध्यम भूत्तद्व्यस्यै तदवधूनोति ।

४—अब वह काली मृगछाला को इस मन्त्राँश को पढ़ कर लेता है—

"शर्म्मासि" (यजु० १ । १४)

"तू सुख देने वाला है।"

यह जो काली मृगछाला मनुष्य सम्बन्धी है उसे 'चर्म' कहते हैं और जो दैवी है उसे 'शर्म' कहते हैं। इसलिये कहा,

"तू शर्म अर्थात् सुख देने वाला है।"

अब वह नीचे का मन्त्रांश पढ़ कर हिलाता (झाड़ता) है:—

अवधूतंऽ रक्षोऽवधूता अरातयः

(यजु० १। १४)

"राक्षस झड़ गये। शत्रु झड़ गये।" ऐसा करने से वह दुरात्मा राक्षसों को झाड़ देता है। वह (मृगचर्म को) पात्रों से दूर ले जाकर झाड़ता है जिससे जो कुछ अपवित्र वस्तु उस पर हो वह झड़ जाय।

५—तत्प्रतीचीनग्रीवमुपस्तृणाति। अदित्यास्त्वगसि प्रतित्वादितिर्वेत्त्विततीयं वै पृथिव्यदितिस्तस्या अस्यै त्वग्यदिदमस्यामधि किञ्च तस्मादाहादित्यास्त्वगसीति प्रति त्वादितिर्वेत्त्विति प्रति हि स्वः सं जानीते तत्संज्ञामेवैतत्कृष्णाजिनाय च वदति नेदन्योऽन्यꣳ हिनसात इत्यभिनिहितमेव सव्येन पाणिना भवति।

५—उसको पश्चिम की ओर गर्दन का भाग करके बिछाता है। इस मन्त्राँश को पढ़ कर:—

अदित्यास्त्वागसि प्रतित्वादितिर्वेत्तु।

(यजु० १। १४)

"तू अदिति की त्वचा है। तुझे अदिति स्वीकार करे।"

यह पृथ्वी ही अदिति है। जो कुछ इसके ऊपर है वह सब इसकी त्वचा है। इसलिये कहा, "तू अदिति की त्वचा है।" "अदिति तुझ को स्वीकार करे।" ऐसा इस लिये कहा कि जो जिसका होता है उसको स्वीकार करता है। इसलिये वह इस (अदिति या पृथ्वी) के और मृगचर्म के बीच में सम्बन्ध उत्पन्न करता है जिससे एक दूसरे को हानि न पहुंचावे।

६—अथ दक्षिणेनोलूखलमाहरति। नेदिहपुरा नाष्ट्रारक्षाꣳस्याविशानिति ब्राह्मणोहि रक्षसामपहन्ता तस्मादभिनिहितमेव सव्येन पाणिना भवति।

६—जब वह इस प्रकार इसको बायें हाथ में पकड़े रहता है तब दाहिने हाथ से उलूखल लेता है। कि कहीं ऐसा न हो कि दुरात्मा राक्षस उसमें घुस जावें। ब्राह्मण ही राक्षसों का दूर करने वाला है। इसलिये जब वह इसे बायें हाथ से पकड़े होता है उस समय।

७—अथोलूखलं निदधाति। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्न इति वा तद्यथैवादः सोमꣳ राजानं ग्रावभिरभिषुण्वन्त्येवमेवैत-

उलूखलमुसलाभ्यां दृषदुपलाभ्याᳬ हविर्यज्ञमभिषुणोत्यद्रय इति वै तेषामेकं नाम तस्मादाहाद्रिरसीति वानस्पत्य इति वानस्पत्यो ह्येष ग्रावासि पृथुबुध्न इति ग्रावा ह्येष पृथुबुध्नो ह्येष प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्त्विति तत्संज्ञामेवैतत्कृष्णाजिनाय च वदति नेदन्योऽन्यᳬहिन सात इति।

७—इस मंत्रांश को पढ़ कर उलूखल रख देता है :—

अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथु बुध्न। (यजु० १। १४)

"तू लकड़ी का पत्थर (टुकड़ा) है तू चौड़ी तलीवाला पत्थर है।" क्योंकि जिस प्रकार पत्थरों से सोमराज निकाला जाता है, उसी प्रकार इन उलूखल और मुसली तथा चक्की के दो पाटों से यज्ञ की हवि पीसी जाती है। इनका एक नाम अद्रि (पत्थर) है इसीलिये कहा "तू वानस्पत्य "अद्रि (अर्थात् लकड़ी का पत्थर या (टुकड़ा) है।"

"लकड़ी का" इसलिये कहा कि यह लकड़ी का ही बना होता है। 'चौड़ी तली वाला पत्थर' इसलिये कहा कि यह पत्थर भी है और इसकी तली भी चौड़ी है।

अब वह जपता है :—

प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु (यजु० १। १४

"तुझे अदिति की त्वचा स्वीकार करे"

ऐसा कह कर वह उलूखल और मृगचर्म में सम्बन्ध करा देता है जिससे वह एक दूसरे को हानि न पहुंचावें

८—अथ हविरावपति। अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनमिति यज्ञो हि तेनाग्नेस्तनूर्वाचो विसर्जनमिति यां वा अमूᳬ हविर्गृहीष्यन्वाचं यच्छत्यत्र वै तां विसृजते तद्यदेतामत्र वाचं विसृजत एष हि यज्ञ उलूखले प्रत्यष्ठादेष हि प्रासारि तस्मादाह वाचो विसर्जनमिति।

८—अब वह हवि को (उलूखल) में डालता है। यह मंत्राँश पढ़ कर—

अग्ने स्तनूरसि वाचो विसर्जनम्।
(यजु० १। १५)

"तू अग्नि का शरीर है। वाणी का छोड़ने वाला है।"

यह यज्ञ है। इसलिये अग्नि का शरीर है।

"वाणी का छोड़ने वाला इसलिये कहा कि (गाड़ी में से) चांवल लेते समय जिस वाणी को रोक रक्खा था उसी को छोड़ता है। अब वह वाणी को इसलिये छोड़ता है कि अब उस यज्ञ को उलूखल में स्थापना हो गई। अब वह फैल गया। इसलिये कहता है "तू वाणी का छोड़ने वाला है।"

९—स यदिदं पुरा मानुषीं वाचं व्याहरेत्। तत्रो वैष्णवीमृचं वा यजुर्वा जपेद्यज्ञो वै विष्णुस्तद्यज्ञं पुनरारभते तस्यो हैषा प्रायश्चित्तिर्देववीतये त्वा गृह्णामीति देवानवदित्यु हि हविर्गृह्यते।

९—अब अगर वह इससे पहले

मानुषी वाणी को बोल जाय तो उसे विष्णु सम्बन्धी ऋचा या यजु० को जपना चाहिये। यज्ञ ही विष्णु है। इसलिये यज्ञ का आरम्भ हो जाता है और प्रायश्चित भी हो जाता है।

अब वह जपता है।

देववीतये त्वा गृह्णामि ।
(यजु० १। १५)

"तुझ को देवों की प्रसन्नता के लिये ग्रहण करता हूँ।" क्योंकि देवों की प्रसन्नता के लिये ही हवि ली जाती है।

(क्रमशः)



शिव का उपवास



ल्गुन मास के कृष्ण-पक्ष की त्रयोदशी को शिव तेरस या शिवरात्रि कहते हैं। यह नाम इसका क्यों और कब पड़ा यह पता नहीं, पुराणों में प्रत्येक ऐतिहासिक घटना को विचित्र आख्यायिकाओं द्वारा वर्णित किया जाता है। वस्तुतः एक साधारण सी सीधी सच्ची घटना को ऐसा रूप दे देना कि वह समझ से बाहर हो जाय और बुद्धि को चकराते देख कर हम केवल अन्धविश्वास का आश्रय लेना सीखें, इसी को पुराण कहते हैं। शिवरात्रि के विषय में भी पुराण कुछ न कुछ अवश्य कहता होगा। परन्तु हम इस विषय में शिव-पुराण के पन्ने उलटना नहीं चाहते। परिपाटी यह है कि पत्थर के शिवलिङ्ग की अर्चना की जाय और उस दिन कुछ खाया न जाय। बस यह शिवरात्रि का शिवत्व है।

भारतवर्ष में दीर्घ काल से यह शिव-

...त्रि मनाई जाती हैं। भिन्न २ तीर्थ स्थानों पर मेले भी लगते हैं। लाखों हिन्दू इस दिन उपवास रखते हैं। परन्तु उनको उपवास का ठीक ठीक अर्थ ज्ञात नहीं होता। लोग समझते हैं कि न खाने का नाम ही उपवास है। और जो खाना खा लेता है वह समझता है कि मैं धर्म से च्युत हो गया, शतपथ ब्राह्मण में उपवास का यह अर्थ दिया गया है:—

तेऽस्य विश्वे देवा गृहानागच्छन्ति ...स्य गृहेषूपवसन्ति स उपवसथ (शतपथ १।१।१।७)।

अर्थात् जिस दिन देव उसके घर में आते हैं और थोड़े काल के लिये रहते हैं उसे उपवास कहते हैं। 'उप' का अर्थ है 'समीप' और 'वास' का अर्थ है 'रहना' समीप रहना अर्थात् देव की निकटता प्राप्त करना ही उपवास है। आत्मिक भोजन पाकर मनुष्य शारीरिक भोजन की परवाह नहीं करता। इसीलिये वह बिना खाये भी रह जाता है। परन्तु भूल से लोग बिना खाये किसी न किसी प्रकार ताश आदि खेल कर, या मेले तमाशे को देख कर या सो कर ही दिन विताने को उपवास कह देते हैं।

शिवरात्रि के उपवास का वास्तविक अर्थ यही है कि परम कल्याण कारक जगदीश्वर की समीपता प्राप्त की जाय। यदि ईश्वर का सामीप्य प्राप्त न हुआ तो वह उपवास कैसा ? यह तो सर्वथा अनर्थ है कि न पेट को भोजन मिला और न आत्मा को।

भारतवासी शिव के उपवास (नज़दीकी) के स्थान में बहुत दिनों से शिव का उपहास (मख़ौल) करते रहे हैं। इनको ईश्वर की प्राप्ति तो क्या होती थी, क्योंकि इन्होंने गोल-मोल पत्थर के टुकड़े को ही अपना इष्टदेव समझ लिया और अपना सब तन मन धन उसी के अर्पण करने के लिये उतारू हो गया। परन्तु इनके पेट को अन्न भी मिलना बन्द हो गया। यह समझते रहे कि जब मर जायंगे तो हमको अवश्य ही शिवलोक प्राप्त हो जायगा। परन्तु जिस शिवलोक की कुछ भी झलक इस जीवन में नहीं पाई जाती उसका मृत्यु के पीछे क्या ठिकाना। हम बम बम करने को ही शिवलोक प्राप्ति और विष युक्त धतूरे को ही यज्ञ की बढ़िया सामग्री समझते रहे। जिस देवों के देव महादेव की शुद्ध आत्मा से उपासना करनी चाहिये थी जिसके लिये वेद में कहा है

गायन्ति त्वा गायत्रिणः

उसके कल्पित स्वरूप के लिये हमने 'विष' की भेंट ही उपयुक्त समझी। उपहार हमको जो मिलना चाहिये था वही मिला। भारतवर्ष का समस्त धार्मिक वायु-मण्डल धतूरे के सदृश्य विषैले विचारों से विष युक्त हो गया। हम

ईश्वर को भूल गये। छोटी २ क्षुद्र वस्तुओं को ईश्वर समझने लगें। शिव-रात्रि हमारे लिये अशिवरात्रि हो गई।

नव्बे वर्ष के लगभग हुये कि टङ्कारा के एक छोटे से मन्दिर में मूल जी नाम का एक बालक शिव का उपवास करने गया। अन्य उपासक तो ऊंघ ऊंघ कर आलस्य देव का उपवास प्राप्त करने लगे परंन्तु यह पुरुषार्थी यही देख रहा था कि कब शिव आवे और कब उसे शिव का सामीप्य प्राप्त हो। उसके आत्मा में सच्ची लग्न थी। वह सच्ची श्रद्धा से ईश्वर को बुला रहा था। ईश्वर भक्तों पर अवश्य ही दया करते हैं। उन्होंने इस बालक पर भी दया की और उसके मन में आ विराजे। उसके आत्मा में आवाज़ आई।

"हे अज्ञानी, भक्त! मुझे आंखें फाड़ फाड़कर बाहर क्यों देखता है। मैं तो तेरे हृदय के भीतर बैठा हूँ।"

भीतर के पट तब खुलें बाहर के पट दे।

मूल जी ने यह आवाज़ सुनी। और घबराकर उठ खड़ा हुआ। उसने कहा! "ओ हो! मैंने बड़ा अपराध किया। मैं अपने इष्ट देव को मिट्टी का ढेला समझ कर बाहर खोज रहा था। वह तो प्रकाश रूप से भीतर विराजमान हैं। उसने झूठा उपवास तोड़ डाला और सच्चा उपवास प्राप्त कर लिया। भोजन करतेही आत्मिक भोजन भी प्राप्त हो गया।

आज मूल जी अर्थात् स्वामी दयानन्द जी की ही कृपा का फल है कि हम सब को भी आत्मिक भोजन की प्राप्ति हो रही है। हम समझने लगे हैं कि आत्मा क्या है और अनात्मा क्या है? नव्बे वर्ष पूर्व जो रात्रि दयानन्द के लिये शिव का शुभ समाचार लाई वही शिवरात्रि प्रति वर्ष आकर हमको जगाती है और पुकार पुकार कर कहती है:—

युक्तेन मन सा वयं देवस्य सवितुः सवे। स्वर्ग्याय शक्त्या। (यजुर्वेद ११।२)

"हम अपने बनाने वाले प्रभु के राज्य में एकाग्र मन से अपनी शक्ति से दैवी आनन्द को प्राप्त होवें।

कैलेंडर मुफ्त

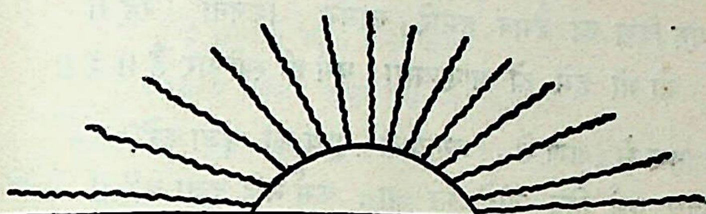
प्रबन्धक, जयदेव ब्रदर्स, बड़ौदा ने वेदोदय के ग्राहकों को रंगीन कैलेंडर मुफ्त देने की कृपा की है। ग्राहकों से प्रार्थना है कि उक्त पते पर पत्र भेज कर कैलेंडर मंगा ले।



त्यागमूर्ति पं० मोतीलाल नेहरू

Kala Press, Zero Road, Allahabad.

ओ३म्



पश्चात् प्राञ्च आ तन्वन्ति यदुदेति विभासति।

[अथर्ववेद १३। ४। १। १]

जब वह उदय होता है तो पश्चिम से पूर्व तक सब चीजें प्रकाशित हो जाती हैं।

From west to east are lit up all, when he rises & shines

भाग २] फाल्गुन संवत् १९८७, दयानन्दाब्द १०६, मार्च १९३१ आर्यसंवत्सर १९७२९४९०३१ [संख्या ६ पूर्ण सं० १२




एक आर्य हृदय की भावना

[वैदिक धर्म विशारद पं० सूर्यदेव शर्मा साहित्यालङ्कार, एम० ए०, एल० टी०]

वर धर्म वैदिक ही हमारा, पूज्य प्राणाधार है।
आनन्द का आगार है, प्रभु-प्रेम-पारावार है॥
मुनि बैठकर बीहड़ बनों में, जो मनन करते रहे।
अभिमान कर जिस पर मनस्वी, मोद से मरते रहे॥
वह आर्यों के विश्व वैभव, का विमल विस्तार है॥१॥

जो पूर्व ऋषियों के हमारे, रक्त से सींचा गया।
हा! जिस लिये शूली चढ़ाकर, चर्म तक खींचा गया॥
वह वीर बलिदानी जनों के, प्रिय हृदय का हार है॥२॥

सब सृष्टि का साम्राज्य भी, हमको अगर मिलता रहे।
वरु विश्व का वैभव हमारे, सामने हिलता रहे॥
तो भी हमें तो प्राणप्यारा; धर्म ही स्वीकार है॥ ३॥

हम प्राण से, प्रण से, प्रणय से, पूज्य की पूजा करें।
जग धर्म हित जीवें मरें वा, कर्म नहि दूजा करें॥
ध्रुव ध्येय जीवन का हमारे, वेद धर्म-प्रचार है॥ ४॥

संसार की आपत्तियाँ, आकर अगर आगे खड़ें।
उनकी चली क्या? हो अगर, यमराज से भी हम लड़ें॥
पर त्याग करना धर्म का, हमको न अंगीकार है॥ ५।

मरते समय भी हो हमारी, प्रार्थना परमेश से।
"दे जन्म भारत में पुनः, श्रद्धा स्वधर्म स्वदेश से"॥
बस वेद ही संसार तमका, "सूर्य" सुखमासार है॥ ६॥

———

क्रान्तिकारी दयानन्द

[श्री० हरिवंशराय जी बी० ए०]

सत्यता की आग में तपा के देश वासियों को।
दूर सारा खोटापना उनका हटाया था॥
तीव्र बुद्धि वाली बड़ी तुपकों से मार मार।
वेगि पोपडम गढ़ धूलि में मिलाया था॥
तर्क बम्ब फेकें थे कुरीतियों से शत्रुओं पे।
खड्ग निर्भीकता की ढोंग पे चलाया था॥
इसी अपराध में पिलाया गया विषघूंट।
क्रान्ति का सन्देश देने दयानन्द आया था।

वेदों का स्वाध्याय

(भाग २ अंक ४ से आगे)

[राज्यरत्न मास्टर आत्माराम जी, बड़ौदा]



रतवर्ष में इस समय अनेक P. H. D. (पी० एच० डी०) सज्जन महानुभाव विद्वान् M. A. (एम० ए०) हैं जिनके लेख वा ग्रन्थ किसी आर्य्य-प्राचीन शास्त्र वा सिद्धान्त अथवा इतिहास-परक विषय पर यदि हम देखें तो वह प्रायः ९९ प्रति शतक एक ही बात की पुष्टि अपने वर्तमान (अनुसन्धान) Research से करते हुए लिखते हैं कि मानवी उन्नति का आरंभ हज़रत मसीह से ६००० (छे सहस्र वर्ष पूर्व ही है। इसका भावार्थ यह है कि उक्त सज्जन आज से ८००० (आठ सहस्र) वर्ष पूर्व में जाकर मानव उन्नति की सीमा बांध देते हैं। हम इसका नाम अनुसंधान वा जिज्ञासा नहीं मान सकते। सत्य की खोज का सच्चा लक्षण यह है कि जिज्ञासु (Research Scholar) मन में पहिले अमुक बात न ठान कर चले। नहीं तो अनुसंधान के रूप में वही बात सिद्ध हो जावेगी जैसे कहते हैं कि एक भूखे मनुष्य से किसी ने पूछा कि भाई दो और दो कितने होते हैं? उसने उत्तर दिया कि चार रोटियां हमारे ऋषि केवल चार ही उत्तर देंगे। युरोप वाले सज्जन कभी २ कहा करते हैं कि भारतीय आर्य्य ऋषि अनुसन्धान (Research) करना नहीं जानते थे। इसके उत्तर में हम कह सकते हैं कि वैदिक आर्य्य वा ऋषि अपने समाज में जहां संगति (Peaceful association) का भारी नियम पूर्ण रूप से पालन करते थे वहां उसके साथ ही संवाद (Free discussion) का नियम भी निष्पक्ष हो कर अवश्य पालन करते थे। संगच्छध्वं संवदध्वं

(ऋ० मं १०, सू० १९२ मं० २)

यह मंत्र ऋग्वेद के अन्त में उक्त तत्व का बोधक युरोप वाले देखें।

हम तो क्या हिंदू विश्व विद्यालय काशी के नामी आचार्य्य पूज्य पं० श्री ध्रुव जी एम० ए० ने अपनी गुजराती की हिंदू धर्म नामी उत्तम पुस्तक में साफ़ लिखा है कि हिंदू धर्म अन्ध-विश्वास का धर्म नहीं—कारण कि महर्षि मनु का आदेश हैं जिसका भाव यह है कि "जो मनुष्य तर्क से अनुसन्धान करता है वही धर्म (कर्त्तव्य वा सर्व हितकारी नियम) को प्राप्त होता है।" पूज्य श्री ध्रुव जी ने मनु का श्लोक भी उद्धृत किया है। (देखो हिंदू धर्म)

गीता रहस्य के नामी उपोद्धात में पूज्य लोकमान्य तिलक जी ने अनेक भारी तत्व दर्शाए हैं। यथा वर्ण-गुण कर्म से प्राचीन आर्य्य काल में होते थे और वैदिक आर्य्य उस समय एक मास में चार बार अर्थात् सप्ताह में एक बार बड़ा भारी समाज इकट्ठा करके हवन यज्ञ कर वेद के उक्त समाज सूक्त का पाठ इत्यादि किया करते थे जिसमें समाज संगठन, संवाद आदि के महान् राष्ट्रीय सब तत्व हैं। प्रत्येक पूर्णमासी, कृष्ण अष्टमी, अमावस, और शुक्ल अष्टमी को वह यज्ञ करने के लिये चारों वर्णों का भारी संगठित समाज भरा करते थे। यह बातें उक्त लेख से हमने अपने शब्दों में भाव रूप से लिख दी हैं (इनके आधार के लिये पाठक देखें गीता रहस्य)।

उक्त लेख से हम यह परिणाम निकाल सकते हैं कि प्राचीन काल में सप्ताह में एक बार वैदिक आर्य्य अपना समाज भर कर विशेष हवन यज्ञ तथा समाज सूक्त अनुसार व्यवहार करते थे। यवन भाई शुक्रवार के दिन अर्थात् सप्ताह में एक बार यवन समाज किया करते हैं। ईसाई भाई रविवार को समाज करते हैं। पर वैदिक आर्य्य जो ४ इष्टि तिथि पर समाज किया करते थे उसमें जो एक अपूर्व नैसर्गिक उत्तम लाभदायक बात थी वह शुक्रवार वा रविवार वाले समाज में नहीं हो सकती। इष्ट-तिथि के दिन चन्द्र प्रकोप आदि के कारण मानवी शरीर में रक्त पर जरूर दुष्प्रभाव पड़ता है उसके समनार्थ भारी हवन यज्ञ समाज मिल कर करता था। हवन यज्ञ के अनेक लाभ हैं। आज कल एलोपैथिक में चीर-फाड़ तथा Injection सूई द्वारा औषध संचरता का भारी प्रचार हम देख रहे हैं। प्राचीन काल में जलायुका (जोंक), तथा हवन धूम द्वारा भारी रोग अधिक संख्या में समन वा निवारण किये जाते थे। Injection वा सूईमार औषध से रक्त में कभी एक घण्टे में और कभी ३ घंटे में जाकर प्रभाव प्रतीत होता है। जब शिर में चक्कर आने लगें तो समझते हैं कि सूईमार औषध वा इंजैकशन ने लाभ किया वा प्रभाव डाला।

वर्तमान इंजैकशन से भी बढ़ कर उत्तम विधि ऋषियों के हवन धूम की थी जो एक घण्टे वा ३ घण्टों की जगह एक क्षण वा एक घड़ी (२० मिनिट) में (सीधा) direct प्रभाव मस्तिष्क (दिमाग) पर सांस द्वारा पहुंचा देती थी। शस्त्र क्रिया वा सूईमार विधि जहां ८० प्रति शतक असफल हो सकती है वहां हवन धूम्र सदा सफल हो सकता है। इस स्वतन्त्र विषय पर एक पृथक् पुस्तक लिखी जा सकती है। मतलब यह है

कि प्राचीन काल में सप्ताह में एक बार वैदिक आर्य्य-समाज उक्त तिथियों पर यज्ञ करता हुआ भरा जाता और उसमें अनुसंधान (Research) के रूप में संवाद होते थे। दर्शन शास्त्रों में कितनी उदारता वैदिक काल-समान हम पाते हैं कि यदि कोई मनुष्य ईश्वर के न होने पर शंका करके उक्त विषय परक अनुसन्धान करना चाहता है तो वेदान्त दर्शन के पहिले सूत्र में पूर्ण अनुसंधान (Research) का दरवाज़ा (द्वार) जिज्ञासा शब्द से ही खोल दिया यह कहते हुए कि—

अथातो ब्रह्म जिज्ञासः

वेद के संवाद व मनु के तर्क युक्त अनु सन्धान वा निरुक्त के "तर्क मर्षियं" वा वेदान्त के जिज्ञासा शब्दों के मर्म को जानकर ही ऋषि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में प्रश्न उत्तर की शैली का रख कर समीक्षण तथा जिज्ञासा वा सत्य की खरी खोज की नींव रख दी।

पुरा तत्व वेत्ता

युरोप के अनु-सन्धानक आज कल जहां ८ सहस्र वर्षों से आगे अपने विचारों को ले जाना नहीं चाहते वहां विज्ञान-वादी उनके विचारों का खंडन करते हुए भारतीय ऋषियों के सिद्धान्तों की ओर धीरे धीरे आ रहे हैं। विदित रहे कि भारतीय ऋषि तर्क (Reason) और योगदृष्टि (Intuition) के पूरे धनी थे। युरोप के विज्ञान-वादी अभी केवल तर्क के धनी हैं योग दृष्टि इनके पास नहीं। विश्व-विद्या-कोष के अनेक वाद वा सिद्धान्त १० वर्ष पीछे क्यों बदल जाते हैं ? इसका यही उत्तर हम देंगे कि युरोप के पंडितों के पास (Reason) (तर्क) के साथ योग दृष्टि (Intuition) नहीं। हमारे वैदिक ऋषियोंके सिद्धान्त (Eternal Truths) वा "सत्य विद्या" वा वेद वा सत्य सनातन वैदिक सिद्धान्तों की संज्ञा धारण करते हैं और यह आर्ष सिद्धान्त ऐसे हैं जिनके विषय में सत्य के जिज्ञासु तर्क और योग के धनी ऋषि दयानन्द को लिखने का साहस हुआ कि वैदिक सिद्धान्त वह हैं जिनको ब्रह्मा से लेकर जेमिनि तक ऋषि मानते चले आये हैं और जो सर्व देशीय तथा सार्वजनिक सत्य सनातन संज्ञा को धारण करते हैं।

देखिये विज्ञान किस प्रकार ८००० वर्ष वादियों का ? (Indirect) रूप से खंडन कर रहा है :—

"From such data it has been calculated that the age of the earth can not be less than 1. 900 million years and possibly may be considerably more. Anthropologists and geologists agree

in saying that man existed on the earth 300,000 years ago".

(Two Thousand Years of Science, by R. J. Harvey-Gibson C. B. E., D. L. M. A. D. Sc., London—1929—Page 250.)

उक्त विज्ञानी लेख का भाव यह निकला कि मनुष्य का निवास तीन लाख वर्षों से भूगोल पर है। पूज्य तिलक जी ने अपनी (Orion) नामी पुस्तक में वेदकाल आज से आठ सहस्र पूर्व ही सिद्ध करने की चेष्टा की है।

उक्त लेख के आधार से एक विज्ञान वादी कह सकता है कि वेद तीन लाख वर्षों से हैं। पर महर्षि मनु जो विज्ञानी तथा योगी वा ऋषि थे वह जब लिखते हैं कि सृष्टि के आदि काल में वेद शब्दों द्वारा सृष्टि कर्त्ता ने ज्ञान दिया तो हम कोई हेतु महर्षि मनु को असत्यवादी होने का नहीं पाते।

भारतीय ऋषि क्या थे? इस विषय संबंधी निम्न लेख श्री कवि सम्राट ही के दिये जाते हैं। जो ऋषि महिमा बोधक हैं

"The writer has been brought-up in a family where text of the Upanishads are used in daily worship, and he has had before him the example of his father, who lived his long life in the closest communion with God, while not neglecting his duties to the world............For Western Scholars the great religious scriptures of India seem to possess a merelya retrospective and archæological interest, but to us they are of living importance......

To realise this great harmony between man's spirit and the spirit of the world, was the endeavour of the forest-dwelling sages of ancient India.

The man of science knows, in one respect that the world is not merely what it appears to be to our senses; he knows that earth and water are really the play of forces that manifest themselves to us as earth and water — how, we can but partially apprehend

They were the virtuous, the wise, courageous; they were the statesmen, kings and emperors of India, but whom amongst all these classes, did she look up to and choose to be the representative of men?"

They were the Rishis. What were the Rishis? They who having attained The Supreme Soul in knowledge were filled with wisdom, and having found him in union with the Soul, were in perfect harmony with the inner self; they having realized him in the heart, were free from all selfish desires, and having experienced him in all the activites of the world, had attained calmness. The Rishis were they, who having reached the Supreme God from all sides,

had found abiding peace, had become united with all, had entered into the life of the Universe." [Page 14]

संप्राप्यैनम् ऋषियो ज्ञान तृप्ताः
कृतात्मानो वीतरागः प्रशान्ताः
ते सर्वज्ञयं सर्वतः प्राप्यः धीराः
युक्तात्मनः सर्वमेव शान्तिः

Sadhana—The Realisation of of Life. By Sir Rabindranath Tagore. [Macmillan & Co, London.]

इसके अतिरिक्त Rig Veda Culture नामी प्रसिद्ध पुस्तक अंग्रेजी भाषा में श्री डाक्टर अविनाशचन्द्र दास एम. ए., पी० एच.डी. की प्रकाशित हुई है । उसमें जो कुछ उक्त विद्वान् महानुभाव ने वेद के ऋषियों के विषय में जिनके नाम मन्त्रों के साथ लिखे मिलते हैं लिखा है उसको अंगरेजी भाषा में न लिख कर केवल अपनी भाषा में निम्न पंक्तियों में सार देना ही पर्याप्त है ।

"परम तपस्वी, परम सत्यवादी, परम सदाचारी, ज्ञानसागर, परम त्यागी, परम परोपकारी, परम ईश्वर उपासक प्राचीन आर्य्य वैदिक ऋषि थे । इन वैदिक ऋषियों को वह "Discoverors and Inventors" भी लिखता है अर्थात् नूतन तत्व दर्शी तथा नवीन यन्त्र शिल्पादि के—

निर्माण कर्त्ता

साथ ही वह लिखता है कि यह बड़े विज्ञानी भी थे कारण कि आज तक वर्षा सिद्धि की विद्या युरोप के पं० भी नहीं जानते पर वैदिक आर्य्य ऋषि इच्छा अनुसार वर्षा बरसा सकते थे । उक्त ऋषि ग्रन्थ कर्त्ता के लेखानुसार "King makers" अर्थात् अराजाओं को राज देने वाले भी थे । इसलिये जो निरुक्त में कहा गया है कि ऋषि मन्त्र द्रष्टा होते हैं वह बात उक्त साधना तथा "ऋग्वेद कलचर" नामी ग्रन्थों के पाठ से हमारी समझ में आ सकती है ।

The Modern . *Review* for January *1893*—P.20 पर जो एक बंगाली विद्वान का लेख "*Authority of the Vedas* के नाम से निकला है । उसमें से निम्न शब्द पाठक विचारें ।

"This is the reason, why every system of Hindu philosophy ultimately depends on the authority of the *Vedas* and the *Upnishads,* which are records of introspective experiences of unsophisticated minds,"

(देखो कलकत्ता का दी मौडर्न रिव्यू मास जनवरी १९३१—पृष्ठ २०)

(शेष फिर)

वेदों का संदेश

(१२)

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्य शुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥

(ऋग्वेद १ । ५७ । १)

(महिष्ठाय) बड़े दानी (बृहते) अनन्त (बृहद् रये) बहुत धन वाले (सत्य-शुष्माय) सच्ची शक्ति वाले (तव से) बहुत बलवान ईश्वर के लिये मैं (मतिं) स्तुति को (प्र भरे) करता हूं । (यस्य) जिसका (दुर्धरं) न रुक सकने वाला (विश्वायु) और दा रहने वाला (राधो) धन (शवसे) स्तुति करने वाले के बल के लिये (अपावृतम्) इस प्रकार फैला हुआ है (इव) जैसे (प्रवणे) निचले स्थान में (अपाम्) जल बहता है ।

इस वेद मंत्र में दो बातें कही गई हैं एक तो यह कि हमको केवल ईश्वर की ही स्तुति करनी चाहिये । दूसरे ईश्वर के गुणों में सब से उत्कृष्ट गुण परोपकार है उसको दृष्टान्त देकर दर्शाया गया है ।

ईश्वर को "बृहत" बड़ा और "बृहदरयि" बड़ा धनवाला तो कहा ही है परन्तु उस के साथ साथ इस धन का प्रयोजन भी दिया गया है । ईश्वर का धन ईश्वर के लिये नहीं है किन्तु उसकी प्रजा अर्थात् मनुष्यों तथा अन्य प्राणियों के लिये हैं । ईश्वर धन रखते हुये भी भोगता नहीं । ईश्वर सूर्य्य बनाता है परन्तु उसके प्रकाश से अपने किसी कार्य्य को सिद्ध नहीं करता । जल बनाता है परन्तु पीता नहीं । फल उठाता है परन्तु चखता नहीं । फूल बनाता है

परन्तु सूंघता नहीं। यह सब क्यों बनाता है और इतने बड़े धन का क्या करता है? इसका उत्तर उसके 'मंहिष्ठ' गुण से मिलता है 'मंहिष्ठ' वह है जो सबसे बड़ा दानी हो। ईश्वर अपनी सभी चीज़ों को जीवों के लिये दान कर देता है। इसके लिये एक अच्छा उदाहरण भी दिया है। "अपामिव प्रवणे" जैसे बहता हुआ जल नीचे की ओर चलता ही है किसी के रोके नहीं रुकता उसी प्रकार ईश्वर का "दुर्धर राधः" अर्थात् धन जीवों के लिये दिया हुआ है। वह किसी के रोके नहीं रुक सकता।

दृष्टान्त बड़ा अच्छा और चित्ताकर्षक है। गंगोत्तरी ग्लेशियर पानी का खान है। परन्तु वह पानी गंगोत्तरी के लिये नहीं है। यदि वह सब जमा रहता तो संसार का कुछ भी उपकार न होता और न जल-निर्माण की प्रयोजन सिद्धि ही होती। परन्तु वह जल जहां जहां ढाल पाता है वहीं को फैलता है। कोई शक्ति उसे ढाल की ओर बहने से रोक नहीं सकती। ईश्वर का धन और दान भी इसी प्रकार का है। जीव ईश्वर के उसी प्रकार नीचे हैं जैसे गंगोत्तरी के लिये नीचे का मैदान। उस धन का उपयोग भी यही है कि वह स्वभावतः नीचे को बहे। ईश्वर अपनी सम्पत्ति को अनायास बिना परिश्रम या विकार के अपनी स्तुति करने वाले के लिये फैला देता है। ईश्वर के उपासक ईश्वर के आनन्द को अनायास ही भोगने लगते हैं। उपासना ही आनन्द है और आनन्द ही उपासना है। आनन्द को उपासना का फल कहना मानों कर्म और फल में भेद करना है। आनन्द उपासना से प्रवाहित होता है। उपासक को सांसारिक और पारमार्थिक सभी सुख स्वभावतः मिल जाते हैं। उनको कोई रोक नहीं सकता।

अद्या च मृडया

(ऋ० १।२५।१९)

हे ईश्वर आज हम पर कृपा कीजिये।

वैदिक धर्म और मोक्ष

[श्री पं० देवेन्द्रचन्द्र जी विद्याभास्कर, काशी]

पुण्यो वै पुण्येन कर्मणा भवति पापः पापेन

बृहदारण्यक



आजकल देखने में आता है कि पाठकों की अभिरुचि आध्यात्मिक विषयों की ओर झुक रही है। ऐसे समय में मैं उचित समझता हूं कि यदि कोई छोटा निबन्ध वेदान्त शास्त्र एवं आर्य ग्रन्थों के आधार से लिखा जाय तो वह पाठकों को रुचिप्रद ही होगा। अस्तु।

अभी कुछ समय हुआ आर्यमित्र के अंकों में यह छपा था कि आर्यसमाज के एक प्रमुख आर्यसन्यासी स्वामी सत्यानन्द जी महाराज ने अब एक नया पंथ खड़ा किया है वह राम नाम की कंठी देते हैं और अपने नये पंथ प्रचार में लगे हुए हैं। यह बड़े आश्चर्य की बात है कि आधुनिक विद्वान् सच्चा आत्म ज्ञान न प्राप्त करके केवल अपनी जिज्ञासा या ईर्षावश नवीन पंथ और नवीन सम्प्रदाय बनाने में क्यों लग रहे हैं? वर्तमान काल में यन्त्रालयों की बाहुल्यता से संस्कृत ग्रन्थों का प्रकाशन सुलभ होगया है और उनकी अनेकानेक विद्वानों की टीकाएं भी मिलती हैं वेद वेदांग उपनिषद भी प्राप्त हो जाते हैं फिर भी अभी तक कितना अन्धकार हिन्दू जाति में फैला हुआ है कि जो चाहे वही एक नया सम्प्रदाय बना महन्त बन जाता है इस सब का कारण है अपने आर्ष ग्रन्थों का न पढ़ना तथा श्रुतियों से अनभिज्ञ रहना! यदि वास्तव में मनुष्य पुण्य कर्मानुसार उत्तम जन्म पाकर श्रुति रहित रहे श्रुति बोधित सिद्धान्तों के अनुसार अपनी दिनचर्या न बनाए तब वह अन्धकार में न गिरे तो दोष ही क्या, 'श्रुति स्मृति सदाचार' के मानने वाले आधुनिक विद्वान् वेदादि सत्शास्त्रों को महत्व की दृष्टि से नहीं देखते और न कभी खोल कर देखने की चेष्टा करते हैं। इसका मुख्य कारण यही है कि यह ग्रन्थ उचित मात्रा में विद्यालयों में सिखलाए नहीं जाते विद्यार्थियों के हृदय व मस्तिष्क पर आंगल विद्या की छाप बैठ जाती है वह आर्य घरों में उत्पन्न होकर भी अनार्य ही रहते हैं।

क्योंकि वह अपने आत्म निरूपण-आध्यात्मिक विवेचन की ओर रुचि नहीं रखते वेदादि शास्त्रों के वास्तविक स्वरूप से बहुत दूर चले जाते हैं। यही कारण है कि भारतीय समाज नाना भांति के मत मतान्तरों में जकड़ा हुआ है जो चाहता

है वहीं अपने नाम की माला फिरवाने लगता है। इसका जो भयानक परिणाम निकल रहा है वह भी आर्य विद्वानों से छिपा नहीं है! कारण कि न उनमें श्रद्धा है न उनमें अपने धर्मानुशीलन का प्रेम है न अपने ही धर्म का वास्तविक ज्ञान होता है, किन्तु अन्य धर्मावलम्बियों से बहुत बढ़ २ कर डींग मारना मात्र ध्येय रह जाता! उनकी दशा इदं च नास्ति परं न लभ्यते वाली है!

आधुनिक विद्वानों में यह विषमता प्राचीन निष्णात आर्य ग्रन्थों से अरुचि होने का मुख्य कारण नित्य नैमित्तिक कर्म का लोप है! आज जिधर दृष्टि उठाइये क्या आर्य सामाजिक सज्जन क्या सनातन धर्मानुयायी सब ही ने अपने २ नित्य नैमित्तिक कर्म का लोप कर दिया। जो थोड़े बहुत करते भी हैं वह केवल ढोंग लोक दिखावा या यह कहिए स्वयं को ही धोखा देते हैं? प्रिय बन्धुओ! निष्काम कर्म के बिना चित्त शुद्ध नहीं हो सकता, चित्त शुद्धि के बिना निष्काम उपासना नहीं हो सकती और निष्काम उपासना के बिना ज्ञानोपलब्ध नहीं हो सकता। बिना ज्ञान के आत्मिक सुख प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए अत्यावश्यक है कि वह पहिले अच्छी तरह जिन ऋषि महर्षियों ने वेद उपनिषद् निर्माण किए हैं उनको पढ़ें उनके बताए हुए मार्ग से चले इसी से आत्मा शुद्ध होगा। आत्मा शुद्ध होने से परमात्मा की प्राप्ति होगी!

अभी मेरे एक मित्र बड़े साहित्यिक हैं, सुलेखक भी हैं समाज में मान भी है पास बैठे हुए हैं कहते हैं कि इन प्राचीन ग्रन्थों में सिर रगड़ने, आर्य तत्व-ज्ञान और आर्य-धर्म के पचड़े में क्या रखा है यह सब वृथा है। यही बात आज कल मैं सब जगह देखता हूं ऐसे लोगों के हृदय में यह बात समा गई है कि देह सौभाग्य राज्य-भोग मित्र बन्धु भाई तरुणी युवतियां भोग के लिए हैं इसी में ऐहिक एवं पारलौकिक सुख है इसके अलावा संसार में कुछ नहीं! वह बड़ी ग़ल्ती पर हैं उन भोले भाइयों को यह पता नहीं कि इस ऐहिक सुखोपभोग को ही हम वास्तविक सुख समझे हुए हैं यह सब मिथ्या है इस का बाहरी आवरण श्वेत दिखाई देता है किन्तु अन्दर काला पर्दा पड़ा हुआ है। परमात्मा ने जिस लिए मनुष्य योनि दी थी, जिस लिए तुझे इस धरा में उत्पन्न किया था वह सब इन मोहादियों में पड़ तूने विस्मृत कर दिया तेरे पल्ले में अँधेरा ही आया। पार-लौकिक सुख का अधिकारी न बन सका। तेरा उत्पन्न होना न होना सब

निरर्थक होगया बन्धुओ जो अहोरात्र इस बात का ध्यान करता है—

अहं बद्धो विमुक्तः स्यामिति यस्यास्ति निश्चयः। नात्यन्तमज्ञो नोतज्ज्ञः सोऽस्मिन् शास्त्रेऽधिकारवान

अर्थात् जिसको ऐसा ज्ञान हो गया हो कि मैं संसार बद्ध हूं इससे मेरी मुक्ति होनी चाहिए वही इन सत् शास्त्रों का वास्तविक अधिकारी होता है। परन्तु वह अत्यन्त अज्ञानी न होना चाहिए। अत्यन्त अज्ञानी तो वह है जो ऐहिक सुखों को ही सुख समझता है तथा इस नाशवान् देह को ही देह समझता है दूसरा कुछ नहीं है। जिसे यह नहीं जान पड़ता मैं कौन हूं कहां से आया हूँ "कोऽहं कुत आयातः कामे जननि को मे तातः" क्या मेरी गति होनी है जो अहोरात्र प्रपञ्च में ही दक्ष है उसे अत्यन्त अज्ञानी कहना होगा! इसी प्रकार अत्यन्त ज्ञानी वह है जिसे ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता अहं ब्रह्म अहं ब्रह्म की ही ध्वनि करता है वस्त्र है तो ब्रह्म भोजन है तो ब्रह्म, वह भी अत्यन्त ज्ञानी होने से आध्यात्मिक आत्मिक ज्ञान सद् शास्त्राध्ययन के लिए अनाधिकारी ठहरता है।

सच्चा वास्तविक अधिकारी वह है जिसके हृदय में नित्य अनित्य वस्तु का विवेक है जो बड़ी सूक्ष्मता से अपने मन में विचार करता है। कि जगत् में नित्य वस्तु कौन है अनित्य कौन है। यह विवेक जिसमें जागृत होता है वही शास्त्रों के अध्ययन का अधिकारी है। आत्म ज्ञान के लिए पूर्ण स्वाध्याय मनन की आवश्यकता है विना स्वाध्याय के विवेक ज्ञान नहीं उपजता और ईश्वर विषयक भक्ति भी नहीं होती।

आधुनिक शिक्षा क्रम में यही सब से बड़ी भारी त्रुटि है कि वह हमारे सद् असद् विवेकस्थ स्वरूप प्राप्ति की साधना से बहुत दूर ले जाता है।

न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागे नैकेन अमृतत्वमानशुः

मोक्ष की प्राप्ति नाना विषयों में फंसे रहने से कदापि नहीं हो सकती। यह तो जबही प्राप्त होगा जब विषय वासनाओं को त्याग कर "एकचित्त वृत्ति निरोध" चित्त की वृत्तियां का निरोध कर स्वाध्याय में मन लगायेंगे। परमार्थ प्राप्ति हंसी खिलवाड नहीं है वह मार्ग बड़ा कठिन है। इसके लिए चित्त शुद्धि और सुकृत की अत्यन्त आवश्यकता है।

आधुनिक युग में उत्पन्न होने वाले नाना भांति के मत मतान्तरों की ओर हम जब दृष्टिपात करते हैं तब जान पड़ता है कि धर्म की सिर्फ हंसी हो रही है। जिसे देखिए वही धर्म के ठेकेदार बन अपने भक्त बना ईश्वर की उपेक्षा कर मठ खड़ा कर देता है और उसमें बैठ यही समझता है कि बस अब भक्ति ज्ञान का द्वार हाथ आ गया। मजा यह है कि वेद प्रति पाद्य मार्ग को तो ढकोसला ही समझने लगते हैं। परन्तु यह बड़ी भारी भूल है। आर्ष ग्रन्थों के देखने से पता चलता है कि मनुष्य को जब आत्मिक ज्ञान होता है तो उसकी प्रवृत्ति वैराग्य की ओर हो जाती है। वास्तव में विना वैराग्य उत्पन्न हुए स्वात्म प्रकाश भी नहीं होता। इसलिए आत्मिक आधिभौतिक ज्ञान के यदि जानने की इच्छा हो और आप यदि वास्तव में अपने प्राचीन वैदिक धर्म में आस्था रखने की सद् भावना रखते हों तो आप 'शास्त्रों का स्वाध्याय कीजिए, मनन कीजिए, इन नाना मत मतान्तरों के पचडे में मत पड़िये। आपको फिर आप ही सच्चे मार्ग का पता चल जायगा। और उसी अनुसार जीवन-यापन करने से अवश्यमेव मुक्ति के अधिकारी हो सकेंगे।

त्वं वरुण पश्यसि

(ऋ० १।५०।६)

हे ईश्वर आप सबको देखते हैं

नारसिंही

[एक घटित घटना के आधार पर]

[श्रीयुत चिन्तामणि जी "मणि"]



आश्विन का महीना था। सहस्र-रश्मिदेव अस्ता-चल को रवाना हो चुके थे। कृष्णा अपने द्वार पर बैठी नेत्रों से अश्रुधारा बहा रही थी। बीच २ में उसका सिसकना और भी करुणोत्पादक था। इस समय वह निस्सहाय, निरुपाय सी प्रतीत होती थी, रह रह कर उसका चित्त घबरा उठता था। वह कभी दुर्गा, पार्वती आदि की दुहाई देती और कभी गाज़ी, पीर, मौला इत्यादि का स्मरण करती। परन्तु किसी प्रकार उसे धैर्य न होता था।

उसकी गोद में एक बच्चा था। बच्चा लगभग नौ मास की आयु का होगा। उसको किसी प्रकार का भयानक कष्ट था। जिससे उसके रुदन से कृष्णा ने धैर्य छोड़ रक्खा था। तरह तरह की मानतायें इसी हेतु मनाई जा रहीं थीं। अभी अभी बच्चे को कृष्णा तेल आदि लगा वस्त्र पहना बाहर लाई थी। परन्तु क्षण भर में बच्चा रोगग्रस्त हो गया।

अब बच्चा भयानक चीत्कार करने लगा। उसके रुदन से मुहल्ले भर में तहलका मच गया। पास पड़ोस के लोग एकत्र हो गये। कृष्णा के मुख से निकला "हा! मेरा बच्चा।"

पड़ोसियों में से एक आदमी ने बढ़ कर पूछा—"क्या हुआ बच्चे को? क्या बच्चा बीमार है?"

"नहीं।"

"फिर क्यों रो रहा है?"

"किसी ने टोना लगा दिया है।"

"टोना?"

"हाँ।"

"अजीब आदमी हो तुम लोग, टोना टोटका कैसा? ज़रा देखें। उसको कोई और बीमारी तो नहीं है।"

अब तक बच्चा रोते २ बेदम हो उठा था। उसकी नाड़ियाँ सुस्त पड़ गईं थीं। उसका नश्वर शरीर निर्जीव सा हो रहा था। मनुष्य ने बच्चे को देख कर कहा—"ओहो! बड़ा पसीना है। देखो यह गर्मी से व्याकुल है। शीघ्र डाक्टर के यहां जाओ। फौरन इलाज करो। बच्चे की नाड़ियाँ सुस्त हैं। बदन ठंडा है। इसमें विशेष कारण है। टोना टोटका सम्पूर्णतः भ्रम है।"

उसकी ऐसे बातें कुछ पड़ोसियों को बुरी लगीं। एक बूढ़ी ने निकल कर कहा, "तुम जब से यहां आये हो। अंग्रेजी फ़ारसी सदैव बका करते हो। बच्चे को सरासर टोना है और तुम उसको बेवकूफ बनाते हो। चल, बेटी चल; मैं तेरे बच्चे को फूंक लगवा दूं। अभी तेरा बच्चा चंगा हो जाता है। आजकल के पढ़े लिखे लड़कों की तो शान ही नहीं मिलती। दादा, बाबा टोना, टोटका मानते आये और आज यह चला है 'भड़म' बतलाने। बड़ा रे, पढ़ा लिखा।" एक दूसरे पड़ोसी ने बढ़ कर कहा—"अरे, माई। यह आर्य-समाजी हैं।"

"हां!"

अब तो सभी उस बेचारे मनुष्य की हँसी उड़ाने लगे। वह पागल सा बन गया। कुछ देर वहीं खड़ा रहा बाद को अपने घर चला गया।

❀ ❀ ❀

रेवड़ी तालाब पर एक पतली सी गली से होकर शम्भू के घर का रास्ता है। शंभू जाति का कुरमी है। झाड़ना फूँकना उसका व्यवसाय है। यही शंभू के जीवन निर्वाह का एक मात्र ध्येय है। कई दिन हो गया कोई असामी नहीं आया। कुछ खर्च को नहीं है। त्योहार भी समीप है। कैसे काम चलेगा। इन्हीं विचारों से प्रेरित शम्भू अपने दरवाजे बैठा था कि दो स्त्रियां आगे पीछे जा पहुंची। शम्भू ने मन ही मन कहा। "चाँद उदय हुआ।" परन्तु उसने अपनी प्रसन्नता को छिपाते हुए उन लोगों की ओर देखा।

इतने में ही वह स्त्री घबराई आवाज़ से बोल उठी—"भैया, ज़रा इस बच्चे को देख। बड़ी तकलीफ में है। इस समय तू ही विधाता है। किसी डाइन ने इस सुन्दर अनमोल बच्चे को डस लिया है। तू इस बच्चे का रक्षक हो। इसी हेतु तेरे पास आई हूं।"

उस मनुष्य ने ढाढ़स देते हुये उत्तर दिया—"माता घबड़ाओ नहीं" बच्चा अभी शीघ्र अच्छा होता है। यह कह कर उसने बैठने का इशारा किया। झाड़ फूँक आरम्भ हो गई। बच्चा अभी तक रो रहा था, परन्तु अब उसका रोना चिल्लाना उतनी तेज़ी के साथ नहीं था। वह बिल्ली के बच्चे की आवाज़ से भी धीमा प्रतीत होता था। आध घंटे में झाड़ फूँक समाप्त हुई। उठते ही शम्भू ने कहा—"इसको नारसिंही टोना लगा है। इसमें पांच रुपये का ख़र्च है। यदि कहो तो उपाय करूं। परन्तु रुपया मिल जाना चाहिये ताकि सामग्री एकत्र करने में सुविधा होगा।"

कृष्णा ने कहा—यदि "दस रुपये का भी ख़र्च होगा तो मैं दूंगी पर मेरा बच्चा अच्छा हो जाय।" अब तो शम्भू ने और भी मुंह फैलाया।

"नहीं; केवल पांच रुपये का खर्च है। यों आपकी इच्छा है आप हमें इनाम दे दें, वह पाँच रुपये मैं अपने लिये नहीं मांग रहा हूं। उसके तो सब सामान इत्यादि आवेगें। जिसने टोना लगाया है उसको अपने देवता द्वारा पकड़ मंगवाऊंगा। तभी तुम्हारे बच्चे को अच्छा करने में समर्थ होऊंगा।

"मेरा बच्चा अच्छा हो जाय। रुपये की चिन्ता नहीं।" यह कहते हुए कृष्णा ने पांच रुपये दिये।

"बारह बजे आना" ऐसा कह कर शंभू मकान के अन्दर गया। कपड़ा उठाया और उन लोगों के सामने ही वह बाजार की ओर चला गया?

❁ ❁ ❁

यों तो नरेन्द्र प्रायः आफ़िस से जब छुट्टी पाते पहले सीधे घर आते थे। पर आज रास्ते में मित्र योगेन्द्रनाथ मिल गये। उन्होंने सनीमाघर तक उन्हें ले घसीटा। सनीमा से नौ बजे दोनों व्यक्ति लौटे। बाहर आकर नरेन्द्र सीधे घर चले और योगेन्द्र हलवाई की दुकान में घुस गये।

घर आकर नरेन्द्र ने जो दृश्य देखा, उससे उन्हें भीषण दुःख हुआ। धर्मपत्नी ने सारा किस्सा कह सुनाया। बच्चा अभी तक रो रहा था। दो चार आदमी जमा थे। बच्चे को नारसिंही टोना लगा है। यह सुनकर नरेन्द्र घबरा गये। मुख मलीन हो गया। नेत्रों से अश्रु-धारा प्रवाहित हो उठी। इतने ही में वह बुढ़िया आगई। उसने नरेन्द्र को धीरज दिया। बारह बजे बच्चे को शंभू के यहाँ ले चलना है। बच्चा जरूर अच्छा हो जायगा। जबसे उसने बच्चे को देखा है। तबसे इसका रोना चिल्लाना कुछ कम है।

❁ ❁ ❁

कृष्णा के पति दफ़्तर से आ गये यह सुनकर वह मनुष्य एक बार फिर आया जिसको आर्य्यसमाजी कहकर पड़ोसियों ने लज्जित किया था। आते ही उसने नरेन्द्र से नमस्ते की। नरेन्द्र भी कभी कभी समाज के जलसों में शरीक हुआ करते हैं इस कारण उनसे जान पहिचान थी। और आर्य्यसमाज से श्रद्धा रखते हैं। नमस्ते करने के बाद उसने नरेन्द्र को समीप बुला कर धीरे से कहा—देखो, आपका बच्चा लगभग ३ घटे से चिल्ला रहा है। मैंने उसका चिल्लाना लगभग कई घंटे हुआ होगा सुना था तभी मैंने आपकी धर्मपत्नी से निवेदन किया कि किसी डाक्टर या वैद्य को दिखाओ। परन्तु यहां के कुछ लोगों ने ध्यान न दिया और मेरी हँसी उड़ाई। आपकी धर्मपत्नी साहिबा भी उन लोगों

की बेहूदी बातों में आ गईं। जिसका नतीज़ा यह हुआ कि बच्चा अभी तक वैसा ही है। भूत प्रेत, पिशाचों पर विश्वास लाना आर्यों का कर्त्तव्य नहीं। भूत प्रेत आदि मनुष्य को नहीं सता सकते। यह केवल लोगों का भ्रम है। अन्ध-विश्वास में फंस कर पीछे हानि उठानी पड़ती है।

नरेन्द्र उसकी बात मान गये। शीघ्र ही बच्चे को लेकर डाक्टर के यहां पहुंचे। डाक्टर ने बच्चे को देखा। वह रह २ कर विस्मित हो रहा था। क्योंकि बच्चे को कोई बीमारी नहीं है। पर क्यों रो रहा है। उसने बच्चे के प्रत्येक स्थान को देखा। अन्त में उसका हाथ बच्चे के पैर पर पड़ा। वह शीघ्र ही हँसता हुआ। बोला—"इसको कोई बीमारी नहीं है। कृपया आप इसके पैर का मोज़ा उतारिये। इसके पैर में बाईसिकिल के ट्यूब की गेटिस पड़ी है। जो इसके लिये संकट-मय है।"

नरेन्द्र इस बात को देख कर बड़े हंसे। उनके मित्र ने बताया कि शंभू कल रात को शराब की दूकान पर खड़ा था और वैश्याओं से उसका सम्बन्ध है। नरेन्द्र को इस बात का बड़ा दुख है कि उसके दिये हुये ५) बुरे काम में लगे और उन्होंने निश्चय कर लिया है कि कभी टोना पर विश्वास न करेगें।

शंका समाधान

शंका—कभी कभी हम देखते हैं कि एक मनुष्य दूसरे की ओर अनायास ही आकर्षित हो जाता है। कभी कभी इसके विपरीत ऐसा होता है कि दो मनुष्यों को एक दूसरे के प्रति अकारण घृणा सी होती है। इसका कारण क्या है?

समाधान—इसका कारण है पूर्व-आत्मिक-सन्निकर्ष (former psychical affinity) अर्थात् पहली किसी योनि में इन मनुष्यों का साथ रहा होगा। वहां इन्होंने एक दूसरे के प्रति अति प्रेम अथवा अति घृणा का भाव रक्खा होगा। आत्मा पर उन्हीं प्रेम या घृणा के भावों का प्रभाव है। पुराने संस्कार जागृत हो उठते हैं। इसको एक उदाहरण से समझने का यत्न कीजिये। कल्पना कीजिये कि दो लड़के एक साथ एक ही कक्षा में पढ़ते हैं। उनमें परस्पर प्रेम है। साथ साथ रहते हैं। साथ साथ टहलने जाते हैं, साथ साथ खेलते हैं, साथ साथ पढ़ते हैं। इस प्रकार उनका न केवल शारीरिक सन्निकर्ष किन्तु आत्मिक सन्निकर्ष भी उत्पन्न हो गया। कुछ दिनों पश्चात् शिक्षा की समाप्ति पर वह दोनों अलग होगये। बहुत वर्षों तक न एक दूसरे को देखा, न परस्पर पत्र व्यवहार किया और एक दूसरे की याद न रही। अब यदि बहुत काल के पश्चात् यह आपस में मिले तो पुराने संस्कार जाग उठे और एक दूसरे के मन ने कहा, "ओ हो, यह तो हमारा पुराना मित्र ही है! हम दोनों किस प्रकार साथ साथ आनन्द से रहा करते थे!"

यह भी संभव है कि इन दोनों में शिक्षा के दिनों में वैर रहा हो। यदि ऐसा है तो पुराने वैरभाव की याद आ जायगी और जी चाहेगा कि फिर लड़ पड़ें।

बस जो बात इस जीवन के पुराने समय के लिये लागू होती है वही बात इससे पूर्व जन्मों के लिये भी उपयुक्त है। यद्यपि यह भौतिक जीवन अन्त वाला है तथापि आत्मिक जीवन ही अनन्त है। इसका न आदि है न अन्त। इस अनन्त जीवन में भिन्न भिन्न आत्माओं का भिन्न २ सम्बन्धों द्वारा सन्निकर्ष हुआ ही करता है। इस सन्निकर्ष से उत्पन्न हुये संस्कार कभी दबे रहते हैं और कभी जाग पड़ते हैं। यही कारण है कि हम एक दूसरे की ओर विना जाने भी आकर्षित हो उठते हैं।

शतपथ ब्राह्मण [सभाष्य]

गतांक से आगे

काण्ड १—अध्याय १—ब्राह्मण ४

(१)

अनुवाद

१०—अथ मुसलमादत्ते । बृहद्ग्रावासि वानस्पत्य इति बृहद्ग्रावा ह्येष वानस्पत्यो ह्येष तदवदधाति स इदं देवेभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्वेति स इदं देवेभ्यो हविः संस्कुरु साधुसंस्कृतं संस्कुर्वित्येवैतदाह ।

१०—अब वह मूसली को लेता है यह जप कर:—

बृहद् ग्रावासि वानस्पत्यः ।
(यजु० १ । १५)

"तू लकड़ी का बड़ा पत्थर है ।"

क्योंकि यह बड़ा पत्थर भी है और लकड़ी का भी है ।

अब नीचे के मंत्रांश को पढ़ कर (मूसल उलूखल में) डालता है :—

स इदं देवभ्यो हविः शमीष्व सुशमि शमीष्व । (यजु० १ । १५)

"तू देवों के लिये हवि तैयार कर। अच्छी तरह तैयार कर ।"

ऐसा कहने से उसका तात्पर्य है कि "तु देवों के लिये हवि को संस्कृत (शुद्ध) कर । बहुत अच्छी तरह से शुद्ध कर ।"

११—अथ हविष्कृतमुद्वादयति । हविष्कृदेहि हविष्कृदेहीति वाग्वै हविष्कृद्वाचमेवैतद्विसृजते वागु वै यज्ञस्तद्यज्ञमेवैतत्पुनरुपह्वयते ।

११—अब वह नीचे का मंत्रांश पढ़ कर हविष्कृत को बुलाता है :—

हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि (यजु० १।१५)

"हविष्कृद् आ। हविष्कृद् आ।"

वाणी ही हविष्कृद् है । इसलिये वाणी को छोड़ता है। वाणी ही यज्ञ है इसलिये इस प्रकार वह यज्ञ को ही बुलाता है ।

१२—तानि वाऽएतानि । चत्वारि वाच एहीति ब्राह्मणस्यागह्याद्रवेति वैश्यस्य च राजन्यबन्धोश्चाधावेति शूद्रस्य स यदेव ब्राह्मणस्य तदाहैतद्धि यज्ञियतममेतदु ह वै वाचः शान्ततमं यदेहीति तस्मा देहीत्येव ब्रूयात् ।

१२—यह बुलाना (एहि) चार प्रकार से होता है।

ब्राह्मण के लिये कहते हैं। "एहि।" वैश्य के लिये "आगहि।" क्षत्रिय के लिये "आद्रव।" शूद्र के लिये "आधाव" (दौड़ आ)। इस अवसर वह उसी प्रकार के बुलाता है जैसे ब्राह्मण को

बुलाना चाहिये। क्योंकि यज्ञ के लिये यही ठीक है। और शान्ततम वाणी है। इसलिये कहता है "एहि।"

१३—तद्ध स्मैतत्पुरा। जायैव हविष्कृदुपोत्तिष्ठति तदिदमप्येतर्हि य एवं कश्चोपोत्तिष्ठति स यत्रैष हविष्कृतमुद्वादयति तदेको दृषदुपले समाहन्ति तद्यदेतामत्र वाचं प्रत्युद्वादयन्ति।

१३—पहले ऐसा हुआ करता था। 'हविष्कृत्' कहने पर पत्नी उठा करती थी। अब भी ऐसा कहने पर कोई उठ बैठता है। इसलिये जब कहता है "हविष्कृत्" तो उनमें से एक चक्की के दो पाटों को पीटता है। यह ऐसा शब्द क्यों करता है इसका कारण यह है:—

१४—मनोर्ह वाऽऋषभ आस। तस्मिन्नसुरघ्नी सपत्नघ्नी वाक्प्रविष्टास तस्य ह स्म श्वसथाद्रवथादसुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति ते हासुराः समूदिरे पापं वत नोऽयमृषभः सचते कथं न्विमं दभ्नुयामेति किलाताकुलीऽइति हासुरब्रह्मा वासतुः।

१४—मनु का एक बैल था। उसमें उसने असुर को मारने वाली और शत्रु मारने वाली वाणी प्रविष्ट कर दी। अब जब वह ठोरता या गरजता तो असुर और राक्षस मर जाते। अब असुर कहने लगे, "वस्तुतः यह बैल हमारे लिये आफ़त है। इसको कैसे मारें?" असुरों के दो पुरोहितों का नाम 'किलात' और 'अकुलि' था।

१५—तौ होचतुः। श्रद्धादेवो वै मनुराव न्नु वेदावेति तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति केनेत्यनेनर्षभेणेति तथेति तस्यालब्धस्य सावागपचक्राम।

१५—इन दोनों ने कहा, "मनु की देवों पर श्रद्धा है। ऐसा सुना जाता है। इसको निश्चय करलें।" अब वह उसके पास गये और बोले, 'हे मनु' हम तुम्हारा यज्ञ करेंगे। उसने पूछा, "किससे?" उन्होंने कहा, "इस बैल से।" उसने कहा, "अच्छा' उसके मारे जाने पर वह वाणी उससे चली गई।

१६—सा मनोरेव जायां मनावीं प्रविवेश। तस्यै ह स्म यत्र वदन्त्यै शृण्वन्ति ततो ह स्मैवासुररक्षसानि मृद्यमानानि यन्ति ते हासुराः समूदिरेऽइतो वै नः पापीयः सचते भूयो हि मानुषी वाग्वदतीति किलाताकुली हैत्रोचतुः श्रद्धादेवो वै मनुरावं न्वेव वेदावेति तौ हागत्योचतुर्मनो याजयाव त्वेति केनेत्यनयैव जाययेति तथेति तस्याऽआलब्धायै सा वागपचक्राम।

१६—वह अब मनु की स्त्री मानवी में प्रविष्ट हो गई। उसको जहां कहीं बोलते सुन लेते, असुर और राक्षस मर जाते। इस पर असुरों ने कहा, "इससे तो और भी अधिक आफ़त आती है। क्योंकि मनुष्य की वाणी बहुत बोलती है।" किलात और अकुलि ने कहा, "मनु की देवों पर श्रद्धा है। ऐसा सुना है। इसकी जांच करें।" वे दोनों उसके पास पहुंच कर बोले, "हम तेरे लिये यज्ञ

करेंगे।" उसने पूछा, "किससे ?" उन्होंने कहा; "इसी स्त्री से ।" उसके मारे जाने पर वह वाणी उससे निकल गई।

१७—सा यज्ञमेव यज्ञपात्राणि प्रविवेश। ततो हैनां न शेकतुर्निर्हन्तुंᳫसैषासुरघ्नी वागुद्वदति स यस्य हैवं विदुष एतामत्र वाचं प्रत्युद्वादयन्ति पापीयाᳫसोहैवास्य सपत्ना भवन्ति।

१७—अब वह यज्ञ और यज्ञ-पात्रों में घुस गई। अब वह इसको निकालने में असमर्थ रहे। यही असुरों को मारने वाली वाणी (चक्की से) निकलती है। अब जिस किसी के लिये, जो जानता हो, इस अवसर पर वह इस शब्द को उत्पन्न करते हैं उसके शत्रु बड़ी आफ़त में पड़ जाते हैं।

१८—स समाहन्ति। कुक्कुटोऽसि मधुजिह्व इति मधुजिह्वो वै स देवेभ्य आसीद्विषजिह्वोऽसुरेभ्यः स यो देवेभ्य आसीः स न एधीत्येवैतदाहेषमूर्जमावद त्वया वयᳫसङ्घातᳫसङ्घातं जेष्मेति नात्र तिरोहितमिवास्ति।

१८—वह नीचे के मन्त्रांश को पढ़ कर चक्की के पाट को पीटता है :—

कुक्-कुटोसि*मधुजिह्व। (यजु० १।१६

"तू मीठी वाणी युक्त शत्रु का नाश करने वाला है।"

वह बैल देवताओं के लिये मीठी वाणी वाला था और असुरों के लिये विषय युक्त वाणी वाला, इस मंत्र के कहने से उसका प्रयोजन यह है कि "जैसा देवताओं के लिये था वैसा ही मेरे लिये भी हो।" अब वह जपता है:—

इष-मूर्ज्जमावाद त्वया वयᳫसंघातं संघातं जेष्म। (यजु० १।१६)

"तू अन्न तथा पराक्रम का उपदेश कर। तेरी सहायता से हम शत्रुओं को मार मार कर जीतें।"

यह सब स्पष्ट है।

१६—अथ शूर्पमादत्ते। वर्षवृद्धमसीति वर्षवृद्धᳫ ह्येतद्यदि नडानां यदि वेणूनां यदीषीकाणां वर्षमुह्येवैता वर्धयति।

---

*'कुक्कुट' के अर्थ महीधर ने तीन किये हैं:—

(१) असुरः क केति तान् हन्तुमिच्छन् यो ऽटति सर्वत्र संचरति स कुक्कुटः जो "असुर कहां है ? असुर कहां है" कहता हुआ उनको मारने की इच्छा करते हुये सब स्थानों पर विचरता है उसको कुक्कुट कहते हैं।

(२) यद्वा कुकं कुत्सित शब्दं कुटति तनोतीति कुक्कुटः—जो बुरा शब्द कहे।

(३) यद्वा कुक्कुटाख्य पक्षिवद् ध्वनिविशेषम् सुरभीव्यर्थं तनोतीति कुक्कुटः—जो मुरगे की सी कठोर वाणी बोले।

स्वामी दयानन्द ने यह अर्थ किया है:—

कुकं परद्रव्यादातारं चोरं शत्रुं वा कुटति येन स यज्ञः—अर्थात् इस यज्ञ का नाम कुक्कुट है जिसके द्वारा कुक अर्थात् पराई चीज़ लेने वाले चोर या शत्रु को कूटते हैं।

१९—अब वह (अध्वर्यु) सूप को लेता है यह मंत्रांश जप कर:—

वर्षवृद्धमसि (यजु० १ । १६)

"तू वर्षा द्वारा बढ़ा हुआ है।"

यह सूप अवश्य ही वर्षा द्वारा बढ़ा हुआ है। चाहे यह नडों अर्थात् नरकुल का बना हो चाहे वेणु या बेत का चाहे इषीक अर्थात् सीकों का। क्योंकि यह सब वर्षा से ही बढ़ते हैं।

२०—अथ हविर्निर्वपति। प्रति त्वावर्ष-वृद्धं वेत्त्विति वर्षवृद्धा उ ह्येवैते यदि व्रीहयो यदि यवा वर्षमुह्येवैतान् तत्संज्ञामेवैतच्छूर्पाय च वदति नेदन्योऽन्यंहिनसातऽइति।

२०—अब वह (उलूखल में से) चांवलों को (सूप में) डालता है। यह मंत्रांश जप कर:—

प्रतित्वा वर्षवृद्धं वेत्तु। (यजु० १।१६)

"तुझ वर्षा द्वारा बढ़े हुये को सब कोई जाने।"

चाहे चांवल हों चाहे जौ। यह भी वर्षा द्वारा ही बढ़ते हैं। "वर्षवृद्ध" (वर्षा द्वारा बढ़ा हुआ) सूप को भी कहा और चांवल आदि को भी इससे वह इनके सम्बन्ध को बढ़ता है। जिससे वह एक दूसरे को हानि न पहुंचावें।

२१—अथ निष्पुनाति। परापूतंरक्षः परापूता अरातय इत्यथ तुषान्प्रहन्त्यपहतंरक्ष इति तद्याद्रक्षा एवैतद्वाछस्यतोऽपहान्त।

२१—अब वह (सूप से) फटकता है इस मंत्रांश को पढ़कर

परापूतंरक्षः परापूता अरातयः। (यजु० १।१६)

राक्षस साफ़ हो गया। शत्रु साफ़ हो गये।

भूसी को नीचे का मंत्रांश जप कर फेंक देता है:—

अपहतंरक्षा (यजु० १। १६)

"राक्षस फेंक दिया गया।" क्योंकि इसके द्वारा वह राक्षसों दुरात्माओं को निकालता है।

२२—अथापविनक्ति। वायुर्वो विविनक्त्वित्ययं वै वायुर्योऽयं पवतऽएष वाऽइदंसर्वं विविनक्ति यदिदं किञ्च विविच्यते तदेनानेष एवै ताद्विविनक्ति स यदैतऽएतत्प्राप्नुवन्ति यत्रैनानध्यपविनक्ति।

२२—अब वह नीचे के मंत्रांश को पढ़ कर उसाता है (अर्थात् वायु द्वारा दानों को भूसी से अलग करता है):—

वायुर्वो विविनक्तु। (यजु० १। १६)

"वायु तुम को अलग करें।"

क्योंकि यह वायु ही है जो यहां (भूसी को दानों से) अलग करती है। या जो कुछ इस पृथ्वी पर अलग अलग किया जाता है वह सब वायु द्वारा ही किया जाता है। जब दानों का यह हाल होता है और वह इनको अलग करता है उस समय—

(क्रमशः)

विचार तरंग

गोस्वामी तुलसीदास कौन थे?

(आलोचनाओं की आलोचना)

[विद्यानिधि श्री पं० रजनीकान्त जी शास्त्री बी. ए. बी. एल.]

(भाग २ अंक ५ से आगे)

(४) भेंट पितरन को न मूड़हू में बार है।

गोसाईं जी के इस वचन का हवाला देकर मेरे प्रतिवादी यह प्रश्न करते हैं कि क्या अवैध-सन्तान कभी पिण्डोदक क्रिया की अधिकारी हो सकती है? अभिप्राय यह है कि यदि गोसाईं जी अवैध सन्तान होते तो अपने विषय में उक्त वचन नहीं लिखते । इससे सिद्ध होता है कि वे शुद्ध सन्तान थे। पर मैं यह पूछता हूं कि क्या गोसाईं जी को शास्त्रों का सम्यक् ज्ञान था? क्या पितरों को बाल ही की भेंट दी जाती है। बाल तो श्राद्ध के समय नाई से कटवा कर फेंक दिए जाते हैं । उन्हें पितरों को नहीं चढ़ाया जाता। जिस तुलसीदास को इतना भी ज्ञान न था कि पितरों को कौन सी वस्तु भेंट की जाती है, उस तुलसीदास को कब ज्ञान हो सकता है कि किस प्रकार की सन्तान शास्त्रों की दृष्टि में पिण्डोदक क्रिया की अधिकारी होती है। अपनी अज्ञानता के कारण ही उन्होंने अपने को अधिकारी समझा। अतः उक्त वचन उनकी शुद्धता के प्रमाण में कुछ भी मूल्य नहीं रखते।

(५) ब्राह्मण ज्यों उगल्यो उरगारि इत्यादि।

यहाँ गोसाईं जी ने अपनी उपमा उस पापी ब्राह्मण से दी है जिसे गरुड़ अपने उदर में न पचा सके। यहाँ उपमान और उपमेय का समान-धर्म्म केवल पाप है न कि जाति। जैसे मैं किसी को कहूँ कि तू गधा है तो यहां केवल मूर्खता समान धर्म्म है। इससे वह मनुष्य सचमुच गधा

नामक पशु नहीं हो जाता। ठीक उसी तरह एक पापी ब्राह्मण की उपमा देने से गोसाईं जी ब्राह्मण नहीं बन गए। गोसाईं जी को ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए उक्त प्रमाण भी निरर्थक है।

(६) दियो सुकुल जन्म शरीर
सुन्दर हेतु जो फल चारि को।
यह भरतखण्ड समीप सुरसरि
थल भलो सङ्गति भली ॥

गोसाईं जी की प्रचलित जीवनी के अनुसार उनका जन्म बाँदा जिलान्तर्गत राजापुर नामक ग्राम में जो यमुना के तट पर है हुआ था। पर विनय-पत्रिका के उक्त भजन से जान पड़ता है कि उनका जन्म गङ्गा जी के समीप हुआ था। उक्त भजन में "समीप सुरसरि" पद ध्यान देने योग्य है। उनके निजी वचनों के सामने अन्यों की लिखी बातें नहीं मानी जा सकतीं। गङ्गा जी के समीप कहां पर उनका जन्म हुआ था, इसका पता रामचरित मानस के निम्न लिखित दोहे से झलकता है जिसका स्फुरण शायद अब तक किसी को नहीं हुआ था—

"मुक्ति जन्म महि जान ...... सो
काशी सेइए कसन"

इसका सीधा सादा यह अर्थ है कि ज्ञान की खान, पापों को संहारने वाली तथा शंभु-भवानी की वास भूमि, मोक्ष और मेरे जन्म की धरती जो काशीपुरी है उसे क्यों न सेइए अर्थात् उसकी सेवा अवश्य करनी चाहिए। "मुक्ति जन्म महि" का अर्थ है मोक्ष और (मेरे) जन्म की भूमि न कि मुक्ति का उत्पत्ति स्थान। "मुक्ति-जन्म" में द्वन्द समास है न कि षष्ठी तत्पुरुष जैसा कि सर्वसाधारण ने समझ रखा है। उक्त दोनों उद्धरणों को एक में मिला कर पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि गोसाईं जी का जन्म स्थान गङ्गा जी के समीप अर्थात् गङ्गा जी के तट पर काशीपुरी थी। काशी जी तथा इसके आस-पास के स्थानों में भीख माँग माग कर उन्होंने अपना बाल्यकाल बिताया। इसके बाद गुरु से भेंट हो जाने पर शिक्षा प्राप्त की जिससे उनके हृदय में राम-भक्ति अङ्कुरित हुई। फिर वाराहक्षेत्र, अयोध्या, चित्रकूट आदि विविध स्थानों में घूमते रहे। पर जब कहीं पर उन्हें शान्ति नहीं मिली तो फिर काशी में आ कर रहने लगे। यदि मैंने उक्त उद्धरणों के अनुसार गोसाईं जी को युक्त प्रदेश का रहने वाला लिखा तो इसमें मेरी प्रतिज्ञा, कि किसी कवि का परिचय मालूम करने के लिए उसी के लेखों का आश्रय लेना चाहिए, कैसे टूट गई।

"सुकुल" शब्द का रहस्य मालूम करना हो तो किसी अथीथ से पूछिए और देखिए कि वह अपने को सुकुल कहता है कि दुकुल। अथीथ, ब्राह्मण

से भी उत्तम होने का अभिमान करते हैं। अवैध बच्चे भी अपने कुलादि का परिचय देने के लिए पितृपक्ष का ही आश्रय लेते हैं। यह हमारा प्रतिदिन का अनुभव है। विशेष विवरण एप्रिल १९३० का चाँद पढ़िए।

(७) गोसाईं की उपाधि।

जातीय उपाधियों के अर्थ पर नहीं भूलना चाहिए। नाई अपने को ठाकुर (स्वामी), अहीर अपने को राउत (राजा); भाट अपने को राय (राजा) तथा कोइरी अपने का महतो (बड़ा) कहा करते हैं; पर इन २ जातियों में इन २ उपाधियों के अनुकूल कोई लक्षण नहीं देख पड़ता। मुसलमान दरजियों, धुनियों, जुलाहों तथा कुंजड़ों को हम लोग प्रायः खलीफा (इस्लाम धर्म का सम्राट्) कहते हैं। इसी प्रकार अथीथों को हम लोग गोसाईं (गोस्वामी) के नाम से पुकारते हैं यद्यपि ये महज भिखमंगे हैं। हां, गोसाईं (गोस्वामी) का अर्थ इन्द्रियों का स्वामी अर्थात् उन्हें अपने वश में रखने वाला अवश्य है, पर यह सर्वत्र लागू (ठाकुर आदि उपाधियों की तरह) ही नहीं देखा जाता। प्रतिवादियों की यह दलील है कि तत्कालीन जनता ने तुलसीदास जी को उनकी योग्यता देख बिना किसी सभा सोसाइटी के ठीक उसी प्रकार गोस्वामी की उपाधि दी थी जिस प्रकार आधुनिक जनता महात्मा गाँधी को "महात्मा" कहा करती है। पर यह दलील भी गोसाईं जी के निजी लेखों से समर्थित नहीं होती। गोसाईं जी अपने विषय में स्वकालीन जनता की धारणा इस प्रकार कबूल करते हैं—

(क) लोक कहै पोचु (नीच) सो न सोच न सकोच मेरे इत्यादि (विनय०)

(ख) धूत (धूर्त्त) कहौ, अवधूत कहौ, राजपूत कहौ, जुलहा कह कोऊ (कविता०)

ऐसे २ अनेक वचन विनय पत्रिका तथा कवितावली में पाठकों को मिलेंगे जिनके द्वारा गोसाईं जी स्वयं इस बात को कबूल करते हैं कि वे स्वकालीन जनता की दृष्टिमें अति ही हेय तथा नीच समझे जाते थे। इन वचनों में उन्होंने अपनी नम्रता के साथ २ लोकमत भी दिखलाए हैं। तत्कालीन जनता उनको एक दर २ भीख माँगने वाला समझ कर ही गोसाईं (अथीथ) कहा करती होगी।

(८) वाल्मीकिस्तुलसीदासः कलौ देवि भविष्यति।
रामचन्द्रकथां साध्वीं भाषारूपां करिष्यति॥
विख्यात-स्तुलसी शर्म्मा पुराणनिपुणः कविः।

"श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" के लेखक उक्त श्लोक को भविष्य पुराण का बतला कर उसके द्वारा गोसाईं जी का ब्राह्मणत्व सिद्ध किया चाहते हैं। पर यदि "तुलसी-शर्म्मा" नाम से गोसाईं जी को ब्राह्मण माना जाय तो "तुलसीदास" नाम से

उनको शूद्र मानना चाहिए । आत्म-विरोधी (Self-contradictory) होने से यह श्लोक अमान्य है । यदि कहो कि जो पहले तुलसी-शर्म्मा (ब्राह्मण) थे वे ही वैरागी होने पर तुलसीदास हो गए, यहाँ "दास" शब्द शूद्रत्व का बोधक नहीं है, बल्कि वैरागियों की उपाधि है; तो यह भी ठीक नहीं । कारण कि साधु होने से पहले उनका नाम "रामबोला" था । रामबोला, रामजना, रामचेलवा आदि नाम अज्ञात-कुलशील तथा अनाथ बच्चों के लिए ही लोक में व्यवहृत होते देखे जाते हैं ।

(६) सापत ताड़त परुष कहन्ता इत्यादि ।

उक्त लेखक महाशय दुर्वासा, शुक्राचार्य, रावण, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा वशिष्ठ आदि ब्राह्मणों का दण्डित होना तो स्वीकार करते हैं पर उनकी समझ में इन ब्राह्मणों के क़सूर वे न थे जो मैंने अप्रैल १९३० के "चाँद" में बतलाए हैं । वे दूसरे कसूरों में दण्डित हुए थे । इस विषय में मेरा केवल यही निवेदन है कि अपराध विषयक मत भेद होते हुए भी दण्ड विषयक इस मतैक्य ने मेरे ही पक्ष की पुष्टि कर दी कि "सापत, ताड़त" आदि विप्र पूजनीय नहीं बल्कि दण्डनीय हैं । नारद की तो पूरी दुर्गति भगवान् ने पहले ही कर दी थी कि बन्दर बना कर बीच राज-सभा में उन्हें नचाया था, अधिक दण्ड देना उन्होंने उचित न समझा । नारद-शाप में कुछ भी सार न था । क्योंकि प्रत्येक कल्प के रामावतार के समय विष्णु का नर-रूप धारण करना, सीता के हरी जाने पर रामचन्द्र का विलाप करना तथा उनका वानरों से सहायता लेना, ये घटनायें रामायण के आवश्यक अङ्ग हैं । रामायण की ये घटनाएं अवश्यम्भावी हैं, नारद शाप दें अथवा न दें । इनके बिना रामायण बन नहीं सकती ।"

क्योंकि भगवान् को अवतार लेना जरूरी था और ब्रह्मा जी की आज्ञा से देवगण बानर रूप से उनकी सहायता करने के लिए वाध्य थे । इसका निश्चय पहले ही हो चुका था । भृगु ने भगवान् के हृदय में लात अवश्य मारी, पर भगवान् को परीक्षा पास करनी थी अतः वे कुछ न बोले । इसमें उन्होंने पालिसी (Policy) से काम लिया क्योंकि नीति बतलाती है कि "नीचाति नीचैरति नीच नीचैः सर्वैरुपायैः फलमेव साध्यम्" । परशुराम की छीछालेदर लक्ष्मण कह रहे थे और भगवान तथा विश्वामित्र बैठे २ तमाशा देख रहे थे। परशुराम की खिल्लियाँ लक्ष्मण ने ठीक वैसे ही उड़ाईं जैसे स्कूली लड़के किसी पागल को उड़ाया करते हैं और रामचन्द्र ऊपर से विनय-प्रार्थना भी करते जाते थे

पर मन ही मन मुसकाते भी रहते थे। पर जब भगवान् ने देखा कि यह अहंकारी ब्राह्मण विनय करने से सिर पर चढ़ा जाता है, बिना इसका मुकाबला किए यह डींग हाकता ही चला जायगा, निरपराध तथा निर्बल क्षत्रियों का नाश करने से इसका मन बहुत बढ़ गया है, अतः इसकी धृष्ठता छुड़ानी चाहिए। ज्योंही उन्होंने परशुराम को ललकारा कि वे अपनी पूंछ दवा कर भागे। परशुराम लख गए कि अब मेरी दाल नहीं गल सकती। इन उदाहरणों में नारदादि के ब्राह्मणत्व का कुछ भी लिहाज़ नहीं किया गया।

(१०) स्वारथ के साथिन तज्यो।

माता-पिता का अपनी सन्तान के प्रति जो निःस्वार्थ प्रेम होता है उसकी उपमा संसार में नहीं होती। गोसाईं जी के शब्दों में अन्य लोग जो हमसे प्रीति करते हैं वह केवल स्वार्थ के ही लिए है—"सुर नर मुनि सब की यह रीति, स्वारथ लागि करहिं सब प्रीति"। इस अनुपम प्रेम के वशीभूत होकर माता पिता अपनी सन्तान के कल्याणार्थ जो कष्ट उठाते हैं वह अकथनीय है। अतः जिन गोसाईं जी ने अपने माता पिता को स्वार्थ के साथी बना कर कलंकित कर दिया उनका उनको लक्ष्य कर "भयो परिताप पाप (कुकर्म) जननी जनक को" लिखना कोई आश्चर्य-जनक नहीं है। ये शब्द एक ऐसे हृदय के हैं उद्गार जो अपने प्रति उनके क्रूर एवं नृशंस व्यवहार को याद कर २ के जला करता था। जो माता पिता अपने बच्चे को चीलर, ढील की तरह निःसहाय दशा में फेंक देते हैं उनके लिए जो कहा जाय वह थोड़ा है।

"श्रीवेङ्कटेश्वर समाचार" के लेखक महाराज, जो अपने शुभनाम के साथ "मानस-किंकर" का लफ़्ज़ लगाते हैं, साहित्यिक चर्चा से इतने अनभिज्ञ मालूम पड़ते हैं कि उनको मेरे लेख (चाँद, एप्रिल १९३०) का पूर्वापर प्रसंग भी नहीं बूझ पड़ता। इसी कारण वे अपनी अबोधता के वशीभूत होकर "असि जीवी" इत्यादि श्लोक को मनुस्मृति का श्लोक मान बैठे और अपना दोष मेरे सिर मढ़ दिया। वे इतना भी न समझ सके कि "मनुस्मृति अध्याय १०" इत्यादि का सम्बन्ध पूर्व लिखित प्रसंग से है।

त्यागमूर्ति पं मोतीलाल नेहरू



श के राष्ट्रीय गगन में एक वर्ष से बादल उमड़ उमड़ कर आरहे थे। देश वासियों ने अपनी स्वतंत्रता के लिये इससे बढ़कर त्याग कभी नहीं किया था। यही नहीं, लोगों की आशाओं से कई गुना अधिक लोगों में उत्साह था, उमंग थी, त्याग था, देश पर सर्व कुछ अर्पण कर देने की लालसा थी। स्त्रियां—जिन्होंने कभी सड़क की ज्योति न देखी थी दौड़ने लगीं। पर इस विप्लव ने शीघ्र ही उनको कटहरे की चार दीवारी में बन्द कर दिया। एक ओर तो घर का कटहरा था जिसमें परवस वे जेल भुगतती थी और एक यह कटहरा है जिसकी चौखटों का वे चुम्बन करती थी।

इधर देश ने अपूर्व त्याग के साथ लाठियां खाई, उधर लोग लंदन की दावतों में शरीक हुये। उन बिचारों ने बड़ी बड़ी कोशिशें की कि किसी प्रकार सन्धि हो जाय। ये सन्धि के परवाने इग्लैंड से चल दिये थे। पर वे भारत की भूमि पर आ न पाये थे कि पं० मोतीलाल चल बसे।

आनन्द भवन की रमणीय अट्टालिकायें, तरह तरह के फूल आंसू बहा रहे हैं—उस ज्योति के लिये जो चमक कर शान्त हो चुकी है। पं० मोतीलाल का जन्म १८६१ ई० में हुआ। वे जन्म न ले पाये थे कि पिता का कृपा छत्र उनके ऊपर से हट गया। उस अनाथ पं० मोतीलाल को देख कर किसको यह आशा हो सकती थी कि कभी पं० मोतीलाल की इतनी शक्ति हो जायगी कि सारा देश उनके न होने पर अनाथ हो जायगा। उस अनाथ के भाग्य का सितारा चमका, शिक्षा पढ़ी, वकालत की परीक्षा पास की। वकालत इस शान के साथ आपने की जैसी कौन मनुष्य कर सकेगा। अपनी तीव्र बुद्धि के कारण प्रयाग के हाई कोर्ट के वे सर्वोत्तम वकील होगये। कोई बड़ा मुकदमा न होगा जो उनके पास न आता हो। रुपयों की थैलियां स्वयं उठ उठ कर उनके सामने अठखेलियां करतीं। रुपये को वे पानी की तरह बहाते, रुपयों में वे तैरते पर उनकी थाह भी उनको न मिलती।

जो ठाठ पं० मोतीलाल ने किये वे शायद ही किसी नरेश के भाग्य में पड़े होंगे। पेरिस से कपड़े धुल कर आते बढ़िया से बढ़िया शराब बाहर से आती। उनके पुत्र जवाहरलाल लंदन में राज-

कुमार की तरह शान से रहते। शान स्वयं संसार के कोने से उठ उठ कर उनके कदमों को चूमती। यह वह ज़माना था जब पं० मोतीलाल एक सांसारिक जीवन व्यतीत करते थे।

कांग्रेस के सदस्य पं० मोतीलाल जी सन् १९०९ ई० से थे। पर उनका ब्रिटिश राज्य पर पूर्ण रूप से भरोसा था।

१९०७ ई० में प्रथम संयुक्त प्रान्तीय राजनैतिक कान्फ्रेन्स के सभापतित्व के पद से कहा:—"मेरा पूर्ण विश्वास है कि सरकार भला ही करती है, उसकी प्रकृति दुष्ट नहीं है। यह विश्वास केवल मेरा ही नहीं हैं। सरकार को अवस्था का अध्ययन करने में देरी लगती है पर जब वह अवस्था समझ जाती है तो अपने धर्म का पालन करती है। पृथ्वी पर कोई शक्ति नहीं है जो उसकी बलवती शक्ति का सफलता पूर्वक सामना कर सके।"

जर्मन युद्ध छिड़ जाने पर पंडित जी ने सरकार की सहायता की थी। बहुत से सिपाही युद्ध के लिये भिजवाये थे। परन्तु ऐनी बिसेन्ट के नजर बन्द होने से उनमें भारत सरकार के विरुद्ध भाव उठने लगे थे। इसके बाद पंजाब का हत्याकांड हुआ। इस पाशविक अत्याचार से पंडित जी की आंखें खुल गईं। १९१९ में दिये गये एक व्याख्यान में पंडित जी ने कहा था—"इस अत्याचार का बदला जिससे हमारी सन्तुष्टि हो सकती है वह यह है कि हम उस अवस्था को ही परिवर्त्तित कर दें, जिसमें ऐसी पाशविक यातनायें प्रजा को दी जा सकती हैं। इस समय पीड़ितों की सहायता जितनी आप से हो सकती आपने की। सन् १९१९ ई० में अमृतसर में होने वाली कांग्रेस के आप सभापति बनाये गये।

असहयोग के दिनों में आपने तथा आपके वीर पुत्र जवाहिर लाल ने बड़े ज़ोर के साथ आन्दोलन में भाग लिया। दोनों के दोनों ने जेल की यंत्रणायें सहन कीं। गद्दों पर खसकी टट्टियों में सोने वाले नेहरू कुटुम्ब को जेल का जीवन ही प्रिय होने लगा। इसके बाद तो कांग्रेस पं० मोतीलाल की ही होगई। आपने और सी. आर. दास ने कांग्रेस को हिला दिया। स्वराज्य पार्टी की नींव डाली और कौंसिलों तथा असम्बली को अपने अधिकार में कर लिया। सन् १९२८ में कलकत्ते की कांग्रेस के आप सभापति हुये। जिस शान से आपका जुलूस कलकत्ते की सड़कों पर निकला वह अब भी लोगों की आंखों के सामने है। इसी कांग्रेस ने यह प्रस्ताव स्वीकृत कर दिया कि यदि सरकार जनता के मांगे हुये अधिकार न देगी तो एक वर्ष बाद स्वतन्त्रता का युद्ध छिड़ जायगा। अगले वर्ष की कांग्रेस के

सभापति आपके वीर तपस्वी पुत्र पं० जवाहिर लाल हुये थे।

वर्त्तमान आन्दोलन में पं० मोतीलाल ने अपनी सारी शक्तियां लगा दीं। कई लाख का भवन आप आन्दोलन के आरम्भ में कांग्रेस को समर्पण कर चुके थे। जिसका नाम स्वराज्य भवन रख दिया गया था। आपके पुत्र जवाहर लाल को जेल की सज़ा हुई, उसके बाद आपकी बारी आई। जेल के जीवन ने आपके स्वास्थ्य को विल्कुल खराब कर दिया था। जब आपकी अवस्था बहुत ख़राब होगई तो सरकार ने विवश होकर उन्हें छोड़ दिया।

जेल से छूटने पर सब लोगों की दृष्टि आपके स्वास्थ्य पर थी। पं० जी मंसूरी गये पर वहां किसी प्रकार का लाभ न हुआ। कलकत्ते में जाकर औषधि का प्रयोग किया। बड़े २ डाक्टर तथा वैद्य अपनी औषधियों की आजमाइश करने लगे। यहां पर आपकी अवस्था बड़ी खराब होगई और जैसे ही ज़रा सी दशा सुधरी वे प्रयाग लाये गये।

इस समय देश के बड़े बड़े नेता छोड़ दिये गये थे। उनको पण्डितजी के अन्तिम दर्शन देखने को मिल गये। आपस में राजनैतिक अवस्था पर बातचीत होने लगी। महात्मा गांधी आदि के आदेशानुसार पं० जी को लखनऊ ले जाने की बात ठहरी।

मोटर में सब लोग लखनऊ गये। ६ फरवरी १९३१ को पण्डित जी की अवस्था शोचनीय हो गई। उस दिन अकस्मात पण्डित जी गायत्री मंत्र याद करने लगे। ब्राह्मणों के लिये गायत्री का पाठ आवश्यक है पर आयु भर उन्होंने कभी भी इसका उच्चारण न किया था।

रात्रि के समय अवस्था और भी ख़राब हो गई। प्रातःकाल होते होते ६ बजे पण्डित जी की आत्मा इस शरीर को छोड़ कर चली गई। महात्मा गाँधी आपसे बड़ा प्रेम करते थे। मृत्यु शय्या के पास वे बराबर रहे। पण्डित जी की मृत्यु के बाद कुछ दिन उन्होंने दुखी परिवार में ही बिताये।

पं० मोतीलाल नेहरू बड़े तपस्वी, नीतिज्ञ, विद्वान् थे। राजनीति के समझने की शक्ति जैसी पं० मोतीलाल को थी वैसी किसी भी भारतीय नेता को नहीं मिली। असेम्बली की बहस में आपका सानी दूसरा और नहीं था। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उनकी आत्मा को सद्गति प्रदान करे और हमारे बीच में अनेकों मोतीलाल जन्म लें।

—विश्वप्रकाश

वैदिक स्वराघात

[प्रोफेसर धीरेन्द्र वर्म्मा एम० ए०, प्रयाग विश्वविद्यालय]



वेदोदय भाग २ संख्या ५ में श्री सत्य-प्रकाश जी का 'सामवेदी स्वर' शीर्षक अत्यन्त उपयोगी लेख छपा है । सामवेद के मंत्रों को पढ़ते समय जो प्रायः दुर्गति की जाती है उससे इनकी कुछ रक्षा यह लेख कदाचित कर सके । वास्तव में वेदों के प्रति श्रद्धा और प्रेम रखना या प्रकट करना पर्याप्त नहीं है बल्कि इस ज्ञान भंडार के सम्बन्ध में ज्ञान प्राप्त करने का भी पूर्ण उद्योग प्रत्येक आर्य्य को करना चाहिये । श्री सत्यप्रकाश जी ने वेदों से सम्बन्ध रखने वाले एक अत्यन्त रोचक तथा आवश्यक विषय स्वराघात की चर्चा 'वेदोदय' में छेड़ दी है । इसी विषय पर मैं दो एक अपनी कठिनाइयां उपस्थित करना चाहता हूं । आशा है कि इस विषय के जानकार प्रकाश डालने की कृपा करेंगे ।

यह प्रायः सभी जानते हैं कि वैदिक स्वर तीन प्रकार के हैं—उदात्त, अनुदात्त, और स्वरित । इन स्वरों को लिखने में प्रकट करने की भिन्न २ पद्धतियों का उल्लेख श्री सत्यप्रकाश जी ने अपने लेख में किया है । असली प्रश्न यह है कि उच्चारण की दृष्टि से इनमें क्या भेद होना चाहिये । प्राचीन सिद्धान्त की दृष्टि से पाणिनि के मतानुसार उदात्त स्वर का उच्चारण ऊंचा, अनुदात्त स्वर का नीचा और स्वरित का उच्चारण बीच की आवाज़ से होना चाहिये । पाणिनि के इस मत पर टिप्पणी करते हुये पतंजलि लिखते हैं कि 'उदात्त स्वर के उच्चारण में इतनी बातें होनी चाहिये', शरीर सब अवयवों को रोक लेना अर्थात ढीले न रखना, शब्द के निकलते समय तीखा रूखा स्वर निकले और कण्ठ को रोक के बोलना चाहिये फैलाना नहीं । अनुदात्त उच्चारण में शरीर के अवयवों को शिथिल कर देना, कोमलता-स्निग्ध उच्चारण करना और कंठ को कुछ फैला कर बोलना । उदात्त और अनुदात्त गुण का जिसमें मेल हो वह स्वर स्वरित संज्ञक होता है ।*

संसार की भाषाओं में दो ढंग का स्वराघात पाया जाता है । एक तो वह जिसमें आवाज़ को बिना ऊंचा नीचा किये शब्द के किसी अंश के उच्चारण में ज़ोर से हवा फेंकी जाती है और किसी

*स्वामी दयानन्दकृत सौवर पृष्ठ ३

में धीरे से हवा फेंकी जाती हैं। इसे बलात्मक स्वराघात कह सकते हैं। अंग्रेजी भाषा के शब्दों के उच्चारण में इसी ढंग का स्वराघात व्यवहृत होता है। हिन्दी में इसका प्रयोग अंग्रेजी की अपेक्षा बहुत ही कम है। दूसरे ढंग का स्वराघात वह होता है जिसमें आवाज़ का सुर ऊंचा नीचा किया जाता है। कहते हैं कि चीनी भाषा में इस तरह का स्वराघात मौजूद है। अंग्रेज़ी हिन्दी आदि भाषाओं में पृथक् पृथक् शब्दों के अन्दर इस तरह का गानात्मक स्वराघात नहीं मिलता। वाक्य के अन्दर व्यवहार करने पर कभी कभी किसी किसी शब्द में आवाज़ ऊंची नीची की जाती है। उदाहरण के लिये 'वह आयगा' और 'वह आयगा ?' में 'आयगा' के उच्चारण में गानात्मक स्वराघात का भेद है। दूसरे प्रश्नात्मक वाक्य में 'आयगा' का अन्तिम अंश ऊंची आवाज़ से बोला जाता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि वैदिक स्वराघात बलात्मक था या गानात्मक। ऊपर दिये हुये पाणिनि और पतंजलि के वर्णन से यह बात बहुत स्पष्ट नहीं होती, किन्तु स्वर के 'ऊंचे' और 'नीचे' करने के उल्लेख से धारणा यही बंधती है कि वैदिक स्वराघात गानात्मक था। आधुनिक पश्चिमी विद्वान् इस विषय पर एक मत हैं कि वैदिक स्वराघात चीनी भाषा के स्वराघात के समान गानात्मक था। अंग्रेज़ी भाषा के स्वराघात के समान बलात्मक नहीं था। यदि परिस्थिति ऐसी थी तो स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि उदात्त, अनुदात्त और स्वरित स्वर के उच्चारण में गाने के सुरों की दृष्टि से ठीक ठीक कितना भेद किया जाता था। स्वामी जी ने 'सौवर' भूमिका में 'याज्ञवाल्क्य' शिक्षा से निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया:—

उच्चौनिषादगांधारौ नीचावृषभ धैवतौ ।
शेषास्तु स्वरिता ज्ञेयाः षड्ज मध्यमपंचमाः ॥

अर्थात् गाने के सुरों की दृष्टि से उदात्त नी, गा सुरों में, अनुदात्त रि, ध सुरों में तथा स्वरित स, म, प, सुरों में उच्चरित होना चाहिये। याज्ञवल्क्य शिक्षा के इस उद्धरण से यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती है कि वैदिक स्वराघात गानात्मक ही था। अब केवल एक बात स्पष्ट होने को रह जाती है कि उदात्त किस स्थल पर नी सुर में उच्चरित होना चाहिये और कहां गा सुर में उच्चरित होना चाहिये। इसी प्रकार का निर्धारण अनुदात्त और स्वरित के संबन्ध में भी होना चाहिये। अनुमान से ऐसा मालूम होता है कि स्वरित, अनुदात्त और उदात्त का सुर क्रम से या तो स, रि, ग हो सकता है। और या पा, ध,

ति। लेकिन यह केवल अनुमान मात्र है।

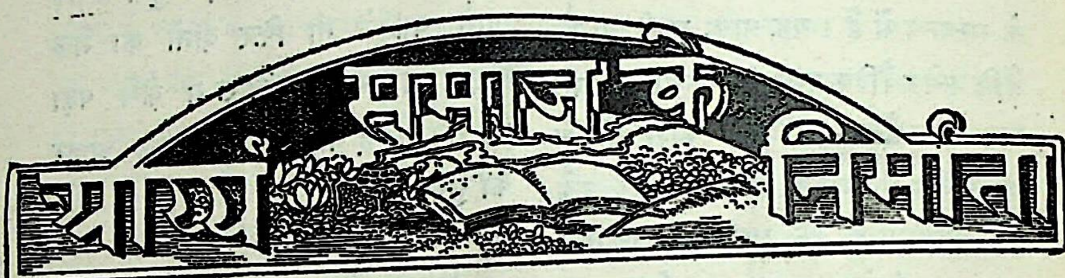
दूसरी समस्या पूर्ण मन्त्र के 'स्वर' के सम्बन्ध में है। यह प्रायः सभी जानते हैं कि प्रत्येक वैदिक मन्त्र का एक ही निश्चित स्वर होता है। श्री सत्यप्रकाश जी ने अपने लेख में इसका उल्लेख करते हुये यह बतलाया है कि मन्त्र के स्वर तथा छन्द का विशेष सम्बन्ध है अथवा यों कहिये कि प्रत्येक छन्द का एक निश्चित स्वर है। प्रश्न यह है कि यदि किसी मन्त्र का स्वर षड्ज है और साथ ही उस मंत्र में आने वाले स्वरित अनुदात्त और उदात्त स, रि, ग, अथवा इसी ढंग के किन्हीं निर्दिष्ट सुरों में पढ़े जाने चाहिये तो फिर दोनों का मेल कैसे होगा, समस्त मंत्र स में कैसे पढ़ा जा सकता है यदि उसके प्रत्येक अक्षर का सुर निर्दिष्ट है ?

विश्वास है कि वैदिक स्वराघात को सिद्धान्त और व्यवहार दोनों ढंगों से जानने वाले विद्वान् 'वेदोदय' के माध्यम से इन दोनों समस्यायों पर प्रकाश डालने की अवश्य कृपा करेंगे।

समालोचना

संगीत-सुधारक—स्वर्गीय बा० बालकृष्ण सहाय वकील, भूत पूर्व प्रधान आर्य्य समाज, रांची द्वारा संग्रहीत तथा श्रीयुत श्याम कृष्ण सहाय बैरिष्टर, रांची द्वारा प्रकाशित। तीसरा संस्करण। पृष्ठ संख्या १०८। मू० अजिल्द ॥) सजिल्द ।॥)

इस पुस्तिका में सूरदास, गुरु नानक, कबीर, तुलसीदास अमीचन्द्र आदि के गाने के योग्य उत्तम पद संग्रह करके रख दिये गये हैं। आर्य्य समाज में भजनों की पुस्तकों की भरमार है; यदि कोई भी पुस्तक अधिक बिकती है तो भजनों की। इनमें अधिकांश ऐसे भजन होते हैं जो भाषा के अनुसार भ्रष्ट होते हैं। पिंगल का भी कुछ भी विचार नहीं किया जाता। भजनीक महाशय स्वयं ज़रा सिर हिलाने में लय, तुक आदि ठीक कर लेते हैं। यह प्रसन्नता की बात है कि कुछ विद्वान् प्रेमियों का ध्यान इस ओर गया है। स्वर्गीय बा० बालकृष्ण सहाय जी ने बड़े परिश्रम से उत्तम भजनों को जनता के सम्मुख रक्खा है। यह भजन हिन्दी भाषा के श्रेष्ठ कवियों की रचनायें हैं इसलिये उनके विषय में कुछ कहना ही व्यर्थ है। छपाई आदि भी उत्तम हुई है। हम संग्रहकर्त्ता और श्रीयुत श्याम कृष्ण सहाय जिन्होंने इसके प्रकाशन का भार अपने ऊपर लिया है बधाई देते हैं। आशा है कि आर्य्य समाज से प्रेम रखने वाले गन्दे भजनों के स्थान में इन भजनों का प्रचार करेंगे।



पहलवान चिरंजीवलाल

आर्य्य समाज के विशाल भवन में जहाँ बड़े २ पत्थर लगे हुये है वहां छोटी छोटी इंटों को हम भूल नहीं सकते। वास्तव में देखा जाय तो छोटी २ इंटों ने जो कार्य्य किया है वह अपूर्व था। यदि इन साधारण पुरुषों की सहायता न मिलती तो महान् आत्मायें अपने काम में सफल न हो सकतीं।

स्वामी श्रद्धानन्द को सब जानते हैं, पर उनके साथी पहलवान चिरंजीवलाल को बहुत कम लोग जानते होंगे। चिरंजीवलाल पहलवान था जैसे आज कल बहुत से मिलते हैं, पर उसके हृदय में ऋषि के उपदेशों की ज्योति स्थान कर गई। वह आर्य्यसमाज का प्रचार करने लगा। उसकी सारी शक्ति आर्य-समाज के कार्य में लगने लगी। लुधियाना (पंजाब) का रहने वाला था। वह बाज़ार में खड़ा होकर वैदिक सिद्धान्तों पर व्याख्यान देता। हिन्दू जाति में जो पौराणिक लीलाओं ने घर कर लिया है उनका खंडन करता।

एक दिन वह लुधियाने की सड़क पर खड़ा हुआ कह रहा था कि राहु-केतु का मनुष्य के जीवन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। एक पं० देवता यजमान के यहां से दक्षिणा की पोटरी लेकर आते थे। उन्होंने जब चिरंजीवलाल की बातें सुनी तो बेतरह बिगड़े, बोले—"बातें बहुत करता है। अगर तुझमें शक्ति है तो इस दक्षिणा की पोटरी को ले ले तो जानूं।"

चिरंजीवलाल समझता था कि दक्षिणा की पोटरी होने से उसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं आ जाती जो बोल उठे कि अमुक व्यक्ति को दक्षिणा ग्रहण करने का अधिकार नहीं। पहलवान चिरंजीवलाल उसके हाथ में से पोटरी छीन कर चल दिया। इसमें चाँवल तथा दक्षिणा में मिले पैसे थे। पंडित जी महाराज

देखते रह गये। शायद वे सोचते हों कि चिरंजीवलाल मारे डर के इसको न ले जा सकेगा। उस पंडित ने अब चिरंजीवलाल पर लुधियाना नगर में मुकद्दमा चलाया न्यायाधीश ने उसको सज़ा दे दीं। महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) इस समय जालन्धर में रहते थे। उनको जब इसका पता लगा तो उन्होंने उसकी अपील जालन्धर में की और चिरंजीवलाल सज़ा से मुक्त कर दिया गया।

अब चिरंजीवलाल जालन्धर चला आया और महात्मा जी के साथ रहने लगा। उसमें प्रचार की सच्ची लगन थी इस कारण महात्मा की शरण आसानी से मिल गई। जालन्धर नगर में इनके कारण प्रचार करने में बड़ी सहायता मिलती थी। महात्मा मंशीराम जी प्रचार के लिये जाते तो उनके साथ हो लेता। बाज़ार में व्याख्यान के लिये कोई अच्छा स्थान छांट कर महात्मा जी को बिठा देता। आगे बढ़ कर फिर किसी दूकान से मूढा उठा कर व्याख्यान देने लगता। इस प्रकार भीड़ को इकट्ठी करके महात्मा जी के पास ले आता। कहता "भाइयों! अब विद्वानों की बातें सुनों देखो कैसे अमृत वर्षा करते हैं।" इस प्रकार बिना किसी परिश्रम के महात्मा मुंशीराम को व्याख्यान के लिये जनता मिल जाती। एक दो दिन नहीं, वर्षों तक इसकी यही धुन रही।

चिरंजीवलाल के समान निस्वार्थ कार्य्य करनेवालों की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। नेताओं को सब याद रखते हैं। चिरंजीवलाल ऐसे साधारण पुरुषों को लोग भूल जायंगे, पर ऐसे ही लोगों से आर्य समाज का निर्माण हुआ है।





उषा काल

ईश्वर की महती अनुकम्पा से इस अङ्क के साथ 'वेदोदय' का एक वर्ष समाप्त होता है। जिस समय हमने 'वेदोदय' निकालने का विचार किया था उस समय हमारा हृदय कांपता था। हमको बड़ा संदेह था कि वर्त्तमान परिस्थिति में सफलता होगी या नहीं। इसके दो कारण थे। एक तो वर्त्तमान नैतिक आन्दोलन ने स्वभावतः प्रत्येक अन्य जाति तथा धार्मिक प्रगति को मन्द कर दिया है। दूसरे धार्मिक वायु मंडल भी ऐसा दूषित है कि उसमें उच्च साहित्य का पौधा पनपने नहीं पाता। जो लोग वेदों के प्रेमी हैं वह भी वैदिक साहित्य को पढ़ने का साहस नहीं करते। यही कारण है कि वेदों का उच्च साहित्य बनने नहीं आता। जनता की रुचि उच्च होने के बजाय दिन बदिन अधोगति को प्राप्त होती जाती है। तथा वेदोदय का लक्ष्य "तू तू मैं मैं" और 'निम्न श्रेणी' के साहित्य से स्वयं बचना और औरों को बचाना है। यही कारण है कि यह जानते हुये भी गम्भीर लेखों के पढ़ने वाले कम हैं हमने भरती के लेख देने से परहेज़ किया। यदि हम सर्वथा बहते पानी के साथ ही बहते जायं तो उच्च साहित्य उत्पन्न ही नहीं हो सकता।

इस परिश्रम में यद्यपि हमको आर्थिक हानि उठानी पड़ी है तथापि हमको एक संतोष है वह यह है कि उच्च साहित्य के प्रेमियों और सुविज्ञों ने अपनी प्रसन्नता प्रगट करके हमारे साहस को बढ़ाया है। श्री राज्य रत्न मास्टर आत्माराम जी, तथा श्री बा० श्याम सुन्दरलाल जी के उच्च कोटि के लेखों तथा पंडित सूर्य्यदेव जी और श्री कर्ण कवि जी आदि की कविताओं ने वेदोदय की शोभा को बढ़ाने में बड़ी सहायता की है। अन्य विद्वानों ने हमारे

कार्य्य की भूरि भूरि प्रशंसा की है। सरांश यह है कि 'वेदोदय' का परिवार धीरे धीरे बढ़ रहा है।

शिशु अवस्था में कठिनाइयां अधिक होती हैं। जहां चुलबुलापन अधिक होता है वहां जल वायु की असुविधाओं को झेलने की शक्ति बहुत कम होती है। हमें हर्ष है कि वेदोदय पहले वर्ष की गर्मी सर्दी को झेल ले गया। और पूर्ण आशा है कि वेदोदय के प्रेमी इसकी किरणों को विस्तृत करने का प्रयत्न करेंगे।

हमारी इच्छा है कि 'वेदोदय' में अगले वर्ष अधिक उन्नति हो। कई विद्वानों ने अपनी उत्तम २ कृतियां देने का बचन दिया है। हम भी अन्य स्कीमें सोच रहे हैं। प्रेस की कठिनाइयां भी शनैः २ दूर हो रही है। कला प्रेस में नई मशीन जर्मन से आ रही है। प्रयाग में टाइप, कागज, आर्टिस्ट, ब्लाकमेकिंग आदि आदि के सुभीते अधिक हैं। इनके अतिरिक्त वैदिक साहित्य के लिये सामग्री भी थोड़ी बहुत है ही। लेकिन इन सब का आदि मूल ग्राहकों की संख्या है। हम न तो कागज घटिया लगाना चाहते हैं न लेखों में ऐसा परिवर्त्तन करना चाहते हैं कि चीज बाजारू हो जाय क्योंकि हमारा उद्देश्य है ही और है। यदि वैदिक धर्म के प्रेमियों का भी यही उद्देश्य हो जाय तो हमारी कठिनाइयां शीघ्र ही दूर हो सकती हैं। हम आशा करते हैं कि हमारे प्रेमीगण हमारी धीमी आवाज़ को सुनेंगे। याद रखिये कि यह वेदोदय का उषा काल है।

वेद के विषय में एक अनूठी पुस्तक

चाहे विचार कुछ भी हों परन्तु हमको यह देखकर हर्ष होता है कि वेदों के मर्म को समझने के लिये भिन्न २ प्रकार के प्रयत्न हो रहे हैं। वेद अभी तक अज्ञात और अज्ञातव्य ग्रन्थ हैं और हमारा विचार यह है कि कई शताब्दियों के निरन्तर प्रयत्न के पश्चात् ही वेदों के विषय में ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त हो सकेगा। अभी हाल में एक अनूठी पुस्तक निकली है जिसका नाम है "The Vedic Gods as figures of Biology" (वैदिक देव जीवन शास्त्र सम्बन्धी पदार्थ हैं) इस पुस्तक के लेखक हैं डाक्टर वी० जी० रेले (Dr. V. G, Rale, L. M,& S.; F. C. P. S., Principal, National Medical College, Bombay) मिलने का पता तारापुरी वाला, बम्बई, मूल्य ६॥),

इस पुस्तक के विद्वान् लेखक ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि वैदिक देवतों का जो अर्थ आज तक सायण आदि भारतीय विद्वानों या

पाश्चात्य देशों के मैक्समूलर आदि ने किया है वह सब ग़लत है। वेद इतने प्राचीन हैं कि सायण आदि के समय में उनका कुछ भी ज्ञान नहीं रहा और इस लिये सब परम्परा से ऊट पटांग अर्थ करते चले आये।

यही कारण है कि वेदों के पढ़ने से ठीक ठीक अर्थ समझ में नहीं आता। वह कहते हैं :—"

"The unsatisfactoriness of a metaphorical interpretation may be judged by the number of theories put forward by research scholars to elicit the proper meaning of hymns of Rig-Veda. They have been led away with the idea that the Vedic bards in their respective hymns have personified and praised the various phenomena of nature such as the glory of the spring the raging of storm, the beauty of dawn and the magnificent lustre and energy of the sun. They have tried to interpret verses in the light of the phenomena of nature and with the aid of philology have assigned meanings to the words which were perhaps not intended by the original seers. This I believe is the cause of contradictions and confusion which confront scholars oftener than not."

अर्थात् ऋग्वेद के शब्दों के अलङ्कारिक अर्थ करने के लिये अब तक इतनी भिन्न २ कल्पनायें की जा चुकी हैं कि इनका परिणाम बड़ा असन्तोष जनक है। इसका कारण यह है कि इन अर्थ करने वालों ने विना किसी आधार के ही ऐसा मान लिया है कि वैदिक ऋषियों ने संसार की भिन्न २ प्रगतियों के रूपक बांधे थे। इसीलिये धातुओं की व्युत्पत्ति से ऐसे अर्थ कल्पित कर लिये गये जो ठीक नहीं थे। अर्थों के झमेलों या परस्पर विरोध का यही कारण है।

४—इन महोदय का विचार है कि वेद के जितने देवता है जैसे सूर्य्य, वायु, अग्नि, इन्द्र, मरुत् आदि यह सब के सब इन भौतिक पदार्थों अथवा अभौतिक और इन्द्रियातीत देवों के वाचक नहीं किन्तु जीवन शास्त्र से सम्बन्ध रखने वाली वस्तुयें हैं।

"To the student of Medicine, the shape and description of Rig-Vedic world will at once strike as similar to that of the Central Nervous System.

अर्थात् ऋग्वैदिक जगत हमारे

शरीर की नाड़ियों की संस्था से सादृश्य रखता है।

The two bowls of heaven with a cleft in between them are representatives of two separate hemispheres of the brain.

द्यौ लोक के दो भाग जिनके बीच में ख़ाली स्थान है मस्तिष्क के दो गोलार्द्ध हैं।

It is the mid-region—Antariksha—of the Rig-Vedic world which is filled with water.

ऋग्वेद का अन्तरिक्ष इन दो गोलार्द्धों के बीच का स्थान है।

The physical appearance of the Rig-Vedic world is reconcilable with the nervous system within us. The various gods that are described as offsprings of heaven and earth and whereon they perform their various activities must, therefore, be the various parts of the nervous system and these are personified as gods, men, animals, rivers, oceans, strands, etc. The praises showered on them by the Vedic Seers and their qualities described by them specify the functions that they discharge in the economy of human life.

अर्थात् ऋग्वेद में वर्णित बाह्य जगत वस्तुतः हमारे शरीर के भीतर का ही जगत् हैं और भिन्न २ देवते हमारे शरीर के आन्तिरिक अवयव हैं। इनकी स्तुति से तात्पर्य यह है कि वह अवयव क्या क्या काम करते हैं।

यह ऋग्वेद के मंत्रों का एक अनूठा भाष्य है जो रेले महोदय से पहले किसी को नहीं सूझा, इस में सन्देह नहीं कि जब से स्वामी दयानन्द ने यह घोषणा की कि वेद में सब प्रकार के विज्ञान विद्यमान हैं उस समय से भिन्न २ मंत्रों के वैद्यक परक अर्थ करने का बहुत कुछ प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु ऋग्वेद के समस्त देवतों को जीवन-शास्त्र सम्बन्धी अवयवों से सम्बद्ध कर देना सर्वथा नई बात है। हम इस पुस्तक की आलोचना करने में जल्दी करना नहीं चाहते। कभी अवकाश मिलने पर सविस्तार लिखेंगे, इस समय वेदोदय के पाठकों से पुस्तक परिचय कराना ही अभीष्ट है।

नेत्र-यज्ञ

आज कल यज्ञ का केवल यही अर्थ समझा जाता है कि अग्न्याधान करके उस में घृत, कपूर आदि सुगन्धित पदार्थों को जलाना। हवन यज्ञ का एक

अङ्ग है इस में सन्देह नहीं, परन्तु हवन को ही यज्ञ समझना भूल है। इससे भी बड़ी भूल संसार में यह चल पड़ी है कि पशुओं को मार कर अग्नि में आहुति देना यज्ञ समझा जाने लगा है। यह यज्ञ के सर्वथा विपरीत अर्थ हैं। प्रत्येक परोपकार के कार्य्य को यज्ञ कहते हैं चाहे उस में भौतिक अग्नि में जलाने का कोई भी कृत्य न हो। पहले भी यज्ञ के यही अर्थ लिये जाते थे। ब्रह्म यज्ञ में किसका मुख्य अङ्ग संध्योपासन है कोई आहुति आदि नहीं दी जाती। अतिथि यज्ञ तथा पितृ यज्ञ का मुख्य कृत्य यही है कि अतिथि तथा माता पिता की सेवा सुश्रुषा की जाय। प्राचीन काल में भिन्न भिन्न प्रकार के यज्ञ हुआ करते थे। उन सब की पद्धतियां स्पष्ट नहीं और अनेकों उन में से मध्यकालीन याज्ञिकों के झमेलें में गड़बड़ हो चुके हैं। नृमेध, गोमेध, अश्वमेध आदि यज्ञों में किस किस सार्वजनिक परोपकार का कृत्य किया जाता है यह ज्ञात नहीं है।

परन्तु आज कल एक और यज्ञ आरम्भ हुआ है जिसको 'नेत्र-यज्ञ' कह सकते हैं।

यह नेत्र-यज्ञ काशी के प्रसिद्ध माननीय राजा सर मोतीचन्द सी० आई० ई० ने गत नौम्बर १९३० के अन्तिम सप्ताह में अपने निवास स्थान अजमतगढ़ पैलेस (Azmatgarh Palace) काशी में कराया था। पंजाब प्रान्त के मोगा नगर के प्रसिद्ध डाक्टर मथुरादास इस यज्ञ के पुरोहित थे। वह पांच दिन रहे। इस समय ८२१ नेत्र हीन स्त्री पुरुषों की आंखों की चिकित्सा की गई। रोगियों के निवास के लिये स्कूल तथा शामियानों में प्रबन्ध हुआ था, और उन की देख रेख के लिये परिचारक तथा धाइयां नियत की गई थीं। अच्छे होने पर रोगियों को उपनेत्र अर्थात् चश्में और एक एक कम्बल देकर विदा किया जाता था। कहते है कि दो प्रतिशतक रोगियों को सफलता नहीं हुई। कोई कोई रोगी तो जम्मू और काठियावाड़ जैसे दूरस्थ प्रान्तों से आये थे।

इससे पहले गुजरात में भी कुछ महानुभाव नेत्र यज्ञ करा चुके हैं। हम इस यज्ञ के यजमान राजा सर मोतीचंद जी को बधाई देते हैं। पशु हत्या वाले यज्ञों के करने वालों को तो स्वर्ग प्राप्ति की उतनी ही आशा रखनी चाहिये जितनी बबूल का बीज बोने को आम खाने की। परन्तु जो यज्ञ राजा सर मोतीचन्द ने कराया है वह रोगियों को तो अभी स्वर्ग लाभ कराने में सफल हुआ है और भाविष्य में माननीय यजमान के परलोक सुधार का भी अवश्य कारणहोगा।

ईश्वर करे लोग यज्ञ के असली अर्थ समझें और इस प्रकार के यज्ञ अधिक संख्या में हो सकें।

Printed & published by Ganga Prasad (Editor) at the

